ISSN : 0435-1460
UGC Care List No. 25

के.हि.सं. गवेषणा

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाशिक्षण तथा साहित्य चिंतन की त्रैमासिक शोध - पत्रिका

अंक-130 : आश्विन-मार्गशीर्ष, 2079/अक्टूबर-दिसंबर, 2022

विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

आज़ादी का अमृत महोत्सव | G20 भारत 2023 INDIA

१२ वां
विश्व हिन्दी सम्मेलन
फ़िजी, २०२३

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण



(2 फरवरी, 1902 – 6 मार्च, 1995)

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के दोण्डपाडु ग्राम में जन्मे, केंद्रीय हिंदी संस्थान के संस्थापक, हिंदी सेवी, पद्मभूषण श्री मोटूरि सत्यनारायण जी भारतीय संविधान सभा के सदस्य के रूप में हिंदी को राजभाषा के पद पर आसीन करवाने वालों में से थे। उनकी स्मृति में संस्थान द्वारा प्रति वर्ष भारतीय मूल के दो विद्वानों को विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

यूजीसी केयरलिस्ट सं. 25
पीयर रिव्यूड रेफर्ड जर्नल

ISSN: 0435-1460

के.हि.सं. गवेषणा

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण तथा साहित्य-चिंतन की शोध–पत्रिका

अंक-130 : आश्विन-मार्गशीर्ष, 2079/अक्टूबर-दिसंबर, 2022

'विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक'

संरक्षक
श्री अनिल शर्मा 'जोशी'
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
ई–मेलः vicechairmankhs@gmail.com

प्रधान संपादक
प्रो. बीना शर्मा
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई–मेलः directorkhs1960@gmail.com

परामर्श मंडल

प्रो. गोपी नाथन
पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी, वि.वि., वर्धा

प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
पूर्व प्रोफेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो. हरिश्चन्द्र मिश्र
पूर्व प्रोफेसर, हिंदी भवन वि. भारती शांति निकेतन,
पश्चिम बंगाल–731235

प्रो. गजानन चव्हाण
पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग सावित्री बाई फूले वि.वि., पुणे

प्रो. अवधेश कुमार मिश्रा
प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, अंग्रेजी और विदेशी भाषा
विश्वविद्यालय, शिलांग परिसर, शिलांग–793022 (मेघालय)

प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह
प्रोफेसर, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. अभिनव कुमार मिश्रा
अध्यक्ष, भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी–221005 (उ.प्र.)

प्रो. राजेश कुमार
सदस्य, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

श्री जे.पी. पाण्डेय
निदेशक, स्कूली शिक्षा, शिक्षा मंत्रालय–110001, भारत सरकार

संपादक
डॉ. सपना गुप्ता
विभागाध्यक्ष,
अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई–मेलः drsapnagupta123@gmail.com

सह–संपादक
डॉ. कृष्ण कुमार पाण्डेय
क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, शिलांग केंद्र,
ई–मेलः rdshillong1976@gmail.com

प्रकाशन प्रबंधक
डॉ. निरंजन सिंह
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, दूरभाष : 0562-3554938

के.हि.सं. गवेषणा, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण तथा साहित्य-चिंतन की शोध-पत्रिका

अंक-130, आश्विन-मार्गशीर्ष, 2079/अक्टूबर-दिसंबर, 2022

'विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक'

© **सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा**

प्रकाशक : विभागाध्यक्ष, अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

संपादकीय कार्यालय : अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान,
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा - 282005
फोन/फैक्स 0562-2530684
ई-मेल : gaveshnapatrika@gmail.com

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत प्रति अंक रु. 40.00
वार्षिक रु. 250.00 (डाक खर्च सहित)
संस्थागत वार्षिक रु. 350.00 (डाक खर्च सहित)
विदेशों में प्रति अंक $ 10.00
वार्षिक $ 40.00

मुद्रक : राष्ट्रभाषा ऑफसेट प्रेस, आगरा

'गवेषणा' में प्रकाशित सामग्री से संपादक मंडल या संस्थान की सहमति होना अनिवार्य नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

स्वामित्व : **सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा**

अनुक्रम

- फ़ीजी में 15-17 फरवरी को आयोजित होने वाला विश्व हिंदी सम्मेलन, 2023: इतिहास और संभावनाएँ/ **अनिल शर्मा 'जोशी'** 5-8
- आमुख/ **प्रो. बीना शर्मा** 9-11
- संपादकीय/ **डॉ. सपना गुप्ता** 12-14

धरोहर एवं दस्तावेज:

- कला के विविध रूपों के अंतर्विषयक रचाव पर कुछ विचार **रविन्द्र नाथ श्रीवास्तव** 15-24
- भारतीय "धरोहर" **मीरा सिन्हा** 25-34
- भारतीय संस्कृति की कुंभ परंपरा **विनय कुमार शर्मा** 35-41
- काशी का हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान काशी नागरीप्रचारिणी सभा के विशेष संदर्भ में **राकेश कुमार दुबे** 42-49

हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि:

- भारत की राष्ट्रभारती हिंदी : सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संप्रेषणपरक भूमिकाएँ **दिलीप सिंह** 50-59
- हिंदी और हिंदी समाज **पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'** 60-69
- भाषा और संस्कृति का अंतरसंबंध **साकेत सहाय** 70-77
- हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि **विजयानन्द** 78-83
- भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में हिंदी की भूमिका **यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी** 84-89
- हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि **चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव** 90-98

हिंदी की आंचलिकता (आंचलिक लोकरंग):

- "दक्षिण भारत में हिंदी के बढ़ते कदम" **योगेन्द्र शर्मा "अरुण"** 99-104
- हिंदी की आंचलिकता **मृदुल कीर्ति** 105-110
- हिंदी की विकास - यात्रा में दक्खिनी हिंदी का स्थान **पूर्णिमा आर.** 111-117

हिंदी की अधुनातन स्थिति:

- हिंदी के सुलगते सवाल **राजेश कुमार** 118-125
- हिंदी पाठ पूर्व-संसाधन (प्राकृतिक भाषा संसाधन के परिप्रेक्ष्य में) **अंजना किशनपुरी, धीरेन्द्र यादव, हर्षलता पेटकर** 126-138
- देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी के मानक रूप का विवेचनात्मक अध्ययन **कृपा शंकर** 139-145

हिंदी का वैश्वीकरण (परदेस में हिंदी):

- मॉरीशस के भोजपुरी लोक-गीतों में संस्कृति — **कमल किशोर गोयनका** 146-159
- विश्व भाषा का परिकल्प और हिंदी — **सूर्यप्रसाद दीक्षित** 160-165
- कनाडा के अग्रणी हिंदी प्रसारक श्री जगदीशचंद्र शारदा, "शास्त्री जी" — **रत्नाकर नराले** 166-171
- हिंदी का व्यापक होता क्षितिज — **आलोक गुप्त** 172-176
- मॉरीशस के प्रेमचंद अभिमन्यु अनत — **कृष्ण कुमार मिश्र** 177-182
- बाज़ार की भाषा और भाषा की बाज़ारीकरण (हिंदी : विकास, विमर्श और प्रतिमानीकरण) — **प्रभाकर सिंह** 183-196
- हिंदी का वैश्वीकरण — **करुणा शंकर उपाध्याय** 197-202
- ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार — **रेखा राजवंशी** 203-208
- 'न्यूज़ीलैंड' में हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा — **रोहित कुमार हैप्पी** 209-216
- विदेश में हिंदी का वैश्वीकरण — **नीलू गुप्ता** 217-222
- हिंदी के वैश्विक विस्तार में सिनेमा का योगदान — **विजय सिंह** 223-228
- मॉरीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति — **नीलम शर्मा** 229-237
- मॉरीशस के हिंदी के विकास में उपन्यासों का योगदान — **शालेहा प्रवीन** 238-241
- हिंदी के वैश्वीकरण में अनुवाद की भूमिका — **अभिनव कुमार मिश्रा, हर्ष कुमार** 242-249
- फ़ीजी का गौरव हिंदी — **बलजीत कुमार श्रीवास्तव** 250-257

हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण:

- संप्रेषणशील भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण: दिशाएँ और संभावनाएँ — **जी. गोपीनाथन** 258-261
- शिक्षा की व्यवस्था: पास या फ़ेल? — **वी.रा. जगन्नाथन** 262-266
- भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन और हिंदी भाषा शिक्षण — **रमेश चन्द्र** 267-280

इस अंक के लेखक

सदस्यता फार्म

लेखकों से निवेदन

फ़ीजी में 15–17 फरवरी को आयोजित होने वाला विश्व हिंदी सम्मेलन, 2023: इतिहास और संभावनाएँ

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी की वैश्विकता का प्रकटीकरण है। जब हम हिंदी के विकास की बात करते हैं तो हम देखते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिंदी भारत के जन-जन की अभिव्यक्ति, संघर्ष और भावी दिशा की भाषा बनकर उभरी। भारत के सभी स्वतंत्रता सेनानियों ने इसके विकास के लिए कार्य किया। इनमें गांधी जी तो प्रमुख थे ही, सुभाष चंद्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, जवाहर लाल नेहरू, राजगोपालाचारी, मौलाना आजाद, राजेंद्र प्रसाद और अन्य राष्ट्रीय व्यक्तित्वों ने भी इन पवित्र उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया। हिंदी के इस विकास में मुख्य रूप में मुख्यत: हिंदीतर क्षेत्र के लोगों ने योगदान किया। इस लड़ाई में देश की सभी जातियों, वर्गों और संप्रदायों के प्रतिनिधि शामिल थे।

आजादी के बाद 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। हिंदी की बीसवीं शताब्दी के पहले छह दशकों की यात्रा भारत के विभिन्न प्रांतों, क्षेत्रों और प्रमुख स्थलों की यात्रा है। आजादी की लड़ाई के दौरान विशेष रूप से गांधी जी के प्रयासों से और बाद में भी सद्प्रयासों से हिंदी ने गंगा की सरहदों को पार करते गैर-हिंदी भाषी प्रांतों के हिंदी को जानने और समझने वाले करोड़ों लोगों से अपने आपको जोड़ा। त्रिभाषा सूत्र के माध्यम से भी हिंदी को अन्य प्रांतों और भाषा-भाषियों तक पहुँचने का मौका मिला। बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हिंदी की शक्ति को एक बार फिर से पहचाना गया। विश्व हिंदी सम्मेलन एक ऐसी ही संकल्पना थी। 10 जनवरी, 1975 को आयोजित पहला विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी और भारतीय भाषाओं के वैश्विक प्रसार की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। सम्मेलन की कई विशेषताएँ थी- जैसे इस सम्मेलन में भारत सरकार की प्रमुख भूमिका तो थी ही परंतु इसके आयोजन में मुख्य भूमिका निभाने वाली संस्था राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा सबसे सक्रिय थी। इस आयोजन के केंद्र में कई मराठी भाषी थे। इस आयोजन का दूसरा पक्ष यह था कि इस आयोजन के मुख्य अतिथि मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम थे। भारत और मॉरीशस की इस साझेदारी का यह परिणाम हुआ की तीन विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में हुए। यह सम्मेलन वर्ष 1976, 1993, 2018 में मॉरीशस में आयोजित किए गए। इसी प्रकार तीन बार ही वर्ष 1975, वर्ष 1983 और वर्ष 2018 में भारत में विश्व हिंदी

सम्मेलन आयोजित किए गए। मॉरीशस के साथ भारत की साझेदारी केवल भाषा तक सीमित नहीं रही, विश्व हिंदी सम्मेलन के माध्यम से प्रारम्भ हुई इस साझेदारी के कारण मॉरीशस भारत के एक प्रमुख दोस्त के रूप में उभरा। यहाँ तक की विश्व हिंदी सचिवालय का मुख्य कार्यालय भी मॉरीशस में है। विश्व हिंदी सम्मेलनों की यह यात्रा मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका भी गयी और इन सम्मेलनों ने गिरमिटिया देशों के साथ भावनात्मक संबंध बनाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके अतिरिक्त विश्व हिंदी सम्मेलनों की इस यात्रा से ब्रिटेन और अमेरिका के भारतीयों को जोड़ने का भी अवसर वर्ष 1999 और वर्ष 2007 में मिला। इस प्रकार यह विश्व हिंदी सम्मेलन एक भाषायी अनुष्ठान नहीं रह गए बल्कि भारत को समानधर्मा और समान संस्कृति वाले देशों के साथ जोड़ने वाले मेधावी उपक्रम बन गए।

फ़ीजी के साथ भारत का रिश्ता वर्ष 1879 से शुरू होता है जब गिरमिटियों को लेकर पहला समुद्री जहाज लियोनीदास फ़ीजी पहुँचा था। इसके बाद धीरे-धीरे बड़ी मात्रा में भारत से गिरमिटिया फ़ीजी गए। वर्ष 1920 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो गई। इसके पश्चात वहाँ के भारतीयों ने धीरे-धीरे वहाँ के समाज जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। वर्ष 1975 यानि पहले विश्व हिंदी सम्मेलन से ही अगले विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन फ़ीजी में किए जाने संबंधी प्रस्ताव चर्चा में था। इसी प्रकार वर्ष 1999 में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में फ़ीजी में मंत्री और सांसद रहे प्रख्यात लेखक विवेकानंद शर्मा चाहते थे कि अगला विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में आयोजित किया जाए। सामाजिक-राजनीतिक कारणों से यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हो सके। परंतु फ़ीजी में भारतीय डायस्पोरा को देखते हुए ऐसा लगता था कि विश्व हिंदी सम्मेलन भारत और फ़ीजी के संबंधों को मजबूत करने और फ़ीजी में हिंदी के विकास को दिशा देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकता है। फ़ीजी में हिंदी एक जीवंत भाषा है। आज भी वहाँ पर घरों और बाजारों में उसका उपयोग किया जाता है। कमला प्रसाद, जोगेन्द्र सिंह कँवल, प्रोफेसर सुब्रमणि जैसे हिंदी के महत्वपूर्ण लेखक फ़ीजी में हुए हैं। इसी प्रकार शांतिदूत अख़बार का 85 वर्ष तक निकलना इस बात का द्योतक है कि फ़ीजी में भाषाओं के दृष्टि से हिंदी प्रमुखता की स्थिति में रही। श्री गुरदयाल की इसके प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका थी जो चालीस वर्षों से भी अधिक समय शांतिदूत के संपादक रहे। हिंदी फ़ीजी की राजभाषा भी है, साथ ही हिंदी को वहाँ के स्कूलों में भी पढ़ाया जाता है। अक्टूबर 1970 में फ़ीजी की आजादी के बाद श्री भगवान सिंह भारत के उच्चायुक्त बनकर फ़ीजी में गए। उन्होंने अपने कार्यकाल में भारत और फ़ीजी को जोड़ने के लिए कई उपक्रम किए। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से उनका कार्यकाल अत्यंत सफल रहा। भारत सरकार के विभिन्न उच्चायुक्तों और अधिकारियों ने भारत और फ़ीजी को जोड़ने में अपना योगदान किया। कमला प्रसाद और जोगिंदर सिंह कँवल जैसे लेखकों को श्री भगवान सिंह से प्रेरणा मिली। फ़ीजी में भारत सरकार के उच्चायुक्त श्री ईश्वर सिंह चौहान अलग-अलग पदों पर तीन बार फ़ीजी गए। पहले एक शोध छात्र के रूप में, फिर सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक के रूप में और सबसे अंत में उच्चायुक्त के रूप में। उनकी भूमिका प्रेरणादायक व सकारात्मक रही है। फ़ीजी में भारत के उच्चायुक्त रहे श्री विनोद कुमार अपने भाषा प्रेम के कारण से जाने गए। श्री ए.पी. वेंकटेश्वरन, श्री

गीतेश शर्मा जैसे उच्च स्तर के राजनयिकों ने फ़ीजी में उच्चायुक्त के रूप में महत्वपूर्ण काम किया और राजनय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। श्री प्रभाकर झा और श्री अजय सिंह ने भी उच्चायुक्त के रूप में अपने कार्यकाल में भारत और फ़ीजी के संबंधों की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया।

इसके अतिरिक्त प्रख्यात नाटककार श्री दया प्रकाश सिन्हा, भाषाविद् श्री विमलेश कांति वर्मा, डॉ. कमल किशोर मिश्रा, श्री महावीर सिंह, श्री संतोष मिश्रा जैसे समर्पित व्यक्तित्व भी फ़ीजी में भारत के सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक रहे हैं जिन्होंने भारत और फ़ीजी को सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

श्री विश्वास सपकाल ने उच्चायुक्त के रूप में अपने कार्यकाल में फ़ीजी और भारत के संबंधों को लेकर कई महत्वपूर्ण कदम उठाए, दोनों देशों को जोड़ने वाले कार्यक्रमों की शृंखला आयोजित की व कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में नई पहल की। उनका कार्यकाल भी भारत और फ़ीजी में संबंधों के भाषाई और सांस्कृतिक आयामों को एक ऊँचाई प्रदान करने के लिए जाना जाता है। नमस्ते पैसिफिक उत्सव के माध्यम से फ़ीजी के प्रत्येक क्षेत्र को भारत और भारतीयता से जोड़ने का उन्होंने एक गंभीर प्रयास किया। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उनके इस प्रयासों में मुझे भी जुड़ने का मौका मिला और उनके मार्गदर्शन में इन कामों के संयोजन और समन्वय का दायित्व मैंने किया। अपने कार्यकाल में मैंने द्वितीय सचिव हिंदी और संस्कृति के साथ-साथ समय-समय पर सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक, चांसरी प्रमुख आदि जिम्मेदारियाँ निभाई। भारत से हजारों किलोमीटर दोनों देशों की भाषा और संस्कृति में पुल बनाने की एक भूमिका निभाने में अवसर मिलने के कारण मेरे लिए यह कार्यकाल यादगार हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मेरे कार्यकाल में वर्ष 2015 और वर्ष 2018 में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में फ़ीजी के आज तक के सबसे बड़े प्रतिनिधिमंडल गए। इस कारण से फ़ीजी में हिंदी का नेतृत्व करने के लिए नई पीढ़ी तैयार हो गई। इसी क्रम में वर्ष 2018 में भारत और फ़ीजी के संबंधों के दूरगामी प्रभाव के दृष्टिगत फ़ीजी में विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के संदर्भ में व्यक्तिगत रूप से अपनी पहल पर मॉरीशस में गया। और 2022 में होने वाल विश्व हिंदी सम्मेलन को फ़ीजी में आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और 15-17 फरवरी, 2023 को बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में आयोजित किया जा रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि भारत और फ़ीजी के संबंधों की दृष्टि से यह सम्मेलन ऐतिहासिक सिद्ध होगा और इससे फ़ीजी में हिंदी के विकास के लिए नई दिशायें खुलेंगी। इस सम्मेलन के माध्यम से न केवल फ़ीजी बल्कि पूरे प्रशांत क्षेत्र में हिंदी के विकास को एक नई गति मिलेगी।

भारत अब एक आर्थिक महाशक्ति बन गया है। भारत इस वर्ष जी-20 की अध्यक्षता भी कर रहा है। यह भारत की यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जब सारी दुनिया उसे नेतृत्व, सद्भाव, प्रेरणा और मार्गदर्शन की दृष्टि से देख रही है। ऐसे समय में इस बात की बहुत आवश्यकता है कि भारत अपनी सॉफ्ट पावर यानि सांस्कृतिक देय को समझें और भाषा और संस्कृति के माध्यम से सारी दुनिया को जोड़ने के प्रयासों को गति दे। यही तो भारत की परंपरा है। गिरमिट देशों के अतिरिक्त चीन,

श्रीलंका, नेपाल, इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, वियतनाम, कम्बोदिया, म्यांमार, लाओस, बाली में भारत की संस्कृति की यात्रा वास्तव में एक अद्‌भुत उपलब्धि है। भारत ने देशों का औपनिवेशीकरण नहीं किया बल्कि अपनी संस्कृति के माध्यम से ही यह प्रयास किया की सभ्यता, जीवन मूल्यों और संस्कृति के शाश्वत और मूलभूत तत्वों के माध्यम से विश्व को जोड़ा जा सके। इसी बात को इकबाल ने कहा था कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।' आज भी भारत की भाषाओं की वैश्विक यात्रा का एक प्रमुख संकेत विश्व हिंदी सम्मेलन है। इन सम्मेलनों के माध्यम से भाषा के विभिन्न आयामों पर विचार विमर्श होता है। इस बात पर विचार किया जाता है कि शिक्षण की दृष्टि से विभिन्न देशों में हिंदी की क्या स्थिति है? इसी प्रकार इन सम्मेलनों में यह भी स्पष्ट होता है कि हिंदी में लिखने वाले रचनाकार भारत और अपने देश की गंध को समाहित करते हुए किस तरह का लेखन और दस्तावेजीकरण कर रहे हैं। यह प्रवासी साहित्य भारत के साहित्य की अनमोल धरोहर है। भारत की जी-20 की अध्यक्षता इस बात का भी प्रतीक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में और अन्य वैश्विक संस्थाओं में अब भारत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं की यह वैश्विक यात्रा विश्व हिंदी सम्मेलन के माध्यम से अतीत की समीक्षा, वर्तमान का सिंहावलोकन, भविष्य की दिशा निर्धारित करेंगे। विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

—अनिल शर्मा 'जोशी'
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

आमुख

वैश्विक हिंदी सम्मेलनों का एक बड़ा उद्देश्य विश्वभर में हिंदी के प्रति जागरूकता लाना और हिंदी की प्रगति तथा अद्यतन स्थिति से संपूर्ण हिंदी जगत को अवगत कराना है। 'कोस कोस पर बदले पानी और चार कोस पर बानी' यह कहावत भारत जैसे विविध संस्कृतियों और बहुभाषी देश के लिए सटीक बैठती है। सैकड़ों बोलियों और भाषाओं वाले देश भारत में हिंदी का स्थान अद्वितीय है क्योंकि हिंदी ही एक मात्र ऐसी भाषा है जिसमें न केवल सदियों से पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का महान काम किया है बल्कि आजादी के दिनों में भी सबसे मुखर और संपर्क सूत्र के रूप में भूमिका निभाई है। अब यह भाषा भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया भर में बोली और समझी जाने वाली भाषा बन गई है। फ़ीजी में जहाँ 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है वहाँ की आधिकारिक भाषा हिंदी ही है। 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस मनाने की शृंखला 2006 से जारी है। विदेश मंत्रालय विश्व हिंदी दिवस का आयोजन तो करता ही है, साथ ही विदेश मंत्रालय द्वारा सरकार के सहयोग से विश्व हिंदी सम्मलेन भी आयोजित किया जाता है। इस बार बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में होने जा रहा है। हमें यह भी जानना जरूरी है कि 10 जनवरी, 2022 को विश्व हिंदी दिवस पर भारत के विश्व धरोहर स्थलों हिंदी विवरण को अपनी वर्ल्ड हैरिटेज सेंटर पर प्रकाशित करने का निर्णय यूनेस्को द्वारा लिया गया। यूनेस्को की 7 भाषाओं में हिंदी पहले से शामिल है। 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन को फ़ीजी में आयोजित करने का निर्णय मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में लिया गया था। अब तक विश्व के अलग-अलग भागों में 11 सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं। यह सम्मेलन नागपुर 1975, मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई 1976, नई दिल्ली 1983, मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई 1993, त्रिनिदाद एवं टोबेगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन 1996, लंदन यू.के. 1999, सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो 2003, संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयॉर्क 2007, दक्षिण अफ्रीका के शहर जोहांसबर्ग 2012, भारत के शहर भोपाल 2015, पोर्टलूई, मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई 2018 में संपन्न हो चुके हैं।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय हिंदी- प्रारंभिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक है। अन्य गतिविधियों में शैक्षिक सत्रों में हिंदी चर्चाओं के आधार पर रिपोर्ट, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गगनांचल का विशेष अंक और परंपरा के अनुसार हिंदी के दौरान भारत के हिंदी विद्वानों को हिंदी के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित किया जाएगा।

विश्व हिंदी सम्मेलन के उपलक्ष्य में केंद्रीय हिंदी संस्थान की 2 पत्रिकाओं (गवेषणा और प्रवासी जगत) का विशेषांक और संस्थान समाचार / विशेषांक (मासिक) प्रकाशित हो रहा है। गवेषणा के इस अंक के लेखों को 'धरोहर एवं दस्तावेज', 'हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि',

'आंचलिक लोकरंग', 'हिंदी की अधुनातन स्थिति', 'हिंदी का वैश्वीकरण', 'हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण संदर्भों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। इन लेखों में भारतीय धरोहर, भारतीय संस्कृति की कुंभ परंपरा, हिंदी की विविध संप्रेषणपरक भूमिकाओं, हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में हिंदी की भूमिका, दक्षिण भारत में हिंदी के बढ़ते कदम, हिंदी की विकास यात्रा में दक्खिनी हिंदी का स्थान, मॉरीशस के भोजपुरी लोकगीतों में संस्कृति के अग्रणी हिंदी प्रसारक, हिंदी का व्यापक होता क्षितिज, मॉरीशस के प्रेमचंद के उपन्यासों का योगदान, फ़ीजी का गौरव हिंदी, ऑस्ट्रेलिया में हिंदी का प्रचार-प्रसार, न्यूजीलैंड में हिंदी पत्रकारिता के साथ-साथ शिक्षा की व्यवस्था के पास और फेल होने के संदर्भ में स्वयं में बहुत ही व्यापक है और इसकी व्यापकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि व्रत, त्यौहार, मेले, तमाशे, खान-पान, वस्त्र विन्यास, लोक गीत, लोक कलाएँ, गीत, नृत्य, चित्रकला, नाटक, कहानी और नौटंकी आदि-आदि भारतीय संस्कृति के विशाल स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। कुंभ मेला विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का पर्याय बन चुका है और इसे लेकर पूरा विश्व बड़े अचरज में है कि कैसे एक विशेष दिन लाखों करोड़ों लोग एक ही स्थान पर गंगा के किनारे एकत्र होते हैं, गंगा स्नान करते हैं, पूजा अर्चना करते हैं, पारस्परिक सौहार्द बनाये रखते हुए आपस में एक दूसरे से पुनः मिलने के लिए विदा लेते हैं। यह कुंभ परंपरा भारत की आत्मा है। किसी भी देश की संप्रेषणपरकता उसका सबसे बड़ा गुण है। इसी संप्रेषणपरकता के कारण व्यक्ति से मिलकर समाज बनता है, संस्कृति पल्लवित और पुष्पित होती है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान का प्रांगण इस दृष्टि से लघु विश्व / वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को चरितार्थ करता है। दरअसल भाषा और संस्कृति एक-दूसरे से इस रूप में जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग ही नहीं किया जा सकता फिर चाहे वह अभिवादन करने की छोटी सी सामाजिक परंपरा ही क्यों न हो। भारत देश में नमस्ते, नमस्कार, प्रणाम के अतिरिक्त राधे-राधे, जय श्री राम, हरे कृष्णा, जय जिनेंद्र, सत श्री अकाल आदि-आदि न जाने कितने-कितने अभिवादन के तरीके हैं। इसी तरह लोक में फैले रीति-रिवाजों की जड़ें बहुत गहरी हैं और ये सब केवल और केवल भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्त हो पाती हैं। भारतीय संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने का बहुत बड़ा श्रेय केंद्रीय हिंदी संस्थान के खाते में जाता है। यहाँ छात्रवृत्ति पर अध्ययन के लिए आने वाले विद्यार्थी केवल हिंदी भाषा के चारों कौशलों को सीखते जानते और समझते ही नहीं हैं, बल्कि भारत के सांस्कृतिक राजदूत बनकर अपने-अपने देश में उनकी वापिसी होती है। भारत से सांस्कृतिक विविधता के जो बीज वे ले जाते हैं, उन्हें अपने देश की धरती में समाज और लोगों के मनों में बो देते हैं और धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति की शृंखला देश की सारे सीमाओं को पार कर लेती हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि नाइजीरिया, चाड आदि दूर देशों में बैठा विद्यार्थी 'ए मेरे वतन के लोगों' 'वैश्विक जन तो तेने कहिए या अटल जी की कविता सीख लेता है। उज्बेकिस्तान, तजाकिस्तान, कजाकिस्तान, रोमानिया एवं तुर्कमेनिस्तान के विद्यार्थी जब झाँसी की रानी के शौर्य की कविता पढ़ते

हैं अथवा श्याम नारायण पांडेय की कविता 'चेतक की वीरता' को दोहराते हैं तो वे केवल कविता ही याद नहीं करते अपितु कविता के ब्याज से भारतीय संस्कृति के गौरवशाली इतिहास को भी जान लेते हैं।

लोक गीत किसी भी भाषा के हों, वे मिट्टी से जुड़े होते हैं और एक सुदृढ़ परंपरा को व्यक्त करते हैं, फिर चाहे जन्म, नामकरण, विवाह अथवा मृत्यु का अवसर ही क्यों न हो। गवेषणा के लेख एक तरफ हिंदी की आंचलिकता, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, अधुनातन स्थिति, वैश्विकरण, भाषा और साहित्य शिक्षण से जुड़े हैं, वहीं धरोहर और दस्तावेज की चर्चा भी की गई है।

कुल मिलाकर यह अंक हिंदी के विविध पक्षों पर ज्ञानवर्धक और उपयोगी सामग्री लेकर सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। इस विशेषांक का एक बड़ा संदर्भ चूंकि 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन है, इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति की कुंभ परंपरा, भाषा और संस्कृति का अंतर संबंध, हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में हिंदी की भूमिका जैसे को रेखांकित किया जाना आवश्यक है। इन लेखों में विशेषत: मॉरीशस, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फ़ीजी में हिंदी की स्थिति को लेकर तर्कसंगत मंथन हुआ है।

गवेषणा के प्रकाशन से जुड़े लेखकों, रचनाकार, संपादक मंडल, परामर्श मंडल और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी सहयोगियों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

बीना

(प्रो. बीना शर्मा)
प्रधान संपादक

संपादकीय

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है। हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसने हमें और आपको एक सूत्र में बाँधा है। हिंदी प्रेम की भाषा एवं वसुधैव कुटुंबकम् का प्रतीक है। ऐसा हिंदी की भाषायी सामर्थ्य जीवंतता स्मृति एवं वैज्ञानिकता आदि के कारण है। हिंदी के विकास में वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की अहम् भूमिका है। इसकी उपयोगिता को अंतरराष्ट्रीय वैश्विक भाषा (ग्लोबल लेंग्वेज) के रूप में विश्व का व्यापारिक समुदाय अब भली-भाँति समझ भी चुका है।

हिंदी हैं, हम... ये आवाज आज के समय में केवल भारत तक सिमट कर नहीं रह गई है बल्कि आज ये आवाज वैश्विक पटल पर गूँज रही है और इस गूँज को गुंजायमान करने में योगदान दिया है, विश्व हिंदी दिवस एवं विश्व हिंदी सम्मेलनों ने। विश्व में हिंदी का विकास करने और अंतरराष्ट्रीय भाषा के तौर पर इसे प्रसारित करने के उद्देश्य से विश्व हिंदी सम्मेलन की शुरुआत की गई। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन 10 जनवरी, 1975 में नागपुर में आयोजित हुआ और इसी शृंखला को आगे बढ़ाते हुए 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 15-17, फरवरी, 2023 को फ़ीजी में आयोजित हो रहा है। इन सम्मेलनों का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक लोग हिंदी को अपनाएँ। वैश्विक स्तर पर हिंदी को पहचान मिले। हम जानते हैं कि हिंदी कुछ राज्यों की भाषा नहीं है, यह पूरे भारत की भाषा और विश्वभाषा भी है। हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ में अंतरराष्ट्रीय भाषा का स्थान प्राप्त करने हेतु निरंतर प्रयासरत है, यदि ऐसा होता है, तो सिर्फ हिंदी ही नहीं सभी भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा और महत्ता बढ़ेगी।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा हिंदी के बहुआयामी विकास तथा विदेशों में प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण में सतत प्रयत्नशील है गवेषणा। केंद्रीय हिंदी संस्थान की एक महत्वपूर्ण पत्रिका है। वर्ष 1960 में संस्थान की स्थापना के कुछ वर्षों के बाद ही गवेषणा के पहले अंक का प्रकाशन जनवरी 1963 में हुआ था। उस समय से आज तक गवेषणा ने एक लंबा सफर तय किया है। संपूर्ण भारत के हिंदी विद्वान इसमें छपते रहे हैं। गवेषणा का यह अंक विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

गवेषणा के इस अंक के शोध आलेखों को 'धरोहर एवं दस्तावेज', 'हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', 'हिंदी की आंचलिकता', 'हिंदी की अधुनातन स्थिति', 'हिंदी का वैश्वीकरण', 'हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण', छः संदर्भों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। धरोहर एवं दस्तावेज से

जुड़े चार शोध आलेख आपको इस अंक में मिलेंगे। प्रो. रविन्द्र नाथ श्रीवास्तव का शोध आलेख 'कला के विविध रूपों के अंतर्विषयक रचाव पर कुछ विचार', मीरा सिन्हा द्वारा लिखित शोध आलेख 'भारतीय धरोहर', डॉ. विनय कुमार शर्मा का शोध आलेख 'भारतीय संस्कृति की कुंभ परंपरा', डॉ. राकेश कुमार दुबे का 'काशी का हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान' प्रस्तुत इन आलेखों में कला, साहित्य भाषा, लोक नृत्य, लोक गीत, धार्मिक ग्रंथों प्राचीन स्मारकों, कुंभ स्नान को बहुत ही प्रमाणिक एवं सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिसे हिंदी में भारतीय साहित्यकारों ने विस्तार से लिखकर सुरक्षित किया है, जिससे युवा पीढ़ी पढ़कर लाभान्वित हो सकें। कुंभ हमारी सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है, कुंभ पर्व सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक उदारता का पर्व है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का हिंदी के विकास में योगदान का विश्लेषणात्मक वर्णन किया गया है। काशी के साहित्यकारों एवं हिंदी सेवियों का हिंदी भाषा एवं साहित्य के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित आलेखों में प्रो. दिलीप सिंह का शोध आलेख 'भारत की राष्ट्र भारती हिंदी: सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संप्रेषणात्मक भूमिका', पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' का 'हिंदी और हिंदी समाज', साकेत सहाय का 'भाषा और संस्कृति का अंतरसंबंध', डॉ. विजयानन्द द्वारा लिखित 'हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी का 'भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में हिंदी की भूमिका', डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव का शोध आलेख 'हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' इन विद्वानों ने हिंदी भाषा का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में महत्वपूर्ण स्थान बताया है, साथ ही इसे राष्ट्रीय भावना की संवाहिका के साथ एक विचार, चिंतन, संस्कार और संस्कृति भी कहा है। भाषा को न केवल समाज में होने वाले बदलाव का माध्यम बताया अपितु सांस्कृतिक विकास और विस्तार का साधन भी बताया है।

हिंदी के आंचलिक, लोकरंग में योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' का आलेख 'दक्षिण भारत में हिंदी के बढ़ते कदम', मृदुल कीर्ति का 'हिंदी की आंचलिकता', डॉ. पूर्णिमा आर. का 'हिंदी की विकास यात्रा में दक्खिनी हिंदी का योगदान', प्रस्तुत आलेखों में विद्वानों ने कहा है कि दक्षिण भारत में हिंदी के प्रसार हेतु 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की गई। जिससे हिंदी राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त कर सके। आज भाषा को गाँव, देहातों और आंचलिक क्षेत्रों ने ही बचा रखा है। विश्व की समस्त भाषाओं की तुलना में हिंदी पूर्णत: वैज्ञानिक भाषा है।

हिंदी की अधुनातन स्थिति में प्रो. राजेश कुमार का 'हिंदी के सुलगते सवाल', अंजना किशनपुरी का 'हिंदी पाठ पूर्व संसाधन', कृपा शंकर का शोध आलेख 'देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी के मानक रूप का विवेचनात्मक अध्ययन', इन शोध आलेखों में हिंदी के बिगड़ते स्वरूप के प्रति चिंता व्यक्त की गई है। हिंदी वर्तनी के मानक रूपों एवं प्रकृति भाषा संसाधन में हिंदी पाठ का पूर्व संसाधन हिंदी के डिजीटलीकरण में महत्वपूर्ण विषय है, जिसकी अपार संभावनाएँ हैं। प्रस्तुत आलेख शोधपरक, पठनीय एवं महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं।

हिंदी का वैश्वीकरण में प्रो. कमल किशोर गोयनका का 'मॉरीशस में भोजपुरी लोकगीतों में संस्कृति', प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित का 'विश्व भाषा का परिकल्प और हिंदी', प्रो. रत्नाकर नराले का 'कनाडा के अग्रणी हिंदी प्रसारक: श्री जगदीश चंद्र शारदा 'शास्त्री जी', प्रो. आलोक गुप्ता का 'हिंदी का व्यापक होता क्षितिज', डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र का 'मॉरीशस के प्रेमचंद अभिमन्यु अनत', 'प्रो. प्रभाकर सिंह का 'बाजार की भाषा और भाषा का बाजारीकरण', प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय का 'हिंदी का वैश्वीकरण', डॉ. रेखा राजवंशी का 'ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार', रोहित कुमार हैप्पी का 'न्यूजीलैंड में हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा', डॉ. नीतू गुप्ता 'विदेश में हिंदी का वैश्वीकरण', डॉ. विजय सिंह 'हिंदी के वैश्विक विस्तार में सिनेमा का योगदान', डॉ. नीलम शर्मा 'मॉरीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति', सालेहा प्रवीन 'मॉरीशस के हिंदी के विकास में उपन्यासों का योगदान', डॉ. अभिनव मिश्रा, हर्ष कुमार का 'हिंदी के वैश्वीकरण में अनुवाद की भूमिका', 'डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव का 'फ़ीजी का गौरव हिंदी', इन विद्वानों ने अपने आलेख में भारत मूल के अप्रवासी, भारतवंशी बहुल्य राष्ट्र मॉरीशस, फ़ीजी एवं ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड आदि देश जहाँ पर्याप्त मात्रा में हिंदी भाषीजन निवास कर रहे हैं, ऐसे देशों में हिंदी एवं भारतीय संस्कृति के प्रसार एवं विकास का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। मॉरीशस में प्रचलित भोजपुरी लोक गीतों में भारतीय संस्कृति की झलक दिखाई देती है एवं किस प्रकार से विभिन्न साहित्यकारों के उपन्यासों ने एवं सिनेमा ने हिंदी के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण में प्रो. जी. गोपीनाथन का शोध आलेख 'संप्रेषणशील भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण: दिशाएँ और संभावनाएँ', प्रो. वी. रा. जगन्नाथन का आलेख 'शिक्षा की व्यवस्था पास या फेल ?', रमेश चंद्र का शोध आलेख 'भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन और हिंदी' प्रमुख शोध आलेख हैं। विद्वानों ने अपने आलेखों में कहा है कि विश्व की संप्रेषणशील भाषाओं में हिंदी का महत्वपूर्ण स्थान है, हिंदी के मानक रूप के शिक्षण के लिए कंप्यूटर एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण है। वर्ष 2018 में शिक्षा की नई दृष्टि के रूप में की गई संकल्पना के अनुसार पाठ्यक्रमों को मानक बनाने की आवश्यकता है।

हमारे इन वरिष्ठ विद्वानों के सहयोग से 'केंद्रीय हिंदी संस्थान गवेषणा' पत्रिका का यह विशेषांक हिंदी को समर्पित एक महत्वपूर्ण विशेषांक बन सका है। निश्चय ही इससे पाठकों, अध्येताओं को हिंदी भाषा में शोधपरक सामग्री प्राप्त होगी। गवेषणा का यह अंक वैशिष्टपूर्ण एवं संग्रहणीय है। मुझे विश्वास है कि गवेषणा के प्रस्तुत अंक का पाठकजन स्वागत करेंगे। आप सभी के विचारों की प्रतीक्षा रहेगी।

—डॉ. सपना गुप्ता
संपादक,
के.हिं.सं. गवेषणा

कला के विविध रूपों के अंतर्विषयक रचाव पर कुछ विचार

—रविन्द्र नाथ श्रीवास्तव

कला में सबसे महत्वपूर्ण है- स्मृतियों का साक्ष्य। स्मृतियाँ समकालीनता के विविध उपकरणों के समाहार से असंबद्ध नहीं रह सकतीं। तार्किकता, परिवर्तनधर्मिता, शिल्प वैशिष्ट्य इत्यादि संश्लिष्टताओं से आकार ग्रहण करती समकालीन कला स्मृतिविहीन नहीं हो सकती फिर भी ऐसा लगता है कि जटिल समकालीन प्रत्ययों के कारण लोकोन्मुखता लगातार क्षीण होती गई है। स्थानीयता का पुट विविध रंगों के साथ उभरने चाहिए। इसके बावजूद कुछ कलाकारों ने मौखिक परंपराओं व धरती के उन्मुखीकरण को आधार बनाने का यत्न किया है तो कुछ लोक को नए सिरे से समझ कर लाना चाहते हैं। कुछ कला और समुदाय के बीच के संबंधों से काम करते हैं तो कुछ लोकप्रिय रूपों व ध्वनियों के आधार पर। कुछ सामाजिक आवेग को लोक संस्कृति में समंजन करके नई भाषा रच रहे हैं तो कुछ विशिष्ट नवाचार से कला की संभावनाओं के लिए नई सदी में नए दृष्टिकोण से सक्रिय हैं।

ग्रामीण संस्कृति की प्रमुख आधार प्रकृति महानगरों से जैसे ओझल हुई है, उससे कला-सूत्र की दशा बदल गई है। प्रकृति, नदी, पर्यावरण में जैसी स्मृतियाँ रही हैं तथा कला की धारा का जैसे गोमुख रहा है, नगरीकरण की स्थिति के चलते स्वप्न के संदर्भ बदल गए हैं। लोक की रुचियों व अनेक जड़ताओं को कला में जायज नहीं ठहराया जाना चाहिए, लेकिन उसकी तरलता या प्रवाहमयता या सुगंध का खोना स्मृति-रहित होने जैसा ही है। कला का नगरीकृत होना एक फेज है, लेकिन पारंपरिक अनुगूंजों से वंचित होना दूसरी बात। स्थानीयता के कई तरह के खतरे भी हैं किंतु उसकी अलग आभा उसकी शक्ति भी है। प्रौद्योगिकी को स्थानीयता में खास व्यवहार मिलता है। कला में स्थानीय संस्कृति को रचना एक खास सम्मोहन को शब्द देना है। उस सम्मोहन में एक गति भी होती है। कलात्मक प्रासंगिकता का दृश्यात्मकता व सांगीतिक अनुगूजों से विशिष्ट संबंध है।

लोक एवं ग्राम में जो दृश्यबंध आते हैं, उन्हें कला में एक आकार दिया जा सकता है। भोजपुरी व अन्य कलाओं में यह देखा जा सकता है। यह अलग बात है कि समकालीनता के तनावों व

लोक के समंजन का आधार क्या बनेगा या बनना चाहिए, यह विचार व अनुप्रयोग का विषय है। नए–नए विषयों को उठाते हुए भी मिथक व लोक का समकालीनीकरण संभव है। कला में तो यह विशिष्ट आकार ले ही सकता है। यदि नगरीय जीवन की संपृक्ति में लोक कविता की मूर्धन्यता को समझा जाए तो कुछ अनुभव एकत्र किए जा सकते हैं। उससे प्रस्तुति व शैली में निश्चित भिन्नताएँ आएंगी। सामूहिक कलात्मक गतिविधि, सामाजिक काम, रोजमर्रा की जिंदगी, जीवन व प्रकृति के ज्ञान, धार्मिक प्रथाओं और विश्वासों को कला में ढाल पाना इकहरा कार्य नहीं। लोक–रचनात्मकता का विशिष्ट आधार परक कार्य मनुष्य–मन की कलात्मक एकता है। कला समाज के निचले तबके के रंग की उपस्थितियों के लिए रोशनी जैसी है। इसमें एक तरह का घरेलूपन है। चाहें तो उसकी पुरातनता में एक नवाचार भी ला दें। कला में पुरातनता में नवसंघनन उसका महत्वपूर्ण पक्ष है। लोक में जो संकेत, आत्मीय रचाव और सहज संचरणशीलता है, वह अति आधुनिकता में भी स्वीकार्य है, बल्कि बहु उपयोगी। अतीत का उपयोग वर्तमान की आलोचना के बिना संभव नहीं। बिना आकांक्षा न तो जीवन जिया जा सकता है और न ही कला की रचना संभव है।

लोक को सस्ते फैशनपरस्ती के रास्ते पर ले जाने, उसे उपभोक्तावादी सिस्टम में खपाने और तदनुकूल कला के सरलीकरण को स्तरहीनतापूर्वक बल देने की भी कोशिशें जारी हैं। यह ऐसा प्रश्न है जो हमारे मानसतंत्र को बहुत बारीकी से झकझोरता है। कई बार ऐसा लगता है कि जो लोकगीत अपने एक आम अतीत की रचनात्मक अभिव्यक्ति व समकालीन चेतना से जुड़ा है, उसे बाजार की इच्छाओं की झोंक में सौंपा जा रहा है। बाजार से सहयोग लेना बुरा नहीं, बाजार में जाना भी सहज है, किंतु उसके तंत्र का अनुकर्ता मात्र हो जाना मानवीय गरिमा के विरुद्ध है। कला और लोक के अंतर्संबंध किसी भी अन्य अनुशासन की तरह हमें स्वयं को बेहतर और दूसरों को समझने के लिए सक्षम बनाते हैं। सारा मनोविज्ञान व समाजशास्त्र लोक संदर्भ में उपलब्ध हैं। यदि ऐसा न होता तो रामायण व महाभारत शास्त्र से लोक न बन जाते। जब हम आँख खोलते हैं तथा स्मृति–संपन्न होते हैं तो भारतीय समाजों में रामायण व महाभारत को सुनकर अपनी स्मृति की धरती पर उतार लेते हैं। लोक संस्कृति के आत्मीय संचरण को समकालीन कला में मानव अभिव्यक्ति के जबर्दस्त स्पेक्ट्रम की तरह लिया जाना चाहिए।

लोक एवं ग्राम– कला पारंपरिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम से सामूहिक कथन है, जीवन के साझे मार्ग पर गुजरना है, जिसमें सौंदर्य, अस्मिता व मूल्यों की अभिव्यक्ति हो सके। वह कला व भाषा में उतरती है तो जीवंत सांस्कृतिक विरासत होती है जो अतीत व वर्तमान के मध्य सेतु होती है। कला में समकाल व लोक संस्कृति को स्थिर न समझें, बल्कि युगानुकूल उसका स्वीकरण होता रहता है। मछली, वृक्ष, हवा, खिलौना, घर, गाय, पुष्प, पत्ते इत्यादि ऐसे पारंपरिक आलंबन हैं जो अपने साथ हमारी स्मृति लिए रहते हैं तथा हर बार सृजनात्मकता को नए तरीके से आकार देते हैं। संरक्षण, प्रक्रिया, उपकरण, सामग्री, डिजाइन, रूपांकन– सभी में एक परंपरा है। आज की कला में

यह परिलक्षित होती है। ये कला की परंपरा को जीवित रखने, बहुश्रुत बनाने, संबद्ध रखने, स्मृति – संपन्न रखने और रचनात्मक होने को आधार देते हैं। लोक एवं ग्राम संस्कृति के विशिष्ट प्रयोगों से समकालीन कला में विशिष्ट गतिमयता मिलती है, क्योंकि स्मृति, संकेत, स्वजनता, आत्मीयता से भिन्न गतिशास्त्र बनाया जा सकता है। यह एक सापेक्षता है जो कला की धार है। इसमें सद्भाव व स्वतंत्रता है। वैयक्तिक सम्मान, लोक कल्याण के साथ-साथ सृजनात्मकता का समाहार इसमें है। यही कला के लिए अपेक्षित भी है।

लोक संस्कृति सांस्कृतिक लोकाचार की भावना को रूपाकार देती है। संस्कृति के क्षेत्र में लोक संगीत भावनाओं और संवेदनशीलता के कारण पहचान को चिह्नित करने के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। लोक संगीत लोक कला से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। अभिजात जनों की धारणा यह है कि लोक संगीत हाशिये यानी दूर की आवाज और अतीत से विरासत में मिले पिछड़ेपन का संकेत है, जिसे विकसित करने और वर्तमान में लाने की जरूरत है किंतु लोक संगीत के अभ्यास को स्थानीय आबादी से निरंतर समर्थन प्राप्त होता है और इसको हाल के वर्षों में लोकप्रियता में वृद्धि मिली है। अभिजात जनों की सोच से हटकर देखें तो सच यह है कि समकालीन लोक संगीत समाज की प्रभुत्व शक्ति- अभिकेंद्रिक रसूखदार संस्कृति के समांतर एक सीमा-रेखा खींचने में सक्षम है और राज्य नियंत्रित सांस्कृतिक स्पेस में भी सामान्य लोक को सम्मानपूर्ण स्वर प्रदान कराता है। यही लोक कला के साथ भी है। भोजपुरी लोककला एवं अन्य लोक कलाओं को भी इसके बरक्स देख सकते हैं। स्थानीय या लोक संस्कृतियाँ अपनी विशेषताओं के कारण भाषा, रीति-रिवाज, धर्म, भोजन, संगीत, प्रदर्शन कला की विशिष्ट व जन-अभिव्यंजक हैं। समकालीन सांस्कृतिक थियरी को देखें तो अक्सर संस्कृति के अध्ययन में लोक संस्कृतियों को बहुत कम महत्व दिया गया है। 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में यह हुआ कि क्षेत्रीय संस्कृतियों को विद्वानों को राष्ट्रीय पहचान बनाने में महत्वपूर्ण और आवश्यक सामग्री के रूप में मान्यता देनी पड़ी। अनौपचारिक रूप से लोक संस्कृति में केंद्र- परिधि, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ऊर्जा का प्रवाह अंदर से बाहर निकालता है। लोक संस्कृति तरल है। वास्तव में, लोक संस्कृति वह आंतरिक ऊर्जा है जो वृहत्तर रूप में राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतीक बन सकती है और राष्ट्र के लिए खड़े होने के लिए क्षेत्रीय सीमाओं को पार करने की शक्ति जुटा सकती है।

लोक संस्कृति की सहज उपस्थिति न केवल भारतीय संस्कृति के मानचित्रण को परिभाषित करने के पारंपरिक तरीकों को चुनौती देती है, इस तथ्य पर भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि क्षेत्रीय संस्कृतियाँ ऐसी आधार- तल हैं जो स्थानीय रूप से निर्मित होती हैं, सांस्कृतिक रूप से चिह्नित होती हैं और अपने अद्वितीय सामाजिक संदर्भ के अनुसार संकेतित होती हैं। "सामाजिक" चीजों की प्रकृति पर ध्यान केंद्रित करके, हम भारतीय संस्कृति और समाज को समझाने में अति-सामाजिक और ऐतिहासिक कारकों और मैट्रिक्स पर भरोसा करने के जाल से बच सकते हैं।

लोक संगीत अपने मूल संदर्भों के भीतर और बाहर अद्‌वितीय पहचान कैसे प्राप्त कर लेता है? वे महत्वपूर्ण कारक क्या हैं जो आधारभूत तथ्य के रूप में सामने आते हैं तथा सांस्कृतिक एकजुटता को व्यापक रूप से मजबूत करने में सामूहिक कल्पना के शक्तिशाली प्रभाव को संदर्भित करते हैं? वे हैं- प्रदर्शन कला और अभिव्यंजक रणनीतियाँ। जब हम लोक संगीत के बारे में बात करते हैं तो इसका मतलब होता है- संगीत की सहज पारदर्शी सामान्य छवि! यह विचारणा पहचान, अधिकार और वर्तमान में सामान्य की उपस्थिति एवं स्थिति से संबंधित मुद्‌दों पर ले जाती है। पहले की अवधि की पहचान के आवश्यक दृष्टिकोण से एक कठोर प्रस्थान अर्थात अब पहचान को तरल तथा संदर्भ-विशेष के रूप में देखा जाता है। लोगों की सामूहिक कल्पना के अनुसार विशेष ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप यह लोक संगीत है। राष्ट्रीय / स्थानीय, हमें / उन्हें केंद्र / परिधि जैसे द्‌वैतवादी भेद अब व्यवहार्य और पर्याप्त श्रेणियाँ नहीं हैं, बल्कि "परिभाषित" और "परिभाषित" होने की गतिशील प्रक्रियाओं की अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन्हें लोक संगीत पानी-पानी कर देता है!

संगीत और सामान्य रूप में लोक संगीत, मुख्य रूप से भावना के समुदाय पर आधारित है। लोक समूह को चीजों की कल्पना करने और उन्हें एक साथ महसूस करने को यह संवेदन देता है क्योंकि लोक समूह अपनी वास्तविकता और सामाजिक सीमाओं को परिभाषित करता है। कोई भी संगीत जातीयता और पहचान के संबंध में सामूहिक आकांक्षाओं के परिदृश्य का निर्माण करने में कच्चा माल बनने में सक्षम है। लोक संगीत की विशिष्टताएँ और सौंदर्यशास्त्र प्रतीकात्मक प्रदर्शनों की सूची का हिस्सा है जो स्थानीय चेतना और अपनेपन की भावना को बनाए रखता है तथा भावना और सांस्कृतिक शैली के सार एवं लोकाचार का प्रतिनिधित्व करता है। आज लोक की नई संगीत भाषा को संगीत संसार के बीच एक मानक अभ्यास के रूप में स्वीकार किया जा रहा और नई लोक धुन की रचनाओं ने पारंपरिक लोगों को नए 'कैनन' के रूप में बदल दिया है।

मुख्य सिनेमा प्रायोजित संगीतकारों के रूप में संस्कृति की आर्थिकी का बड़ा हिस्सा रहे नए सांस्कृतिक अभिजात वर्ग ने खुद को उन लोगों से अलग करना शुरू कर दिया था, जिन्होंने अलग-अलग लोक एवं आंचलिक संगीत वरीयताओं तथा सौंदर्यशास्त्र को बनाए रखा था किंतु जहाँ लोक उपस्थित था, अक्सर उसका संगीत-प्रभाव दूरगामी व हृदय ग्राही था, आज भी है, शायद क्लासिकी भी वहीं से आती है! यद्‌यपि अभिजात संगीत शैली की सीमाओं के बाहर लोक संगीत को श्रेष्ठता और राजनीतिक शुद्‌धता के समांतर असंगत के रूप में माना गया था किंतु समकालीन लोक संगीत स्थाई प्रभाव छोड़ने में समर्थ हुआ है।

लोक संगीतकारों ने स्थानीय प्रथाओं को कच्चे माल के रूप में माना, जिनका उपयोग नई रचनाओं के स्वाद को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। उन्होंने इन "कच्ची" और "अपरिष्कृत" लोक ध्वनियों को सारपूर्ण और लोक की सच्ची भावना के रूप में रोमांटिक बना दिया। उन्होंने यह भी माना कि यह केवल शोधन और विकास की प्रक्रिया के माध्यम से था कि श्रेष्ठ को निकाल कर प्रकट

किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण ने रचनाओं को समृद्ध करने हेतु लोक संगीत को इकट्ठा करने के मानक अभ्यास को जन्म दिया। पारंपरिक अभ्यास के अनुसार, संगीत-प्रदर्शन को अक्सर सुधार और लचीलेपन की विशेषता होती है। लोक संगीत के घनत्व, मधुर आकार, लय और गति को समय सापेक्ष बदलना संभव है, समकालीन स्थिति में भी। समकालीन लोक संगीत परंपरा की भावना और संगीत - निर्माण के बीच एक सेतु बना हुआ-सा है। आज कई नए गाने पारंपरिक लोक गायन शैलियों में निहित हैं और पुराने गीतों को वस्तुत: किसी भी व्यक्तिगत मुहावरे के रूप में अनुकूलित किया जा सकता है।

कला, मातृभाषा एवं संस्कृति के संबंध पर विचार आवश्यक है। मातृभाषा अपने माँ-पिता से प्राप्त भाषा है। उसमें जड़ें हैं, स्मृतियाँ हैं व बिंब भी। मातृभाषा एक भिन्न कोटि का सांस्कृतिक आचरण देती है, जो किसी अन्य भाषा के साथ शायद संभव नहीं। मातृभाषा के साथ कुछ ऐसे तत्व जुड़े होते हैं जिनके कारण उसकी संप्रेषणीयता उस भाषा के बोलने वाले के लिए अधिक मार्मिक होती है। यह प्रश्न इतिहास और संस्कृति के वहन से भी संबद्ध है। इसलिए शिक्षा में इसका महत्व है। संस्कृति का कार्य विश्व को महज बिंबों में व्यक्त करना नहीं, बल्कि उन बिंबों के जरिए संसार को नूतन दृष्टि से देखने के ढंग भी विकसित करना है। औपनिवेशिकता के दबावों ने ऐसी भाषा में दुनिया देखने के लिए विवश किया गया था जो दूसरों की भाषा रही है। उसमें हमारे सच्चे सपने नहीं आ सकते थे। साम्राज्यवाद सबसे पहले सांस्कृतिक धरातल पर आक्रमण करता है। वह भाषा को अवमूल्पित करने लगता है। हमारी ही भाषा को हीनतर बताता है। लोग अपनी मातृभाषा से कतराने लगते हैं और विश्व की दबंग भाषाओं के प्रभुत्व को महिमामंडित करने लगते हैं। हम उसी से अभिव्यक्ति करने लगते हैं या बंध जाते हैं और मातृभाषा अंतत: छोड़ने लगते हैं। गर्व से कहते हैं कि मेरे बच्चे को मातृभाषा नहीं आती। यानी भाषा का वर्गांतरण होता जाता है। यह कलात्मक रूप से पुनर्विचार की स्थिति पर ले आता है।

कला को समझने के कई सूत्र होते हैं। मातृभाषा की संस्कृति उनमें सर्वोपरि है। उसमें अपनी कहावतें, लोककथाएँ, कहानियाँ, पहेलियाँ, सूक्तियाँ होती हैं, जो सीधे हमारी स्मृति की धरती से जुड़ी होती हैं। उसमें किसान की शक्ति होती है। उसमें एक भिन्न बनावट होती है। एक विशिष्ट सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बनावट जिसमें अस्मिता का रचाव होता है। जब भी किसी महादेश की पीड़ा का बयान होगा तो कोई भी मौलिक लेखक अपनी मातृभाषा में जितनी तीव्रता और तीक्ष्णता के साथ अपनी बात कह पाएगा, अन्य भाषा में नहीं। आत्म अन्वेषण की जो गहराई मातृभाषा के साथ संबद्ध है, अन्य भाषा के साथ नहीं। अन्य भाषा में बात कही जा सकती है, लेकिन वह मार्मिकता संभव नहीं। मातृ संस्कृति से अपने परिवेश व पर्यावरण का बोध होता है। संबद्धीकरण की प्रक्रिया में मजबूती होती है। अलगाव से बचाव होता है। मातृभाषा से वह मौखिक लय प्रकट होती है जिसमें प्रकृति और परिवेश के साथ सामाजिक संघर्ष भी प्रकट होता है। उससे साहित्य और संस्कृति के सकारात्मक, मानवीय जनतांत्रिक तत्व भी सामने आते हैं। अपनी संस्कृति की जड़ों में जाकर हमें आत्मविश्वास की अनुभूति

होती है। उधार ली हुई भाषा हमारे साहित्य एवं कलाओं का विकास नहीं कर सकती, क्योंकि उनका संबंध हमसे रागात्मक रूप से जुड़ा नहीं है। उधार की भाषा का सत्ता केंद्र कहीं और होता है और वह मातृभाषा जैसी आकांक्षा की पूर्ति का वाहक नहीं हो सकता। मातृभाषा में धरती की जो गंध है और कल्पनाशीलता का जो पारंपरिक सिलसिला है वह अन्य भाषा में संभव नहीं। मातृभाषा में जनता के संघर्ष बोलते हैं। कोई व्यक्ति जो मातृभाषा की महत्ता जानता है उसे पता है कि आंदोलन, लोकछवि, आत्म आविष्कार और बदलाव के लिए इससे बेहतर कोई माध्यम नहीं, क्योंकि उसका वास्ता उन भाषाओं से पड़ेगा जो वहाँ की जनता बोलती है और जिनकी सेवा के लिए उसने कलम उठाई है। वह वही गीत गाएगा जो जनता चाहती है। मातृभाषा के माध्यम से अर्थ सीधे-सीधे सरोकार से है। इससे उस माध्यम के सामाजिक व राजनैतिक निहितार्थों का बोध होता है। इसलिए शिक्षा में इसका गहरा औचित्य है। मातृभाषा के माध्यम से लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को गीतों, नृत्यों, नाटकों, कविताओं आदि के जरिये अभिव्यक्ति दी जा सकती है तथा नई चेतना की आकांक्षा को स्वर दिया जा सकता है। श्रमिक वर्ग व जनसामान्य को मूलत: उनकी मातृभाषा में अच्छी तरह संबोधित व संप्रेषित किया जा सकता है। मातृभाषा में संरचनात्मक रूपांतर की प्रक्रिया में शिक्षा संस्कृति की एक निर्णायक भूमिका होती है जो साम्राज्यवाद के नए औपनिवेशिक चरण में विजय के लिए जरूरी है। शिक्षा और संस्कृति में आवश्यक संबंध है और सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक पक्षों से सीधा सरोकार है इसीलिए शिक्षा में मातृभाषा की प्रभावी भूमिका है।

सच यह है कि संस्कृति अपने आप में इतिहास की अभिव्यक्ति व उत्पाद भी है, जिसका निर्माण प्रकृति और अन्य लोगों के साथ संबंधों पर आश्रित है, इसीलिए वहाँ मातृभाषा का अंतरंग प्रवेश है। यदि मातृभाषा को आधार बनाया गया तो सामुदायिकता में आबद्ध गण अपनी भाषा, साहित्य, धर्म, थिएटर, कला, स्थापत्य, नृत्य और एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करते हैं जो इतिहास और भूगोल को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचा पाते हैं। शिक्षा और संस्कृति वर्गीय विभेदों को समाज की आर्थिक बुनियाद में व्यक्त करती है। वास्तव में वर्गीय समाजों में दो तरह की शिक्षा के बीच संघर्ष चलता रहता है। औपनिवेशिकता से ग्रस्त सांस्कृतिक पक्षों के लिए मातृभाषा की आवश्यकता है ही नहीं। वे अपने लिए वैसी ही भाषा चुनेंगे जो उनके क्लास को प्रतिनिधित्व दे। इसी देश में कई जगह बच्चे मातृभाषा बोलते हुए दंड पाते हैं तो इसको समझना चाहिए।

शिक्षा का मूल है वह सौंदर्य बोध जो हमारी लोक कथाओं, हमारे सपनों, विज्ञान, हमारे भविष्य की कामना में छिपा है। उसका सौंदर्य हमारी धरती की गंध से उपजा होता है। अन्य भाषाओं को अपनाने, उनमें अभिव्यक्ति करने में कोई बुराई नहीं। न ही उनमें ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक विज्ञान सीखने व अर्जित करने में कोई संकोच होना चाहिए। मूल यह है कि जो ताकतें मातृभाषा को रचनात्मकता से हीन करने व उसे हीनतर करने को सक्रिय रही हैं उन्हें पहचानने की आवश्यकता है। हमारी अस्मिता, साहित्य, सृजनात्मकता का सर्वोच्च वैभव मातृभाषा में ही संभव है। वह असीम है।

कल्पना का वह छोर है। वह हमारी धरती का रंग है। मातृभाषा में परंपरा की जीवंतता है। वह हमारे गोमुख से आती है। उसमें हमारी धूप व हमारी छांव है। हमारी धमनी व शिराएँ उससे रोमांचित होती हैं। वह हमारा गहन आकर्षण प्रीति व मुक्ति है। उसमें हमारे लिए गहन आवेग भी है। वह हमारी परंपरा में हमें परिष्कृत करती चलती है। मातृभाषा जीवंत अभिव्यक्ति व शिक्षा का शायद सबसे सुंदर माध्यम है। मातृभाषा न केवल सहज शिल्प है, अपितु सबसे अर्थपूर्ण संभावना है। अन्य भाषाओं के प्रति उदार होना मातृभाषा का सबसे उज्ज्वल पक्ष होना चाहिए।

मेरी मातृभाषा:

मेरी भाषा मेरी माँ की भाषा है
मेरी भाषा भी उसकी तरह ही सघन, संवेदनशील, बहुरेखीय

मैं उसके शब्दों को उधार लेता हूँ
उन्हें कांच के दिल के आकार में मोड़ देता हूँ

मेरा दिल मेरी माँ का दिल है
मेरे हाथ मेरी माँ के हाथ हैं
उसकी भाषा का भूगोल
हर सर्दियों में ठंडा रहता है
शीतलता उसकी भाषा की नोंक पर
पिघल-पिघल जाती है

मेरे होंठ मेरी माँ के होठ हैं
जब मैं जलाता हूँ उसके अक्षर तो वे शांत हो जाते हैं वर्षा की तरह

माँ मेरे मुँह में भाषा का नमक डालती है
तभी मेरी भाषा बनती है नमकीन
मेरी अपनी भाषा मेरे दांतों के
बीच फड़फड़ाती है
जैसे कोई वन्य पक्षी
पिंजरे में जाने से मना कर रहा हो

मेरी मातृभाषा जैसी है मेरे शरीर की लय
इस लय में जहाँ मुझे पवित्रता मिलती है
कि मैं अपनी माँ के पास लौट सकता हूँ जो ब्रह्मांड में हर जगह है
मैं हमेशा अपनी माँ की आँखों में बोलता हूँ

मेरी मातृभाषा में है धान की सोनहुला बाली की गंध
गौरैया का स्वच्छंद गान
सावन की बरखा की मोह माया
बूँद की बौछार में प्रेम करते सारंगा सदाबृज के रंग
बरगद के पत्तल पर मीठी बखीर
मेरे अनुभव की दुपहरिया का छंद

मैं अपनी बेटी से कहूँगा
तुम्हारी भाषा केवल ऐसे ही नहीं उग आई
एक बीज से
यह माँ द्वारा कड़वे व मीठे दिनों के अनुभव हैं
अपने आँसुओं को गीत में ढालते हुए॥

यह एक उलटबाँसी है कि नृत्य एक कला के रूप में, कई लोगों द्वारा गंभीर अकादमिक अध्ययन के क्षेत्र के बाहर माना जाता है। हालाँकि, नृत्य कई मुख्य विषयों में निर्देशात्मक समर्थन का एक अत्यधिक सफल तरीका हो सकता है। साहित्य व भाषा–कला कक्षा में अध्ययन–अध्यापन का एक उत्कृष्ट उदाहरण नृत्य है। नृत्य साहित्य– पाठ्यक्रम के विविध तत्वों के शिक्षण का पूरक हो सकता है। शिक्षण में पाँच केंद्रीय बिंदु जिन्हें नृत्य के माध्यम से प्रकाशित और समृद्ध किया जा सकता है, वे हैं: साहित्य– विश्लेषण की भाषा; एक विशिष्ट पाठ का अन्वेषण; साहित्य का तुलनात्मक विश्लेषण; लेखन प्रक्रिया; और रचनात्मक कल्पना का पोषण। छात्रों को समझ और विवेक के साथ साहित्यिक ग्रंथों को पढ़ने के लिए तैयार करने का एक महत्वपूर्ण कदम साहित्य के विवेचन करने के लिए विशिष्ट तरीकों में समाविष्ट माना जाता है। यह महत्वपूर्ण है कि अभिव्यक्ति की तार्किक और सौंदर्यवादी शक्तियों में अंतर्दृष्टि को कैसे समझा जाए जो एक साथ बुने जाने पर, कथाओं, चरित्रों और विषयों का निर्माण करते हैं, रूपों और व्यक्तिगत शैलियों को आकार देते हैं तथा प्रभाव प्राप्त करते हैं।

साहित्य–विश्लेषण की भाषा को स्पष्ट करने और साहित्य की शक्ति को समझने के लिए अंतर्धाराओं की सृजनशीलता की अभिवृद्धि में नृत्य की एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। स्वर की व्याख्या, कविता और गद्य में लय की मूल अवधारणा, लय में विविधता, वाक्य रचना, गल्प, आलंकारिकता, समन्वय, और विस्तार जैसे आलंकारिक तत्व नृत्य गति के माध्यम से प्रदर्शित होते हैं। यही चित्र कलात्मकता से भी सम्पृक्त है।

साहित्य की किसी भी शैली की खोज–कविता, लघु कथाएँ, नाटकीय लिपियाँ, उपन्यास, निबंध–व्याख्या में नृत्य की गतिकी को बढ़ावा दे सकते हैं। विश्लेषण की भाषा को स्पष्ट करने के लिए नृत्य का उपयोग करते हुए कथा, लक्षण वर्णन, विषय के विविध तत्वों की पहचान कर सकते हैं

और एक विशिष्ट पाठ – रूप को नृत्य के माध्यम से दिखा सकते हैं। एक प्रभावी प्रारंभिक बिंदु यह हो सकता है कि सहयोगी समूह अपनी अनुभूतियों की संक्षिप्त लिखित व्याख्या के माध्यम से साहित्यिक चयन की संरचनात्मकता को प्रस्तुत करें, फिर नृत्य गति के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत करें।

एक पाठ की भाषाई "बनावट" का स्पष्टीकरण भी नृत्य "अनुवाद" के माध्यम से समृद्ध किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, नृत्य के पाठ को एक लयबद्ध पैटर्न (कविता) में विकसित किया जाता है। कथा, चरित्र-चित्रण या थीम की नाटकीयता से लय बदल जाती या नहीं, यह देख सकते हैं। नृत्य को प्रभावी ढंग से एक साहित्यिक चयन की गुणवत्ता को चित्रित करने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिसमें वाक्य विन्यास, लय और गल्प के स्थानांतरण के लहजे के माध्यम से प्राप्त सुर की विविधताएँ शामिल हैं। नृत्य के माध्यम से कथा और / या विषय के चुनिंदा खंड़ों की "व्याख्या" की जा सकती है। नृत्य के माध्यम से समानता, निरंतर कल्पना और अनुप्रास जैसे आलंकारिक उपकरणों को उजागर किया जा सकता है। विशेष रूप से मूल्यवान यह है कि साहित्य की खोज-प्रक्रिया को स्पष्ट करने और समृद्ध करने के लिए नृत्य का उपयोग करने से छात्रों को यह अनुभव करने में मदद मिलती है कि कैसे कथा, चरित्र, रूप और विषय की जैविक एकता से एक साहित्यिक चयन के कलात्मक तनाव उभर आते हैं। वास्तव में, एक पाठक या पर्यवेक्षक पर साहित्यिक चयन का बौद्धिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव न केवल कथा, लक्षण वर्णन और / या विषय से प्रभावित होता है, बल्कि रूप के सौंदर्यवादी अभिप्रायों से भी प्रभावित होता है।

समझ को बढ़ाने और ललित साहित्य की सराहना करने और अपने स्वयं के लेखन के लिए सबसे मूल्यवान अध्ययन तकनीकों में से एक है तुलनात्मक विश्लेषण के अपने कौशल को बेहतर बनाना। नृत्य तुलना करने, छात्रों के सौंदर्य – परिप्रेक्ष्य को तेज करने में मदद करने के लिए एक माध्यम के रूप में सेवा कर सकता है। अन्वेषण-प्रक्रिया में उनकी पृष्ठभूमि पर आकर्षित, छात्र नृत्य के माध्यम से तुलना की एक शृंखला को स्पष्ट कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए: क्या चयनों की तुलना समान दृष्टिकोणों से की जा रही है? क्या दोनों आंतरिक एकालाप हैं? या एक स्रोत "आंतरिक आत्म" से निर्मित है- जो कि आख्यान और विषय को ढालने में प्रमुख और नायक की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक "आवाज" के साथ है, जबकि अन्य स्रोत को एक उद्देश्य या सर्वज्ञ पर्यवेक्षक की "आवाज" के माध्यम से विकसित किया गया है? वाक्य-विन्यास और चरित्र-चित्रण को कैसे ग्रहण करें, क्या उन्हें औपचारिक पैटर्न में जारी किया गया है? यह भी देख लें, क्या साहित्यिक चयनों की तुलना में बाहरी और आंतरिक "आवाजें" दोनों शामिल हैं, विस्तारित गीतात्मक मार्ग के प्रवाह और धारा-चेतना के साथ?

भाषा व साहित्य की कक्षा में नृत्य का उपयोग करना प्रासंगिक है, क्योंकि यह छात्रों की रचनात्मक कल्पना का पोषण करता है। नृत्य से जुड़े साहित्य-संवर्ग के सौंपे हुए कार्य, प्राथमिक लक्ष्य

के रूप में "कल्पना" को विशेष रूप से लक्षित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, छात्रों को कार्य सौपना: एक रचनात्मक लेखन-अभ्यास के विस्तार के रूप में, नृत्य-मुहावरे में एक अमूर्त अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। आसपास निर्मित मौजूदा साहित्यिक स्रोतों का उद्धरण देते हुए कल्पनाशील संभावनाओं को विकसित करने में हम मदद कर सकते हैं।

साहित्य-शिक्षण में नृत्य को एकीकृत करना कई उद्देश्यों को पूरा करता है: यह विशेष प्रतिभाओं और रुचियों की खोज के लिए दरवाजे खोल सकता है। यह कई अर्थों में साहित्य, संसर्ग और रचनात्मक लेखन के अध्ययन में आवश्यक साहित्यिक पाठों को स्पष्ट और समृद्ध करने का काम करता है। यह समस्या-समाधान, सहयोग और अन्य संचार कौशल का नए और उत्साहपूर्ण उत्तेजक तरीके से समर्थन करता है। इसीलिए, नृत्य को मानव स्वभाव का आंतरिक तत्व मानते हैं। साहित्य के अपने अध्ययन को परिपूर्ण करने के लिए आत्म-जादू का दोहन करने के लिए नृत्य माध्यम को प्रोत्साहित किया जा सकता है, किया जाना चाहिए। नृत्य साहित्य-भाषा व जीवन की भंगिमा, संवेदनशीलता, गहराई तथा अंत: उद्घाटन का विरल आधार है।

कला, साहित्य, संगीत, नृत्य, शिक्षा, भाषा, लोक आदि अनेक आयाम मनुष्य की सृजनात्मकता की गतिकी को आधार देते हैं। एकसूत्रता एवं विविधता विविध रंगों की यही झिलमिल खूबी है।

❑❑

भारतीय "धरोहर"

—मीरा सिन्हा

"धरोहर", अपने आप में बहुत ही व्यापक सांस्कृतिक भाव को आत्मसात किया हुआ महत्वपूर्ण शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है थाती। अर्थात् एक निश्चित समय तक संभाल कर या सहेज कर रखा गया, धन, जेवरात, जायदाद, दस्तावेज, भवन, स्मारक, ग्रंथ, संस्कार, रीति रिवाज आदि, जो आगामी पीढ़ी को "धरोहर" के रूप में प्राप्त होते हैं। इस शब्द के तह में जाने पर इसके अंतर्गत पारिवारिक "धरोहर", सामाजिक "धरोहर", सांस्कृतिक "धरोहर", ऐतिहासिक "धरोहर", प्राकृतिक "धरोहर" और भाषिक धरोहर में हिंदी का नाम भी विशेष महत्व रखता है। "परिभाषित रूप में "धरोहर", वह चल या अचल संपत्ति है जो परंपरा के रूप में, आवश्यकता पर काम आने वाली, सँजोई थाती के रूप में आगामी पीढ़ी को प्राप्त होती है।"

"धरोहर" का मानव जीवन में बहुत महत्व है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है। इसके अभाव में मानव, मानवता रहित हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह कि सांस्कृतिक गुणों के अभाव में व्यक्ति में मानवीयता का लोप हो जाता है जिससे स्वस्थ परिवार व समाज की संरचना में कलह नजर आने लगती है और पारिवारिक तथा सामाजिक संरचना की सुदृढ़ नींव डगमगाने लगती है। साहित्यकार समाज का कुशल चितेरा होता है उसका संवेदनशील मन धरोहर के सार्थक महत्व को समझता है। वह इसे सुरक्षित रखकर आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित करना और उन्हें इसके महत्व से भली भाँति अवगत कराना, अपना मानव धर्म और कर्तव्य समझता है। यही कारण है कि सभी हिंदी साहित्यकारों ने अपने रचना संसार में "धरोहर" को सुखद जीवन का आधार माना है और अपनी कृति उद्देश्य का केंद्र बिंदु निर्धारित कर, जीवन में इसके अतुलनीय महत्व को विस्तार से, लघुकथा, कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, यात्रावर्णन, आलोचना, समालोचना, समीक्षा, प्रबंधकाव्य, महाकाव्य, आदि साहित्य की सभी विधाओं में, इसके महत्व को रेखांकित कर स्वस्थ समाज की परिकल्पना को उजागर किया है। अगर गहराई से विचार किया जाए तो हिंदी भी हमारी अद्वितीय सामाजिक व राष्ट्रीय थाती या धरोहर है जिसने न केवल आजादी के समय, लोगों को एकता की सशक्त डोर में बांधकर, सांस्कृतिक, घटक

सहयोग व एकता के महत्व को दर्शाया हैं, बल्कि हमारे हिंदी लेखकों ने अन्य भाषाओं में लिखित महान ग्रंथों के भाव को हिंदी में व्याख्या कर, उस सांस्कृतिक धरोहर के समाज हितकारी भाव को, जन-जन तक पहुँचाने का काम हिंदी के माध्यम से किया है। सभी प्रकार की सांस्कृतिक धरोहर मानव जीवन के प्रतिमान हैं। धरोहर और हिंदी लेखन का संबंध बहुत ही प्रगाढ़ है, कारण यह है, कि हिंदी ही एक मात्र भारतीय भाषा है जिसके माध्यम से धरोहर के कल्याणकारी संदेश को जन जन तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

"धरोहर" के प्रमुख रूप:

पारिवारिक "धरोहर"
सामाजिक "धरोहर"
सांस्कृतिक "धरोहर"
ऐतिहासिक "धरोहर"
प्राकृतिक "धरोहर"
भाषित "धरोहर" हिंदी

पारिवारिक "धरोहर"— कुल या परिवार द्वारा प्रदत्त "धरोहर" को पारिवारिक "धरोहर" कहते हैं। ये भी हमें निम्नलिखित रूप में पूर्वजों से विरासत के रूप में मिलती है। परंपरागत "धरोहर" के रूप में जहाँ आगामी पीढ़ी को धन, जेवरात, मकान, जायदाद, दस्तावेज आदि मिलते हैं, वहीं पूर्वजों के संस्कार, रीति-रिवाज, प्रथा व परंपरा, लोकगीत आदि भी आगामी पीढ़ी को "धरोहर" के रूप में प्राप्त होते हैं, जिन्हें संरक्षित करना आगामी पीढ़ी का भी कर्तव्य होता है। अपने कर्म का निर्वाह करने से, कुल की मर्यादा बनी रहती है और स्वस्थ परिवार का सपना साकार होता है तथा परिवार में सुख शांति बनी रहती है। इन महत्वपूर्ण घटकों की चर्चा हिंदी की हर विधा के मूल तत्व हैं।

सामाजिक "धरोहर"— सामाजिक "धरोहर" का अभिप्राय है समाज द्वारा संचित "धरोहर" जो समाज कल्याण की भावना से संचित कि गया होती है। इस "धरोहर" का फलक बहुत विस्तृत है। इसके अंतर्गत सामाजिक रीति-रिवाज, सामाजिक परंपराएँ, लोकगीत, लोक नृत्य, धार्मिक स्थल मंदिर, धर्मशालाएँ आदि आते हैं। हिंदी साहित्य जगत में इन पर केंद्रित गीत शोध के आधार बनकर संबंधों की प्रगाढ़ता को दर्शाने के उद्देश्य से खूब उपयोग में लाए गए हैं।

सांस्कृतिक अमूर्त "धरोहर"— अमूर्त सांस्कृतिक "धरोहर" के रूप में, हमारे संस्कार, रीति-रिवाज, प्रथाएँ, परंपराएँ, लोकगीत एवं सामाजिक व्यवहार तथा हमारे पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक मूल्य सम्मिलित हैं जो हमें विरासत रूप में प्राप्त होते हैं।

क. संस्कार व रीति-रिवाज—सामाजिक सुव्यवस्था को स्वस्थ बनाए रखने के लिए, पूर्वजों ने संस्कार और रीति रिवाज को बहुत ही सोच समझकर, वैज्ञानिक आधार पर बनाया है जो हमारी सांस्कृतिक अमूर्त "धरोहर" हैं। हमारे जीवन में इसलिए संस्कार और रीति-रिवाजों का बहुत ही महत्व है। हमारे पूर्वजों ने बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ भले ही न ली हो, लेकिन उनकी परख और विचार मंथन शक्ति अद्‌वितीय है। यही कारण है कि उनके द्‌वारा अपनाए गए संस्कार और रीति-रिवाज, आज भी हमें मंगलकारी लगते हैं, कारण कि ये परिवार व समाज कल्याण के सोच के साथ, गहन मंथन के बाद बनाए गए हैं। जन्म व विवाह की रीति- नीति निभाते समय परिवार व समाज के प्रत्येक पद के लोग अपने पद की रीति नीति को खुशी-खुशी निभाते हैं। इन मौकों पर गाए जाने वाले लोकगीतों में इनका चित्रात्मक स्वरूप नजर आता है जो स्वस्थ समाज की संरचना को उजागर करते हैं। संस्कृत विहीन व्यक्ति की सोच पारिवारिक व सामाजिक सुव्यवस्था को कैसे विषाक्त बना देती है। इसके निवारण हेतु कहानी उपन्यास कविताओं आदि हिंदी की सभी विधाओं में मूल कथ्य के रूप में हिंदी साहित्य में विस्तार से लिखा गया है।

ख. सामाजिक प्रथाएँ—सामाजिक प्रथाएँ भी हमारी सांस्कृतिक "धरोहर" की अमूर्त रूप हैं। ये समाज कल्याण हेतु बनाई गई है। सामाजिक प्रथाओं के कुछ सामाजिक नियम होते हैं, जिसमें निर्धारित होता है कि कब, कैसे और कहाँ किस प्रथा का निर्वाह करना है तथा क्यों? जैसे शादी से पहले, कुंडली मिलाप की प्रथा है जिसके अनुसार सम गोत्र, सम गण, आदि में शादी नहीं हो सकती है। इस बात की हामी विज्ञान भी जीवन में संतान संबंधी कठिनाई आदि आने पर स्वीकार करता है। हिंदी साहित्य में सामाजिक प्रथाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए जीवन के खट्‌टे मीठे अनुभव की विस्तार से चर्चा जनकल्याण के भाव से विशेष रूप से की गई हैं।

ग. परंपराएँ—परंपराएँ भी हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। आज भी गुरुकुल की गुरु-शिष्य परंपरा कायम है जिसके माध्यम से, हम शिष्टता व अनुशासन को आत्मसात करते हैं। शिष्टता और अनुशासन को परिवार व समाज में कायम रखने हेतु हिंदी विषय के पाठ्‌यक्रम में अनेक पाठ्‌य विषय निर्धारित किए जाते हैं जिसकी सीख गुरु-शिष्य परंपरा को निभाए बिना असंभव है और बिना हिंदी के सहयोग के जन-जन तक पहुँचाना कर मानव मन को शिष्ट व अनुशासित रखना उतना ही असंभव है।

घ. लोकगीत—लोकगीत सांस्कृतिक "धरोहर" का सबसे महत्वपूर्ण घटक है जिसका फलक बहुत ही विशाल है। लोकगीत वह पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अमूर्त "धरोहर" है जिसका हमारे जीवन में बहुत ही महत्व है। ये जनमानस के रंग-रग में समाहित होकर, स्वाभाविक रूप से, उनके सुख-दुख का माध्यम बनकर, लोकगीतों के रूप में मुखरित होती है। लगभग हर सांस्कृतिक मौके पर कल्याणकारी समझकर इसे गाया जाता है। लोकगीत की यही स्वाभाविकता, सहजता, मधुरता और व्यापक अर्थ ध्वन्यात्मकता, इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। ये सरल और सहज होते हुए भी,

समाज के स्वरूप को उजागर करने में सक्षम होते हैं। यही कारण है कि आधुनिक परिवेश में इसके प्रति लोगों के नगण्य भाव से उत्पन्न पारिवारिक, सामाजिक नैतिक मूल्यों के घटते भाव, व्यक्ति व्यवहार को विषाक्त बना रहे हैं। हिंदी साहित्यकार इस सोच से बहुत चिंतित हैं। वे लुप्त हो रहे इन मूल्यों की स्थापना चाहते हैं और अपने लेखन के माध्यम से उन्हें स्थापित कर समाज को मूल्यों के महत्व को समझाते नजर आते हैं।

लोकगीत ऐसी सशक्त अमूर्त "धरोहर" है जिसके माध्यम से संबंधों की वरीयता पर बल दिया जाता है। शुभ अवसर घर, परिवार, समाज, गाँव-गिरांव के सभी लोग मिल जुलकर, अपने मन की खुशी का इजहार नाच गाकर, हास-परिहास के रूप में, सामाजिक रिश्तों के खट्टे-मीठे व्यवहार को उजागर करते हैं। इतना ही नहीं लोकगीत "सोहर" और "खेलौना", माता-पिता, माता-बेटी, पिता-बेटी, पिता-बेटा, सास-ननंद, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी नारी-पुरुष, भाई-बहन देवर भाभी, आदि के पारिवारिक संबंधों के अलावा, इसमें अन्य सामाजिक संबंधों की विस्तार से चर्चा दृष्टिगत होती है गीत समाज के अन्य वर्ग के लोग जैसे- पंडित-पंडिताइन, नाउन-बारिंन, चमार-चमारिन, पट्टीदार-पट्टीदारिन, पुरोहित जजमान आदि के अच्छे सामाजिक संबंध को भी मुखरित करते हैं।

निम्नलिखित लोकगीत "खेलौना" में भी पारिवारिक व सामाजिक मधुर संबंध उजागर हुए हैं। गौरा के पुत्र गणेश जन्म होना सुनकर, सभी औरतों का सखी भाव उमड़ना और सभी का मिलकर मंगल गाना, सहयोग व प्रगाढ़ संबंध को दर्शाता है जो समाज को स्वस्थ व आनंदित रखने हेतु जरूरी हैं।

लोकगीत—

मिल हूँ सखिया स लेहर,
शिव घरे चलहू हो।
सखी गौरा के जन्मे गनेश,
मंगल आजूगाईब हो॥

इतना ही नहीं विवाह संबंधी लोकगीतों में, नारी विवशता की व्यथा उजागर होती है जो समाज को आईना दिखाती है—

लोकगीत बैठकी- (विवाह का गीत)
जेहि दिन ये बेटी तोरे जन्म भईले,
भइले भादों के री रात।
सास ननद घरेदियना ना बारे,
आप प्रभु गईले खिसियाए।

च. लोकगीत में मधुरता—लोकगीत अपनी मधुरिमा से मानव के रोम-रोम को झंकृत कर देती है। जन मानस कभी इसे गुनगुना कर आनंदित होते हैं तो कभी सुनकर। यह एक ऐसी विधा है जो जीवन के अनुभव से ओत-प्रोत होकर, सदा स्रोत के सम प्रवाहित होती हुई, समाज हित, कल्याणकारी भाव को दर्शाती है और आगामी पीढ़ी की "धरोहर" बनती है।

छ. लोकगीत में सरलता व सहृदयता—लोकगीत इतने सरल एवं सहज होते हैं कि इसे सुनने वाला किसी भी प्रदेश या विदेश का क्यों ना हो, उन्हें न केवल इनके भाव ही समझ में आते हैं बल्कि इन गीतों को सुनकर वे सहृदय बन जाते हैं और आत्म विभोर होकर झूमने लगते भाषा की मधुरिता और विषय वस्तु के भाव की पौढ़ता, सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। ये लोकगीत समाज से अनुभूति ग्रहण कर समाज के स्वरूप को हास-परिहास के रूप में ज्यों के त्यों उजागर करने में समर्थ होते हैं। इतना ही नहीं ये समाज के लिए शुभ संदेश देने के साथ-साथ प्रेरणात्मक भी होते हैं। इन लोकगीतों में जीता जागता समाज का स्वरूप झलकता है। ये लोकगीत लेकर वाणी में, लोक कल्याण की भावना से खुलकर सुरीली आवाज में, संवाद के रूप में बोले नहीं, गुनगुनाए जाते हैं।

अनूठी शैली—लोकगीत की शैली निराली है। ये लोकगीत आंचलिकता को भरपूर रूप से संजोए हुए, कहीं वर्णात्मक शैली में ... विवरणात्मक शैली में, तो कहीं संवाद योजना के माध्यम से, पूर्ण शालीनता का निर्वाह करते हुए, हास-परिहास के रूप में समाज को स्वस्थ बनाने हेतु मुखरित होते हैं।

सामाजिक चेतना का प्रतीक—लोकगीतों में सामाजिक चेतना पूर्ण रूप से उभर कर समाज के समक्ष उजागर हो है। कहीं सखियाँ मिलकर मंगलाचार गाती हैं तो कहीं सास देवता मनाती हैं। जेठानी जेरुवा चढ़ाती हैं तो ननद काजल लगाती देवर बंसी बजाते हैं तो ब्राह्मण शुभ मुहूर्त देखते हैं। इस प्रकार लोकगीत में हर प्रकार के रीति-रिवाज को विधिवत अपने पद के अनुसार निभाया जाता है जो पद के कर्म की प्रधानता को चित्रित कर लोगों को कर्म निर्वाह हेतु प्रेरणा प्रदान करता है।

भाईचारे की भावना—भारतीय समाज भाईचारे की भावना को वरीयता देता है। वसुधैवकुटुंबकं की भावना को लोकगीत विस्तार से मुखरित करता है। जन्मोत्सव व विवाह उत्सव की खुशी में सभी का सम्मिलित होना, इस तथ्य की पुष्टि करता है। ये सामाजिक संबंध के खट्टे-मीठे स्वरूप को मुखरित कर, समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को उकेर कर, उन्हें उनकी करनी और कथनी एहसास कराते हैं। इन गीतों में समाज का स्वरूप स्पष्ट रूप से झलकता है जो नारी विडंबना की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए पुरुष के एकाधिकार भावना पर कुठाराघात करते हैं। इतना ही नहीं इन गीतों में रीति-रिवाजों के अतिरिक्त नैतिकता भावना पर भी बल दिया जाता है जो भारतीय संस्कृति के मूल्य को उजागर करता है।

लोकगीत में नैतिकता—

पेड़वा पर बोलेला सुगना,
बोले सच बोली न हो,
ललनादुवरे से लउटल भिखारी,
ललन कैसे चाहेलू हो?

उपरोक्त लोकगीत इस बात को उजागर करता है कि दरवाजे से किसी भूखे को भूखे नहीं लौटाना चाहिए। नैतिकता की भावना से ओत-प्रोत लोकगीत "सोहर" के भाव सराहनीय है। लोकगीत "सोहर" आज भी समाज के लिए उतना ही अर्थवान है। यही कारण है कि इसे आज भी देश-विदेश में कल्याणकारी समझकर गाया जाता है। आशीर्वाद के महत्व को उजागर करता निम्नलिखित "खेलौना" इस बात की पुष्टि करता है।

"खेलौना"—

बरसे फूल कीडलियाँ,
गिरे नंदलाल के ऊपर।
जिए नंदलाल के बाबा,
जिए नन्दलाल की दादी।
जिए नन्दलाल खुद अपना,
मुबारक हो, मुबारक हो।

लोकगीत "सोहर" समाज का स्वरूप इस प्रकार उजागर करता है जैसे दर्पण व्यक्ति के अच्छे-बुरे रूप को दर्शाता और उसको सुंदर बनाने हेतु प्रेरित करता है, वैसे ही लोकगीत समाज को उसके मुखोटे को स्पष्ट रूप से दिखा कर सदा सुधरने के लिए प्रेरित करता है। वही काम हिंदी के प्रबुद्ध साहित्यकार भी अपने लेखन में उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु करते हैं। आज युवा वर्ग अपनी संस्कृति से विमुख होते जा रहे हैं। वे अपने परंपरागत रीति-रिवाज के महत्व को समझ नहीं पा रहे हैं। इनमें निहित भारतीय संस्कृति के इस कल्याणकारी भाव के महत्व से युवाओं को अवगत कराना बहुत जरूरी है। क्योंकि ये स्वस्थ परिवार व समाज की मर्यादा के लिए अति आवश्यक है। हिंदी साहित्य लेखन में संबंधों की अहमियत के लोप होने से उत्पन्न, पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का पूरा लेखा-जोखा साहित्यकार बहुत ही मनोयोग से अपने लेखन में कर, समाज को दर्पण दिखाने हेतु प्रयत्न कर रहे हैं ताकि सामाजिक व्यवस्था विकृत न हो और टकराव रहित परिवार व समाज की कल्याणकारी नींव अडिग बनी रह सके।

ऐतिहासिक "धरोहर"— का मूर्त रूप अवशेष प्राचीन स्मारक, संग्रहालय में सुरक्षित कलाकृतियाँ, हमें पारंपरिक रूप से ऐतिहासिक "धरोहर" के रूप में मिलती हैं। ऐतिहासिक स्थल,

इमारत या स्मारक, देश की सभ्यता और संस्कृति तथा अपने देश के गौरव के इतिहास को दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक "धरोहर" के इमारतों में बनी शैलियाँ, अलग-अलग सभ्यताओं और संस्कृतियों से हमें अवगत कराती हैं। हम सब अपने जिन धरोहरों पर गर्व महसूस करते हैं। वे निम्नलिखित हैं–

दिल्ली का लाल किला, लाल बलुआ पत्थर से निर्मित भव्य किला है जो आज भारत का मुख्य पर्यटक आकर्षण एवं अपने आकार के लिए दुनिया भर में विख्यात है। भारत का "धरोहर" तिरंगा इस "धरोहर" पर सदा लहराता है। युद्ध स्मारक है जो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान बलिदानी सैनिकों के मस्तक को प्रणाम करता है। यह राजपथ के पूर्वी हिस्से में स्थित है तथा सबसे लोकप्रिय स्मारकों में से एक है। जंतरमंतर स्मारक को जयपुर के महाराजा, जय सिंह ने निर्माण करवाया था। उन्होंने उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में इसी प्रकार के अन्य स्मारकों का भी निर्माण करवाया था। जंतर-मंतर के उपकरण तकनीकी रूप से आश्चर्यजनक है। मंदिर विश्वास का प्रचारक है जो संपूर्ण मानव को आध्यात्मिक एकता में विश्वास कराता है। सभी धर्मों के लोगों के लिए सुकून के साथ बैठने के अलावा ध्यान के लिए दुनिया भर के पूजा के आठ घर बनाए गए हैं। उसमें से लोटस मंदिर एक है। राजपूताना संस्कृति की वास्तुकला का सबसे सुंदर और अद्भुत मिश्रण के रूप में इसे हवामहल के नाम से जाना जाता है। इस अद्भुत संरचना में कुल 9053 खिड़कियां हैं। हवा महल का निर्माण जयपुर के राजा सवाई प्रताप सिंह ने करवाया था। यह इमारत पाँच मंजिला है जो जयपुर के प्रसिद्ध जौहरी बाजार के पास स्थित है जो पूर्ण रूप से लाल और गुलाबी बलुआ पत्थर से बनाया गया है।

आगरा का ताजमहल एक अद्भुत "धरोहर" है जो उत्तर प्रदेश के आगरा में स्थित है। ये ताजमहल दुनिया के सातवें आश्चर्य की सूची में पहले स्थान पर है। ताजमहल भारतीय और इस्लाम वास्तु शैली के मिश्रण का उत्कृष्ट उदाहरण है। जिसको बनाने में 21 साल तक मजदूरों ने काम किया जो सन् 1635 में बनकर तैयार हुआ। कोलकाता का मशहूर दर्शनीय स्थल विक्टोरिया मेमोरियल, भारत की सबसे शानदार कलाकृति का उत्कृष्ट स्मारक है जो 64 एकड़ में फैला हुआ है। इसे आम जनता के लिए सन् 1921 में खोला गया था। इसमें शाही परिवार की कुछ तस्वीरें भी हैं। ये बेशकीमती "धरोहर" हैं जिसे पर्यटक देखने आते हैं। कुतुबमीनार सबसे ऊँची मीनार है जिसे लाल बलुआ पत्थर के संगमरमर से बनाया गया है। इस मीनार की ऊँचाई 25 मीटर है। हैदराबाद की खास पहचान करने वाले चारमीनार को मुहम्मद कुतुब शाह ने सन् 1591 में बनवाया था। कहा जाता है कि जब महामारी के कारण शहर में हाहाकार मचा था, उस समय उन्होंने स्मारक में बड़ी शैतानी ताकतों को नियंत्रण करने के लिए इसका निर्माण करवाया था। चारमीनार की भव्य इमारत प्राचीन काल की उत्कृष्ट वास्तु शिल्प का बेहतरीन नमूना है।

छत्रपति शिवाजी टर्मिनल एक ऐतिहासिक रेलवे स्टेशन है। यह विशाल स्मारक भारत के 32 विश्व "धरोहर" स्थलों में से एक है जो यूनेस्को द्वारा सूचीबद्ध है। भारत के मुंबई शहर में स्थित

मुंबई छत्रपति शिवाजी टर्मिनल सबसे व्यस्त रेलवे स्टेशन है जहाँ मध्य रेलवे का मुख्यालय है। यह महाराष्ट्र में स्थित पाँच ऐतिहासिक स्मारकों में से एक है। इसे 1887 में रानी विक्टोरिया की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में बनाया गया था। गेटवे आफ इंडिया वास्तु शिल्प का अद्‌भुत नमूना है जिसकी ऊँचाई लगभग 8 मंजिल के बराबर है। यह भारत के सबसे अमीर जीता-जागता शहर मुंबई के कोलावा में स्थित है। वास्तुकला के हिंदू और मुस्लिम दोनों ही शैलियों को ध्यान में रखते हुए इसका निर्माण सन् 1911 में किया गया था। मैसूर का राजमहल भारत का दूसरा सबसे प्रसिद्‌ध ऐतिहासिक स्मारक है। मैसूर के राजा को इस अभूतपूर्व संरचना का निर्माण कराने में लगभग 15 साल लग गए थे। यह तीन मंजिला है। इसे अंबा विलास के नाम से भी जाना जाता है। स्वर्ण मंदिर के रूप में विख्यात हर मंदिर साहिब, अमृतसर पंजाब में स्थित गुरुद्‌वारा है। हरमिंदर साहिब दरबार सिक्खों के लिए सबसे प्रसिद्‌ध तीर्थ स्थल है। यह भारत में सबसे पवित्र स्थानों में से एक है। मौर्य सम्राट अशोक ने भगवान बुद्‌ध के सम्मान में, साँची में स्तूप की स्थापना की थी। यह यूनेस्को द्‌वारा विश्व विरासत स्थल के रूप में शुमार किया गया है। साँची में स्थित बौद्‌ध विहार महान स्तूप के रूप में भी जाना जाता है। यह विहार भारत का सबसे प्रसिद्‌ध बौद्‌ध स्मारक, रायसेन जिले के साँची टाउन में स्थित है। साँची स्तूप भारत में सबसे ज्यादा संरक्षित प्राचीन स्तूप है।

हिंदी भाषा में उपरोक्त ऐतिहासिक धरोहरों के बारे में विस्तार से लिखा गया है जिसे पाठ्‌यक्रम में इस उद्‌देश्य से सम्मिलित किया गया है कि आगामी पीढ़ी इसके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सके।

प्राकृतिक "धरोहर"— जिसमें ग्रामीण इलाके और प्राकृतिक पर्यावरण शामिल है। इसके अतिरिक्त इसमें वनस्पति के दुर्लभ पौधे, नदियाँ, समुद्र और भूवैज्ञानिक तत्व, खनिज क्षेत्र आदि आते हैं।

ग्रंथ—धार्मिक ग्रंथ-वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण, रामचरितमानस, मनु स्मृति, गुरुग्रंथ आदि हमारे "धरोहर" हैं जो मानव मूल्य के अस्तित्व को बनाए रखने हेतु, हमारे पूर्वजों द्‌वारा लिखे गए हैं। ये मानव- मूल्य के भाव को जागृत करते हैं जो हमारे अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर हैं। धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने से हमारे सकारात्मक सोच में वृद्‌धि होती है। इन अमूल्य "धरोहर" के भाव को सहेजकर रखना हमारा फर्ज है जिसे हिंदी में खूब सहेजा गया है।

भाषिक धरोहर हिंदी—दरसल हिंदी की उत्पति जनकल्याण की भावना से ही हुई है और धरोहर का भी उद्‌देश्य जन कल्याण की भावना ही है। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। हिंदी धरोहर की वाहक है यदि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

धन, जेवरात, जायदाद और दस्तावेज आदि परिवार को मजबूती प्रदान करते हैं तो सामाजिक व सांस्कृतिक "धरोहर" संस्कार, रीति-रिवाज, परंपरा, प्रथाएँ, लोकगीत आदि मानव मूल्यों की स्थापना, मानव मन में भरकर, उसे सुसंस्कृत बनाती हैं और समाज को नैतिकता से मढ़ती हैं, लेकिन

जब परिवार या समाज द्वारा इसके महत्व पर कुठाराधात नजर आता है तो हिंदी भाषा का साहित्यकार सजग हो जाता है और जीवन में इसकी भूमिका व योगदान को उजागर करने हेतु, अपनी लेखनी के माध्यम से आघाती को समझाने की कोशिश भरपूर रूप से करने का सफल प्रयास करता हैं।

अवशेष प्राचीन स्मारक, संग्रहालय में सुरक्षित कलाकृतियाँ आदि हमें पारंपरिक रूप से ऐतिहासिक "धरोहर" के रूप मिलती हैं जो देश की सभ्यता और संस्कृति तथा अपने देश के गौरव के इतिहास को दर्शाती हैं। जिसे हिंदी में भारतीय इतिहासकारों ने विस्तार से लिख कर, इसे सुरक्षित किया है जिससे सभी भारतीय जन-जन के बारे में जानकारी संभव हो पाती है भारतीय कलाएँ, अनमोल सांस्कृतिक "धरोहर" हैं जो भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक संवेदना को दर्शाती हैं। जिससे लोगों की राष्ट्रीय पहचान परिभाषित होता है। ये हमारी अखंडता को अक्षुण्ण रखकर, सद्भावना और सामाजिक एकता का पाठ हमें सिखाती हैं। इनका विवरण विस्तार से हिंदी साहित्य में स्पष्ट रूप से मिलता है, जिससे युवा पीढ़ी पढ़कर लाभान्वित होती है।

वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण, रामचरितमानस, मनुस्मृति, गुरुग्रंथ आदि हमारे वे अमूल्य "धरोहर" हैं जो हमें अपने पूर्वजों से मान- मूल्य के अस्तित्व को बनाए रखने हेतु लिखे गए हैं। वे मानव मूल्य के भाव को जागृत करती हैं। धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने से हमारी सकारात्मक सोच में वृद्धि होती है। इन अमूल्य धरोहर को सहेजकर रखना हमारा फर्ज है। इन अमूल्य धरोहर ग्रंथों का हिंदी रूपांतरण इस उद्देश्य से ही किया गया है ताकि सभी सहज भाषा हिंदी के माध्यम से उसके कल्याणकारी भाव को समझ सकें और सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ रह सके। प्राकृतिक "धरोहर" भी परिवार, समाज व राष्ट्र की विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। नदियाँ ग्रामीण इलाके को हरियाली प्रदान करती है तो बाग-बागीचे फल। प्राकृतिक वातावरण और वनस्पतिस्वस्थ तन-मन कर मानव को खुशहाल करती हैं तो भूतत्व, खनिज पदार्थ हमारे राष्ट्र की गरिमा को बढ़ाते हैं।

हिंदी के साहित्यकारों ने इन धरोहर को खूब अपने हिंदी लेखन की सभी विधाओं में सहेजकर जन-जन तक पहुँचाने का काम, इस ध्येय से किया है कि "धरोहर" को सुरक्षित रखा जा सके और आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित किया जा सके ताकि भारतीय संस्कृति के मूल भाव, पारिवारिकता, सामाजिकता, नैतिकता, आध्यात्मिकता, मानवता, अखंडता आदि के महत्व को वे समझ सकें और अपनी माटी की सुगंध में रस बस कर आनंदित रह सके।

माटी की एक अलग ही सुगंध होती है। साहित्यकार यदि लोक चेतना से द्रवीभूत न हो तो वह कैसा स्रष्टा? फलतः लोक-संवेदनशील धारा का प्रवाह हिंदी की हर विधा में दृष्टिगत होता है और अनुभूति की बेचैनी भी, जो आधुनिक पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय नैतिक मूल्य आदि व्यवस्था पर चुपके से राह दिखा जाती है। हिंदी की ऐसी अभिव्यक्तियाँ सामयिक विसंगतियों, संत्रासों और शोषण-उत्पीड़न, मानवीय उत्पीड़न आदि का प्रतिफल हैं, जिसमें भ्रष्टाचार, यंत्रणाएँ, गाँवों से पलायन, ग्राम्य-संस्कृति का विकृत होता स्वरूप, अपमान, तिरस्कार, गरीबी, आदि और बहुत

कुछ समाहित हैं जो भारतीय संस्कृति के अमूर्त घटक संस्कार आदि के त्याज्य से उत्पन्न हैं। युवा वर्ग को सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण एवं संवर्धन हेतु प्रेरित करना, हमारा परम कर्तव्य है। आधुनिकता की दौड़ में बढ़ते, उठते, गिरते प्रतिमान और नैतिक पतन रोकने के लिए वैदिक सांस्कृतिक और हमारी पुरातन सभ्यता से परिचय कराना, आज की मुख्य जरूरत है जिसे हिंदी अपने लेखन के माध्यम से पूरा कर अपनी भूमिका को खूब निभाती दृष्टिगत होती है।

आजादी के बाद गाँवों का महानगरों की ओर पलायन के फल स्वरूप परिवार छूटा व टूटा गाँव छूटे और जाने-अनजाने में इस अलगाव ने मन भी तोड़ा। उनसे लोक-बोली-बानी, लोक-संस्कृति, लोक-मानस के दुख-दर्द, गाँव की माटी की गंध और उसका उजास आदि दूर कर दिया। यही कारण है कि सचेत हिंदी लेखन में इनके बारे में समाज कल्याण की भावना से बार बार जिक्र हिंदी की सभी विधाओं में दिखाई देता है। साहित्यकार 'सांप्रदायिक सद्भाव के उद्घोषक और जन-भावनाओं का पक्षधर, स्पष्ट स्रोत, दृष्टा व आशावान वक्ता होते हैं। वे परस्पर एकता और अखंडता के गायक होते हैं। हिंदी साहित्य में मानवता के दीवट - दीप जलाते हैं तथा शांति और सद्भाव हेतु हमारे सांस्कृतिक घरोहर को मूल्यवान समझकर उसे हिंदी की सरल भाषा में लिखकर, उसके महत्व को जन-जन तक पहुँचाने हेतु अपने लेखन को पुस्तक का आकर देते हैं। आम तौर पर रामचरितमानस में लिखित श्लोक छंद आदि का हिंदी में अनुवाद हिंदी की लोकप्रियता का द्योतक है।

"धरोहर" कला-शिल्प का ज्ञान है,
भारत - पहचान - स्वाभिमान है।
"धरोहर" प्रकृति खनिज वरदान है,
भारतीय संस्कृति की शान है॥

❑❑

भारतीय संस्कृति की कुंभ परंपरा

—विनय कुमार शर्मा

कुंभ ऋग्वैदिक काल से प्रवाहमान भारतीय संस्कृति में छिपी चेतना एवं ऐक्य की भावना का प्रतिबिंब है। वह "अत्मिवत् सर्वभूतेषु" की भावना का पोषक है। यह भारतीय चिंतनधारा का राष्ट्रीय पर्व है। हमारे (पर्व) राष्ट्रीय जीवन की प्रतिध्वनि हैं। ये सदियों से हमारी एक जीवंत चेतना का राष्ट्रव्यापी ताना-बाना बुनते रहे हैं। संगम में गोता लगाते समय सभी "हर गंगे" कहते हैं। कोई किसी से नहीं पूछता, "आप किस प्रांत के हैं, कौन सी भाषा बोलते हैं, क्या खाते-पीते हैं या आपके विचार क्या हैं?" केवल एक लक्ष्य हैं जो परम लक्ष्य है - आत्मा की शांति और मोक्ष! इस विराट समत्व भाव को हम क्यों नहीं पकड़ पाते?

कुंभ पर्व मनाने के निहितार्थ का ज्ञान करके हम आज के आस्थाहीन समाज में जीवन के मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकते हैं। यह हमारा दृष्टिदोष है जिसके कारण हमे कुंभ परंपरा में राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता, समत्व एवं सदाचार, त्याग एवं तपस्या, आत्मशुद्धि एवं आत्मविकास के सूत्रों के दर्शन नहीं होते। कुंभ में लोक आस्था की झलक मिलती है, लोक जीवन का दर्शन होता है। यदि हम कहें कि कुंभ लोक आस्था, लोक जीवन का हिमालय है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कुंभ का संकेत बोध है नियम, संयम एवं पूर्ण संकल्प जिससे हम जीवन में सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं।

अथर्वा ऋषि कहते हैं:—

चतुरः कुम्भाश्चतुर्धा ददामि
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना
एतास्त्वा धारा उपमन्तु सर्वा॥

पूर्व, उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण चारों दिशाओं में जीवन के कर्म रूप यज्ञ की पूर्णता के लिए दुग्धादि से भरे चार कलश स्थापित करता हूँ। मधुर रस से युक्त होकर दुग्ध धाराएँ तथा अमृत जल से पूर्ण सरिताएँ प्राप्त करो।

विनय कुमार शर्मा

प्रयाग के संगम जल में चारों दिशाओं के सुधा रस आस्था के सत्य रूप सागर बन जाते हैं। लोक कर्म को प्रेरित करने वाली गंगा उस सुधारस का घोल उड़ेल देती है। वैसे ही संगम की भूमि लोक-आस्था लोक-विश्वास की विराम स्थली है। यह है कुंभ का तात्विक विवेचन। भारत की संस्कृति आनन्दधर्मी है क्योंकि आनंद को ही ब्रह्म माना गया है। कुंभ हमारी सार्वभौम संस्कृति का प्रतीक है। यह लोक समभाव और लोकमंगल का पर्व है।

प्रयाग का त्रिवेणी संगम हिमालयी आस्था का विस्तार है। यहाँ विष्णु गंगा हैं, कृष्ण गंगा हैं, पिंडर गंगा है, शिव गंगा है, ऋषि गंगा हैं, महा गंगा हैं, काली गंगा है, गौरी गंगा है, धौली गंगा हैं, राम गंगा है, इन सभी की सहायक नदियाँ हैं जो आसेतु हिमालय से प्रयाग तक के मार्ग में गंगा से मिलती हैं। यहाँ यमुना अपनी सहायक नदियों से पूर्ण होकर मिलती हैं। संगम स्नान से उन सभी पावन नदियों में स्नान का फल और स्फूर्ति मिलती हैं।

सामवेद कहता है -
आविशन् कलशं सुतो
विश्वा अर्षन्नीय श्रियः।

कुंभ श्रेयस् की मंजूषा है। इसे अनंत काल से संगम का सिकतापूर्ण तट संजोता आ रहा है। यहाँ का एक-एक बालू का कण लोक आस्था का सुमेरु है। कुंभ हमारे राष्ट्र की मानसिक सामूहिकता का प्रतीक है। शताब्दियों के परिस्थिति चक्रों में पड़कर भी यह अजेय और विश्व में अपरिमेय रही है। यह सामूहिकता कितनी गहरी है, कितनी महान है और कितनी आंतरिक है इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। हम गंगा, अन्य नदियों, वृक्षों, गाय, राष्ट्र, वेद, हिमालय, समुद्र सभी को वंदनीय मानते आये हैं और आज भी यही मानते हैं। हम हमारी राष्ट्र के प्रति आत्मीयता, वन्दनीयता और मानसिक सामूहिकता को आज भी सहेज कर रखे हैं। कुंभ भारत का महान सांस्कृतिक महोत्सव है। इसके मूल को पहचान कर ही सरकारी तंत्र को मेले की व्यवस्था करनी चाहिए। किंतु होता यह है कि सारी व्यवस्था इस दृष्टि से की जाती है कि कोई बड़ी दुर्घटना न हो जाए। इस आशंका के प्रति सचेष्ट रहना अच्छी बात है किंतु इसके कारण इस मेले के जन महोत्सव स्वरूप को नष्ट होने से बचाना अनिवार्य है। कुंभ विभिन्न संप्रदायों का समन्वय है। आदमी से आदमी का जुड़ना संस्कृति है। यह उमड़ता जन समुदाय बिना किसी न्यौते के स्वतः आया है। वे कौन सी विद्युत तरंगे हैं जो देश-विदेश से इस अपार जन समूह को संगम तक खींच लाती हैं? कुंभ पर्व की विशेषता है विभिन्न धर्मावलंबियों का एक स्थान पर जुटना। कुंभ आपस में लोगों को जोड़ने की संस्कृति का मूर्त रूप है।

सामूहिक जीवन, सह-चिंतन और सहकार कुंभ का सामाजिक पक्ष है और आध्यात्मिक भी। यह समन्वय, सहिष्णुता और असांप्रदायिक संस्कृति का केंद्र बिंदु है। कुंभ पर जीवन की समग्रता के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर धर्मनीति, राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति पर बृहद् चर्चा होती है

जिससे एक बृहद् समग्र संस्कृति का विकास होता है। कुंभ सांस्कृतिक पर्व है, जन महोत्सव है, आत्म उत्कर्ष का सोपान है। सांप्रदायिकता, जड़त्व एवं धर्मान्धता इसे विकृत करने पर तुली है। इसका लक्ष्य है सर्वधर्म समभाव, जन पक्षधरता एवं समरसता। आपसी सौहार्द और सीधा साक्षात्कार ही इसके मूल में है। यही जीवन तत्व है, अमृत तत्व है जो सामाजिक विघटन एवं मानव मूल्यों के ह्रास को रोक सकता है। कुंभ की संस्कृति हमें विभिन्न भाषा-भाषी लोगों से जोड़ती है। विभिन्न रीति-रिवाजों और विभिन्न रहन-सहन वालों से जोड़ती है। यह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं पूरब को जोड़ती है। सन् 1915 में महात्मा गांधी हरिद्वार के कुंभ मेले में गए थे। अपनी आत्मकथा में कुंभ चिंतन करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा- "कुंभ का दिन आया। मेरे लिए यह धन्य घड़ी थी। मैं यात्रा की भावना से हरिद्वार नहीं गया था। तीर्थ क्षेत्र में पवित्रता की शोध में भटकने का मोह कुंभ कभी नहीं रहा। किंतु 17 लाख लोग पाखंडी नहीं हो सकते। कहा गया था कि मेले में 17 लाख लोग आये होंगे। इनमें असंख्य लोग पुण्य कमाने और शुद्धि प्राप्त करने के लिए आए थे, इसमें मुझे कोई शंका न थी। यह कहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है कि इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को किस हद तक ऊँचा उठाती होगी।" गंगा भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं आध्यात्मिकता का गतिमान इतिहास है। यह उत्तर प्रदेश का सौभाग्य है कि भारत के चार कुंभ नगरों में एक प्रयागराज इसी प्रदेश में हैं। आज आवश्यकता है इस कुंभ परंपरा के रचनात्मक सूत्रों को पकड़ने की ताकि इनका प्रयोग और विस्तार राष्ट्रीय हित में किया जा सके।

भारतीय पंचांग विशिष्ट काल विज्ञान संबंधी शोध परंपरा से जुड़ा है। यह भारत का अपना विज्ञान है जो साल के प्रतिमाह, प्रति पखवारे, प्रति हफ्ते हमें विशिष्ट त्यौहारों को मनाने का आदेश देता है जिसका पालन सभी करते हैं। भारतीय जब इन त्योहारों-पर्वों को मनाता है तब वह अपने को इस देश से जोड़ता है। जब लाखों का जन समूह पवित्र नदियों में स्नान करता है तब वह अपने को इससे जोड़ता है और अपने को इस देश का पुत्र साबित करता है। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि असंख्य जन नदियों से अपने को जोड़कर यह सिद्ध करता है कि वह एक है और समग्र जन एक हैं। इस प्रकार कुंभ में भारत की एकात्मकता का दर्शन होता है। कुंभ एक ऐसा आयोजन है जिसमें भारत की एकता, परंपरा, अस्मिता और इतिहास का अमृत मिलता है। जहाँ हमारा एक वर्ग जिस देश को पश्चिम बनाने में तुला है वहाँ लाखों का जन समुदाय उसमें राष्ट्रीयता एवं भारतीयता का रंग भरते हैं। हमारा प्रयास है कि कुंभ के इस विराट पर्व को बड़े प्रयासों, बड़े उद्देश्यों वैज्ञानिकता और राष्ट्रीय सार्थकता से जोड़ने का महनीय कर्तव्य निभायें। हमे इस नई राष्ट्रीय धारा से जोड़ने को भागीरथ प्रयास करना चाहिए। कुंभ का अनाहुत आकर्षण, प्रचार पुण्य का स्नान इस देश की भाषाओं, इतिहास, विज्ञान, दर्शन और सामाजिक समस्याओं पर प्रखर विचार का माध्यम बनाना चाहिए। हमें देश के जन मानस से एकाकार होने की आवश्यकता है। कुंभ से तटस्थ रहकर किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यदि जनमानस से संवाद करना है तो हमें कुंभ से जुड़ना होगा, इसके एकात्म भाव को पहचानना होगा। कोई भी परिवर्तन कुंभ से तटस्थ रहकर संभव नहीं है।

विनय कुमार शर्मा

कुंभ नगर में शताब्दियों से निरंतर प्रवहमान दार्शनिक, आध्यात्मिक चिंतनधाराओं के प्रतिनिधि दशनामी संत, वैष्णव मतावलम्बी, शाक्त–अघोर मतावलम्बी, अद्वैतवादी, बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी महात्मागण निर्धारित है और अपने–अपने हिमगिरों में अपने मतावलम्बियों को संबल देते हैं। इन सभी का श्रद्धा भक्ति पूर्वक संगम स्नान सर्वधर्म समन्वयात्मक यज्ञ है। यहाँ गंगा यमुनामयी है तो यमुना गंगामयी है। प्रयाग के आगे इन दोनों नदियों का केवल गंगा के रूप में प्रवाह बंगाल की खाड़ी में समुद्र मिलन तक रहता है। श्री वेदव्यास के अनुसार आत्मा नदी है संयम स्नानघाट है। सत्य जल है और शील आत्मा नदी के दो तट हैं जिनके अंदर दया की लहरें उठती हैं। इसी में गोता लगाना कुंभ स्नान है। कुंभ परंपरा के माध्यम से एकता, सद्भावना एवं सहिष्णुता के बारे में चितंन हो सकता है। इस परंपरा के माध्यम से विश्व के विभिन्न धर्मों के प्रति आदर के भाव को प्रबल किया जा सकता है।

कुंभ को केंद्र बिंदु मानकर हम सामाजिक, आध्यात्मिक भौतिक, आधिभौतिक, अधिदैविक, आर्थिक एवं राजनैतिक मुद्दों पर विचार करके राष्ट्र नव निर्माण की बात कर सकते हैं। कुंभ के माध्यम से हम देश के नवयुवकों के चरित्र निर्माण पर कार्यक्रम बना सकते हैं। देश–विदेश से कुंभ में पधारे चिंतकों साधु सन्यासियों, तपस्वियों, योगियों, आध्यात्मिक गुरुओं तथा सद्गृहस्थों से विचार विनिमय करके राष्ट्र नव निर्माण के सूत्र का अन्वेषण कर सकते हैं। हम कुंभ के अनाहूत और बरबर आकर्षण को देश के प्रति अनुराग, के विषय का कार्यक्रम बना सकते हैं। कुंभ के अवसर पर जहाँ लाखों–लाखों श्रद्धालु गंगा यमुना के सुधारस का पान कर रहे हैं तथा दोनों नदियों के पवित्र जल में गोते लगाकर अनिवर्चनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं, वहीं पूरे कुंभ क्षेत्र में वैखरी के माध्यम से साधु–संतों के प्रवचनों से सरस्वती प्रस्फुरित हो रही है। गंगा–यमुना जहाँ हिमालय से नैसर्गिक अनुगूंज लेकर यहाँ नित्य प्रवाहित हैं, वहीं कुंभ के अवसर पर अदृश्य सरस्वती पूरे मेला क्षेत्र में साधु–संतों के प्रवचनों के माध्यम से प्रवाहित हो रही है। लाखों–लाखों जन समूह का इनके प्रति आकर्षण एक अद्भुत विषय है जो देश में समरसता, भक्ति ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकता है।

हम क्यों अपनी विराट विरासत से अनभिज्ञ हैं? या विज्ञ होकर भी अनभिज्ञ रहना चाहते हैं? यदि हम ध्यान दें तो हमारी कुंभ परंपरा पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चारों दिशाओं में आध्यात्मिक गुरु बृहस्पति की गति के साथ प्रवहमान है। बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य की गति के साथ उनके जीवनदायी अमृत प्रभावों को सर्वजन सुलभ करने की भावना से काल निर्णय के द्वारा हमारे आर्य ऋषियों ने साधु–संतों तपस्वियों, योगियों और गृहस्थों को उनकी गति का अनुसरण करते विशिष्ट नक्षत्रों की युक्ति में प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में प्रति चार वर्षों के अंतराल में पुण्यकाल अवधि तक इन स्थानों में वास भजन कीर्तन, प्रवचन, यज्ञ, दान, उपवास का निर्देश दिया है। इस कुंभ परंपरा पर राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाकर हम देशवासियों को एकता के सूत्र में मिलाकर आतंकवाद, क्षेत्रवाद, भाषा विवाद की समाप्ति कर सकते हैं। जीवन कठिन है। इसकी दुरुहताएँ अनेक हैं। किंतु मानव जीवन दुर्लभ है विशेषकर इसलिए क्योंकि ईश्वर ने मानव में विवेक बुद्धि दी है। ऋषि–मुनियों

ने अपनी तपश्चर्या, अनुभूतज्ञान और प्रयोगों के माध्यम से सूर्य की रश्मियों चंद्रमा की रश्मियों का सूक्ष्म अध्ययन करके विभिन्न व्रतों का उपदेश दिया है। उदाहरण के लिए एकादशी की विधि कोई-कोई धनदा होती है तो कोई पुत्रदा। इस जीवन दायिनी सूर्य रश्मि विज्ञान के माध्यम से ही कुंभ पर्वों के आयोजन का निर्धारण किया गया है। आश्चर्य की बात है कि कुंभ पर्व इन चार स्थानों पर मनाने के लिए कोई प्रचार नहीं होता हैं, कोई पोस्टर नहीं लगता। पंचांग के किसी एक कोने में कुंभ तिथि लिखी रहती है जिसे गाँव-गाँव, नगर-नगर में फैले साधु-संत, पंडित, विद्वान जन साधारण को बताते हैं। बस इतना ही प्रचार है। इस प्रकार पीढ़ियों से भारतवासी प्रति बारहवें वर्ष कुंभ और प्रयाग में अद्ध कुंभ की परंपरा से अवगत हैं। हमें इसी भारतीय चेतना को पकड़ना है। जब यह चेतना हमारे राष्ट्र नव निर्माण का अंग किसी रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से देश में प्रस्फुटित होगी तो वह सफल होगा। आप स्वयं देखिए, कुंभ में भाषा, प्रांत, क्षेत्रीयता, संकीर्णता, जाति, वर्ण, संप्रदाय का कोई भेद नहीं है। संगम गंगा-यमुना का जल सभी के लिए अविभक्त है। आप यह नहीं कह सकते कि गंगा की अमुक जल तरंग ब्राह्मण के लिए अमुक जल तरंग मुस्लिम के लिए, अमुक जल तरंग सवर्णों के लिए तथा अमुक दिनों या इतर जातियों के लिए है। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, देशी-विदेशी सभी के लिए गंगा-यमुना तथा भारत की अन्य नदियाँ समान रूप से अवगाहन के लिए उपलब्ध हैं। सर्वधर्म, सर्ववर्ण, सर्वप्रांत, सर्वदेश समभाव का यह नदियों का स्वभाव भारत के नव निर्माण में एक सशक्त कार्यक्रम का विषय बन सकता है। यह एकरसता, समरसता और सर्वसुलभता की भारतीय संस्कृति है जो राष्ट्र नव निर्माण की कुंजी है। किंतु हम इस प्रकार के चिंतन से विमुख हैं।

कुंभ पर्व का कोई रूढ़िवादी विचार न जकड़े तो हमारे लिए अच्छा होगा। कुंभ स्नान के लिए उमड़े जन समुद्र को हम पुरानपंथी या पोंगावादी न कहें तो यह हमारे लिए शुभ होगा। गंगा के किनारे कुंभ पर्व का आयोजन हमें राजा भगीरथ के वर्षों के अथक प्रयास और कठिन तपस्या की याद दिलाता है क्योंकि गंगा का पृथ्वी पर आना राजा भगीरथ के ही अनवरत संघर्ष और तप तथा अविचल इच्छा शक्ति का प्रतिफल है। उदाहरण के रूप में महात्मा गाँधी को ले सकते हैं। भारत को स्वतंत्र कराने के लिए गाँधी जी ने एक संघर्ष का राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया। गाँधी का रास्ता शांति, सद्भाव, अहिंसा और अनवरत संघर्ष का रास्ता था। करोड़ों भारतवासियों को अपने राष्ट्रीय कार्यक्रम से जोड़ने के लिए गाँधी को सर्वधर्म समभाव का रास्ता अपनाना पड़ा। उनकी दैनिक प्रार्थना में सभी वर्गों की प्रार्थनाएँ शामिल थीं। गाँधी ने भारत की धर्मप्राण जनता की नस को परखा था। धार्मिक होते हुए भी गाँधी पुरातन पंथी नहीं थे। उन्होंने बड़ी ही चतुराई एवं सहजता से धर्म को कर्म के साथ जोड़ा।

कुंभ हमारी सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। इस प्रतिष्ठान से हम जीवंत चेतना ग्रहण कर सकते हैं और पूरे देश को इस सर्वग्रही चेतना से अनुप्राणित कर सकते हैं। एकत्रित इस जन समूह को हम अंध विश्वासी या भेड़ियाधसान न कहें तो उत्तम होगा। आखिर क्यों ? इसलिए कि देश के विभिन्न अंचलों से देश के चारों कोनों से जब कुंभ स्नानार्थी चलता है तब वह अपने मन में कुंभ भावना-सद्भाव,

अच्छे कार्य के लिए कष्ट सहन करना, ईश्वर में आशा रखना, नदियों को पवित्र समझना आदि भावना लेकर चलता है। इस प्रकार कुंभ स्थान पर चारों दिशाओं से देश के विभिन्न भागों, प्रांतों, नगरों से अच्छी भावनाओं की तरंगे पहुँचती हैं जो कुंभ क्षेत्र को रसमय, संगीतमय, प्रेममय, श्रद्धामय और आध्यात्मिक बनाती हैं।

कुंभ परंपरा से हमें इन्हीं सद्भावों की तरंगों को पकड़ना है और उसे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम का रूप देना है। यदि ऐसा हुआ तो नि:संदेह भारत में सुख शांति अमन चैन का वातावरण बनेगा जो देश को खुशहाली की ओर ले जायेगा। कुंभ चिरंतन आस्था, श्रद्धा और भक्ति का पर्व है। यह समत्व बुद्धि के जागरण का पर्व है। प्रति बारहवें वर्ष कुंभ पर्व के आयोजन के अमृत तत्व की खोज के अतिरिक्त दार्शनिक पक्ष भी है। हमारी पाँच कर्मेन्द्रियाँ है और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन दस के अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व है चित और बुद्धि। इन्हीं बारह तत्वों से मानव शरीर क्रियाशील रहता है और देवासुर संग्राम हमारे शरीर के अंदर ही चलता रहता है। इस प्रकार यह कुंभ पर्व स्नानार्थियों का अपने इंद्रियों पर विजय, मन की शुद्धि और बुद्धि के विकास का प्रतीक है। जो हमें आपसी सद्भाव, पर दु:ख कातरता, सहयोग, सहजीवन सभी धर्म संप्रदायों के प्रति आदर के भावों को पुष्ट करता है। क्या ये उद्देश्य हमारे राष्ट्रीय नवजागरण के कार्यक्रम के लिए पर्याप्त नहीं है?

किसी भी उत्सव, पर्व, सामूहिक आयोजन को हम पुरातन पंथी, पुराण पंथी या अनावश्यक कहने के लिए स्वतंत्र हैं। किंतु ऐसा कहने के पूर्व हमें इन राष्ट्रीय उत्सवों की जड़ का अध्ययन करना होगा। हम इन पर्वो को नकारते हुए जनमानस को अपनी ओर या अपने रचनात्मक कार्यक्रमों की ओर आकृष्ट नहीं कर सकते। इन उत्सवों-पर्वो में निहित मनोविज्ञान, अध्यात्म, सामाजिक चिंतन के गूढ़ भावों का हमें अवगाहन करना होगा और तभी हम इनके मूल में छिपी जन कल्याणकारी भावनाओं को पकड़ सकते हैं और उनका युग के अनुरूप परिष्कृत कार्यक्रम का समावेश करके लाभ उठा सकते हैं। हमारे सरकारी प्रचार तंत्र-आकाशवाणी और दूरदर्शन-कुंभ को भारतीयता की पहचान बनाने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। कुंभ का सभी पक्ष निरर्थक नहीं है। अंधविश्वास धन की प्रदर्शनी के रूप पहलुओं को काट छांट कर इसके सार्थक मूल्यों को सहेजकर हम कुंभ के बहाने नए भारत के निर्माण की कल्पना कर सकते हैं।

कुंभ पर्व वास्तव में हमारे महर्षियों द्वारा शोधित एक महान उदात्त पर्व है। इस अवसर पर विश्व के लोग आकर अपने विचारों का यंत्र द्वारा प्रचार-प्रसार करते हैं। जीवन की नश्वरता, संसार की अनित्यता, शरीर की साधना, मन की वृत्तियों को वश में करना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रश्रय देना कुंभ का लक्ष्य है। यही तो अमृत तत्व है। अमर तत्व का ज्ञान प्राप्त करना ही कुंभ प्रतीक का वास्तविक अर्थ है। कुंभ जीवन में समत्व का पर्व है। यह त्याग का पर्व है। राजा हर्ष अपने सारे खजाने का दान करके सबकी बराबरी में आ जाते थे। यह समत्व भाव का प्रदर्शन राजा में तदनुरूप भाव भरने के लिए ही वे करते थे। यह त्याग एवं समता के मार्ग को प्रशस्त करने वाला पर्व है। अंध

विश्वास, कर्मकांड या व्यक्ति पूजा की संकीर्ण भावनाओं में कुंभ प्रतीक को बांधना भारतीयता की सामूहिक मानसिकता का मखौल उड़ाना है।

कुंभ स्नानदान का पर्व है। इस अवसर पर देश की पवित्र नदियों में स्नान मात्र ही नहीं हो। यहाँ भगवान का कथामृत भी बरसता है। संतो के प्रवचन से बालुका क्षेत्र का पूरा वातावरण कण-कण भगवत्म हो जाता है जिसके कारण बरबस स्वत: मन भगवत नाम स्मरण और चिंतन में गोता लगाने लगता है तभी तो कुंभ स्नान से अनेक विशिष्ट यज्ञों का फल मिलता है।

कुंभ का उद्देश्य महत्तम है। यह विश्व के श्रद्धावान लोगों के लिए वरदान है। यह किसी जाति विशेष या धर्म विशेष का मेला नहीं है। आज आवश्यकता है कुंभ पर्व पर देश के बृहत्तर समाज के सांस्कृतिक आचरण की पुनर्व्याख्या की, पुनरावलोकन की और सदाचार को रेखांकन करने की। सरकारी प्रचार तंत्र कुंभ का विराट फलक उभार सकता है। इसे व्यापक बनाते हुए भारतीय जीवन के अंत:भूत पर्वों की समग्रता का दर्शन करा सकता है। कुंभ पर्व सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक उदारता का पर्व है। यह भारत की विविधता में एकता का पर्व है। हमें इसके एकात्म सूत्र को पकड़ना होगा।

❑❑

काशी का हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान (काशी नागरीप्रचारिणी सभा के विशेष संदर्भ में)

—राकेश कुमार दुबे

काशी/ बनारस और हिंदी का अविच्छेद्य संबंध है। हिंदी को उत्पन्न करने, पालने और पुष्ट करने का श्रेय काशी को है। गुरु गोरखनाथ, महात्मा रामानंद और उलटी सीधी कहने वाले कबीर से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र तक तो हिंदी बनारस की ही बनी रही। उसके बाद भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, रायकृष्णदास और रामदास गौड़ अपनी एकांत साधना से उसके पुष्ट करने का कार्य करते रहे। लाला भगवानदीन की सेवाएँ भी नहीं भूली जा सकती। समाचार-पत्रों द्वारा काशी ने हिंदी की जो सेवा की है, यह उसे राष्ट्रभाषा बनाने में कम सहायक नहीं हुआ। विद्याराष्ट्ररत्न शिवप्रसाद जी, बाबूराव विष्णु पराड़कर ने हिंदी को जिस प्रकार गौरवान्वित किया है, यह इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री है। इसी बनारस में नागरी के उत्थानार्थ नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसने हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाई।

प्राचीनकाल से ही भारत की सांस्कृतिक राजधानी होने के कारण काशी या बनारस नगर का अति विशिष्ट स्थान रहा है। 1720 ई. में जब मुगल साम्राज्य का विघटन तीव्रता से आरंभ हुआ, उस समय भी बनारस मुगलों के ही अधीन था। 1730 ई. में जब सआदत खाँ अवध के नवाब नियुक्त हुए उस समय गाजीपुर, जौनपुर और बनारस की सरकारें मुर्तजा नामक किसी उमराव के अधीन थीं। सआदत खाँ ने 8 लाख रुपये में बनारस का बंदोबस्त मीर रुस्तमअली के हाथों में कर दिया। आधुनिक बनारस राज्य के संस्थापक मनसाराम रुस्तमअली की नौकरी में थे।[1] 24 अक्टूबर, 1764 ई. की बक्सर की लड़ाई के बाद 17 अगस्त, 1765 ई. की 'इलाहाबाद की संधि' के अंतर्गत् बनारस के तत्कालीन शासक बलवंत सिंह ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।[2] इसी बनारस में क्वींस कालेज के सातवीं, नवीं एवं ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों द्वारा 16 जुलाई, 1893 ई. को नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसके मूल में नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) का प्रचार प्रमुख था।

इसके स्थापनकर्ता त्रय पं. रामनारायण मिश्र, बाबू श्यामसुंदरदास और बाबू शिवकुमार सिंह थे।[3] भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने हिंदी के लिए जो उद्योग आरंभ किया था, उनके देहावसानोपरांत उन समस्त कार्यों का उद्घाटन ही नागरीप्रचारिणी सभा का इतिहास है जैसा कि विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि "भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने जो प्रस्तावना की थी उसी का उद्घाटन नागरीप्रचारिणी सभा के पचास वर्षों का इतिहास है। इस चार युगों से अधिक समय में सभा ने नागरी लिपि के प्रचार के साथ ही हिंदी के संस्कार और साहित्य के संवर्द्धन में जैसा योग दिया उससे स्पष्ट है कि हिंदी की वर्तमान समृद्धि का वास्तविक हेतु सभा ही है। इसने साहित्य क्षेत्र में जिस-जिस बीज का वचन किया, उस उसको अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करने में अन्य संस्थाओं का सहयोग उसे मिला।"[4] 16 जुलाई, 1893 ई. को ही सभा के जो उद्देश्य निर्धारित किए गए वे इस प्रकार थे[5]—

क. इस सभा के सभासदों का मुख्य कर्तव्य यह है कि नागरी भाषा से अपनी उन्नति करें। नागरी जानने वाले इष्ट मित्रों से नागरी अक्षर और भाषा में पत्र व्यवहार करें। लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित करें।

ख. नागरी लेख लिखने का अभ्यास करें और उन्हें सामयिक पत्रों में प्रकाशित करवावें।

ग. इसके सभासद अन्य स्थानीय नागरीप्रचारिणी सभाओं से पत्र व्यवहार द्वारा एकता और मित्रता करें।

घ. यथासाध्य दूसरे स्थानों में ऐसी सभा स्थापन करने का प्रयत्न करें।

ड़. दूसरी भाषा के उत्तम एवं उपयोगी ग्रंथों को हिंदी में अनुवाद करें।

च. परस्पर में मित्रता और ऐक्य बढ़ावें।

जिस समय सभा की स्थापना हुई उस समय हिंदी की बिल्कुल भी पूछ नहीं थी। इस समय हिंदी में न तो कोई अच्छा व्याकरण, न कोई शब्दकोश और न ही हिंदी साहित्य का इतिहास ही था। हिंदी की लेख-प्रणाली और लिपि-प्रणाली भी अत्यंत दोषपूर्ण थी। हिंदी में वैज्ञानिक ग्रंथों एवं शब्दकोशों की बात सोचना कल्पना से परे था। हिंदी की क्या अवस्था थी ? यह बात बाबू श्यामसुंदरदास के कथन से ही स्पष्ट हो जाता है कि "इस समय हिंदी की बड़ी बुरी अवस्था थी। वह जीवित थी यही बड़ी बात थी। राजा शिवप्रसाद के उद्योग तथा भारतेंदु जी के उसके लिए अपना सर्वस्व आहुति दे देने के कारण उसको जीवनदान मिला था। हिंदी का नाम लेना भी इस समय पाप समझा जाता था।"[6]

प्रथम वर्ष में ही सभा ने जिन कार्यों को अपने हाथ में लेने का विचार किया उनमें हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कराना, हिंदी के एक बड़े कोश का निर्माण, हिंदी हस्त-लिपि की परीक्षा आरंभ करना, हिंदी भाषा के इतिहास का निर्माण, हिंदी उपन्यासों का निर्माण, भारतवर्ष का इतिहास तैयार कराना, यात्राओं के वर्णन तैयार कराना, हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास लिखाना, विज्ञान-मस्तिष्क विषयों के ग्रंथ लिखाना एवं हिंदी के प्राचीन पद्य-ग्रंथों को प्रकाशित

कराना इत्यादि बातें शामिल थी। किसी भी भाषा के साहित्य को तब तक महत्व नहीं मिल सकता, जब तक कि स्वयं उस भाषा को लोकप्रियता एवं महत्व न प्राप्त हो। अपनी स्थापना के बाद सभा ने कुछ ऐसे कार्य किए जो कि हिंदी भाषा को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में काफी सहायक हुए। 1894 ई. से सभा ने हिंदी भाषा और नागरी लिपि को सर्वप्रिय बनाने और उसकी ओर जनता को अधिक से अधिक आकृष्ट करने हेतु 'हिंदी हस्तलिपि परीक्षा का आयोजन आरंभ किया और इस हेतु 10, 8 और 5 रु. के तीन पारितोषिक देने का निर्णय किया। यह परीक्षा न केवल पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध बल्कि मध्य प्रांत की कई रियासतों एवं कश्मीर राज्य तक आयोजित की गई और सं. 1993 तक कुल 43 वर्षों में सभा ने इस कार्य पर 1871 रु. का पुरस्कार दिया। अपनी स्थापना के दूसरे वर्ष सभा ने प्रांतीय बोर्ड ऑफ रेवेन्यू में हिंदी को स्थान दिलाने के लिए आंदोलन आरंभ किया और 1896 ई. में सभा माल विभाग में नागरी को प्रवेश दिलाने में सफल हो गई।[10] अपने शुरुआती कार्यों से उत्साहित हो सभा ने नागरी को शिक्षा के माध्यम तथा संयुक्त प्रांत के राजकीय कार्यालयों में स्थान दिलाने के लिए 2 मार्च 1898 ई., को इलाहाबाद में लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंटनी मैकडानेल को निवेदन पत्र (मेमोरियल) अर्पण किया[11] और इस पर दो वर्ष आंदोलन किया जिसके फलस्वरुप उ. प्र. और अवध के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने 18 अप्रैल, 1900 ई. को अपने आज्ञापत्र नं0 585 / 3-343 सी-68, 1900 ई. द्वारा कचहरियों और दफ्तरों में नागरी के प्रयोग की अनुमति प्रदान कर दी।[12] यह सभा की बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

1896 ई. से सभा ने *'नागरीप्रचारिणी पत्रिका'* का प्रकाशन आरंभ किया। सर्वसाधारणजनों की रूचि परिभाषित करने और उत्तमोत्तम विषयों में प्रवृत्ति उत्पन्न करवाने के लिए ही सभा ने 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन किया। पत्रिका का प्रकाशन क्यों आरंभ किया गया यह सभा के वार्षिक विवरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'सभा की निर्णीत बातों को जनसाधारण तक पहुँचाना तथा हिंदी के सुयोग्य लेखकों के लेखों को सुरसिक पाठकों तक पहुँचाना और हिंदी में भाषातत्व, भूतत्व, विज्ञान, इतिहास आदि विद्या विषयक लेखों के अभाव की पूर्ति हेतु 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का त्रैमासिक प्रकाशन आरंभ किया गया।[13] नागरीप्रचारिणी पत्रिका ने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर तो लेख प्रकाशित किया ही साथ ही साहित्येतर विषयों पर भी गंभीरतापूर्ण शोधपत्र प्रकाशित किया। वास्तव में भारत में प्राच्य विषयों पर भारतीय भाषाओं में गहन अनुसंधान के आधार पर शोध का आरंभ नागरी प्रचारिणी पत्रिका से शुरु होता है और आज भी यह पत्रिका शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

सभा में हिंदी की लेख प्रणाली और लिपि प्रणाली के सुधार के लिए 4 जुलाई, 1894 ई. को ही पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का प्रस्ताव पेश हुआ। 1898 ई. में सभा ने भाषा के विद्वानों का मत संग्रह करके एक निश्चित मत स्थिर करने के लिए सभा से आठ प्रश्न भाषातत्ववेत्ताओं से किए गए और इन पर सम्मति संग्रह करने और विचार करने के लिए ग्यारह चुने हुए विद्वानों की एक उपसमिति गठित कर दी और ये प्रश्न प्रसिद्ध भारतीय और यूरोपिय विद्वानों (कुल 59) के पास भेंजे गए।[14] सभा ने

इस पर दो वर्ष तक कठिन मेहनत किया और मत संग्रह किया इसके उपरान्त सर्वसम्मति से 8 जनवरी, 1900 ई. को भाषा संबंधी सब-कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। यह जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें लेख एवं लिपि प्रणाली कैसी होनी चाहिए, विभक्ति, प्रत्यय, चंद्रबिंदु इत्यादि का प्रयोग कैसे होना चाहिए के साथ ही साथ साधारण साहित्य एवं उच्च कोटि के साहित्य की भाषा कैसी होनी चाहिए, इन बातों का विस्तृत वर्णन है। इस रिपोर्ट में कुल 24 पृष्ठ हैं। उत्तरदाताओं की सूची में जहाँ भारतभर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान देखे जा सकते हैं वहीं विदेशी विद्वानों में जी. ए. ग्रियर्सन, मि. ई. ग्रीब्ज, मि. जे. जी. ड्यान और डॉ. डबल्यू हूपर सदृश लोग देखे जा सकते हैं। इस रिपोर्ट की सर्वत्र प्रशंसा हुई और समस्त प्रांतों के शिक्षा विभागों ने इसे हिंदी की लेख तथा लिपि प्रणाली के मानक रूप में स्वीकार कर लिया।[15]

जनवरी, 1900 ई. में इंडियन प्रेस, प्रयाग से "सरस्वती" नाम की सचित्र हिंदी मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय ना. प्र. सभा को ही है। भाषा एवं लिपि का परिष्कार एवं संवद्र्धन के साथ ही देशभाषा द्वारा देशवासियों को जागृत करने एवं उन्हें राष्ट्र निर्माण हेतु प्रेरित करना इस पत्रिका के मूल में था। वास्तव में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आरंभ हुआ और इस पत्रिका ने भाषा और साहित्य के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में निर्णायक भूमिका निभाई।

सन् 1900 ई. से सभा ने हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य आरंभ किया जिसका हिंदी भाषा तथा साहित्य के उत्थान से घनिष्ठ संबंध था। सभा के सभासदों का यह पूर्ण विश्वास था कि जब तक हिंदी के प्राचीन ग्रंथों की खोज का काम नहीं होगा तब तक भारत, विशेषकर उत्तर भारत की बहुत सी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक बातें अंधकार में विलीन रहेगी। सभा ने 1900 ई. में अपने प्रधान स्तंभ बाबू श्यामसुंदरदास के निरीक्षण में खोज विभाग की स्थापना की और यह कार्य प्रारंभ किया और पहले ही वर्ष में बनारस, रीवां, जयपुर, नागौद, लखनऊ, कालपी, आगरा और मथुरा में खोज का कार्य किया गया और 257 ग्रंथों के विवरण लिए गए जिनमें 169 ग्रंथों की रिपोर्ट की गई जो कि बारहवीं सदी से लेकर 19वीं सदी तक के थे।[16]

सरकार ने 1900 ई. और 1901 ई. की रिपोर्ट प्रकाशित कर इसकी प्रतियाँ देश-विदेश के अनेक विद्वानों के पास भेजीं, जिनमें से डॉ. हार्नली, डॉ. ग्रियर्सन, श्री ग्रिफिथ, श्री बार्थ, डॉ. पिशेल आदि विद्वानों ने श्यामसुंदरदास को व्यक्तिगत रूप से पत्र लिख कर इन रिपोर्टों की बहुत प्रशंसा की।" सभा ने हिंदी की हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य जारी रखा और संयुक्त प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) राजपूताना, बुंदेलखंड, पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता इत्यादि प्रदेशों में जहाँ स्वयं खोज का कार्य किया वहीं बिहार और उड़ीसा में 'बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' के द्वारा यह कार्य संपन्न करवाया।

1943 ई. तक शताब्दी क्रम से ग्रंथकारों और ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है:—

शताब्दी	11वीं	13वीं	14वीं	15वीं	16वीं	17वीं	18वीं	19वीं	20वीं	अज्ञात	योग
ग्रंथकार	1	2	33	6	358	797	1230	1342	110	2216	6095
ग्रंथ	1	2	48	143	1080	1833	2651	2610	191	6187	14746

सभा ने खोज का जो अद्‌वितीय कार्य किया, जो कि हिंदी को और ना. प्र. सभा को छोड़ यह सौभाग्य और किसी को प्राप्त नहीं हुआ, के फलस्वरूप प्रभूत ग्रंथ प्रकाश में आए जिनके विषय रासो, इतिहास और विरूदावलियाँ, सिद्धों का साहित्य (योगधारा), संत साहित्य (निर्गुण धारा), भक्ति साहित्य (सगुणधारा), सूफी प्रेमाख्याएँ, भारतीय प्रेम कथाएँ, साहित्य शास्त्र, पिंगल, कोश, काव्य, नाटक, आत्मकथा, यात्रा, लावनी और ख्याल तथा गद्‌य ग्रंथ थे। इस प्रकार सभा ने उद्‌योग कर प्राचीन अलभ्य, दुष्प्राप्य भाषा पुस्तकें जो लुप्तप्राय हो मुमूर्शदशा को प्राप्त हो रही थी, अनुसंधान कर जनसाधारण के सम्मुख उपस्थित कर उन्हें अमरत्व पदवी प्रदान करने का उद्‌योग किया। खोज के कार्य द्‌वारा उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर 1913 ई. में सभा के सभासद मिश्र बंधुओं ने *'मिश्रबंधु विनोद'* नाम का विशाल ग्रंथ तीन खंडों में लिखा। जिसमें चार हजार से अधिक कवियों एवं लेखकों का तिथिवार वर्णन है। इसके उपरांत 1920 ई. तक सभा ने खोज का जो कार्य किया था उसके आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्‌वारा *'हिंदी साहित्य का इतिहास'* लिखा गया जो कि हिंदी साहित्य का सबसे प्रामाणिक इतिहास है।

सभा का हिंदी में शब्दकोशों और व्याकरण के अभाव की पूर्ति का प्रयास भी सराहनीय रहा है। हिंदी में विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों के अभाव की पूर्ति के लिए सभा ने 1898 ई. में 'हिंदी वैज्ञानिक कोश' बनाने का उद्‌योग आरंभ किया और इस कार्य में संपूर्ण भारत के विद्‌वानों का सहयोग प्राप्त किया। 1906 ई. में इस कोश के प्रकाशित होने पर देश भर के विद्‌वानों और सभा समाजों से सभा को बधाई पत्र प्राप्त हुए। यहाँ तक कि इंग्लैंड के वैज्ञानिक पत्रों में भी इस कृति की सुंदर समालोचना हुई।[18] भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक कोश होने का सर्वप्रथम सौभाग्य ना. प्र. सभा के उद्‌योग से हिंदी को ही प्राप्त है। 1912 ई. में हिंदी में एक सर्वांगपूर्ण व्याकरण बनाने का उद्‌योग सभा ने आरंभ किया और श्री कामताप्रसाद गुरु के अथक प्रयास से 1920 ई. में इस कर्म को भी पूर्ण कर दिया। 9 सितंबर, 1907 ई. के रेवरेंड ई. ग्रीब्ज के प्रस्ताव पर 1908 ई. से सभा ने 'हिंदी-शब्द सागर' नामक विशाल शब्दकोश बनाने का उद्‌योग आरंभ किया[19] और इस कार्य में हिंदी के भारतीय एवं विदेशी सभी विद्‌वानों का सहयोग लिया। 22 वर्षों के निरंतर उद्‌योग एवं 108720 रु. की लागत से 1929 ई. में 93115 शब्द और 4281 पृष्ठों के शब्दकोश को सभा ने पूरा किया। सभा के इस महान कार्य की देश और विदेश सर्वत्र प्रशंसा हुई।[20] सभा द्‌वारा प्रकाशित शब्दकोश अत्यंत प्रामाणिक था और ब्रिटिश, अमेरिकी एवं रूसी शब्दकोशों की समकक्षता रखता था।

ना. प्र. सभा ने हिंदी भाषा में विविध विषयों के ग्रंथों को लिखने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु विविध पुरस्कार एवं पदक प्रदान करने का आयोजन किया। अपने शुरुआती दौर में ही सभा ने कई सोने एवं चाँदी का पदक देने का आयोजन किया। इसके बाद भी जहाँ जोधसिंह पुरस्कार, रत्नाकर पुरस्कार, बटुकप्रसाद पुरस्कार, डॉ. छन्नूलाल पुरस्कार, राजा बिडला पुरस्कार एवं विनायक नंदशंकर मेहता पुरस्कार प्रदान किया वहीं, राधाकृष्ण पदक, रेडिचे पदक, सुधाकर पदक, गुलेरी पदक, ग्रीब्ज पदक, द्विवेदी स्वर्ण पदक, बलदेवदास पदक एवं डॉ. हीरालाल स्वर्ण पदक सदृश कितने ही पदक देने का आयोजन किया।

हिंदी भाषा में विविध ग्रंथों का अभाव देखकर उसके प्रणयन एवं संवर्द्धन के निमित्त सभा ने कई ग्रंथमालाओं का प्रकाशन किया। नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला, नागरीप्रचारिणी लेखमाला, मनोरंजन पुस्तकमाला, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, सूर्यकुमारी पुस्तकमाला, बालाबख्श-राजपूत-चारण पुस्तकमाला, देव पुरस्कार ग्रंथावली, रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला, रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रंथमाला, महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रंथावली, नवभारत ग्रंथमाला, महिला पुस्तकमाला, प्रकीर्णक पुस्तकमाला और सत्यज्ञान पुस्तकमाला जैसी ग्रंथमालाएं; कितने ही अभिनंदन ग्रंथ एवं संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, कचहरी हिंदी कोश और कोशोत्सव स्मारक संग्रह सदृश ग्रंथ सभा ने प्रकाशित किए। इन ग्रंथमालाओं एवं पुस्तकमालाओं में सभा ने सैकड़ों ग्रंथ प्रकाशित किए।

सभा का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्य हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करवाना था। अपनी स्थापना के बाद से ही सभा ने राजभाषा का आंदोलन आरंभ कर दिया था और ज्यों-ज्यों भाषा विवाद बढ़ता गया और सांप्रदायिक शक्तियाँ हिंदी का विरोध कर रहीं थी, त्यों-त्यों सभा ने हिंदी का पक्षपोषण किया और सांप्रदायिक ताकतों का विरोध किया। 1940 आते-आते, जब भाषा विवाद चरम पर पहुँच गया तब सभा ने दिसंबर, 1939 ई. में 'हिंदी' पत्रिका का प्रकाशन चंद्रबली पांडे के संपादन में आरंभ किया[21] और इस पत्रिका ने वास्तविकता का प्रतिपादन करने और सांप्रदायिक ताकतों का विरोध करने में निर्णायक भूमिका निभाई। भाषा आंदोलन के इतिहास में इस पत्रिका का पृष्ठ-पृष्ठ दस्तावेज हैं। हिंदी साहित्य सम्मेलन के साथ मिलकर और देश की समस्त हिंदी संस्थाओं का सहयोग लेकर सभा ने तब तक आंदोलन किया जब तक कि भारत की संविधान निर्मात्री सभा ने न पूर्णत: सही आंशिक रुप में ही सही, 14 सितंबर, 1949 ई. को, हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित कर दिया। हिंदी के क्षेत्र में सभा की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि उसने उस कार्य को पूर्ण किया जिसका शुभारंभ उसने 57 वर्ष पूर्व किया था।

संवत् 1986 के बाद खोज के द्वारा हिंदी की सामग्री का विस्तार होता गया और स्वतंत्रता प्राप्ति तथा हिंदी के राजभाषा होने पर अपने हीरक जयंती (सं. 2010) के अवसर पर सभा ने 'हिंदी विश्वकोश' और 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' प्रस्तुत करने की योजना बनाई। सभा के तत्कालीन सभापति तथा इस योजना के प्रधान संपादक डॉ. अमरनाथ झा की प्रेरणा से इस योजना ने मूर्तरूप ग्रहण

किया। भारत के राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने इसमें रूचि ली और प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया। इस प्रकार प्रत्येक विभाग के लिए अलग-अलग मान्य विद्वान एवं संपादक नियुक्त कर 30 वर्षों से कुछ अधिक समय में लगभग 5 लाख रूपये व्यय करके सभा ने 'हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास' 16 खंड़ों में तैयार किया। इस प्रकार हिंदी के उद्गम से लेकर आज तक का इतिहास क्रमबद्ध ढंग से सभा ने तैयार कराया। वहीं, 1956 ई. में 'हिंदी विश्वकोश' की योजना भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हो जाने पर सभा ने 1957 ई. से कार्य आरंभ किया और 14 वर्षों के अथक परिश्रम के बाद सं. 2013 वि. (1970 ई.) में 12 खंड़ों में *'हिंदी विश्वकोश'* का निर्माण कार्य पूरा किया। मानक के रूप में हिंदी में इस कोश का वहीं स्थान है जो स्थान अंग्रेजी में 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' का है। इस कार्य द्वारा सभा ने हिंदी में एक बड़े अभाव की पूर्ति की।

इस प्रकार चयनित विषय का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि काशी के साहित्यकारों एवं हिंदी सेवियों का हिंदी भाषा एवं साहित्य के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान था और काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने इस क्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभाई। सभा ने एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य की विविध विधाओं को परिपूर्ण किया, वहीं हिंदी की लेख एवं लिपि प्रणाली सुधारने का भी महान कार्य किया। नागरीप्रचारिणी एवं सरस्वती पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी भाषा एवं साहित्य के उत्थान में महती भूमिका निभाई वहीं, 1900 ई. से हिंदी हस्तलेखों की खोज कर हिंदी में प्रभूत ग्रंथ उपस्थित कर दिया तथा साहित्यिक व ऐतिहासिक दोनों अभावों की पूर्ति की। इन कार्यों के अलावा कितने ही शब्दकोशों एवं ग्रंथमालाओं का प्रकाशन किया और विविध पुरस्कार एवं पदक प्रदान कर लोगों को हिंदी साहित्य के विविध अंगों को परिपूर्ण करने हेतु प्रेरित किया। भारत की समस्त हिंदी संस्थाओं का नेतृत्व करते हुए तब तक आंदोलन किया जब तक कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर दिया। निष्कर्ष में यह बात निर्विवाद रुप में कही जा सकती है कि न केवल भारत वरन् समूचे विश्व के इतिहास में किसी एक नगर एवं किसी एक संस्था ने किसी भी एक भाषा एवं उसके साहित्य के लिए इतना बड़ा स्थान, महत्व और प्रसिद्धि नहीं पायी है जितना कि हिंदी के लिए काशी और काशी की नागरीप्रचारिणी सभा को प्राप्त है।

संदर्भः

1. मुख्योपाध्याय, निरंजन, 1874 ई., भारतवर्षीय राजदर्पण, प्रथम खंड, मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस, पृ. 6
2. चंद्र, मोती, सं. 1985 ई., काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय, पृ. 238
3. मुख्योपाध्याय, निरंजन, भारतवर्षीय राजदर्पण, पृ. 6

4. चंद्र, मोती, काशी का इतिहास, पृ. 14–15

5. शास्त्री, वेदव्रत, सं. 2000 वि., नागरीप्रचारिणी सभा का अद्‌र्ध-शताब्दी का इतिहास, ना. प्रा. सभा, काशी, पृ. 5, 7

6. वही, वक्तव्य, पृ. 1

7. नागरीप्रचारिणी सभा, 1839–94 ई., काशी का प्रथम वार्षिक विवरण, पृ. 16

8. काशी नागरीप्रचारिणी सभा का द्‌वितीय वार्षिक विवरण 1894–95 ई. दि चंद्रप्रभा प्रेस कं. लि., 1895, पृ. 7

9. शास्त्री, वेदव्रत, नागरीप्रचारिणी सभा का अद्‌र्ध-शताब्दी का इतिहास, पृ. 153

10. काशी नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण 1896–97 ई. हरिप्रकाश प्रेस, बनारस, 1897, पृ. 4

11. भारत जीवन (साप्ताहिक) 5 मार्च, 1898 ई., भारत जीवन कार्यालय, बनारस सिटी, पृ. 2–3

12. सरस्वती पत्रिका, भाग–1, संख्या–4, अप्रैल, 1900 ई., इंडियन प्रेस, प्रयाग, पृ. 127–126

13. काशी नागरीप्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण 1896 ई., पृ. 9

14. नागरीप्रचारिणी सभा का पंचम वार्षिक विवरण 1896–98 ई. पृ. नागरीप्रचारिणी सभा की भाषा संबंधी सब-कमेटी की रिपोर्ट, 1900 ई., पृ. 2

15. भारत जीवन, 30 सितंबर, 1901 ई., पृ. 6

❑❑

भारत की राष्ट्रभारती हिंदी : सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संप्रेषणपरक भूमिकाएँ

—दिलीप सिंह

हिंदी भाषा भारत की केंद्रीय भाषा है। हिंदी भाषा समाज / समुदाय (स्पीच कम्युनिटी) की बनावट भी इसीलिए विशिष्ट है। इस विशिष्टता की मूल बात यह है कि हिंदी भाषा समुदाय बहुभाषिक है, एक सीमा तक बहुसांस्कृतिक भी क्योंकि इसके पास स्थानीय बोली, क्षेत्रीय बोली, हिंदी की क्षेत्रीय शैलियों, बोलचाल की हिंदी और परिष्कृत हिंदी का 'कोड' (भाषा रूप) है। इसके साथ ही 'उर्दू' और 'अंग्रेजी' का, और इनसे मिश्रित 'हिंदुस्तानी' का भी। इनके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के हिंदी प्रयोक्ता भी इस समुदाय के सदस्य कहे जाएँगे और यदि वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा समुदाय की स्थिति को देखना हो तो हिंदी के उन विदेशी अध्येताओं को भी इसमें शामिल किया जा सकता है जो 'भारत को जानने के लिए' हिंदी का अध्ययन-अध्यापन करते हैं और डॉ. लोथार लुत्से (जर्मनी) की भाँति ही यह मानते हैं कि 'हिंदी सीखे बिना भारतीयों के दिल तक नहीं पहुँचा जा सकता।' इस प्रकार हिंदी भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के बीच भी, भारतीय भाषाओं के बीच भी और वैश्विक स्तर पर भी 'भारत की पहचान की भाषा' के रूप में स्वीकार्य रहती आई है। अपने विस्तीर्ण भाषा समुदाय के संदर्भों में सामयिक धरातल पर हिंदी भाषा की भूमिकाओं को अपार प्रतिष्ठा मिली है। इस प्रतिष्ठा की स्वीकृति एक लंबी कालावधि से हमें विदेशी भाषाविदों, राष्ट्रीय नेताओं (जिनमें से अधिकतर हिंदीतर भाषा-भाषी हैं) तथा साहित्यकारों और अनुवादकों द्वारा निरंतर मिलती रही है। वास्तव में हिंदी भाषा समाज की व्यापकता और प्रयोक्ताओं में उसकी सहज स्वीकार्यता ही हिंदी भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है। आज के निरंतर आधुनिक होते जा रहे तथा नवोन्मेषी भारत के विकास में हिंदी की भूमिकाओं को तथा उसके समाज-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समीचीन ढंग से समझ लेना आवश्यक है।

हिंदी भाषा का सामाजिक संदर्भ—जैसा कि अभी देखा गया, हिंदी भाषा का सामाजिक संदर्भ उसके भाषा समुदाय की विशिष्ट प्रकृति के कारण विलक्षण भी है और विचारणीय भी। यहाँ हमें

यह भी समझ लेना चाहिए कि भारतीय भाषा और भारतीय अस्मिता का प्रश्न अलग-अलग नहीं है। प्रत्येक भारतीय भाषा की (हिंदी बोलियों सहित) अपनी-अपनी अस्मिताएँ हैं, पहचान है, संस्कार है और संस्कृति है। लेकिन हिंदी की अस्मिता सामाजिक दृष्टि से व्यापक भारतीय अस्मिता को संभालने वाली भाषा के रूप में अपना स्वरूप ग्रहण करती है। यह स्वरूप ही हिंदी को 'अखिल भारतीय' तथा वैविध्यपूर्ण बनाता है। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा का सामाजिक संदर्भ व्यावहारिक हिंदी का स्त्रोत है। इस प्रकार हिंदी की सामाजिक भूमिका अन्य भारतीय भाषाओं से भिन्न ठहरती है। इस भूमिका का पहला स्त्रोत है- प्रांतीयता से मुक्त होना। सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से हिंदी भाषा किसी प्रांत विशेष से बंधी हुई नहीं है अर्थात यह क्षेत्रीय भाषा नहीं है, अ-क्षेत्रीय भाषा है और हमें हिंदी की इस अ-क्षेत्रीय (अखिल भारतीय) प्रकृति पर गर्व होना चाहिए और यह देखने की ओर प्रवृत्त होना चाहिए कि भारतवर्ष में जाति, मजहब, क्षेत्रीयता - इन सबसे ऊपर उठने वाला कोई भाषा संस्कार है तो वह संस्कृत के बाद हिंदी में है। हिंदी भाषा ने संस्कृत के इस संस्कार को विरासत में ग्रहण करके इसे जीवित रखा। हिंदी भाषा की यह सामाजिकता उसे साधारण जन की स्वीकार्यता से प्राप्त हुई है। इतिहास इस बात का गवाह है कि हिंदी भाषा ने 'साधारण' और 'विशिष्ट' के बीच कभी भी भेद नहीं देखा है। इसीलिए हिंदी प्रभुत्व की भाषा नहीं है बल्कि हिंदी की शक्ति साधारण जन हैं। महात्मा गाँधी ने बिहार के एक गाँव में पहुँचने के बाद ही हिंदी की इस शक्ति को पहचाना था और उसे 'राष्ट्रभाषा' के पद पर प्रतिष्ठित करने का मन ही मन संकल्प ले लिया था।

हिंदी भाषा की समाजभाषिकी पर विचार-विमर्श सबसे पहले केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने एक पुस्तक प्रकाशित करके किया था- हिंदी का सामाजिक संदर्भ (1976)। इस पुस्तक ने पहली बार यह प्रतिपादित किया था कि हिंदी एक अनेकार्थी संकल्पना है जिसके बहुआयामी पक्ष हैं अतः इन सभी पक्षों एवं संदर्भों को जानना जरूरी है तभी हम हिंदी भाषा के 'सामाजिक तात्पर्य बोध' को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे। इस पुस्तक ने संपर्क भाषा हिंदी के तात्पर्य को हिंदी भाषाई समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने का आग्रह ही नहीं किया बल्कि हिंदी की क्षेत्रीय शैलियों, सामाजिक शैलियों और प्रयोजनमूलक शैलियों के विस्तीर्ण फैलाव को भी रेखांकित किया। यहाँ यह भी स्पष्ट हुआ कि सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से जनपदीय बोलियों और खड़ी बोली के समन्वय के साथ ही हिंदुस्तानी, उच्च हिंदी (संस्कृतनिष्ठ) और उच्च उर्दू (अरबी-फारसी निष्ठ) भी समाहित हैं। सामाजिक प्रयोग और प्रयोजन की यह विविधता ही हिंदी को एक 'बहुवचनी' भाषा बनाते हुए सामाजिक स्तर पर उसे एक विशिष्ट भाषा का दर्जा देती है। तात्पर्य यह है कि हिंदी की व्यावहारिक भाषिक संरचना वैविध्यपूर्ण है। इसीलिए 'भाषा के रूप में वह एक सामाजिक संस्था भी है, संस्कृति के रूप में सामाजिक प्रतीक भी और साहित्य के रूप में वह एक जातीय परंपरा भी है।' (भूमिका : रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, हिंदी का सामाजिक संदर्भ पुस्तक में)। यहीं हमें सामाजिक संदर्भ के साथ ही 'भाषा का समाजशास्त्र' की संकल्पना पर भी विचार करना चाहिए जिसमें भाषा अध्ययन के माध्यम से सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक बुनावट को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इस धरातल पर

हिंदी भाषा का समाजशास्त्र हमें हिंदी भाषा के संबोधन प्रयोग, रंग शब्दावली, नाते-रिश्ते की शब्दावली आदि की ओर भी ले गया तथा हिंदी की आदानवादी या ग्रहणवादी प्रकृति को भी दिखाया कि कैसे हिंदी भाषा ने अपनी बोलियों और भारतीय भाषाओं से शब्द अभिव्यक्तियाँ ग्रहण और आत्मसात करके अखिल भारतीय संप्रेषण की भाषा के रूप में अपना वैविध्यपूर्ण स्वरूप निर्मित किया है। पंडित विद्या निवास मिश्र ने अपनी पुस्तक हिंदी और हम (2001) में लिखा है कि- 'भारतीय भाषाओं में हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो खुलकर कर्ज लेने में संकोच नहीं करती।' हिंदी की अन्य स्त्रोतों से ग्रहण करने की इस प्रवृत्ति ने कोड मिश्रण और कोड परिवर्तन की प्रक्रिया को भी प्रबल और स्वीकार्य बना दिया है। हिंदी के वाक्यों में बोलियों, भाषाओं, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का मिश्रण हिंदी भाषा की जीवंतता को स्थापित ही नहीं करता बल्कि उसे समृद्ध भी बनाता है। ऐसा करके ही हिंदी भाषा राष्ट्रीय और वैश्विक एकता का माध्यम बन सकी और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उस आकांक्षा को प्रतिफलित कर सकी - मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती / भगवान / भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती। (भारत भारती : अतीत खंड)।

हिंदी भाषा का सांस्कृतिक संदर्भ: हमने देखा कि हिंदी भाषा समुदाय बहुभाषिक है। इतना ही नहीं, वह बहुसांस्कृतिक भी है और भारतीय संस्कृतियों को एकीकृत या समन्वित करने का माध्यम भी है। हिंदी भाषा सदैव से भाषा, समाज और संस्कृति के अंत: संबधों को साधने वाली भाषा रही है। इसीलिए वह स्वतंत्रता संग्राम में हमारी जातीय और राष्ट्रीय एकता का सशक्त माध्यम भी बनी और उसने विभिन्न भाषायी संस्कृतियों को भावात्मक स्तर पर 'एक' सिद्ध करते हुए 'भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता' की दृष्टि और भावना को पुष्टता प्रदान की। कहना न होगा कि ब्रिटिश राज में भाषायी और सामाजिक विघटन के षड्यंत्र शिखर पर थे। हिंदी भाषा ने इस षड्यंत्र को विफल करने का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटिशकालीन भारत में हमारे विचारकों ने यह समझ लिया था कि भाषा की पराधीनता, सांस्कृतिक पराधीनता भी है। और लॉर्ड मैकाले तो यह खुले शब्दों में यह घोषित कर ही रहा था कि 'जब तक संस्कृति और भाषा के स्तर पर इस देश को गुलाम नहीं बनाया जाएगा, भारत को हमेशा के लिए या पूरी तरह से गुलाम बनाना संभव नहीं होगा।' उस समय हमारी भाषाओं ने भाषा अनुरक्षण (मेंटेनेंस) के लिए अनवरत संघर्ष किए क्योंकि उन्हें भान हो गया था कि अपनी-अपनी भाषा की तथा राष्ट्रभाषा हिंदी की रक्षा और इनका उत्थान करके ही इनके माध्यम से सांस्कृतिक-सामाजिक और राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा की जा सकती है। साधारणजन की इस उत्कट भावना को हमारे संतों नामदेव, कबीर, नानक, तुलसी, तुकाराम, जायसी और सूर से पर्याप्त बल मिला जिन्होंने मुगल शासन के अत्याचारों के बीच संघर्ष करते हुए अपनी भाषाओं और संस्कृतियों का संरक्षण किया तथा जनमानस को आत्मबल प्रदान किया।

डॉ. रामविलास शर्मा (भाषा और समाज; 1961) ने ब्रिटिश राज के दौरान भारत की भाषायी चेतना को इन शब्दों में व्यक्त किया है- '19वीं शती के उत्तरार्ध से 20वीं शती के पूर्वार्ध तक पूरा राष्ट्र

जिस मूल्य की साधना करता रहा, वह था स्वातंत्र्य। इस स्वातंत्र्य की वाहिका बनी हिंदी। यही वह कालखंड था जब स्वदेशी और हिंदी स्वाधीनता के पर्याय बन गए।' यह ध्यातव्य है कि इस कालखंड में 'एकता के सेतु' के रूप में परस्पर अनुवाद को बहुत महत्व दिया गया। भारतीय भाषाओं के बीच साहित्यिक अनुवाद की परंपरा प्रबल हुई तथा ज्ञानात्मक और दार्शनिक संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद भी सामने आने लगे। सांस्कृतिक एकता के लिए अनुवाद के महत्व को पहचाना गया और भारतीय भाषाओं के बीच इसकी सुदृढ़ भूमिका बनी जिसके कारण तत्कालीन समय में भारतीय भाषाओं के बीच सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सका। इतना ही नहीं, उस समय भी और आगे चलकर भी (स्वतंत्रता के बाद) साहित्यिक अनुवाद की भारतीय परंपरा ने 'भारतीयता' की धारणा को और भी पुष्ट किया। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीयता की अवधारणा की तुलना वाद्यवृंद (आर्केस्ट्रा) से करते हुए यह कहा था कि जिस प्रकार वाद्यवृंद को साधते समय अलग-अलग वाद्य होते हैं लेकिन उनकी सुरलहरी समान होती है, उसी प्रकार भारत की विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों का आंतरिक स्वरूप समान है, चाहे बाहर से वे भिन्न-भिन्न क्यों न दीखती हों। साहित्यिक अनुवाद की निरंतरता से सभी भारतीय भाषाओं को यह आभास हो गया था कि भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद अधिक सहज, सरल और संभाव्य होता है क्योंकि इनके भीतर समानधर्मी सांस्कृतिक तत्व निहित हैं। यह तो विदित ही है कि हिंदी और भारतीय भाषाओं के बीच प्रचुर मात्रा में साहित्यिक अनुवाद आज हमारे समक्ष उपस्थित हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि हिंदी सहित समस्त भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक धरोहर सजातीय है, एक विजातीय भाषा होने के कारण अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से नितांत भिन्न होने के कारण अंग्रेजी भाषा साहित्यिक अनुवाद की दृष्टि से कहीं नहीं ठहरती।

संपर्क भाषा के रूप में भी और अनुवाद की भाषा के रूप में भी हिंदी एक केंद्रीय भाषा है। इन दोनों रूपों में निरंतर पारस्परिक संबंध रखने के कारण हिंदी तीव्र गति से न केवल भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रबल आधार बन चुकी है बल्कि उसने अपने 'आंतरभारती' स्वरूप को भी भरपूर निखारा है। सभी हिंदी भाषा चिंतकों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि भारत की जनता (चाहे वह किसी भी भाषा समुदाय की हो) के संस्कार बहुत प्रखर और गहरे हैं। अनुवाद की केंद्रीय भाषा के रूप में हिंदी ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि हिंदी की प्रकृति उदारता की प्रकृति है। इसीलिए वह किसी प्रकार की संकीर्णता का विरोध करती है और अपनी प्रकृति को 'स्वीकार की प्रकृति' के रूप में विकसित करती चलती है। यदि हम प्रो. एमेन्यू जैसे विदेशी विद्वानों और धीरेन्द्र वर्मा, रामविलास शर्मा, विद्या निवास मिश्र, एम. शेषन, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव आदि के विचारों को देखें तो इन सबने इस बात पर बल दिया है कि हिंदुस्तान में यद्यपि अनेक परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं, पर भाषिक संरचना और भारतीय संस्कृति के स्तर पर उनमें अद्भुत साम्य है जिसके कारण हिंदुस्तान को 'एक भाषा क्षेत्र' (इंडिया ऐज ए लिंग्विस्टिक एरिया) मानना पड़ता है। इन विद्वानों ने इसका कारण बताते हुए यह कहा है- परस्पर सांस्कृतिक घुलनशीलता का एक लंबे अरसे तक क्रियाशील होना।

संक्षेप में कहा जाए तो हिंदी भाषा की संस्कृति मूलत: क्षेत्रीय संस्कृतियों के ताने-बाने पर आधारित है जिसे हम लोक संस्कृति भी कह सकते हैं। सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से यही हिंदी भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है। हिंदी की मूल मंशा सदा से यही रही है कि वह अपने संरचनात्मक गठन तथा समाज-सांस्कृतिक बुनावट में स्थानीय (क्षेत्रीय) विशिष्टताओं को आत्मसात करती रहे। इसी के चलते हिंदी अनेक दिशाओं में आज एक विकासोन्मुखी भाषा है (व्यावहारिक, प्रयोजनमूलक, साहित्यिक, जनसंचार आदि)। कहना यह है कि साहित्य, संस्कृति और लोक के साथ संचरण करने वाली यह एकमात्र ऐसी भारतीय भाषा है जिसकी संप्रेषणपरक स्वीकृति अखिल भारतीय है। यही कारण है कि हिंदी भाषा विश्व की उन कुछ ऐसी भाषाओं में से एक है जिनमें निरंतर बनने और बनते-बदलते जाने की सामर्थ्य होती है या साहस होता है। तात्पर्य यह है कि हिंदी भाषा अपने को बनाने के लिए, जीवंत रखने के लिए और जनप्रिय बने रहने के लिए बदलाव, परिवर्तन और विकास के लिए सदैव तैयार और तत्पर रही है। हिंदी की इस विशेषता को हम संपर्क भाषा के रूप में उसकी उदारता तथा हर प्रकार के संपर्क के लिए विकास करने की उसकी प्रवृत्ति भी कह सकते हैं। हिंदी भाषा, भाषा संपर्क और भाषा विकास को साधने वाली एक भाषा है। गतिशीलता हिंदी का स्वभाव है। डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का यह कथन अर्थगर्भित है- 'मैं हिंदी का प्रेमी हूँ। सांस्कृतिक जीवन में हिंदी के महत्व को भली-भाँति समझता हूँ।' आज का आधुनिक भाषाविज्ञान भाषा को 'एकरूप' मानकर नहीं देखता। वह मानता है कि भाषा मानव संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। उसकी यह धारणा भी स्पष्ट है कि समाज के बिना भाषा नहीं है तथा भाषा के बिना समाज नहीं है। सबसे बड़ी बात यह कि समाज और भाषा दोनों का अस्तित्व संस्कृति के बिना नहीं है। हिंदी भाषा निश्चित ही भाषा, समाज और संस्कृति के इस गुथाव का एक आदर्श उदाहरण है क्योंकि यदि हिंदी के विकास के इतिहास की परख की जाए तो यह आकलन आसान हो जाएगा कि हिंदी भाषा के व्यवहृत रूपों की एक-दूसरे के साथ जुड़ने और कड़ी बनते जाने की प्रक्रिया बड़ी प्रेरक है। वास्तव में यह संस्कृतियों के जुड़ने की भी प्रक्रिया है जिसमें साधारण से साधारण भाषारूप को भी महत्व मिलता है और यह संकल्प इस प्रक्रिया को गति देता है कि भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों के बीच कोई गहरा विभेद नहीं है। हिंदी भाषा भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान का एक सशक्त स्वर है। उसका पूरा इतिहास भाषायी, भावात्मक और सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्र को जोड़ने वाला इतिहास है।

हिंदी भाषा का संप्रेषणपरक संदर्भ: अब तक की चर्चा से यह स्पष्ट हो चुका है कि भाषा सामाजिक व्यवहार की वस्तु है। अत: यह संप्रेषण का प्रमुख साधन है। लोगों के बीच संपन्न होने वाला संप्रेषण व्यापार भाषा के द्वारा ही मूर्त होता है। हिंदी भाषा भारत के लिए एक व्यापक संप्रेषण की भाषा है अत: हिंदी के भाषायी कोश में उसकी एकाधिक संप्रेषणपरक युक्तियाँ हैं जो वक्ता-श्रोता के संबंध, वाक परिस्थिति और संदेश की प्रकृति द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस व्यावहारिक प्रक्रिया में हिंदी की संप्रेषणपरकता की अनेक शैलियाँ (उप रूप) प्रचलित हैं। एक ओर हिंदी की क्षेत्रीय

शैलियाँ हैं जिनका निर्माण उसकी बोलियों के अवमिश्रण से होता है। दूसरी ओर हिंदी की सामाजिक शैलियाँ बनती और स्थिर होती हैं जिनका व्यवहार हम अपने सामाजिक संबंधों के निर्वाह के लिए करते हैं- जैसे रूढ़ शैली, औपचारिक शैली, अनौपचारिक शैली, आत्मीय शैली आदि। तीसरे व्यापक प्रयोग क्षेत्र की भाषा होने के कारण संप्रेषणीयता की दृष्टि से हिंदी की एकाधिक साहित्यिक शैलियाँ प्रचलित हैं- उच्च हिंदी, उच्च उर्दू और हिंदुस्तानी। मौखिक और लिखित दोनों प्रकार के संप्रेषण में हिंदी भाषा संप्रेषण क्रिया का निर्धारण स्थिति, संदर्भ, विषय और संबंध के अनुसार करती है। इन अनेक भाषा रूपों में से किसी एक भाषा रूप (कोड) के चयन का अवसर वह अपने प्रयोक्ता को देती है। वास्तव में हिंदी भाषा विस्तृत सामाजिक समूह (भाषा समुदाय) की संपत्ति है। वह संप्रेषण का साधन भी है और खुद में संप्रेषण भी। सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से हिंदी भाषा ने अपनी संप्रेषणपरकता को अन्य स्तरों पर भी सिद्ध किया है। यह ध्यान देने की बात है कि आज हिंदी का जो रूप निखरा है और जो सर्वाधिक चलन में है, वह केवल संस्कृत के या अरबी-फारसी के शब्दों से नहीं निखरा है। अपने संप्रेषणपरक दायित्व को निभाने के लिए हिंदी ने अपनी तमाम बोलियों के शब्द अपने भीतर आत्मसात कर लिए हैं।

हिंदी भाषा में संप्रेष्य भाषा बनने की प्रबल इच्छा निहित है। संप्रेषण के लिए हिंदी अपनी रूपगत संरचना को विभिन्न प्रकार से परिवर्तित कर लेती है। इसमें एक स्थिति 'पिजिन हिंदी' की है जैसे हैदराबादी हिंदी, बंबइया हिंदी, बिहारी हिंदी आदि, जिनका स्वरूप निर्माण संप्रेषण की सिद्धि के लिए ही विभिन्न भाषा समुदाय के सदस्य मिलकर करते हैं। हैदराबादी हिंदी में तेलुगु और उर्दू (दखिनी) के भाषिक तत्व निहित होकर उस क्षेत्र में प्रयोग योग्य संप्रेषणीय हिंदी का ढाँचा तैयार करते हैं। यही स्थिति बंबइया हिंदी की है जहाँ मराठी और हिंदी के सामान्य भाषिक तत्वों को मिलाकर व्यापक संप्रेषण के लिए भाषा रूप निर्मित किया गया है। दूसरा उदाहरण भाषाद्वैत (डायग्लसिया) का लिया जा सकता है जिसमें एक ही भाषा के एकाधिक संप्रेषणपरक रूप एक ही भाषा समुदाय के बीच प्रचलित रहते हैं। इस दृष्टि से भारत में तमिल (चेंतमिल, पेच्चू तमिल) तेलुगु (ग्रांथिका तेलुगु, व्यावहारिका तेलुगु) तथा बंग्ला (साधु बंग्ला, चलित बंग्ला) का उदाहरण हमें मिलता है। भाषाद्वैत के धरातल पर हिंदी में तीन संप्रेषणपरक शैलियाँ प्रचलित हैं- उच्च हिंदी, उच्च उर्दू और हिंदुस्तानी। ये तीनों शैलियाँ वैसे तो साहित्यिक कही जाती हैं लेकिन मौखिक और प्रयोजमूलक संदर्भों में भी इन शैलियों का स्थिति और विषयवस्तु के अनुरूप हिंदी भाषा समुदाय का सदस्य चयन करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने को संप्रेषण की आवश्यकताओं से जोड़ने के लिए हिंदी भाषा के लगभग सभी भाषिक तत्वों के स्तर पर एक प्रकार का लचीलापन (फलेक्सिबिलिटी) पाया जाता है। यह लचीलापन ही हिंदी की संप्रेषणीय क्षमता की सबसे बड़ी ताकत है।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि कोई भी मानव भाषा तभी जीवंत बनी रह सकती है जब उसकी व्यावहारिकता की दिशाएँ विस्तीर्ण या खुली हुई हों। इस दृष्टि से हिंदी भाषा ने अपनी

संप्रेषणपरक क्षमता को बहुआयामी बनाने के लिए अपने सभी दरवाजे खुले रखे हैं। आधुनिक भाषाविद और हिंदी भाषा के अध्येता इस मत के समर्थक हैं कि भाषा की शुद्धता या मानकता की दुहाई देकर हिंदी भाषा के स्वाभाविक विकास को, कहा जाए कि उसकी लचीली प्रकृति या ग्रहणवादी प्रवृत्ति की अवहेलना नहीं की जा सकती। हिंदी जैसी उदार भाषा इसे कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। भाषा संपर्क एव भाषा विकास की स्वाभाविक परिणतियों के भीतर से ही हिंदी ने अपनी संप्रेषणपरक क्षमता का विस्तार किया है। इन परिणतियों के बिना हिंदी की व्यावहारिक परतों (संप्रेषणपरक भाषा रूपों) को नहीं टटोला जा सकता। भाषाविद अपने विश्लेषणों से यह पहचान चुके हैं कि हिंदी भाषा मात्र 'एक' व्याकरणिक व्यवस्था नहीं है, वह हिंदी भाषा समुदाय में 'व्यवस्थाओं की व्यवस्था' के रूप में प्रचलित और प्रयुक्त है।

हिंदी व्यवहार का प्रेरक संदर्भ: भाषाओं के गौरव और आत्मसम्मान को राष्ट्रीय चिंतकों और राष्ट्र नेताओं की प्रबल इच्छाशक्ति और प्रोत्साहन से सदैव बल मिलता रहा है। परतंत्र भारत का इतिहास इस बात का गवाह है। हिंदी भाषा के गौरव और राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी अनिवार्यता पर अनेकानेक राष्ट्र नेताओं, चिंतकों और साहित्यकारों के विचार हमें आज भी प्रेरित करते हैं। भारतेंदु ने स्वत्व निज भारत गहै कहकर हमारे आत्मबोध तथा आत्मसम्मान को जागृत कर दिया था। स्वाधीनता के भाव का बीज इस पंक्ति में गहरे धंसा हुआ है। निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल जैसी उनकी पंक्ति भी भारतीयों को स्वभाषा अभिमान से भर देती है। इसी तरह भारतीय भाषाओं की एकता में हिंदी की भूमिका पर जब नेताजी सुभाषचंद्र बोस यह कहते हैं कि 'प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी किसी दूसरी चीज से नहीं' तो ब्रिटिश शासन की भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे से अलग सिद्ध करने की कूटनीति तो उजागर होती ही है, इसे ध्वस्त करने में हिंदी भाषा की भूमिका (राष्ट्रभाषा की भूमिका) का भी निर्धारण हो जाता है। ऐसे अनेक प्रेरक उद्धरण यहाँ दिए जा सकते हैं। परंतु यहाँ हम अपनी बात माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी के उस हिंदी भाषण का प्रसंग लेकर करने जा रहे हैं जो उन्होंने 1977 में यू.एन.ओ. में दिया था। इसके बारे में उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था जो बाद में प्रकाशित भी हुई। कहना न होगा कि उनके इस हिंदी भाषण ने तब भारत के हिंदी प्रेमियों के हृदय में उत्साह का संचार कर दिया था। ऐसी घटनाएँ स्वभाषा गौरव को भी परोक्षत: प्रोत्साहित करती हैं। डायरी के एक छोटे-से अंश को यहाँ उद्घृत किया जा रहा है—

1977 में जब मैं पहली बार हिंदी में बोला तो मेरे हिंदी भाषण का स्वागत भी हुआ था और उसकी आलोचना भी। आलोचकों की दृष्टि से मैं 'हिंदी का दुराग्रही' था, जिसने हिंदी भाषी उत्तर को प्रसन्न करने के लिए संयुक्त राष्ट्र में बिलावजह हिंदी का राग छेड़ा था। कुछ लोगों ने उस समय यह भी आरोप लगाया था कि मेरे हिंदी भाषण पर देश की गाढ़ी कमाई का करोड़ों रुपया खर्च हुआ था। जबकि हिंदी भाषण पर एक धेला भी खर्च वहीं हुआ था...। जहाँ तक जनरल असेम्बली का सवाल

है: उस असेम्बली का जिसमें 151 देशों के रूप में, लगभग पूरा विश्व उपस्थित था, वहाँ केवल हिंदी ही गूंज रही थी। भारत की अपनी भी कोई भाषा है और भारत को उस भाषा का अभिमान भी है, इस अनुभूति ने उन सभी देशों को रोमांचित किया जान पड़ता है जो ऐतिहासिक कारणों से विदेशी भाषाओं को अपनी राजभाषाएँ बनाने के लिए विवश हुए हैं।

इस कथन के दूसरे अनुच्छेद के एक-एक वाक्य में हिंदी भाषा के प्रति आदरणीय वाजपेयी जी की उत्कट भावना घुली हुई है। इस भावना का विस्तार आज पूरे विश्व में दिखाई पड़ने लगा है। तब अटल जी के यू.एन.ओ. में दिए हिंदी भाषण को हम आश्चर्य भाव से और एक अनहोनी घटना की तरह देखते-सराहते थे। हमें अपार आनंद भी मिलता था। पर आज विश्व के प्रत्येक भाग में आयोजित सभा-सम्मेलनों में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी अपनी बात सदैव प्रभावशाली हिंदी में रखते हैं। हमें उनका हिंदी के प्रति यह लगाव और समर्पण सहज लगने लगा है जो हमारे हृदय को गर्व की भावना से भरता रहता है कि हमारे प्रधानमंत्री भारत की राष्ट्रभारती हिंदी का इतना सम्मान करते हैं और विश्व समुदाय से भारत की राष्ट्रभाषा / राजभाषा हिंदी की पहचान कराते हैं। विश्व के अनेक देशों में और अभी हाल ही में जी-20 समिट (15-16 नवंबर, 2022) में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का हिंदी में उद्‌बोधन सुनकर गणेश शंकर विद्‌यार्थी की यह आकांक्षा मन में मूर्त हो उठी थी कि- *एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, विश्व की पंचायत में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी*। महान आत्माओं की सदिच्छा कभी भी अपूर्ण नहीं रहती।

पिछले अनेक दशकों से विश्व पटल पर उपेक्षित हिंदी की तुलना आदरणीय मोदी जी की हिंदी प्रयोग की परिपाटी से करें तो हम पाएँगे कि यह सामान्य परिवर्तन नहीं है। महान और अत्यंत आवश्यक परिवर्तन है। यह भारत के शक्तिशाली होने और स्वावलंबी बनने के सम्मान का भी प्रतीक है जो इस बात की उद्‌घोषणा करता है कि 'स्वभाषा का व्यवहार हमारे आत्मसम्मान का सबसे बड़ा संबल है।' आदरणीय श्री नरेंद्र मोदी द्‌वारा पुष्ट की गई इस परिपाटी ने जनमानस में यह धारणा भी स्थापित की है कि प्रजातंत्र में प्रजा के साथ प्रजा की भाषा में बात करना निःसंदेह प्रजा के हित में होता है। आज भारत के अन्य प्रमुख नेतागण भी इस जनाकांक्षा को महत्व देने लगे हैं। वे अपने सभी कार्यों एवं वक्तव्यों के लिए- चाहे वे भारत में हों या भारत के बाहर, हिंदी और केवल हिंदी का प्रयोग अब कर रहे हैं। यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि माननीय प्रधानमंत्री जी के निरंतर हिंदी प्रयोग से जनसामान्य के ही नहीं, बल्कि सरकार की सोच और ढाँचे में भी सार्थक परिवर्तन आया है।

इस परिवर्तन का एक अन्य व्यावहारिक पहलू राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 में भी संकल्पित किया गया है। नई शिक्षा नीति में मातृभाषाओं को महत्व देने तथा बहुभाषिक भारत की मातृभाषाओं एवं मातृबोलियों को माध्यम की भाषा (शिक्षा की भाषा) बनाने के संकल्प के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा की भूमिका एवं प्रयोजन पर नए सिरे से विचार-विमर्श करने का उचित अवसर आज राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो गया है। आज का भारत एक महान राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से

गुजर रहा है। भारत के मातृभाषा-भाषी प्रयोक्ता समूहों में भी एक विशेष प्रकार का आत्मविश्वास जागृत हुआ है। ये समूह अब अनुभव करने लगे हैं कि उनकी मातृभाषाएँ ही उनकी असली शक्ति हैं, समूहगत 'पहचान' का आधार हैं। हिंदी भाषा, भारतीय भाषाओं के बीच और वैश्विक स्तर पर भी 'भारत की पहचान की भाषा' के रूप में स्वीकार्य रहती आई है। सामयिक संदर्भों में हिंदी भाषा की इन भूमिकाओं को अपार प्रतिष्ठा मिली है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस प्रतिष्ठा को अनुवाद, लोक संस्कृति, साहित्येतर भाषा रूपों तथा संप्रेषण माध्यमों के उभार के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है। मातृभाषा के अंतर्गत पहली बार इस नीति में जनजातीय भाषाओं एवं उनकी संस्कृतियों को सम्मिलित करने का निर्देश भी है। निश्चित ही मातृभाषा केंद्रित यह ढाँचा हिंदी भाषा को नए प्रयोग-संदर्भ प्रदान करेगा। सामान्य व्यवहार के धरातल पर हिंदी के सहज प्रयोग को भी भारत सरकार द्वारा भरपूर प्रोत्साहन मिल रहा है- आजादी का अमृत महोत्सव, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, इज्जत घर, अटल पेंशन योजना, आत्मनिर्भर भारत रोजगार योजना, उत्पादन लिंक्ड प्रोत्साहन योजना, पीएम मोदी हेल्थ आईडी कार्ड, प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना आदि उदाहरण देखे जाएँ तो इनमें कोडमिश्रित हिंदी की अभिव्यक्तियाँ प्रयोग में लाई गई हैं। वास्तव में हिंदी की जिस ग्रहणवादी शक्ति की हमने चर्चा की, उनका ये युक्तियाँ प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन मिली-जुली अभिव्यक्तियों के साथ ही संस्कृत शब्दों से निर्मित योजना के नामों की संख्या भी कम नहीं है जैसे आयुष्मान भारत (योजना), मत्स्य संपदा (योजना), अग्निपथ (योजना), मातृत्व वंदना (योजना), अन्त्योदय अन्न (योजना), स्वनिधि (योजना), स्वामित्व (योजना), उज्जवला (योजना) आदि। हिंदी भाषा के निर्माण में संस्कृत शब्दावली के महत्व तथा प्रचलन को ये प्रयोग स्थापित करने वाले हैं। इन दोनों प्रकार के प्रयोगों को स्थान-स्थान पर लिखा देखकर प्रत्येक हिंदी प्रेमी का हृदय गदगद हो जाता है।

उपसंहार: संक्षेप में कहा जाए तो हिंदी भाषा (वैसे तो अन्य भारतीय भाषाओं का भी) का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस आलेख में व्यक्त विचार यह तथ्य सामने ले आते हैं कि हिंदी भाषा एक ओर अपने प्रयोक्ता के व्यक्तित्व-विकास और उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम है, तो दूसरी ओर उसके समाजीकरण का सशक्त साधन भी है। एक ओर वह समाज में संप्रेषण-व्यवस्था का व्यापक उपकरण है, तो दूसरी ओर भाषा समुदाय के सदस्यों / सामाजिक वर्गों कों बाँधने का सशक्त माध्यम भी है। इतना ही नहीं, हिंदी भाषा राष्ट्रीय भावना की संवाहिका भी है। अपने मातृभाषी समूहों के लिए हिंदी भाषा विचार भी है, चिंतन भी, संस्कार भी और संस्कृति भी। हिंदी भाषा की संस्कृति में हिंदी क्षेत्र की लोक बोलियों तथा अन्य भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक तत्वों का भी बड़ा हिस्सा है। योगदान है।

आज स्वभाषा के प्रति हम विशेष रूप से जागरूक हो गए हैं। प्रत्येक भाषायी क्षेत्र अपनी भाषा और बोली के प्रति निरंतर सजग होता जा रहा है। जनसंचार माध्यमों तथा सोशल मीडिया के

विस्तार ने भारतीय भाषाओं को निकट लाने की गति को और भी तीव्र कर दिया है। तकनीकी सहयोग से 'अनुवाद क्रिया' में भी तेजी आ गई है। इन सभी व्यवहारों में हिंदी अपनी केंद्रीय भूमिका निभा रही है। अतः बदलते हुए परिवेश में एक बार पुनः यह आवश्यक हो गया है कि हम 'हिंदी भाषा' को नए अर्थ-संदर्भ देते हुए अर्थात 'हिंदी चिंतन' पर केंद्रित पाठों का पुनर्पाठ करते हुए विचार और विश्लेषण करने की ओर प्रेरित हों। अब हमें तुलनात्मक सहित्य की प्रविधियों को भी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यिक पाठों (अनूदित) की समीक्षा द्वारा प्रबलता देने की आवश्यकता है। इस ओर भी गहराई के साथ विमर्श जरूरी है कि भाषा व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्य के धरातल पर भारतीय भाषाएँ और भारतीय भाषा समाज किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हैं और जुड़कर किस प्रकार हमने 'राष्ट्रीय चेतना' की मजबूत नींव का निर्माण किया है। राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ को अब हमें हिंदी की स्थानीय बोलियों / घर की भाषा तथा आदिवासी भाषाओं तथा संस्कृतियों तक भी विस्तार देने की आवश्यकता होगी।

❑❑

हिंदी और हिंदी समाज

—पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

'हिंदी' शब्द से हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य और हिंदी भाषाभाषी लोगों की सस्कृति का द्योतन होता है और हिंदी समाज से हिंदी भाषा-भाषी जनसमुदाय का प्रकटन होता है। हिंदी समाज हिंदी का मातृभाषी समाज है, तो राज्यभाषा और राजभाषा के रूप में उसका व्यवहार करने वाला जनसमुदाय या नागरिक समाज भी है। यही नहीं, वह विश्व में हिंदी के फैलते हुए मातृभाषी, स्वदेशी और विदेशी समाज का भी द्योतक है। हिंदी समाज एक गतिशील समाज है, जिनमें उसकी संस्कृति की अक्षुण्णता, साहित्य की विभुता और हिंदी भाषा की स्वरूपगत विविधता देखने को मिलती है। वह हिंदी जो कभी मातृभाषा, संपर्क भाषा, बाजार भाषा, राष्ट्रभाषा और साहित्य-भाषा की भूमिका में थी, आज विश्व भाषा बन रही है।

हिंदी समाज ग्राम समाज और नगर समाज दोनों प्रकार का समाज है। वह कृषकों का समाज है, तो व्यापारियों का भी समाज है। वह सुपठित लोगों का समाज है, तो अपठित लोगों का भी समाज है। वह साक्षरों का समाज है, तो निरक्षरों का भी समाज है। वह साहित्य, मनोविज्ञान, दर्शन का चिंतक समाज भी है। वह खिलाड़ियों का समाज है तो सेना का भी समाज है। पर हिंदी समाज भारतीयता की चेतना से भरा हुआ समाज है। वह हिंदी मातृभाषियों का समाज है, तो हिंदीतर-भाषियों का भी समाज है।

प्राय: ऐसा मान लिया जाता है कि हिंदी समाज एक पिछड़ा हुआ समाज है। पर ऐसी बात है नहीं। हिंदी समाज आर्थिक दृष्टि से भले ही पिछड़ा हुआ हो, पर सांस्कृतिक दृष्टि से वह भारतीय चेतना और सांस्कृतिक गरिमा से भरा-पूरा, एक संपन्न समाज है। आनन्द कुमार स्वामी ने इस चेतनागत संपन्नता को ही महत्वपूर्ण माना है। इस हिंदी समाज में हिंदी बोलने वालों की विभिन्न शैलियाँ हैं। मातृभाषी ग्राम्य हिंदी में आंचलिक शब्दों की फेंट और मिलावट है, तो मातृभाषी नगर हिंदी में न केवल अंग्रेज़ी शब्दों की गलबाँही है, बल्कि वहाँ उसकी सहजोड़ी का बहनापा भी है। यह केवल शब्दों और पदों या मुहावरों की मिलावट तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यहाँ अंग्रेज़ी टोन और लहजे का सहज स्वीकरण-अनुकरण भी देखने को मिलता है। निश्चय ही अंग्रेज़ी की यह प्रभुता का परिणाम

और भूमंडलीकरण की भाषिक निगरणशीलता का प्रभाव है, जिससे हिंदी भाषा का मूल स्वरूप आज खतरे में पड़ गया है।

हिंदी साहित्य का हिंदी समाज केवल हिंदी-क्षेत्रीय नहीं है। हिंदी क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषी राज्यों से भी हिंदी के साहित्यकार उभरे हैं और उन्होंने साहित्य की दृष्टि से हिंदी समाज को विस्तृत किया है। क्या यशपाल, क्या उपेन्द्रनाथ अश्क, क्या सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यामल अज्ञेय, क्या कृष्णा सोबती, क्या गजानन माधव मुक्तिबोध, क्या चन्द्रकांत बांदिबड़ेकर, क्या पी. आदेश्वर राव हों क्या के.पी. प्रमील हों, क्या वनजा, क्या कुमार विकल, क्या सुरेश सेठ, क्या विनोद शाही, क्या नरेन्द्र मोहन, क्या बलदेव वंशी, क्या गंगा प्रसाद विमल, क्या इन्द्रनाथ मदान और क्या मनमोहन सहगल- इन सबने अपने कथा-साहित्य, काव्य-साहित्य, आलोचना-साहित्य, निबंध-साहित्य से हिंदी के समृद्ध लेखकीय समाज का निर्माण किया है। यही नहीं, देश के अतिरिक्त विदेशों में भी भारतीयों द्वारा प्रवासी साहित्य का लेखन किया गया है जिन्होंने भारत की जमीन छोड़ने के बाद भी भारतीय संस्कृति को नहीं भुलाया, और विदेश के रंग-रोगन, उसकी आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता से प्रभावित होने के बावजूद वहाँ बीत रहे अपने जीवन और वहाँ के लोगों के जीवन का संस्कृति की दृष्टि से भरपूर मानचित्रीकरण किया है, उसका खाका खींचा है और हिंदी को अपने दिल-दिमाग में बसाए रखा है। ऐसे रचनाकारों में अभिमन्यु अनत, सुषम बेदी, पुष्पा अवस्थी आदि प्रमुख हैं।

प्राय: अनेक विद्वान हिंदी समाज को हिंदी शब्दों के प्रयोग जिन-जिन भाषाओं में होते हैं या उनसे मिलते-जुलते शब्दों के प्रयोग होते हैं वहाँ तक हिंदी समाज को विस्तारित करते चले जाते हैं। पर यह उचित नहीं हैं। वस्तुत: इस देश में जितनी मातृभाषाएँ बोली जाती है और जितनी राज्यभाषाएँ हैं उन सबके भाषा-भाषी किसी-न-किसी रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। चाहें यह उनके द्वारा द्वितीय भाषा के रूप में आचरित हो अथवा संपर्क-भाषा के रूप में। इस रूप में हम भाषा की दृष्टि से उन सभी क्षेत्रों तक हिंदी समाज का विस्तार मान सकते हैं। पर हिंदी समाज को पहचानने और स्वीकारने का एक आधार उसकी संस्कृति भी है। इस संस्कृति में उसके रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, प्रकृति, पर्वत और नदियों के प्रति उसका सहजीवी पूज्य भाव भी है, जहाँ वह वृक्षों में आम, वट और पीपल को निरंतर अपनी संस्कृति में अपने जीवन से जोड़े हुए है। हिंदी संस्कृति पीपल के नीचे ब्रह्म स्थान बना लेती है। वहाँ मिट्टी के छोटे टीले के आकार के ब्रह्मदेव को पूजती है। उस वृक्ष की छाया में यज्ञ संपन्न किए जाते हैं। सुहागिन नारियाँ वटवृक्ष की पूजा ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या को करती हैं, जिसे वट-सावित्री वृक्ष कहते हैं। यह संस्कृति आम के पल्लव का वंदनवार बनाती है। पूजा-पाठ, यज्ञ-जाप में, कलश में आम का पल्लव रखती है। आम की टहनी को दातुन बनाकर मुँह धोती हैं। पर्वतों पर शिवलिंग स्थापित करती और माता का गहवर तक बना देती है। नदियों में गंगा का पूजन करती है, उसकी आरती करती है। सरोवरों में प्रवेश कर सूर्य की पूजा करती है। चन्द्रमा को भी पूजती है।

हिंदी संस्कृति में पलने-बढ़ने वाले, जन्में और पले लोगों की एक बड़ी संख्या उन गरीब श्रमिकों की है, जो अपने हिंदी मातृभाषी राज्यों को छोड़कर हिंदीतर मातृभाषी राज्यों- महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, बंगाल, असाम आदि- में आजीविका पाने और मजदूरी करने के लिए निकल जाते हैं। कहना न होगा कि यह तबका गरीब तबका होता है। यह जिन-जिन राज्यों में जाता है वहाँ हिंदी और हिंदी संस्कृति इनके आर्थिक अभावात्मक जीवन से प्रभावित होती है। वहाँ हिंदी को गरीबों और मजदूरों की भाषा माना जाता है। देखने योग्य तथ्य यह है कि जहाँ ये अपने हिंदीभाषी राज्यों में अपने नाम से पुकारे जाते हैं, जहाँ इनकी पहचान इनकी निजता-अस्मिता और व्यक्तिपरकता में होती है, वहाँ ये हिंदीतर-भाषी राज्यों में जाकर एक सामूहिक नाम प्राप्त कर लेते हैं और ये 'भइये' / 'भैये' कहलाने लग जाते हैं। कहना न होगा कि यह वर्ग हिंदी समाज का ही हिस्सा है- हिंदी भाषा और हिंदी संस्कृति दोनों ही दृष्टियों से। इसलिए हिंदी समाज पर विचार करने के क्रम में इस तथ्य को भी ध्यान में रखना होगा, जो हिंदी समाज के न केवल एक महत्वपूर्ण भाग की रचना करते हैं, बल्कि आजीवन उसका अभिन्न और जीवंत अंग बने रहते हैं। हिंदी राज्यों के राजनेताओं को वहाँ के अमीरों और बौद्धिकों को इनके विषय में नोटिस लेने और इनकी दयनीय स्थिति से इन्हें मुक्त करने और कराने की अपेक्षा है। इस ओर प्रायः अबतक ध्यान नहीं दिया जा सका है।

आज हिंदी संस्कृति के लोग अपनी गतिशील परंपरित संस्कृति की उपेक्षा करने लगे हैं, जिसमें प्रायः अपनापन, भाईचारा, पारस्परिक प्रेम, उदारता, करुणा, दयामयता और मानवीयता का स्थान रहा है। वह संस्कृति आज उपेक्षित हो रही है और पश्चिमी सभ्यता के मोहपाश में हमारी हिंदी संस्कृति जकड़ी जा चुकी है। परंपरित संस्कृति एकतापरक रही है, जबकि आज की संस्कृति स्वार्थपरक और अर्थपरक हो उठी है। अब वह पहले जैसी त्यागपरक नहीं है, अपरिग्रही नहीं है। आज स्वार्थ और परिग्रह उसके केंद्र में है। चाहे धार्मिकता या नैतिकता का प्रश्न हो, चाहे मूल्यों का मानदंड हो, हिंदी संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है, जिससे परंपरित हिंदी संस्कृति का आमूल-चूल विनाश हो सकता है। यह गंभीर रूप में एक चिंतनीय स्थिति है। इस ओर हिंदी समाज पर चिंतन और विमर्श करने वाले बुद्धिजीवियों को सोचने और अपनी संस्कृति को मूल रूप में यथासंभव बचाने की अपेक्षा है। मैं जिस खतरे की बात कर रहा हूँ, वह खतरा पूरी भारतीय संस्कृति को भी अपने शिकंजे में कसते जाने वाला खतरा है।

ऐसा नहीं है कि भाषा का धर्म से कोई नाता नहीं होता या कि संस्कृति से भी कोई नातेदारी नहीं होती। हर भाषा के मूल में भी कोई-न-कोई धर्म और कोई-न-कोई संस्कृति अवश्य होती है। कभी हिंदी समाज धर्म-भीरु समाज था। पर आज हिंदी समाज अपने धर्म की उपेक्षा करने वाला समाज बन गया है। शायद ही कोई अन्य भाषा-भाषी अपनी भाषा के द्वारा संवहित होने वाले धर्म की इतनी उपेक्षा करने वाला हो। हिंदी समाज को धर्म के प्रति अनुन्मुखता और नैतिक मूल्यों के प्रति विमुखता दिखाने में आधुनिकता की आकर्षणमयी अग्रगामिता प्राप्त होती है। धर्म, दर्शन इतिहास, समाज,

साहित्य सभी भाषाओं में व्यक्त होते हैं। हिंदी एक विशेष धर्म- सनातन धर्म या हिंदू धर्म की भाषा रही है। पर इसके साथ ही वह अन्य अनेक धर्मों को भी वाणी देने वाली है। इन धर्मों में बुद्ध धर्म, जैन धर्म सिक्ख धर्म आर्य समाज पंथ का अतिशय महत्व है। ये हिंदी समाज की रचना-संरचना में सभी अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

हिंदी संस्कृति के अनुरूप ही हिंदी साहित्य में ऐसी द्विविभाजकता देखी जाती है। एक ओर आदर्श आकल्पित मानवीय मूल्यों को दृष्टि में रखकर लिखा गया साहित्य है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति से विमुग्ध बने कवियों, लेखकों और नाटककारों का वह साहित्य भी है जिसमें केवल आज का क्रियात्मक मूल्य मात्र सक्रिय है। जहाँ हम नैतिक दृष्टि से विपथित हैं, जहाँ स्वच्छंद यौन संबंधों के बृहद्काय वृत्तांत रचे गए हैं, जहाँ स्वार्थपरक राजनीति और शक्ति को अधिकृत करने के लिए समाज का तनावपूर्ण संघर्ष निरूपित हुआ है। जहाँ एक हिंदी संस्कृति के अंतर्गत रहने वाली अनेक उपसंस्कृतियाँ उभर कर सामने आई हैं और साहित्य में उनका बोलवाला हुआ है। आज हिंदी साहित्य, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श और आदिवासी-विमर्श से भरा पड़ा है। विमर्श किसी भी प्रकार के हों वे साहित्य में निरूपित हो सकते हैं। पर क्या हिंदी साहित्य आज केवल कालांकित (Dated) होकर रह गया है और साहित्य के ऐसे तथाकथित विकासात्मक लेखन से विमुख है, जो साहित्य को कालजयी (Beyond Time) बना पाता है? अबतक हिंदी साहित्य का महत्व उसमें लिखी गई कालजयी कृतियों के कारण रहा है। पर क्या मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता तथा अन्य ऐसी लेखिकाओं द्वारा रचित हिंदी साहित्य इस श्रेणीमान पर अब तक खरा उतर पाया है? कहना न होगा कि हिंदी और हिंदी समाज पर सोचते हुए, विमर्श करते हुए हमें हिंदी और हिंदी भाषा, हिंदी और हिंदी संस्कृति तथा हिंदी और हिंदी साहित्य की पारस्परिक मीमांसा करने की भी आवश्यकता है। उसकी बुराई और अच्छाई को समझने की, उसके अभाव और भाव को परखने की तथा उसको एक साकल्यपूर्ण पूर्णता देने की अपेक्षा है, जिससे हिंदी और हिंदी समाज एक महत्वपूर्ण वृत्तांती संस्था के रूप में अपने को स्थापित कर सके।

हिंदी समाज एक बिखरा हुआ समाज है। यह जातियों में ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ, बनिया, पिछड़ा वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा दलित वर्ग में बँटा हुआ समाज है। बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल और उत्तरांचल- ये हिंदी समाज के राज्य हैं। पर इनमें कहीं कोई ऐसा एकात्म बोध नहीं है, जैसा बंगालियों को अपने बंगालीपन का, मराठों को अपने मराठापन का, गुजरातियों को अपने गुजरातीपन का और पंजाबियों को अपने पंजाबीपन का होता है। तब भला वह कैसे बोधात्मक एकता का समाज हो सकता है? रामविलास शर्मा ने शायद इसीलिए 'हिंदी जातीयता' जैसे पद की रचना स्थापना की थी, जिसके अंतर्गत भेदभाव वाली अनेक विभाजनपरक जातियों का भेदभाव मिट सके। पर ऐसा अबतक संभव नहीं हो पाया। हम हिंदीभाषी है, हम हिंदी संस्कृति के संवाहक हैं या हम हिंदी साहित्य के रचयिता या पाठक हैं, पर हम

में ऐसा एकात्मबोध हिंदी समाज में उभर नहीं सका है। रामविलास जी के द्वारा 'हिंदी जातीयता' की यह प्रस्तावना भी कई रूपों में सामने आती है। इसका पहला रूप तो ऊपर निर्दिष्ट अनेक राज्यों से प्रतिस्पद्र्धा का है। अन्य राज्यों के अन्य भाषा-भाषियों की अपनी-अपनी भाषिक एकता की तुलना में अनेक राज्यों में बिखरे हिंदी भाषा-भाषी के बीच भाषिक जातीयता का एकात्मबोध पैदा करना है, जिसका स्वाभिमान उन्हें हो सके। दूसरी वह चेतना है, जिसमें कोई स्पद्र्धा तो नहीं है, पर जिसमें हिंदी भाषा-भाषी होने की एक अटूट सांस्कृतिक एकता अनेक राज्यों के हिंदी भाषा-भाषियों के बीच मूल रूप में सेतुबंध बनकर उपस्थित होती है और यहाँ जातिगत विभाजनपरकता अवांछनीय, निंदनीय और परित्याज्य हो जाती है तथा यह एकात्मबोध स्वीकार्य होने लगता है कि हम अपने भाषिक एकात्मबोध से भरे हैं और हमारी एक ही हिंदी जाति है। हिंदी और हिंदी समाज पर विमर्श करते हुए हमें इस पर भी गंभीर रूप से सोचने की अपेक्षा है।

जहाँ तक हिंदी संस्कृति का प्रश्न है, आज हिंदी समाज दो-फाँक हो रहा है। एक ओर वह हिंदी-भाषी समाज है जिसने हिंदी के माध्यम से आई भारतीय संस्कृति को अपने भीतर बसाए रखा है और अपने मन, वचन और कर्म में वे आज भी इसका निर्वाह कर पा रहे हैं। दूसरी ओर वह हिंदी-भाषी समाज है, जिसने हिंदी के माध्यम से आई भारतीय संस्कृति को या तो परित्याग दिया है और उसका त्याग करते जा रहे हैं और पाश्चात्य सभ्यता के आकर्षण और व्यामोह में फँसते चले जा रहे हैं। कहना न होगा कि हिंदी समाज के लिए यह भी चिंता का विषय है। आज से पंद्रह वर्ष पूर्व अशोक वाजपेयी ने महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का कुलपति रहते हुए 2004 में उसके लखनऊ स्थित भाषा केंद्र में हिंदी भाषा साहित्य और उसकी संस्कृति पर एक संगोष्ठी आयोजित की थी। इसमें उन्होंने हिंदी संस्कृति का प्रश्न उठाया था। हिंदी संस्कृति केवल परिग्रह की संस्कृति नहीं रही है। वह अपनी परंपरा में अपरिग्रही संस्कृति रही है। वह स्वार्थ केंद्रित संस्कृति नहीं रही है, वह विश्व बंधुत्व की संस्कृति रही है। मनुष्य और मनुष्य के बीच एकात्मता और अद्वय संबंध की संस्कृति रही है। पर आज हिंदीभाषी समाज पश्चिम की परिग्रही और स्वार्थ केंद्रितता के माया-जाल में फँस चुका है, जिससे उसे मुक्त होने की आवश्यकता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने समाज-राजनीतिक दृष्टि से जो 'हिंदी जाति' का प्रश्न उठाया है, वह मूलत: राज्य और प्रांत की सीमा को तोड़कर हिंदी भाषा-भाषी समाज के एकात्म बोध की जातीयता का प्रश्न है। वह तो हम हिंदी भाषियों को बंगालीपन, पंजाबीपन, मराठीपन, गर्व के गुजरातीपन के समांतर भाव से खड़ा करता है। पर मैं जिस हिंदी की सांस्कृतिक जातीयता की बात कर रहा हूँ, उसमें गर्व मात्र नहीं, प्रसरणशीलता का भाव भरा है। यह जातीय भावना हिंदी की संस्कृति का संवहन करती है। हिंदी को संपर्क-भाषा बनाकर जीने वाले संतों, साहित्यकारों और समाजसेवियों की यही संस्कृति रही है और वह केवल हिंदी भाषा-भाषी जातीयता और क्षेत्रीयता तक सीमित नहीं है, अपितु इसका बोधात्मक फैलाव मानवीय चेतना तक है। इस रूप में हमें हिंदी संस्कृति पर फिर से विचार करने और उसके आकल्पित (Conceived) मूल्यमान को अपने जीवन में उतारने की अपेक्षा है, उन सबको ही, जो हिंदी भाषा और साहित्य के कर्मशील दायित्व से कहीं-न-कहीं जुड़े हुए हैं।

आज हम सभी लोग, जो यहाँ उपस्थित हैं और जो हिंदी का अनेक रूपों में व्यवहार करते हैं, वे इस तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि हिंदी कोई एकायामी भाषा नहीं है। मुझे स्मरण आता है कि प्रसिद्ध अस्तित्ववादी और परिघटनावादी चिंतक मार्टिन हाइडेगर (Martin Heideger) ने भाषा को हमारी भविता (Beingness) का घर माना है। हम जिस घर में रहते है, जो इसके शब्दों के माध्यम से सोचते और रचते हैं, वे इस घर के अभिभावक है- "Language is the house of Being. In its house man dwells. Those who think and those who create with words, are the guardians of this house" उनका अभिभावकत्व ही जहाँ हमारी भविता को प्रकट करता है, उसे मूर्त रूप देता है, वही हमारे होने की हमारी 'हौंद' या अस्मिता को बहुदिशीय बहुआयामी बनाता है।

हिंदी कभी भी एकायामी भाषा नहीं रही है। हमारी समकालीनता में इसने अपने को अनेक रूपों में बहुआयामी बनाने का प्रयत्न किया है, जिसमें इसे सफलता प्राप्त हुई है। हिंदी आरंभ से ही संप्रेषण के साथ-साथ साहित्य- सर्जना की भाषा भी रही है और इसके अतिरिक्त वह इस देश के व्यापक भू-भाग के भाषा-भाषियों के बीच परस्पर सम्पर्क के लिए व्यवहार में आने वाली भाषा के रूप में भी निरंतर सक्रिय रही है। इस दृष्टि से हिंदी भारत की लिंग्वा-फ्रांका (Lingua Franca) रही है। भाषा के रूप में हिंदी की बहुआयामी संकल्पना एक अनेकार्थी संकल्पना है। भाषाविदों ने भाषा के विषय में तीन दृष्टिकोणों की बात की है। इसमें पहली दृष्टि भाषा के एकात्मक (Mono Lectal) होने की है। इस दृष्टि के अनुरूप भाषा का मूलाधार व्याकरण होता है। हमारी आज की मानक हिंदी, जो खड़ी बोली जैसी विभाषा का विकसित रूप है, उसके मूलाधार को व्याकरण से रेखांकित किया जाता है। इस भाषिक दृष्टि के प्रस्तावक-संपोषक नोअम् चॉम्स्की हैं, जिनकी यह मान्यता है कि भाषा व्याकरण के गर्भ से उद्भूत होती है। इससे प्रजनित भाषा की प्रवृत्ति प्रायः समरूपी (Homogenious) होती है। यह दृष्टि हिंदी को जहाँ एक अभियन्त्रीकृत भाषा सिद्ध करती है, वहीं एक बाह्य प्रतिफलित भाषा के रूप में भी स्वरूपित करती है।

भाषा की दूसरी दृष्टि अनेकात्मक (Polylectal) होती हैं। यद्यपि इसकी मूल धुरी तो व्याकरण ही है, पर इसमें एक से अधिक शैलियाँ समाहित होती है। इसके मूल में भाषा का संज्ञान महत्वपूर्ण न होकर भाषा का व्यवहार महत्वपूर्ण रूप में सक्रिय होता है। अतः यहाँ भाषा की प्रकृति विषम (Hetrogenius)- रूप हो जाती है। प्रयोजनपरकता और संदर्भगतता इसके मूल में होती है। हिंदी की प्रयोजन- सिद्ध शैलियाँ भी यहाँ सक्रिय मिलती हैं- (1) उच्च हिंदी (2) मानक हिंदी और (3) साहित्यिक हिंदी हॉगन जैसे भाषाविद् इस दृष्टि के समर्थक हैं। यह भाषा को संस्था मानती है। यह भाषा के प्रयोक्ताओं को एक भाषा-भाषी समुदाय में बाँटती है। इससे हिंदी-भाषी समाज की बात उभरती हैं। इसकी व्यवहार-सीमा में सभी जनपदीय बोलियाँ आ जाती हैं। पर इसका भाषा-भाषी समुदाय एकभाषी होता है और बहुभाषी भी। इसे याद रखने की अपेक्षा है।

भाषाविदों ने जहाँ भाषा के बतौर हिंदी को सामाजिक संस्था माना है, वहीं इसे संस्कृति के बतौर सामाजिक प्रतीक कहा है तथा साहित्य के बतौर जातीय परंपरा के रूप में देखा है। इस तरह हम पाते हैं कि संकल्पना की दृष्टि से भी हिंदी एक बहुआयामी भाषा है। हिंदी हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई के दिनों में हमारी राष्ट्रभाषा बनी। केशवचन्द्र सेन ने 1875 में हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा कहा। इससे भी दो वर्ष पूर्व भारतेन्दु ने 'कालचक्र' में लिखा था कि 'हिंदी नई चाल में ढली'। स्वयं 'हिंद स्वराज' नामक अपनी पुस्तिका में 1909 में महात्मा गाँधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा निर्दिष्ट किया था। राष्ट्रभाषा की यह विशेषता होती है कि यह जहाँ जातीय प्रामाणिकता की भाषा होती है, वहीं सामाजिक अस्मिता की भी भाषा होती है। यही नहीं, उसका आधार राष्ट्रीयता होती है तथा वह सांस्कृतिक दृष्टि से एकबद्धता की भाषा होती है। राष्ट्रभाषा अपने देश की ही भाषा होती है। हिंदी इन सारी विशेषताओं के कारण हमारी राष्ट्रभाषा बनी। पर आज यही हिंदी हमारी राजभाषा है। संविधान-स्वीकृत राजभाषा। यहाँ यह आर्थिक विकास और प्रशासनिक प्रयोजनों की वह भाषा है, जो राजनीतिक दृष्टि से देश को बाँधती है। इसका आधार भी राष्ट्रीयता है। पर यह अपेक्षित नहीं होता कि राजभाषा अपने देश की ही भाषा हो। इसलिए जहाँ हिंदी हमारी राजभाषा बनी, वहीं उसके साथ-साथ अंग्रेज़ी को भी राजभाषा के पद पर भगिनी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

हिंदी एक संपर्क-भाषा भी है। संपर्क का यह कार्य वह एक ओर जनपदीय विभाषाओं के बीच, उस पूरे क्षेत्र के बीच आचरित-संपादित करती है, तो दूसरी ओर विभिन्न राज्यों की अपनी-अपनी भाषाओं के बीच भी संपर्क-भाषा का दायित्व निभाती है। अपनी इस भूमिका में हिंदी मध्यकाल से ही सक्रिय रही है। यहाँ यह 'बाजा-ए-हिंदुस्तानी' (Great Communication Language) के रूप में सक्रिय हुई थी। हिंदी केवल हिंदी भाषा-भाषी जनता की मातृभाषा नहीं है, बल्कि भारत में द्वितीय भाषा के रूप भी बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली और व्यवहृत होने वाली भाषा है। यह और बात है कि इसके मातृभाषी भारत की किसी दूसरी भाषा को सीखने की ओर प्रवृत्त नहीं होते।

हिंदी की बहुआयामी भूमिका में एक आयाम उसका विश्वभाषिक आयाम भी है। 1975 में नागपुर में संपन्न हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी को विश्व-भाषा की संज्ञा दी गई थी। कोई भी भाषा जब प्रभुता-संपन्नता की भाषा होती है, चाहे वह राजनीतिक दृष्टि से हो या सामाजिक दृष्टि से; ज्ञान-समृद्धि की दृष्टि से हो या आर्थिक-व्यावसायिक दृष्टि से, तभी वह विश्वभाषा के रूप में समादृत हो पाती है। हिंदी को इस दिशा में अग्रोन्मुख करने के लिए उसे हमें ज्ञान-समृद्ध रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

भाषा की बहुआयामिता का एक आयाम प्रकार्यपरकता का आयाम है। भाषा के अनेक प्रकार्य होते हैं। भाषा का एक प्रकार्य अभिधेयात्मक या सूचना देने वाला होता है। दूसरा प्रकार्य इच्छावृत्तिक या क्रियात्मक होता है, जिसमें आदेश, अनुरोध आते हैं। तीसरा प्रकार्य संपर्क द्योतक होता है। इसमें संवाद के बीच संपर्क बनाए रखने वाली अभिवादन वाली, हाँ, जी हाँ वाली भाषा होती है।

चौथा प्रकार्य अभिव्यंजनात्मक होता है। इसमें विस्मयादिवाची ओह, आह, अहा, ओफ़, उफ़ जैसे शब्द आते हैं। पाँचवा प्रकार्य अधिभाषात्मक होता है। इसमें भाषा के बारे में ही अभिव्यंजन-संप्रेषण होता है। यहाँ व्याकरण, भाषा, भाषाविज्ञान आदि आते हैं। इसमें भाषा में भाषा का विवेच्य या प्रतिपाद्य भाषा ही होती है और कुछ नहीं। हिंदी इस दृष्टि से भी संपन्न भाषा है। उसमें भाषा पर विचार करने के लिए भाषा-विषयक काफी सामग्री है।

पर यहाँ मैं एक और भाषिक प्रकार्य की बात करूँगा। वह है भाषा का संज्ञानात्मक प्रकार्य (Cognitive Function of Language) इसपर विचार हो तो हिंदी इस दृष्टि की भी एक संपन्न भाषा है। हिंदी का अभिधेयात्मक-सूचनात्मक प्रकार्य, जहाँ केवल दैनिक जीवन में सीमित है, वहाँ संज्ञानात्मक प्रकार्य से ऐसे अनेक आयाम विकसित हो पाते हैं- सांस्कृतिक-धार्मिक आयाम, व्यावसायिक-बैंक, व्यापार, शेयर बाजार- कृषि परक आदि। इसी से अदालती, कानूनी आयाम भी विकसित हुआ। इसी से वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय आयाम भी निकला है। यहाँ भी भाषा के एक संकेतक का एक ही सनिर्धारित संकेतित-मात्र होता है, जिसका व्यवहार हम पारिभाषिक के बतौर करते हैं। इसी का एक और आयाम मनोरंजनपरक आयाम है। इसकी दो दिशाएँ सामने आती हैं- फिल्म, टी.वी., धारावाहिक आदि का मनोरंजनपरक आयाम तथा खेल से जुड़ी सूचनाओं का मनोरंजनपरक आयाम। इसी का एक और आयाम मुद्रित समाचार पत्रों, विज्ञापनों, निविदाओं, निर्देशों आदि का आयाम बनकर सामने आता है। पर स्थूल तौर पर इसे अभिधेयात्मक प्रकार्य में समाविष्ट कर लिया जाता है। इसमें अनेक ज्ञानानुशासनों के आग्रहण और अभिव्यंजन की क्षमता और संभाव्यता होती है। धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, तकनोलॉजी के आग्रहण और अभिव्यंजन की क्षमता होती है।

भाषा का एक अन्य प्रकार्य काव्यात्मक या सौंदर्यात्मक प्रकार्य होता है। याकोब्सन जिसे काव्यात्मक प्रकार्य कहते हैं, मुकारोस्की ने उसे ही सौंदर्यात्मक प्रकार्य कहा है। वह साहित्य की सर्जनात्मक भाषा का प्रकार्य है। हिंदी में एक हजार वर्षों की इसकी परंपरा है। भाषा-चिंतन के क्षेत्र के दो प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों की अलग-अलग मान्यताएँ इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं- नोअम चॉम्स्की जहाँ यह मानता है कि सामान्य बोलचाल की भाषा से अंतरण और विचलन करने के कारण सर्जनात्मक भाषा आविर्भूत होती है, वहाँ जॉक देरिदा की यह मान्यता है कि आरंभ में भाषा की प्रकृति बिंबातमक, प्रतीकात्मक तथा काव्यात्मक ही रही होगी, जिससे अंतरण और विचलन कर हमने अपनी-अपनी गद्य-भाषा का निर्माण किया है। शब्द को अपनी जरूरत के अनुरूप एक ही विशेष अर्थ में प्रयुक्त करने के लिए निर्धारित किया होगा। हिंदी इन सभी प्रकार्यपरकता की दृष्टि से एक समृद्ध बहुआयामी भाषा सिद्ध होती है। आज हम जिस प्रयोजनमूलक हिंदी का विकास कर रहे हैं, वह कार्यालय के टिप्पण, प्रारूपण, ज्ञापन, आदेश, निदेश आदि की भाषा के रूप में जो भाषा का विकास कर रहे हैं, वह अभिधेयात्मक-सूचनात्मक और संज्ञानात्मक प्रकार्य के तहत ही संपन्न हुई है। आज हम जो विभिन्न प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण कर रहे हैं, वह उसी संज्ञानात्मक प्रकार्य के

आधार पर। हम प्रयोजनमूलक भाषा के अंतर्गत जितना कार्य संपन्न करवा रहे हैं, वह भी भाषा की प्रकार्यपरकता के आधार पर ही।

हिंदी की एक विशेषता उसके भाषायी शब्दकोश की बहुआयामिता है। उसके शब्दकोश में जहाँ हिंदी के बहुविभाषीय प्रचलित शब्द ग्रहण किए गए हैं, वहीं उसमें बह शैलीपरक, हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के भी शब्द हैं, और वहीं हिंदी और अंग्रेज़ी जैसी द्विभाषिकता के भी शब्द हैं। अंग्रेज़ी के माध्यम से हिंदी के शब्दकोश में ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि भाषाओं के शब्द भी हिंदी में आए हैं, तो इस्लामी शासन काल में अरबी, तुर्की और फारसी के शब्द भी गृहीत हुए हैं। यही नहीं, पुर्तगाली और डच भाषा के शब्द भी हिंदी भाषा में बहुतायत में समाविष्ट हुए हैं। हिंदी शब्दावली की यह बहुआयामिता राजनीतिक-सामाजिक और सांस्कृतिक-सामाजिक स्थितियों के मेल के कारण है। इस तरह हिंदी के भाषायी शब्दकोश में भाषायी बहुआयामिता के दर्शन होते हैं। यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि से इसे देखे, तो इसमें जो आयाम-त्रिक मिलता है वह भाषायी परिसर, भाषायी सीमांकन और संप्रेषण तक है। भाषायी परिसर भाषायी कूट (Code) उसकी प्रकृति और उसके विन्यास को लेकर सामने आता है। भाषायी सीमांकन में यह द्रष्टव्य होता है कि घटक के बतौर भाषायी कूट एक-दूसरे से कितने संबंद्ध या पृथक् हैं। यहाँ कूट या कोड-परिवर्तन की स्थिति है या कोड-मिश्रण की। इसी तरह संप्रेषण के स्तर पर यह द्रष्टव्य होता है कि सामाजिक और आर्थिक स्तरों में किस पर कौन-सा कोड कैसे सक्रिय होता है।

हिंदी की बहुआयामिता माध्यम की बहुआयामिता भी है। यह वाचिक भाषा है, तो लिखित भाषा भी, मुद्रण आदि की मशीनी भाषा है, तो संगणक की वेबसाइट और तंत्रजाल वाली भाषा भी है। यही नहीं, यह प्रौद्योगिकीय भाषा, इलेक्ट्रोनिक की भाषा के रूप में सक्रिय है, जहाँ यह मोबाइल आदि जैसे उपकरणों की सांप्रेषणिक भाषा है। यदि हिंदी के इतिहास को देखने की कोशिश करें, तो उसमें 'बाजार हिंदुस्तानी' की जो क्षमता दिखाई पड़ती है, वह आज की नहीं आज से सैकड़ों वर्ष पुरानी हैं। वस्तुत: यह ग्रियर्सन ही था, जिसने हिंदी को The Great Communication Language कहा था। यह वह समय था, जब हिंदी, हिंदवी, हिंदुई और हिंदुस्तानी- ये सभी परस्पर पर्याय रूप में व्यवहृत हो रहे थे।

भारत के नेशनल आर्काइव नई दिल्ली में ईस्ट इंडिया कंपनी को विभिन्न राज्यों से हिंदी की नागरी लिपि में लिखे गए ऐसे 160 हिंदी पत्र सुरक्षित हैं, जिनके लेखक भारतीय राजे और जमींदार थे। इसमें 140 पत्रों का प्रकाशन डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के द्वारा 1959 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से हो चुका है। इसमें 18वीं शती के उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शती के प्रथम चरण की हिंदी का स्वरूप दीख पड़ता है, जो आज से दो सौ वर्ष पुराना है। इसका लेखनकाल 1798 से 1820 ई. तक का है। ये पत्र जिन तत्कालीन राज्यों से लिखे गए थे, वे राज्य बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात और नेपाल के हैं। इन पत्रों से यह पता चलता है कि आज से पहले भी

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में पत्र-व्यवहार की प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिंदी का व्यवहार होता था, इससे हिंदी की व्यापकता, अंतरप्रान्तीयता और अन्तरराष्ट्रीयता का पता चलता है।

यदि हम इन पत्रों की विषयवस्तु को वर्गीकृत-विश्लेषित करें, तो इसकी बहुआयामिता स्वत: स्पष्ट हो जाती है। इसके प्रतिपाद्य का एक आयाम यदि अदालती है, तो दूसरा प्रशासनिक, एक आयाम यदि आजीविकापरक-व्यावसायिक है, तो दूसरा क्षेत्रीय (Field based), एक आयाम यदि सांस्कृतिक है, तो दूसरा धार्मिक। अदालती आयाम में जहाँ दीवानी और फौजदारी मामलों के सिलसिले में, पत्र-लेखन हुआ है, वहीं अदालती बयान भी उसमें दर्ज हुए हैं। प्रशासनिक आयाम, में सरकारी घोषणाएँ हैं, सनद और सरकारी परवाने हैं। यही नहीं, कंपनी और देशी राजाओं के बीच के इकरारनामे और शर्तनामें भी यहाँ मिलते हैं। आजीविकापरक-व्यावसायिक आयाम में किसान, बढ़ई, माँझी, दरोगा, नर्तकी आदि की आजीविका की शब्दावली और बयान हैं। क्षेत्रीय आयाम में शासन व्यवसाय, सुरक्षा, सैन्य-शक्ति आदि का हिंदी में विवेचन हैं। सांस्कृतिक आयाम को दर्शाने वाले पत्र का संबंध उच्च, मध्य और सामान्य जन के वर्गों से हैं। ये पत्र शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग के लोगों द्वारा लिखित हैं। धार्मिक आयाम की दृष्टि से ये पत्र न केवल हिंदू और मुसलमान के द्वारा लिखे गए हैं, बल्कि महाप्रभु प्राणनाथ का धार्मिक काव्य भी इसी हिंदी में लिखा गया है। कहना न होगा कि ईस्ट इंडिया कंपनी के जमाने की प्रयोजनपरकता की यह बहुआयमिता कितनी महत्वपूर्ण है।

आज हम अपनी राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा के लिए हिंदी नाम का जो प्रयोग कर रहे हैं, वह नाम कैप्टन प्राइस का दिया हुआ है। उसने 1824 में 'हिंदुस्तानी' नाम को पृष्ठभूमि में डालकर 'हिंदी' अभिधान (नाम) को चालू किया था। आज भूमंडलीकरण का बोलबाला है। सामाजिक घटनाएँ एक जगह से दूसरी जगह सर्वाधिक मूर्त स्तर पर संप्रेषित और प्रतिफलित हो रही हैं। उसी तरह सामाजिक प्रक्रिया और सामाजिक संरचना अंतरराष्ट्रीय बनती जा रही हैं। इन सामाजिक घटनाओं के क्षण-विशेष तक में विमर्श संघटित हो रहा है। टी.वी. और इनटरनेट आज के बहुप्रतिमानीय यथार्थ पाठ (Text) बन चुके हैं। हमारे सामाजिक जीवन की सारी गतिविधियाँ भूमंडलीकरण से परिचालित और प्रभावित हैं। भाषा भी एक इसी प्रकार का तत्व है, जो इससे अछूता नहीं है। कभी फ्रांस के राज्य प्रमुख चिराक ने यह कहा था कि इनटरनेट हमारी भाषाओं के लिए जितना बड़ा खतरा है, उसके आगे एड्स का खतरा भी कुछ नहीं है। वहीं दूसरी ओर प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी डेविड क्रिस्टल का यह कहना है कि English is a form of Globalized language इंग्लैंड और अमेरिका अंग्रेज़ी के माध्यम से नए विचार को निर्गत नहीं करते, वह नई भाषा का भी निर्यात करते हैं। कहना न होगा कि हिंदी भी आज वैश्वीकृत रूप में नये ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकीय क्षमता के साथ अपने को जहाँ विकसित कर रही है, वहीं इस खतरे से उसे बचाने के लिए गंभीरता से सोचने की जरूरत है, क्योंकि यह भाषा ही है, जिसके सहारे हम अपने जीवन-यथार्थ का आदान-प्रदान कर रहे हैं। हिंदी के बहुआयामी होने का यह सबसे ताज़ा और जीवंत प्रमाण है।

❑❑

भाषा और संस्कृति का अंतरसंबंध

—साकेत सहाय

इतिहास साक्षी है कि किसी राष्ट्र का गौरव तभी जाग्रत रहता है जब वह अपने स्वाभिमान और बलिदान की परंपराओं को अगली पीढ़ी को भी सिखाता है, संस्कारित करता है, उन्हें इसके लिए निरंतर प्रेरित करता है। किसी राष्ट्र का भविष्य तभी उज्ज्वल होता है जब वो अपने अतीत के अनुभवों और विरासत के गर्व से पल-पल जुड़ा रहता है। यहीं पर भाषा और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित होती है। भारत की समृद्ध ऐतिहासिक परंपरा,चेतनामय सांस्कृतिक विरासत को यदि देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि विचार, आत्मनिर्भरता, सम्मान, ज्ञान, परंपरा के सशक्त निर्माण में भाषा और संस्कृति की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत के स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि को ही देखें तो इस आंदोलन के सशक्त और ऐतिहासिक परिणाम में स्वदेशी, स्वशासन, स्वभाषा, भारतबोध इत्यादि महत्वपूर्ण पीठिका रहे। महात्मा गांधी एवं देश के सभी महान नेताओं ने राष्ट्रभाषा के रूप में, जन-जुड़ाव हेतु हिंदी एवं स्थानीय भाषाओं के महत्व को समझा। महात्मा गांधी ने तो जन से जुड़ी प्रत्येक नब्ज को पकड़ा और देखते-ही-देखते भारतीय स्वाधीनता आंदोलन प्रत्येक भारतीय का आंदोलन बन गया। साथ ही यह आंदोलन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता का भी प्रतीक बन गया और हिंदी इन सभी के बीच संपर्क एवं जुड़ाव की भाषा के रूप में स्थापित हुई।[1]

यह सत्य है कि भारत एक ऐसा देश है जहाँ हर बारह कोस पर बोली बदल जाती है, "वेश-भूषा" बदल जाते हैं, वहाँ के निवासियों के तौर-तरीके बदल जाते हैं, भाषिक उच्चारण के लहजे तक बदल जाते हैं। इन सारे बदलावों का अनुमान तो लगाया जा सकता है, परंतु इसे सहजता से समझा नहीं जा सकता। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि आप कन्याकुमारी से लद्दाख तक की यात्रा करें अथवा कच्छ से अरुणाचल तक की; इन यात्राओं के दौरान जो भी बदलाव होते हैं वे इतने सहज होते है कि उसे ठीक उसी प्रकार अनुभूत कर पाना कठिन होता है, जैसे, किसी शिशु का शारीरिक और मानसिक विकास होता है। इस परिवर्तन को होते हुए नहीं देखा जा सकता। इस बदलाव को किसी

सीमा रेखा में भी नहीं बाँधा जा सकता। यही कारण है कि भारत को बहुरंगी सपनों वाला देश कहा जाता है। विविधताओं से भरे हुए इस देश में अपूर्व भावनात्मक एकता विद्यमान है। इस देश की अपूर्व भावनात्मक एकता में इस देश की भाषा और संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान है। कभी फ्रेंच भाषा विज्ञानी एमनो ने कहा था 'भारत एक भाषा परिवार वाला राष्ट्र है।'[2] कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एम.बी. एमनो अपने तथ्यपरक निबंध 'भारत एक भाषाई क्षेत्र' में कहते हैं– "एक ही भूखंड की भाषा होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में, प्रकृति और प्रत्यय में, शब्द और धातु में, भाव-धारा और चिंतन प्रणाली में और कथन-शैली में प्रत्येक स्तर पर समानता दिखाई देती है।"[3]

भाषा, केवल अभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं होती अपितु सांस्कृतिक विकास और विस्तार का भी साधन व माध्यम होती है। भाषा, सभ्यता और संस्कृति की यह त्रयी प्रत्येक देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। इस त्रयी की साधना और संतुलन तब तक "बना" रहती है जब तक समाज में सर्वत्र विकासमान स्थिति बनी रहती है। इस त्रयी में सबसे बड़ा योगदान भाषा का होता है। भाषा ही वह शक्ति है जो सभ्यता और संस्कृति को परस्पर जोड़ती है। यह हम सभी के लिए गौरव एवं प्रेरणा का विषय है कि भारत के राष्ट्र नायकों ने इस तथ्य को समय-समय पर समझा और इसे स्थापित भी किया है। समाज में बड़े-बड़े बदलाव भाषा के माध्यम से ही हुए हैं। इतिहास इस सत्य का साक्षी है। हम भक्तिकाल के जननायक कबीरदास और तुलसीदास का ही उदाहरण लें अथवा आज़ादी के सेनानायक महात्मा गांधी का उदाहरण लें। क्या कबीरदास, तुलसीदास, महात्मा गांधी जो बात जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे, यदि उनका माध्यम जनसामान्य की भाषा न होती तो क्या वे अपना संदेश जन-सामान्य तक पहुँचा पाते? आज भी जब हम कबीर को बीजक में पढ़ते हैं तब हमें जो कबीर दिखते हैं वे भिन्न कबीर हैं। जिस कबीर को हम बनारस के चौराहे पर "लुकाठी लिए" खड़ा देखते हैं, वे जनमानस के कबीर है। उनकी भाषा को पढ़ और अपढ़ दोनों ही तरह के लोग समझते हैं। यही कारण है कि कबीर का संदेश जन-जन तक जा पहुँचता है। यही बात तुलसीदास जी के ऊपर भी लागू होती है। वे रामचरितमानस के माध्यम से रामायण के संदेश को सहज भाषा में सामान्य जन तक पहुँचा देते हैं। तुलसीदास ने रामकथा को लोक की सहजभाषा में लिखकर उसे जन-जन तक पहुँचाया।

रामचरित मानस के सहज व सरल चर्चा ने लोक-समाज की दिशा एवं सोच को बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जो रूपक तुलसीदास जी ने लोक भाषा के माध्यम से लोक के समक्ष रखा, वह समाज के लिए एक आदर्श बन गया। प्रभु श्रीराम की अपने अधिकारों के प्रति सात्विक सजगता, अपने दायित्वों के प्रति सहज किंतु कटिबद्ध तत्परता। संबंधों का सुगम निर्वाह। सेवा और त्याग की प्रतिबद्धता और निष्ठा की भावना। समता, सहिष्णुता और सहजता का अनूठापन। समर्पण और संघर्षों का आदर्शमय उदाहरण। समाज के समक्ष मर्यादा का वास्तविक स्वरुप प्रस्तुत करते हैं। समाज को दिशा देने में यह सब केवल भाषा की सुगमता के ही कारण संभव हो सका। इस प्रकार के उदाहरण देश के हर कोने में देखे जा सकते हैं।

भाषा की अपनी अद्‌भुत क्षमता और सत्ता होती है। परंतु इस देश के औपनिवेशिक इतिहास के साथ यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य जुड़ा हुआ है कि सत्ताधारी के साथ-साथ उसकी भाषा भी राज करती है। यह इतिहास शासितों को विवश कर देती है अपने साथ जुड़ने के लिए। शासित को अपनी बात कहनी है तो उसे शासक की ही भाषा में कहनी होगी। यह बात कौन नहीं जानता कि फारसी और अंग्रेजी भाषा ने भारत पर अपने सत्ताधीशों से बढ़कर शासन किया। आज भी इन भाषाओं की सत्ता बरकरार है। अंग्रेजों ने तो समग्र भारतीय प्राचीन ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद करवा दिया, उनकी उपलब्धता भी सहज करवा दी। यह दुर्भाग्य नहीं तो क्या है कि हमें अपना इतिहास तक अँग्रेजी भाषा में पढ़ने की विवशता को भोगना पड़ा। अपने धार्मिक ग्रंथ तक अँग्रेजी में पढ़ने के लिए हमें विवश होना पड़ा। यह विचारणीय है कि "हमें उनका घर याद रहा, पर हम अपना घर भूल गए।" इस प्रकार एक विदेशी सत्ता की भाषिक गुलामी ने देश में सामाजिक ही नहीं ऐतिहासिक बदलाव भी करके दिखा दिया। यही काम कभी फारसी ने भी किया। यह कहा जा सकता है कि सत्ता बदलते ही भाषा बदल जाती है और भाषा बदलते ही संस्कृति बदल जाती है तथा संस्कृति बदलते ही इतिहास बदल जाता है। भारत ने इस कटु तथ्य को भोगा है जिसकी त्रासद परिणति आज भारत के सांस्कृतिक और भाषिक परिदृश्य में ऐतिहासिक रूप से परिलक्षित हो रही है। इन सभी के बावजूद यह भी सत्य है कि भारत की चेतना में बसे भाषिक प्रेम और मजबूत सांस्कृतिक दृष्टि का ही प्रभाव रहा कि ब्रिटिश पराधीनता से मुक्ति के ज्यादातर उद्‌घोष वाक्य वंदे मातरम! 'जय हिंद', 'इंकलाब जिंदाबाद!' 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा। "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्‌ध अधिकार है' अथवा 'अंग्रेजों भारत छोड़ों' आदि ने भारतीय इतिहास के पन्नों पर परिवर्तन की इबारतें लिख दीं।[5]

भारत की जितनी भी भाषाएँ है सबमें परस्पर संबंध है। किसी में लिपिगत, किसी में शब्दों के भंडार के आदान-प्रदान के कारण, किसी में वैचारिक साम्यता के कारण। यदि हम भारतीय भाषाओं को ध्यान से सुनें, उनकी ध्वनियों का निरीक्षण करें तो हमें ये आश्चर्यजनक रूप से यह चमत्कृत कर देंगी कि उनमें कितनी अधिक समानता है। उत्तर भारत की भाषाएँ हम न भी गिनें तब भी जो दक्षिण और पूर्वोत्तर की भाषाएँ और बोलियाँ हैं, उनमें कई शब्द ऐसे हैं जो समान हैं। बहुत थोड़े-से उच्चारण के अंतर को छोड़ दें तो ऐसा लगता है मानो ये शब्द इधर से उधर यात्रा करते-करते अपने-अपने स्थाई निवास बना चुके हैं। यह तय करना कठिन हो जाता है कि कौन-सा शब्द कौन-सी भाषा से आया है।

भारत की धार्मिक भावना भी इस भाषायी आदान-प्रदान में सहायक रही है। हमारे ऋषियों ने चार तीर्थों की स्थापना जिस प्रकार से भारत के चारों भागों में की है और जिस प्रकार उनका परस्पर महत्व निर्धारित किया गया है, वह भी भाषायी आदान-प्रदान का एक महत्वपूर्ण कारक सिद्‌ध हुआ। दक्षिण के तीर्थ यात्री जब रामेश्वरम से जगन्नाथपुरी, बद्रीविशाल, केदारनाथ होते हुए सोमनाथ-द्‌वारिका तक जाकर वापिस दक्षिण लौटते हैं तब केवल भाषा का ही नहीं, बल्कि संस्कृति, साहित्य और सभ्यता का भी आदान-प्रदान होता है। यह सब आदिकाल से होता चला आ रहा है। पैदल यात्राओं से लेकर

आज की गतिशील वायु यात्राओं तक यह आदान-प्रदान निरंतर जारी है। यही एक भ्रमण रहा जिसमें आदान-प्रदान भाषा का, विचारों का, कथा-प्रसंगों और इतिहास-गाथाओं तक का हुआ। परंतु ग्रंथों का आदान-प्रदान कम हुआ, लगभग नहीं के बराबर। महर्षि वाल्मीकि की रामायण की कथा तो अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में गई, परंतु ग्रंथ नहीं गए। अन्य भाषाओं में भी जो राम कथाएँ लिखी गईं, वे अनुवाद नहीं हैं।[6] उनकी अपनी-अपनी भाषा-शैली और अभिव्यक्ति है। रामचरित मानसकार ने किसी रामायण को आधार बनाकर उसका अवधी में अनुवाद नहीं किया। तुलसीदास जी के अपने विचार-वैभव हैं। उनकी अपनी मौलिकता है। इस देश में अनेक ऐसे उदाहरण हैं।

इन संपर्कों से जो परस्पर भाषायी एवं साहित्यिक आदान-प्रदान हुआ, उसने देश को एक सूत्र में बाँधने में बहुत सहयोग किया है। सांस्कृतिक और सात्विक संदेश देश के एक कोने से दूसरे कोने में प्रसारित हुए। भाषा ही इस समूचे आदान-प्रदान का माध्यम बना। चाहे वह साहित्यिक आदान-प्रदान हो, सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो अथवा वैचारिक आदान-प्रदान हो सभी में भाषा एक सेतु की भाँति काम करती रही। आज भी कर रही है और यह सर्वप्रमुख भाषा जन सामान्य के बीच हिंदी के रुप में दीर्घकाल से विद्यमान है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के पथ प्रदर्शक रहे अनगिनत जननायकों, महान व्यक्तित्वों की जीवनी को यदि देखें तो इनकी सशक्त नींव में इस देश के अमिट संस्कार, संस्कृति, भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्टता से झलकती है। किसी भी समाज में शाश्वत चेतना का निर्माण एक दिन में नहीं होता। देश की आज़ादी के लिए चले लंबे संघर्ष में भी सामूहिक चेतना की भावना विद्यमान रही है। यह सब भारत की महान सांस्कृतिक परंपराओं से निर्मित हुआ है। इस देश में ब्रिटिशों के खिलाफ चले लंबे संघर्ष को भारत द्वारा असत्य के खिलाफ सत्य की सशक्त घोषणा के रूप में स्थापित करना देश की महान परंपराओं, जीवन मूल्यों को ही सिद्ध करता है। भारत का पूरा स्वाधीनता आंदोलन भारतीयों की स्वाधीन चेतना का प्रमाण है। यह आंदोलन यह दिखाता है कि अन्याय, शोषण और हिंसा के खिलाफ भारत की जो चेतना राम के युग में थी, महाभारत के कुरुक्षेत्र में थी, हल्दीघाटी की रणभूमि में थी, शिवाजी के उद्घोष में थी, वही शाश्वत चेतना, वही अदम्य शौर्य, भारत के हर क्षेत्र, हर वर्ग और हर समाज ने आज़ादी की लड़ाई में अपने भीतर प्रज्जवलित करके रखा था।

आज़ादी के आंदोलन की इस ज्योति को निरंतर जागृत करने का काम, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, हर दिशा में, हर क्षेत्र में, हमारे संतों ने, महंतों ने, आचार्यों ने निरंतर किया था। एक प्रकार से भक्ति आंदोलन ने राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आंदोलन की पीठिका तैयार की थी। ऐसे अनेकों व्यक्तित्वों के कारण स्वाधीनता आंदोलन ने क्षेत्र विशेष की सीमा से बाहर निकलकर अखिल भारतीय स्वरूप को प्राप्त किया। आज इन महानायकों के पाठों को हम इतिहास एवं भाषा में भक्ति आंदोलन के नाम से जानते हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश को मिला संविधान, भारतीय परंपरा, संस्कृति, लोकतंत्र, भाषा के महत्व एवं गरिमा को स्पष्टता से परिभाषित करता है। भारतीय संस्कृति से जुड़ा जो दर्शन है, जो उदात्त जीवन परंपराएँ है, भारत का संविधान उनको एक तरह से व्याख्यायित करता है। भारत ने संपूर्ण

विश्व को वसुधैव कुटुंबकम् के सूत्र के साथ अपना परिवार मानने का संदेश दिया है। हमारा संविधान इस उदात्त विचार का एक प्रकार से लिखित रूप है। संविधान का मूल प्रारूप भारतीयता की मूल भावना को परिभाषित करता है। संविधान के मूल प्रारूप में भारतीय संस्कृति का कलात्मक चित्रण है। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आग्रह पर बिहार के महान सपूत शांति निकेतन के कलागुरु नन्दलाल बसु ने संविधान में कलात्मक चित्र उकेरे। राजस्थान के महान कलाकार कृपाल सिंह शेखावत ने भी संविधान प्रारूप के कलात्मक स्वरूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय संविधान के इस कलात्मक चित्रण में वैदिक काल से 20 वीं सदी तक की सनातन भारतीय परंपरा, भारतीय सभ्यता के आधारभूत ढाँचे की समझ के साथ रामायण, महाभारत और भारतीय संस्कृति से महान परंपराओं का संविधान के प्रारूप में विशेष चित्रण किया गया है। भारतीय संविधान के इस कलात्मक स्वरूप से भारतवर्ष की अपूर्व सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत का गौरव-बोध होता है।[7]

इस गौरव-बोध में देश के आदर्शों, उद्देश्यों व मूल्यों का संचित प्रतिबिंब हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्री सशक्तिकरण की बात करें तो इसे सदा से स्थान मिलता रहा है। भारतीय संविधान के निर्माण में ही 15 विदुषी महिलाओं ने अहम भूमिका निभाई। 389 सदस्यीय संविधान सभा में 15 महिलाएँ शामिल थीं। स्वतंत्र भारत में स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में यह कार्य प्रगामी पथ सिद्ध हुआ। इन 15 महान विदुषी महिलाओं में अम्मू स्वामीनाथन, बेगम एजाज रसूल, दुर्गाबाई देशमुख, रेणुका रे, कमला चौधरी, हंसा जीवराज मेहता, सरोजनी नायडू, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर, लीला रॉय, विजयलक्ष्मी पंडित, पूर्णिमा बनर्जी, एनी मसकैरिनी, दक्षायनी वेलायुधन, मालती चौधरी जैसे प्रतिष्ठित नाम शामिल रहे। महान स्वतंत्रता सेनानी, सांसद तथा हिंदी के महान साहित्यकार सेठ गोविंददास 17 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में दिए गए भाषण में शुरुआती अंश में कहते हैं- "हमारा देश संसार के छह प्राचीनतम देशों में एक है। वे प्राचीनतम देश हैं- भारत, चीन, यूनान, बेबीलोनिया और मैसोपोटामिया। इन छह प्राचीनतम देशों में से पाँच देशों में हमें उनकी प्राचीन संस्कृति दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल भारत ही संसार के प्राचीनतम छह देशों में से एक ऐसा देश है जिसमें आज भी हमें उसकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की परंपरा हर क्षेत्र में दिखाई देती है।"[8]

हालाँकि यह दुर्भाग्य का विषय रहा कि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के कारण अंग्रेजी भाषा लंबे समय तक भारत के शासकों की भाषा के रुप में बनी रही। समय के साथ हमारी हीनता बोध ने अंग्रेजी को हमारी रसोई और रनिवास की भाषा बना डाला। यहाँ तक कि हमारे पूजाघरों और धार्मिक संदर्भों की भाषा भी अंग्रेजी बन गई। अंग्रेज शासकों ने हममें अंग्रेजी और अंग्रेजियत इस तरह भर दी कि हम अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपनी भाषा के महत्व व उसकी अस्मिता को लगभग भूल ही गए। हमने अंग्रेजी के ग्रंथों को ही प्रामाणिक मान लिया। यह विचारणीय है कि हम अंग्रेजी लेखकों तथा अंग्रेजी में लिखे गए ग्रंथ का प्रमाण देकर अपने इतिहास को प्रामाणिक बनाने में गौरव का अनुभव करते हैं।

इसी सोच का परिणाम रहा कि आज़ादी के अमृत वर्ष में भी इस देश की राजभाषा की बुनियादी स्थिति बहुत हद तक संक्रमण की बनी हुई है। कभी हिंदी की स्थिति पर विचार करते हुए भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ डॉ. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने कहा था, 'मेरी झाँसी मुझे वापस चाहिए।' मैं भी हिंदी के लेखक की हैसियत से यही माँगता हूँ कि मेरा तो कोई प्रदेश नहीं, कोई वर्ग नहीं, मजहब नहीं, सिर्फ एक देश है, उसे वापस लाओ। बंद करो यह ढोंग कि हिंदी संपर्क भाषा है। सारा राज-काज अँग्रेजी में, फारसी में या लैटिन में चलाओ! हिंदी के विकास के मालिकों, हिंदी को जीनो दो, छूछे सम्मान का जहर न दो, हिंदी को, देश को वापस बुलाने का अवसर दो। (अस्मिता के लिए से साभार) हालाँकि समय के साथ सुधार हो रहे हैं। मध्य प्रदेश की सरकार ने चिकित्सा की पढ़ाई को हिंदी माध्यम से पढ़ाने की शुरुआत की है। इसका स्वागत, अभिनंदन है। हालाँकि इसमें कमियाँ भी है परंतु समय के साथ इस प्रकार की कमियों को सुधार कर लिया जाएगा। अब देश आज़ादी के अमृत वर्ष में प्रवेश कर चुका है। समय आ गया है कि हम सब अपनी भाषा, संस्कृति, परंपरा के महत्व को समझें, इस पर चिंतन, विमर्श करें, हमारी संस्कृति हमें निरंतर सीखने-समझने का अवसर देती है, प्रेरित करती है। भारतीयता की रक्षा हेतु यह जरूरी है कि हम दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतंत्र की मूल शक्ति को समझें। भारतीयता की मूल ताकत है इसकी लोक शक्ति जो भाषा एवं संस्कृति की शक्ति से आबद्ध है। इसकी मूल भावना हमें पंथ, संप्रदाय से इतर निष्ठावान नागरिक बनने को अभिप्रेत करता है जिसके लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि है। आज़ादी के अमृत काल में भाषा और संस्कृति के अंतर संबंध को देखते हुए हम सभी यह संकल्प लें कि आधुनिक भारत के सशक्तिकरण में भारतीय दर्शन, परंपरा, भाषा का समावेश अत्यावश्यक है। भारतीय भाषा एवं संस्कृति की ताकत इसे परिपुष्ट करता है।

दीर्घ गुलामी से उपजे हीनता-बोध से न केवल हिंदी बल्कि, अन्य भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी के प्रभाव से आतंकित हैं। इसे देश का नीतिगत दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहेंगे कि हम हिंदी को राष्ट्रीय भाषा कहने में सबसे आगे और उसे राष्ट्रीय अस्मिता देने में सब से पीछे हैं। सशक्त राष्ट्रीय अस्मिता के लिए यह जरूरी है संपूर्ण राष्ट्र यह संकल्प लें कि अंग्रेजी हमारी अनिवार्यता नहीं है तब हमारे पास राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी ही प्रमुखता से रेखांकित होगी। इस हेतु हिंदी में विज्ञान, वित्त, चिकित्सा या अन्य विषयों के लिए सामग्री निर्माण द्यारा सक्षम बनाने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं। परिपूर्ण शब्द भण्डार से समृद्ध शब्द कोष विकसित किए जा रहे हैं। साथ ही जो शब्द भंडार विकसित है उसे भी अपनाने की जरुरत है।

आज भाषाओं के मामले में भारत में एक बहुत बड़ा वर्ग एक ऐसे संकट से भयभीत है जो है ही नहीं। इस संकट से निपटने हेतु जरूरी है भारतीय भाषाओं के आपसी सहयोग की। इसमें लोक भाषाओं और लोक साहित्य की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। इस परस्पर आदान-प्रदान में तकनीक एक महत्वपूर्ण सेतु है। हमारे लिए यह एक क्लर्क की भांति है। यदि हम इसके हाथ से अंग्रेजी का

पेन हटा कर इसकी जगह हिंदी की लेखनी थमा दें तो यह हिंदी का सबसे बड़ा सहयोगी सिद्ध होगा। इस प्रयोग को भारत की सभी भाषाओं के लिए भी अपने-अपने स्तर पर किया जा सकता है। पर असली आवश्यकता है हमारी अपनी इच्छा शक्ति और प्रतिबद्धता को उभारने की। हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की संवृद्धि के लिए भी जरूरी है कि भारत में इसे ज्ञान-विज्ञान में, शिक्षण और संप्रेषण के रूप में विकसित होने वाली भाषा के रूप में मजबूती के साथ स्थापित किया जाए। इस हेतु विश्वविद्यालयों को हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में निर्वचन-विधि का विकास करना होगा। उदाहरण के लिए, विधि की शिक्षा, इसके जानने-समझने, अर्थ-बोध की शिक्षा है। विधि का अर्थ-बोध एक निर्वचन एवं व्याख्या की प्रणाली है और इस हेतु भारतीय शिक्षा पद्धति को भारतीय परंपराओं, संस्कृति, भाषा की शरण में जाना होगा। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मन का विधिशास्त्र, ज्ञान-विज्ञान की प्रणाली विकसित करनी होगी। इसे बदलने हेतु हम सभी को समवेत होकर कार्य करना होगा। इस दृष्टि से सरकार द्यारा नई शिक्षा नीति के तहत प्रयास किए जा रहे हैं, जो एक सुखद संकेत है।

आज बहुत सारे आंकड़ें हिंदी के पक्ष में हैं। हिंदी दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। यह निज भाषा की ताकत है। आधुनिक हिंदी के उन्नायक भारतेन्दु ने जिस संदर्भ में "निज भाषा" की बात कही है, उनसे बहुत पहले बुद्ध-महावीर ने भी कही थ। इसी बात को कबीर, नानक और तुलसी ने भी कहा। इन्होंने केवल कहा नहीं, अपितु "निज भाषा" को अपनाया भी। सूफियों ने तो इस सूत्र का पूरा-पूरा उपयोग किया। यही कारण है कि निज भाषा का साहित्य जन-जन का साहित्य बन गया। अर्थात वह लोक साहित्य बन गया। लोक साहित्य की भाषा में जो सरलता-सुगमता और अपनापन होता है वह सामाजिक संवादों को सहज बना देता है। वह भाषा की सुगम्यता, व्यक्ति और समाज के बीच संवाद को बोधगम्य बनाकर एक अटूट रिश्ता व्यक्ति और समाज से जोड़ता है। सम्भवत: इसी स्थिति को सामाजिक सरोकार की श्रेणी में विद्यानों ने रखा है। जिस भाषा में बहुसंख्यक समाज अपने विचारों का आदान-प्रदान करने, दुख-सुख कहने-समझने में सहजता का अनुभव करें वही भाषा विचारों को सच्ची अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। यह स्थिति अखिल भारत के स्तर पर हिंदी एवं प्रादेशिक स्तर पर भारत की सभी भाषाओं पर लागू होती है।

कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय अस्मिता और भाषायी अस्मिता का परस्पर गहरा संबंध है। दोनों ही एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं। अस्मिता के इस महत्व को हम सबको पहचानना होगा। साहित्यकारों को यह बात समझना होगा कि उन्हें जैसे भी हो, बिना किसी माध्यम की चिंता किए अपनी-अपनी भाषाओं में सृजित साहित्य का आदान-प्रदान करते रहना चाहिए। इससे भारतीय भाषाओं को, उसके सृजन को जो शक्ति मिलेगी, वह अकूत शक्ति होगी। इस आदान-प्रदान से केवल साहित्यिक आदान-प्रदान ही नहीं होगा, सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी होगा। साथ ही सभी भाषाओं के शब्द भंडार, शैली और विचारों का भी आदान-प्रदान हो सकेगा। फलत: प्रत्येक भारतीय भाषा में श्रेष्ठ

से श्रेष्ठतम साहित्य सृजन को भी बल मिलेगा। तब इस भाषायी और साहित्यिक आदान-प्रदान से जो सांस्कृतिक परिवार सृजित व संगठित होगा, वह भावनात्मक होगा, अटूट होगा। आज़ादी के अमृत वर्ष में भारतीय भाषाओं की समुन्नति के साथ ही देशी समृद्धि के लिए भी आवश्यक है। कहा भी गया है 'भाषा गई, संस्कृति गई। इस एक उद्धरण से यह स्पष्ट है कि सांस्कृतिक प्रसार में भाषा की कितनी अहम् भूमिका है।

संदर्भः

1. राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदी की भूमिका- www.dcdu.ac.in
2. तिवारी डॉ. भोलानाथ, संस्करण- 1978, कबीर, पृ. 131
3. ग्रोवर बी. एल. एक नवीन, आधुनिक भारत का इतिहास मूल्यांकन यशपाल, एस. चंद एंड संस, नई दिल्ली।
4. भारतीय भाषाएँ और राष्ट्रीय अस्मिता, हिंदी अकादमी, दिल्ली संस्करण, 2001, पृ. 214
5. संविधान दिवस पर हिंदुस्तान अंक- 25 नवंबर, 2019
6. पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संपादकीय-जनवरी-फरवरी, 2021

❑❑

हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

—विजयानन्द

सारांशः

हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, हिंदी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भक्तिकाव्य का सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वरूप 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक माना जाता है। उस समय अनवरत प्रवाहित भक्ति काव्यधारा, भारत में समय के जिस बिंदु से आंदोलनात्मक तेवर प्राप्त की, वह भारतीय समाज के लिए जड़ता, ठहराव का विस्फोटक काल कहा जा सकता है। प्रख्यात विद्वान ग्रियर्सन की मान्यता है कि भक्ति आंदोलन बिजली की कौंध के समान अस्तित्व में आता है। वस्तुतः ऐसा है नहीं, उसकी जड़ें, सदियों पूर्व भारतीय संस्कारों, नीतियों एवं मूल्यों में व्याप्त थीं। वैदिक काल से लेकर 14वीं सदी तक भारतीय मनीषा ने सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में न जाने कितने उतार-चढ़ावों का सामना किया है। समय-समय पर समाज की नियामक शक्तियाँ परिवर्तित होती रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप धर्म का सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित होना मूल था। आज भी हिंदी का वर्तमान वैश्विक स्वरूप भक्ति काल की उसी नींव पर ही टिका है।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का अन्योंयाश्रित संबंध रहा है। वैदिक काल से लेकर अब तक देवभाषा संस्कृत में जो साहित्य लिखे गए, उनको गुरुकुलों के माध्यम से शिष्यों को कंठस्थ कराया गया। कई हजार वर्षों तक यह परंपरा चलती रही और जब भारत अंग्रेजी सरकार का गुलाम हो गया, उसी समय प्राचीन परंपरा से चली आ रही भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेली, कुमाऊनी आदि जैसी लोकभाषाओं से हिंदी का प्रस्फुटन हुआ। ये लोक भाषाएँ (बोलियाँ) ही वास्तव में मातृभाषाएँ हैं। भारत में जहाँ भाषाओं तथा संस्कृतियों की विविधताएँ हैं, वही रीति-रिवाजों एवं सामाजिक रहन-सहन से एकता के भावों का भी उद्‌भव हुआ है। यह तथ्य लोक प्रचलित है कि—

कोस कोस पर बदले पानी,
चार कोस पर बानी।

जब मुगलकाल में विदेशी आक्रांताओं ने इस आर्यावर्त, भारतखंड पर हमला किया तो वे अपने साथ अपनी भाषाओं के बोलने वालों को भी यहाँ लाए और कुछ को छोड़ भी गए। उन्हीं से अरबी, फारसी का विस्तार हुआ, अमीर खुसरो ने घूम-घूम कर उसका प्रचार भी किया। सरलीकरण की दृष्टि से इन्हीं लोकभाषाओं, अरबी, फारसी से विमिश्र होकर हिंदी अवतरित हुई। कई प्रदेशों में इन भाषाओं को जानने वाले लोग थे और धार्मिक दृष्टि से जब गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखकर उसका प्रचार किया तो वहीं से इसकी आधारशिला भी बन गई। संस्कृतनिष्ठ हिंदी और फारसी मिश्रित शब्दों से हिंदी का चलन आरंभ हुआ, जिसे स्वाधीनता आंदोलन के समय मोहनदास करमचंद गांधी ने हिंदुस्तानी नाम दे दिया। इसी को आधार बनाकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के केंद्र रहे इलाहाबाद में हिंदुस्तानी एकेडमी की स्थापना की गई, जिसका मूल उद्देश्य हिंदी, उर्दू, भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुंदेली आदि भाषाओं का सम्यक विकास और विस्तार करना था। हिंदी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई, हिंदी प्रचार समिति वर्धा, मैसूर हिंदी प्रचार सभा, बैंगलोर, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, हिंदी विद्यापीठ, केरल, गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई, मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर, श्री केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश, हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर, राजस्थान आदि देश के अनेक क्षेत्रों में हिंदी को प्रचारित करने के लिए विभिन्न संस्थाओं की स्थापना हुई। विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग खोले गए, जिस कारण हिंदी का सांस्कृतिक परिवेश स्वत: निर्मित हो गया।

हिंदी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भक्ति काव्य का सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वरूप 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक माना जाता है। उस समय अनवरत प्रवाहित भक्ति काव्यधारा, ने भारत में समय के जिस बिंदु से आंदोलनात्मक तेवर प्राप्त की, वह भारतीय समाज के लिए जड़ता, ठहराव का विस्फोटक काल कहा जा सकता है। प्रख्यात विद्यान ग्रियर्सन की मान्यता है कि भक्ति आंदोलन बिजली की कौंध के समान अस्तित्व में आता है। वस्तुत: ऐसा है नहीं, उसकी जड़ें, सदियों पूर्व भारतीय संस्कारों, रीतियों, नीतियों एवं मूल्यों में व्याप्त थीं। वैदिक काल से लेकर 14 वीं सदी तक भारतीय मनीषा ने सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में न जाने कितने उतार-चढ़ावों का सामना किया है। समय-समय पर समाज की नियामक शक्तियाँ परिवर्तित होती रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप धर्म का सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित होना मूल था।

आचार्यों ने भक्ति काव्य को एक विराट आंदोलन के रूप में विवेचित-विश्लेषित करते हुए यह पाया है कि प्रथम बार भारतीय समाज की आधारभूमि इतनी विशुद्ध हो सकी है कि जाति, क्षेत्र संप्रदाय, धर्म एवं अन्य सामाजिक भेदभाव, बहुत पीछे छूट गए। प्रख्यात हिंदी कवि मुक्तिबोध का

कहना है कि- प्रथम बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए, प्रथम बार युगों-युगों से दुखी, शोषित जनता, अभिजात्य वर्ग के सामने सिर उठाकर खड़ी हो सकी। यह भक्ति आंदोलन की ही देन है। भक्ति काव्यधारा जिस संदर्भ में आंदोलनात्मक तेवर प्राप्त करती है, वह स्वभावत: सामाजिक ही हो सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रथम समीक्षक थे, जिन्होंने ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी भक्तिकाव्य का मूल्यांकन लोकधर्म, लोक संस्कृति और लोक जागरण की दृष्टि से किया। यद्यपि उनकी अपनी कुछ सीमाएँ थी, जिसके तहत वे संतकाव्यधारा में अन्तर्निहित वस्तुतत्व का सटीक विश्लेषण नहीं कर सके, किंतु उन्होंने साहित्यिक मूल्यांकन को जो कसौटी प्रदान की, उससे भक्ति काव्यधारा के परवर्ती मूल्यांकन को भरपूर बल मिला। प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति साहित्य के सामाजिक पक्ष को ही इंगित करते हुए कहते हैं-

"एक समय रहस्यवादी कवियों ने लोक जागरण में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। रहस्यवादी कवियों ने मनुष्य में ब्रह्मसत्ता का साक्षात्कार करके मानव धर्म का मार्ग ही प्रशस्त कर दिया।" जिस काव्य को आचार्यों ने राष्ट्र की शिराओं में रक्त का संचार करने वाला, निम्न वर्ग के अंदर आत्मविश्वास जागृत करने वाला, लोक जागरण करने वाला कहा, उसकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक भूमिका का सांगोपांग मूल्यांकन करना अति आवश्यक है, क्योंकि वहीं से हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मजबूत होती है। उसके संबंध में यह प्रथम प्रश्न तो उठता ही है कि रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, नामवर सिंह, सत्यप्रकाश मिश्र, विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवकुमार मिश्र, रामकिशोर शर्मा आदि आचार्यों ने जिस भक्ति काव्य का सांस्कृतिक, सामाजिक मूल्यांकन करने पर बल दिया, क्या उसकी मूल चिंता सामाजिक ही है?

वस्तुत: समूचे भक्ति काव्यधारा की मूल चिंता सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक है। इसके बावजूद आज अगर वह हमें किसी भी कारण सर्वाधिक प्रभावित, प्रेरित, उद्येलित करती है तो अपने उदात्त सामाजिक दृष्टि के कारण। चूंकि इस काल खंड के संतों और भक्तों की आध्यात्मिक चिंता आकाशीय नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन से ही उपजी है और इसी पर प्रतिष्ठित है, इसलिए उनकी आध्यात्मिक चिंता का समीकरण सामाजिक सोच को कहीं भी काटता नहीं है। संसार की सांस्कृतिक, सामाजिक चिंता, आध्यात्मिक चिंता से संग्रथित है। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि महापुरुषों ने जिस विचार-क्रांति का आरंभ किया था, उसकी भावात्मक निष्पत्ति संत काव्यधारा में ही होती है। संतकाव्य धारा के पूर्व समाज की नियामक शक्तियाँ इसी विस्फोटक स्थिति की तरफ ले जा रही थीं, जहाँ रूढ़, अभिजात्य और सामंती समाज को खुली चुनौती मिल सकी। कबीर, नानक और रैदास का ब्रह्म तमाम पारंपरिक, दार्शनिक मान्यताओं से ऊपर है और वह घट-घट में व्याप्त है। इसलिए ब्रह्म के साधकों के लिए ईश्वर के न्याय, सत्य और ऐश्वर्य की सत्ता के अनुरूप मानवीय सत्ता की परिकल्पना सहज साध्य हो जाती है। यही कारण है कि एक निर्गुण का व्रत लेने वाले कबीर, हिंदू और मुस्लिम-दोनों धर्मों से तटस्थ होकर, सामंती समाज द्यारा निर्मित दुर्दशा को देखकर रो पडते हैं—

चलती चाकी देख के, दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥

सन्त काव्यधारा ऐसे समाज की कल्पना करती है, जिसमें धार्मिक रूढ़िवाद, परंपरागत, अंधविश्वास, जातिगत, वर्णगत, संप्रदायगत भेद एवं नाना प्रकार के कर्मकांडों के लिए कोई जगह नहीं है। जो समाज अपने अनुभव, अपनी संवेदना, ईमानदारी, श्रमशील प्रवृत्ति में निवृत्ति का साधक है। वह समाज इन संतों के लिए काम्य है—

संतों वह घर सबसे न्यारा,
अरे इन दोउन राह न पाई।
पांडे बूझी पियहू तुम पानी॥

संत काव्यधारा में कबीर के साहित्य में समाज के प्रति जो उदग्र, क्रांतिधर्मी, वैज्ञानिक विवेकवादी, स्वच्छ, सरल एवं ईमानदार दृष्टिकोण के समर्थक हैं, वही संत मत के अन्य समीक्षक दादू, रैदास, मलूकदास, पीपा, सेन, नानक, पल्टू, भीखा, दरिया, रज्जब आदि के साहित्य को प्रभावी नहीं मानते। यद्यपि इन सारे संतों की सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं सामाजिक मान्यताएँ लगभग एक जैसी हैं, लेकिन प्रतीत होता है कि इतिहास को सामाजिक स्थिति पर जितना आक्रोश व्यक्त करना था, जितना झाड़-फटकार करना था, वह सब कबीरदास ने कर दिया। इस तथ्य की ऐतिहासिकता से इंकार नहीं किया जा सकता कि प्राय: निम्न वर्ग से आए हुए इन सभी संतों के अंदर अनोखे आत्मविश्वास का संचार है। इसी दृष्टि से इनके काव्य के आध्यात्मिक आस्वाद में समाज के लिए प्रगतिवादी दृष्टि का उन्मेष मिलता है, जिसकी प्रासंगिकता भक्ति काव्य की अन्य धाराओं से अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

आचार्य शिवकुमार मिश्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने जायसी की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि की प्रशंसा की है, वस्तुत: सच्ची रचनाशीलता का साक्ष्य कथ्य की लोकधर्मी जमीन से मिल जाता है। जिस सामंती संस्कृति में नारी विजय की वस्तु थी और उसे पाने के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते थे, उसे जायसी खुदा का दर्जा देते हैं और उसे पाने के लिए रत्नसेन, राजसी वैभव त्यागकर जोगिया बाना धारण कर लेते हैं। जायसी अपनी कथा के इर्द-गिर्द समूचे भारतीय समाज की रीति, नीति, परंपरा, नैतिक मूल्य, उत्सव आदि को इस तरह ढूँढते हैं कि कथ्य के माध्यम से ही सम्प्रेषित होने वाला लोक-समारोह बड़ी सहजता के साथ यह ज्ञापित करने लगता है कि यहाँ की सांस्कृतिक, प्राकृतिक भूमि यही है। गाँव, नगर, नदी, नाले, पशु-पक्षी, वन, उपवन से कवि का कितना गहरा नाता है। इसे जायसी का लोकप्रेम और राष्ट्रप्रेम दोनों कहा जा सकता है। संत काव्य में मानव प्रेम, मानव-धर्म की सत्ता को सर्वोपरि माना गया है। ठीक यही बात सूफी काव्य में भी देखने को मिलती है। इसका सबसे बड़ा रचनात्मक सामाजिक उपक्रम यह है कि सामंती संस्कृति का अतिक्रमण करके कवि सहज नैसर्गिक जीवनोत्सव की प्रतिष्ठा करता है, जिसका आधार प्रेम होता है और जिसकी दृष्टि सत्य, न्याय और स्वाभिमान की ओर होती है।

यद्यपि संत काव्यधारा जिस अंतर्वस्तु को लेकर चल रही थी, उसे अभिजात्य वर्ग बीच में ही खंडित कर देता है। इस तथाकथित वर्ग ने ही सगुण काव्य के द्वारा निर्गुण के किए-कराए पर पानी फेर दिया। वह चरित्र जो कि अपने समय के सामंती और अभिजात्यवाद को घोषित चुनौती देता है। जिस कालखंड में मातृत्व गर्हित हो चला था, नारियाँ हरमों की वस्तु बन चुकी थीं और विलासिता के कारण राजाओं का ध्यान प्रजा की तरफ एकदम नहीं जाता था, उस कालखंड में सूरदास अपनी ईमानदार एवं चरम संवेदनशील रचनाशीलता का साक्ष्य देते हुए यशोदा जैसी मां की प्रतिष्ठा करते हैं और बल्लभाचार्य-निर्दिष्ट म्लेच्छाक्रांत धरती पर मातृत्वरूपी दूध की अविरल पावन गंगा बहा देते हैं।

शिशु को ब्रह्म के रूप में चित्रित करके वह मानवीय संवेदना की कोमलता हेतु, राजसी विलासिता के समक्ष, सामान्य गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा करते हैं। सूर का काव्य, नारी की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा करके उस समय के समाज को सबसे बड़ा उपहार देता है। भ्रमर गीत प्रसंग पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्यादावादी समीक्षक भी रीझ जाते हैं। प्रथम बार प्रेम सामंती-चौखटों से बाहर निकलकर प्रकृति के खुले प्रांगण में आता है और नारियाँ सामंती चौहद्दियों से बाहर अपने व्यक्ति स्वातंन्त्य की घोषणा करती हैं। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी, कृष्ण काव्यधारा की सामाजिकता को लक्षित करते हुए उसे गृहस्थ धर्म का काव्य कहते हैं। उनके अनुसार सूरसागर में गृहस्थों का उत्सव है। उस समय के टूटते हुए समाज के लिए यह बहुत बड़ा संबल था।

कालांतर में मीरा तो सूर की गोपियों की व्यावहारिक व्याख्याकार ही बनकर आती हैं। कृष्ण काव्यधारा में निहित सामाजिक दृष्टि का, सांस्कृतिक दृष्टि से कम महत्व नहीं है, लेकिन यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि समाज यहाँ ज्यादा सशक्त, ज्यादा उन्नत और उसी अनुपात में ज्यादा संगठित दिखाई पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल राम काव्यधारा के लोकधर्म का चरम रूप तुलसीदास के रामचरित मानस में पाते हैं। रामभक्ति काव्यधारा में तुलसी की रचनाशीलता उस शिखर को छू लेती है, जिसके बाद राम का आख्यान प्रायः निःशेष हो जाता है। तुलसी अपने समय की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट होते हुए रामराज्य की परिकल्पना करते हैं, टूटते हुए समाज को बांधने के लिए वह राम जैसा अनुशासनबद्ध, मर्यादित, संवेदनशील तथा सौंदर्य का शिखर, चरित्र चिह्नित करते हैं।

समूचे भक्ति साहित्य में जिस प्रकार तुलसी की दृष्टि सर्वाधिक समन्वयात्मक है, उसी प्रकार उनकी सामाजिक दृष्टि भी सर्वाधिक नीतिबद्ध एवं संगठित है, जिसका परिणाम 'रामचरितमानस' जैसे अद्वितीय प्रबंधकाव्य की रचना है। तुलसीदास सनातनधर्मी मानसिकता में संशोधन के ही पक्ष में है, निर्गुणियों की तरह वे पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर नहीं हैं, इसलिए आज के संदर्भ में आनुपातिक तौर पर उनका काव्य ज्यादा अनुकरणीय है, किंतु राम काव्यधारा के सामाजिक प्रदेय का मूल्यांकन किसी एक कसौटी पर नहीं किया जा सकता है। रामभक्ति काव्य उत्तर भारत के लोगों का कंठहार बन जाता है, निश्चित ही उसमें लोक मनोविज्ञान का गहरा रचाव है। लोक मनोविज्ञान का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला मानस, सामाजिक जमीन पर जन मन से जुड़ जाता है। परिवार से

लेकर समाज और राष्ट्र को लेकर संस्कार तक की परिकल्पना केवल तुलसी के समय में या आज के समय में ही नहीं, बल्कि हर युग के लिए महत्वपूर्ण है।

अंग्रेजी सरकार के दौरान भारत की संस्कृति और समाज, राजपूतकालीन सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हो गया था। राजा प्रजा के बीच बने अन्योन्याश्रित संबंध छिन्न-भिन्न अवश्य हो गए थे, किंतु प्राचीनकाल से चली आ रही भारत की सांस्कृतिक और भाषाई परंपरा अपनी विरासत बचाने में सफल रही, जिसको स्वतंत्रता संग्राम के समय भी हिंदी साहित्यकारों ने बचाए रखा और उसको प्रोत्साहित करने वाले चरित्रों पर काव्य ग्रंथ लिखे। भारत परंपराओं और त्योहारों का देश रहा है। यही हमारी सांस्कृतिक विरासत भी है। हमारे त्योहार, दशहरा, दीपावली, गोवर्धनपूजा, मकर संक्रांति, बसंत पंचमी, महाशिवरात्रि, होली आदि के रूप में मनाए जाते हैं, जिसमें हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप चरित्र निर्माण के द्योतक महानायक, नायिकाओं के जीवन चरित्र पर आधारित रोचक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। राम-कृष्ण लीलाएँ, दुर्गा सप्तशती की नाटिकाएँ, उनसे जुड़े लोकगीत, जन मन में आज भी प्रचारित हैं। उनके मंचन के समय दर्शकों की अपार भीड़ लग जाती है। कुल मिलाकर हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्राचीन होते हुए भी राष्ट्रीय एकता को मजबूती प्रदान करती है। इसकी लोकप्रियता का यह भी प्रमाण है कि वैश्विक स्तर पर मारीशस, आबूधाबी, त्रिनिडाड, सूरीनाम, थाईलैंड आदि कई देशों ने हिंदी को अपनी उपराजभाषा एवं न्यायालय की भाषा बनाया है। पूरी तरह वैज्ञानिक देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी, विश्वभर में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का परचम लहरा रही है।

हिंदी भारत ही नहीं अपितु,
यह विश्व प्रेम की रचना है।
जैसे भी हो भाषा की,
ईर्ष्या से हमको बचना है।
अपनी संस्कृति का प्रचार,
हिंदी की सुंदर संरचना है॥

निष्कर्ष: के रूप में यह कहा जा सकता है की हिंदी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत ही प्राचीन है। एक लंबे संघर्ष के बाद आज की हिंदी स्थापित हुई है। इसमें भौगोलिक दृष्टि से भी संपूर्ण भारतीय को समाहित किया गया है। हिंदी का वर्तमान साहित्य भारत ही नहीं, विश्व स्तर पर पाठनीय एवं संग्रहणीय बन गया है। विश्व के अनेक देशों में सेवारत प्रवासी भारतीय, हिंदी की विविध विधाओं में साहित्यसृजन कर साहित्य के भंडार की श्रीबुद्धि कर रहे हैं।

❑❑

भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में हिंदी की भूमिका

—यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना, कुण्डे कुण्डे नवं पयः।
जातौ जातौ नवचाराः, नवावाणी मुखे मुखे॥ —चाणक्य

अर्थात प्रत्येक मनुष्य की मति (बुद्धि) अलग अलग होती है, प्रत्येक तालाब में अलग-अलग प्रकार का जल होता है, प्रत्येक वर्ण की अलग-अलग अपनी जीने की राह होती है, प्रत्येक मुँह से अलग अलग जुबान बोली जाती है।

इसी प्रकार भारत की एक और अमर लोकवाणी है—

कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर वाणी।

यानी प्रति तीन किलोमीटर पर जल अपना स्वाद बदलता है और प्रति बारह किलोमीटर पर भाषा अपनी बोली बदलती है। पृथ्वी की लंबाई बारह हजार सात सौ तेरह किलोमीटर और चौड़ाई बारह हजार सात सौ छप्पन किलोमीटर है, इंच-इंच पर भाषाएँ अपनी बोलियों के साथ विश्राम कर रहीं हैं। धूल के हर कण अपनी एक पृथक संस्कृति रखते हैं। भाषाओं की राह चुकती नहीं कभी, प्रत्येक पड़ाव और हर मोड़ पर एक अलग बोली मिलती है। भाषाओं के रास्ते छूट जाने पर वीरान जंगल में भटकते रह जाएँगे।

सहस्त्राब्दियों पूर्व लोग कृषि की तरफ मुड़े उस काल में बहुत सी भाषाएँ विलुप्त हो गईं। आर्यों की प्रमुख भाषा संस्कृत रही। दक्षिण भारतीयों ने द्रविड़ भाषाओं का प्रयोग किया। प्राचीन भारत में संस्कृत तथा द्रविड़ (तेलुगू, तमिल, कन्नड़ आदि) पाली, प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओं का विकास हुआ। प्राचीन काल में भारतीयों ने ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का उपयोग किया। इन्हीं लिपियों में पुराने समय के स्तंभ-लेख, शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा प्रशस्ति-लेख आदि लिखे गए। मध्यकाल में भारत में अरबी, तुर्की और फारसी भाषाओं का प्रचलन शुरु हुआ और इसी दौर में हिंदी (खड़ी बोली) भाषा भी विकसित हुईं हिंदी और फारसी के मेल से ही उर्दू एक नई लोकप्रिय भाषा बन गईं दो शताब्दी पहले सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव रखी थी। इसके

साथ ही भारत में अंग्रेजी भाषा का विकास हुआ। भाषाओं का इतिहास प्राचीन है और लिपि उसके बाद जन्मी। ख़ासकर जो भाषाएँ लिखी ही नहीं गईं और जब वह नष्ट होती हैं, तो यह सांस्कृतिक नुकसान तो है ही, साथ ही आर्थिक नुकसान भी है। जिसकी लिपि नहीं हैं उसे बोली कहने की परंपरा है। अंग्रेजी की भी लिपि नहीं है वह रोमन इस्तेमाल करती है। किसी भी लिपि का इस्तेमाल दुनिया की किसी भी भाषा के लिए किया जा सकता है। दुनियाभर में ऐसी लगभग 2500 से अधिक भाषाएँ हैं, जो खत्म होने की कगार पर पहुँच गई हैं। दुनिया भर में बोली जाने वाली 25 फीसदी भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें एक हजार से भी कम लोग बोलना जानते हैं। मानव सभ्यता सिर्फ इन भाषाओं को ही नहीं खो रही है, बल्कि इनके साथ जुड़ी अपनी पहचान से भी दूर होती जा रही है।

भारत के साथ दुनिया की कई जनजातीय भाषाएँ आज समाप्ति की कगार पर हैं, जिन्हें नष्ट होने से बचाने का प्रयास करना चाहिए। भाषायी जनगणना के अनुसार भारत में मातृभाषाओं के रूप में 19 हजार 500 से अधिक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। 121 भाषाएँ ऐसी हैं, जिनका प्रयोग करने वाले शायद 10-10 हजार के आसपास देशवासी हैं। हमारे देश की 196 भाषाएँ आज संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। 1961 की जनगणना के बाद 1652 मातृभाषाओं का पता चला था। उसके बाद ऐसी कोई सूची नहीं बनी। आजादी के बाद से भारत की करीब 20 फीसदी भाषाएँ विलुप्त हो गई हैं। लगभग 230 भाषाओं का नामो निशान मिट गया। भारत में फिलहाल 1365 मातृभाषाएँ हैं, जिनका क्षेत्रीय आधार अलग-अलग है। भारत में दो तरह की भाषाएँ विलुप्त हुई हैं- एक तटीय इलाकों की भाषाएँ और दूसरे बंजारा समुदाय की भाषाएँ। वह अब शहरों में आकर अपनी पहचान खो चुके हैं। ऐसे 190 समुदाय हैं, जिनकी भाषाएँ बड़े पैमाने पर लुप्त हो गईं हैं। भाषा बचाने का मतलब है कि भाषा बोलने वाले जन समुदाय को बचाना। हर समुदाय चाहे वह सागर तटीय हो, घुमंतू समुदाय हो, पहाड़ी इलाक़ों, मैदानी और शहरी सभी समुदायों के लोगों के लिए अलग योजनाओं की जरूरत है। विकसित हो रहे शहरों में इन भाषाओं की अपनी एक जगह होनी चाहिए। बड़े शहरों का भी बहुभाषी होकर उभरना जरूरी है।

हिंदी का युगीन इतिहास—हिंदी में यह बदलाव दशक-दो दशक की बात नहीं है बल्कि हिंदी भाषा 1000 साल से ज्यादा का इतिहास अपने आप में समेटे हुए है। हिंदी साहित्य का इतिहास वैदिक काल से आरंभ होता है। समय-समय पर यह अपने नाम, अपना भूगोल, अपने आकार और अपनी शब्दावली बदलती रही। कभी वैदिक, कभी संस्कृत, कभी प्राकृत, कभी अपभ्रंश और अब हिंदी। प्राकृत के इसी आखिरी अपभ्रश अवस्था से ही हिंदी का उद्‌भव और विकास माना जाता है। विद्‌यापति ने इसे देसी भाषा कहा। 8वीं शताब्दी में बौद्‌ध धर्म की एक शाखा वज्रयान सिद्‌धो ने उस समय की लोकभाषा में अपने मतों का प्रचार करते हुए हिंदी का प्राचीन साहित्य इन सिद्‌धों ने पुरानी हिंदी में लिखा। इसके नाथ पंथी साधुओं ने बौद्‌ध, शांकर, तंत्र, योग और शैव मतों को मिलाकर नया पंथ चलाया। उन्होंने लोक प्रचलित पुरानी हिंदी में अनेक धार्मिक ग्रंथों की रचना की। इसके बाद

जैनियों की रचनाएँ भी मिलती हैं। इसी काल में अब्दुल रहमान का काव्य संदेश रासक भी लिखा गया जिसमें प्रवृति बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है।

11वीं शताब्दी में राजाओं के संरक्षण में चारणों और भाटों ने रासो के रूप में प्रचलित वीर गाथा लिखी। इसी दौरान मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य और प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। अमिर खुसरो का भी यही समय है, उन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन की रचना की। इन गीतों-दोहों की भाषा ब्रजभाषा है। 13वीं शताब्दी के धर्म के क्षेत्र में फैले अंधविश्वास को तोड़ने के लिए भक्ति आंदोलन के रूप में भारत व्यापी सांस्कृतिक आंदोलन शुरू हुआ जिसने सामाजिक और व्यक्तित्व मूल्यों की स्थापना की। विभिन्न मतों का आधार हिंदी में निर्गुण और सगुण भक्ति काव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चली। इस दौरान कई बड़े ग्रंथों की रचना हुई।

18वीं शताब्दी के आसपास हिंदी कविता में रीतिकाल के नाम से नया मोड़ आया। तत्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से प्रोत्साहित होकर आधुनिक काल 19वीं शताब्दी में भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से संपर्क हुआ। नए युग के साहित्य की प्रमुख संभावनाएँ खड़ी बोली गद्य में गद्य युग के साथ पनप रही थी। इस तरह अपनी उत्पत्ति के साथ से हिंदी धीरे-धीरे अनवरत बढ़ती गई। अद्यतन हिंदी में कामकाज विस्तृत आकार ले रहा है। नित नए तकनीकों में हिंदी लोकप्रिय होती जा रही है। इस कारण से खेत खलिहान से निकल कर हिंदी वैश्विक स्तर पर विश्वगाँव के रूप में तब्दील हो रही है।

हिंदी—हिंदी एकमात्र ऐसी भाषा में जो बंगला, संस्कृत, नेपाली और उर्दू से कई प्रकार की समानता रखती है। हिंदी जिसे आती है उसके लिए इन भाषाओं को सीखना और समझना आसान हो जाता है। हिंदी में स्वतंत्रता से पूर्व 5-6 हजार पारिभाषिक शब्द थे, किंतु अब हिंदी की शब्द संख्या 2.50 लाख से अधिक है, और दिनों-दिन उनमें वृद्धि होती जा रही है जबकि अंग्रेजी के मूल शब्द 10,000 हैं। भारत में हिंदी राजभाषा है। भारत के सभी राज्यों में क्षेत्रीय भाषाओँ के साथ हिंदी बोली जाती हैं। 1881 में बिहार राज्य की आधिकारिक भाषा का दर्जा हिंदी को देकर हिंदी अपनाने वाला देश का पहला राज्य बना। इसके बाद उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा समेत कई राज्यों ने हिंदी को अपनी आधिकारिक भाषा बनाया। 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा में हिंदी को केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा, राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने का इस रूप में उल्लेख किया गया है- 'संघ की राष्ट्रभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप अंतरराष्ट्रीय रूप होगा।' 1953 से पूरे देश में 14 सितंबर को प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई थी। 2011 की भारतीय जनगणना में भारत में 52 करोड़ 83 लाख 47 हजार 193 लोगों ने हिंदी को अपनी मूल भाषा (मातृभाषा) घोषित किया जो कुल जनसंख्या का 43.63 प्रतिशत है। जबकि 2001 की भारतीय

जनगणना में भारत में 42 करोड़ 60 लाख लोगों ने हिंदी को अपनी मूल भाषा बताया था जो कुल जनसंख्या का 41.03 प्रतिशत थी। वैश्वीकरण के दौर की हिंदी का जानने वाले 982 मिलियन हैं।

विश्व हिंदी—2015 के आंकड़ों के अनुसार दुनिया के सभी 206 देशों में लगभग 1,30,00,00,000 (एक अरब तीस करोड़) लोग हिंदी बोल रहे हैं और अब हिंदी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा हो चुकी है। भारत के बाहर हिंदी बोलने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 6,48,983, मॉरीशस में 6,85,170, दक्षिण अफ्रीका में 8,90,292, यमन में 2,32,760, युगांडा में 1,47,000, सिंगापुर में 5000, नेपाल में 8 लाख, जर्मनी में 30,000 हैं। विश्व में 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी है, भारत में 78 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं, 27 करोड़ 42 लाख लोगों की दूसरी भाषा है हिंदी। 44 करोड़ लोगों की तीसरी या चौथी भाषा हिंदी है। कुल मिलाकर 2021 में हिंदी बोलने वालों की संख्या बढ़कर 64.6 करोड़ थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी विश्व की प्रथम भाषा बन चुकी है। द्वितीय स्थान पर चीन की मंदारिन और तीसरे स्थान पर अंग्रेजी आती है। चीन के बीजिंग विश्वविद्यालय तथा आकाशवाणी में हिंदी का बोलबाला है। पाकिस्तान के पंजाब व करांची विश्वविद्यालय में हिंदी पठन की व्यवस्था है। जापान के क्योतो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। वहाँ से 'ज्वालामुखी', सर्वोदय तथा 'जापान भारती' पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

भारत के अलावा नेपाल, फ़ीजी, पाकिस्तान, त्रिनिदाद, टोबैगो, बांग्लादेश, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस जैसे देशों में बड़ी संख्या में लोग हिंदी बोलते हैं। नेपाल की राजभाषा नेपाली के साथ हिंदी, मैथिली और भोजपुरी भाषा के साथ बोली जाती है। पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू के साथ हिंदिको, पश्तो, सिंधी, पंजाबी भाषाएँ बोली जाती हैं। बांग्लादेश की राजभाषा बांग्ला के साथ हिंदी भी बोली जाती है। सिंगापुर में राजभाषा माले के साथ हिंदी, तमिल, मेंड्रेन भी बोली जाती है। थाइलैंड में राजभाषा अंग्रेजी के साथ हिंदी और भोजपुरी भी बोली जाती है। टोबेगो में राजभाषा अंग्रेजी के साथ हिंदी और भोजपुरी भी बोली जाती है। यूनेस्को की सात भाषाओं में हिंदी पहले से ही शामिल है। वैश्विक स्तर पर 73 राष्ट्रों के 176 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन व अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है। अमेरिका के 45, रूस के 07, जर्मनी के 17, जापान के 02, श्रीलंका के 03 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन हो रहा है। विभिन्न देशों के 91 विश्वविद्यालयों में 'हिंदी चेयर' है। यूरोप और अमेरिका में भी हिंदी कार्य प्रशंसनीय स्तर पर है। लंदन, केम्ब्रिज व न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग इसके प्रमाण हैं। बी.बी.सी. द्वारा निरंतर 'हिंदी' का प्रसारण हो रहा है। फ्रांस, इटली, स्वीडन, आस्ट्रिया, नार्वे, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, हालैंड, पोलैंड, चक गणराज्य, जर्मन, रोमानिया, बल्गारिया, हंगरी आदि राष्ट्र भी हिंदी के संदर्भ में कदापि पीछे नहीं हैं। इंग्लैंड, अमेरिका, मध्य एशिया में भी हिंदी बोलने और समझने वाले अच्छे खासे लोग हैं। दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकन राजभाषा के साथ हिंदी भी बोली जाती है। न्यूजीलैंड में हिंदी चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है।

फ़ीजी: 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन—दक्षिण प्रशांत महासागर के मेलानेशिया मे एक द्वीप देश फ़ीजी जिसे आधिकारिक रूप से फ़ीजी द्वीप समूह गणराज्य के नाम से जाना जाता है। यह न्यूजीलैंड के नॉर्थ आईलैंड से लगभग 2000 किमी उत्तर-पूर्व मे स्थित है। इसके समीपवर्ती पड़ोसी राष्ट्रों मे पश्चिम की ओर वनुआतु, पूर्व में टोंगा और उत्तर मे तुवालु हैं। डच एवं अंग्रेजी खोजकर्तओं ने 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान फ़ीजी की खोज की थी। 1970 तक फ़ीजी एक अंग्रेजी उपनिवेश था। प्रचुर मात्रा मे वन, खनिज एवं जलीय स्रोतों के कारण फ़ीजी प्रशांत महासागर के द्वीपों मे सबसे उन्नत राष्ट्र है। वर्तमान मे पर्यटन एवं चीनी का निर्यात इसके विदेशी मुद्रा के सबसे बड़े स्रोत हैं। यहाँ की मुद्रा फ़ीजी डॉलर है। यहाँ चार आधिकारिक भाषाओँ में से एक हिंदी है। नदरोगा भाषा भी यहाँ बोली जाती है।

फ़ीजी और भारत—फ़ीजी में 322 द्वीप (जिनमें से 106 बसे हुए) और 522 क्षुद्र द्वीप हैं। द्वीप समूह के दो सबसे महत्वपूर्ण द्वीप विती लेवु और वनुआ लेवु हैं। ये द्वीप उष्णकटिबंधीय वनों से आच्छादित पहाड़ी हैं, जिनमें 1300 मीटर (4250 फुट) तक की चोटियाँ हैं। उष्णकटिबंधीय जलवायु के कारण वर्ष भर मौसम गर्म बना रहता है। द्वीप विती लेवु में राजधानी सुवा स्थित है और यहाँ देश की लगभग तीन चौथाई आबादी का निवास है। अन्य महत्वपूर्ण शहरों में शामिल हैं नान्दी (अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा यहाँ स्थित है) और लौतोका (एक बड़ी चीनी मिल और समुद्री-पत्तन यहाँ स्थित हैं)। द्वीप वनुआ लेवु के मुख्य शहरों में लाबासा और सावुसावु प्रमुख हैं। अन्य द्वीप समूहों में तावेउनी और कंदावु जो क्रमशः तीसरा और चौथा सबसे बड़ा द्वीप हैं। मामानुका द्वीप समूह (नान्दी से थोड़ा बाहर) और यसावा द्वीप समूह लोकप्रिय पर्यटन स्थलों मे हैं। लोमाईविती द्वीप समूह, सुवा से बाहर है और दूरस्थ लाउ द्वीप समूह। रोटुमा, द्वीपसमूह के उत्तर में कुछ 500 किलोमीटर (310 मील) की दूरी पर स्थित है और इसे फ़ीजी मे एक विशेष प्रशासनिक दर्जा हासिल है। फ़ीजी के निकटतम पड़ोसी टोंगा है।

फ़ीजी: संस्कृति और भाषा—फ़ीजी के मूल निवासी पोलिनेशियाई और मेलाशियाई लोगों का मिश्रण हैं, जो सदियों पहले दक्षिण प्रशांत के मूल स्थान से यहाँ आए थे। 1879 से 1916 के बीच यहाँ गन्ने के खेतों मे काम करने के लिये ब्रितानी 61000 मजदूरों को भारत से यहाँ लाए थे इसके बाद 1920 और 1930 के दशक मे हजारों भारतीय स्वेच्छा से यहाँ आए। आज यही गिरमिटिया भारतीय फ़ीजी की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। फ़ीजी के मूल निवासी पूरे देश में रहते हैं, जबकि भारतीय मूल के फ़ीजी नागरिक दोनो प्रमुख द्वीपों के शहरी क्षेत्रों और गन्ना उत्पादक क्षेत्रों के पास रहते हैं। स्वदेशी मूल के लगभग सभी ईसाई हैं, जिनमें दो तिहाई मेथोडिस्ट है। भारतीय फ़ीजियों में 77 प्रतिशत हिंदू हैं, 16 प्रतिशत मुस्लिम, 6 प्रतिशत ईसाई के साथ कुछ सिख भी हैं। फ़ीजी की संस्कृति स्वदेशी, भारतीय, चीनी और यूरोपीय परंपरा का प्रचुर मिश्रण है। यहाँ कि संस्कृति अनेक पहलुओं से मिलकर बनी है, जिनमे सामाजिक व्यवस्था, परंपरा, भाषा, भोजन, वेशभूषा, विश्वास प्रणाली, वास्तुकला, कला, शिल्प, संगीत, नृत्य और खेल आदि शामिल हैं।

गिरमिटिया के रूप में पहुँचे भारतीय अवध क्षेत्र के थे। इनके पूर्वज फैजाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर आदि जनपदों से गए थे। इसी कारण यहाँ की भाषा अवधी के रूप में विकसित हुई है और आज स्थानीय प्रभाव के कारण फ़ीजी हिंदी के रूप में प्रचलित है। फ़ीजी की आधिकारिक भाषाओं में से एक फ़िजियन हिंदी या फ़िजियन हिंदुस्तानी है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार की देशज भाषाओं पर आधारित भोजपुरी, जो लगभग 39.3% उत्तर भारतीय प्रवासी जुबान थी, को बिहारी और अवधी, जो लगभग 32.9% प्रवासी जुबान थी, को पूर्वी हिंदी कहा गया। भोजपुरी और अवधी से मुख्य रूप से व्युत्पन्न, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं हिंदी, उर्दू, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी और मलयालम आदि के साथ फ़ीजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द भी समाहित हैं, फ़िजियन हिंदी देवनागरी और रोमन दोनों लिपि में लिखी जाती है। फ़िजियन भारतीयों की पहली पीढ़ी, जिसने इस भाषा को बोलचाल के रूप में अपनाया इसे 'फ़ीजी बात' कहते थे। लगभग 70% लोग यह भाषा बोलते हैं।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 10-12 जनवरी, सन् 1975 ईसवी को नागपुर, भारत में, द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 28-30 अगस्त, सन् 1976 ईसवी को पोर्ट लुई, मॉरीशस में, तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 28-30 अक्तूबर, सन् 1983 ईसवी को नई दिल्ली, भारत में, चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 02-04 दिसंबर, सन् 1993 ईसवी को पोर्ट लुई, मॉरीशस में, पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 04-08 अप्रैल, सन् 1996 ईसवी को पोर्ट ऑफ स्पेन, ट्रिनिडाड एंड टोबैगो में, छठा विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 14-18 सितंबर, सन् 1999 ईसवी को लंदन, यू.के. में, सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 06-09 जून, सन् 2003 ईसवी को पारामारिबो, सूरीनाम में, आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 13-15 जुलाई, सन् 2007 ईसवी को न्यूयार्क, अमरीका में, नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 22-24 सितंबर, सन 2012 ईसवी को जोहांसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में, दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 10-12 सितंबर, सन् 2015 ईसवी को भोपाल, भारत में, ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, दिनांक 18-20 अगस्त, सन् 2018 ईसवी को पोर्ट लुई, मॉरीशस में संपन्न हुआ। मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन को फ़ीजी में आयोजित करने का निर्णय लिया गया था। उसी अनुक्रम में 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन विदेश मंत्रालय द्वारा फ़ीजी सरकार के सहयोग से 15 से 17 फरवरी, 2023 तक फ़ीजी में आयोजित किया जा रहा है।

❑❑

हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

—चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव

सामासिकता और सबको अपने आत्मसात कर लेने की शक्ति ने भारतीय संस्कृति को प्रबल ग्रहणशीलता और प्रवाहमयता दी है। यह सही है कि इस संस्कृति का मूलाधार आर्य संस्कृति रही पर बहुत बड़ा अंश आर्येतर सभ्यता का है, आगमों का है, बौद्ध, जैन और सिक्खों का है। फिर इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रभाव हैं। यह सब मिलकर भारतीय संस्कृति की धारा बनती है, जो आधुनिक काल में इकबाल की प्रसन्न आशंसा का कारण होती है। अंतर्विरोधों की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में यह धारा लंबे समय तक गतिशील बनी रही है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विविध कालों में ऐसे देवता अधिक लोकप्रिय हुए जिनमें अंतर्विरोधों को धारण करने की क्षमता थी। इंद्र में योद्धा और संगीत-प्रेमी, शिव में सबसे बड़े योगी और वैसे ही भोगी, ज्ञानी और भोलानाथ, कृष्ण में प्रेमी, कूटनीतिज्ञ और दार्शनिक के परस्पर विरोधी पक्ष ऐसे घुल-मिल गए हैं कि सहसा उनके विरोधत्व का आभास ही नहीं होता। इन विरोधों और उनकी समरसता के बीच से इस देश के दार्शनिकों और मनीषियों ने जीवन की एक समग्र, समृद्ध और संपूर्ण प्रस्तावना प्रस्तुत करनी चाही है। यही हिंदू धर्म का मूल चरित्र है और हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी इसी चरित्र से जुड़ी है।

भाषाओं के लंबें इतिहास में ऐसी बहुरूपी भाषा का अस्तित्व और कहीं नहीं मिलता। भौगोलिक विस्तार के अनेक जनपदों और उनमें व्यवहृत अठारह बोलियों के वैविध्य को, जिनमें कई व्याकरणिक दृष्टि से एक-दूसरे की विरोधी विशेषताओं से युक्त कही जा सकती हैं; हिंदी भाषा बड़े सहज भाव से धारण करती है। सांस्कृतिक स्तर पर सत्ता को कर्मकाण्ड व्यवस्थित और स्थापित करते हैं जबकि हिंदी आत्मा को वह आध्यात्मिक चेतना वाणी प्रदान करती है जो सत्ता के इन तमाम रूपों को साहसपूर्वक चुनौती देती रही है। यह आध्यात्मिक चेतना मूलतः समन्वयवादी है, परंतु यह जो समन्वय लाती है वह लाक्षणिक न होकर तात्विक है। वह विविध देवी-देवताओं या ईश्वर और अल्लाह को एक दूसरे के बगल में बिठाकर समन्वय नहीं करती, वह चेतना की मानवीय भूमि पर, मनुष्य को सर्वोपरि मानने की आधार भूमि पर खड़ी होकर समन्वय करती है। यह तात्विक समन्वय ही वास्तविक धर्म

निरपेक्षता है। उसमें धर्म शेष नहीं बचता। वह न हिंदू को हिंदू रहने देता है, न मुसलमान को मुसलमान। इसके उलट वह जो धार्मिक समन्वय है, वह धर्म की मानवीय जमीन की बात करके धर्म को बचाता है। वह कहता है कि एक अच्छा हिंदू और एक अच्छा मुसलमान, दोनों अपनी-अपनी जगह अच्छे हैं। इन दोनों बातों के फर्क को समझना जरूरी है क्योंकि उसके आधार पर हिंदी के उद्‌भव और विकास की सांस्कृतिक व्याख्या संभव है।

भारतीय संस्कृति को समग्रता में हिंदू संस्कृति से समीकृत किया जा सकता है। हमारा आग्रह यही है कि हिंदू संस्कृति इस देश की सबसे प्रधान और व्यापक संस्कृति है। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का जो व्यापक चित्र हिंदुओं के साहित्य में उपलब्ध होता है वैसा किसी दूसरी जाति या धर्म के साहित्य में नहीं। यह एक विशाल सांस्कृतिक धारा है, जिसे अनेक उपधाराओं ने पुष्ट एवं संपन्न किया है। इसलिए यह आभाणक लोक मे प्रसिद्‌ध है कि 'संस्कृते संस्कृति रस्ति' इति। यह ऋषिओं और मुनियों की संस्कृति है। इसके प्रवाह मे शक, हूण, यवन, पठान, मुगल, अरब सबने अपनी-अपनी उपधाराओं के जल मिलाए फिर भी पुण्य भागीरथी की तरह इसकी मूल धारा अविच्छिन्न है। सभी जल एक हो गया है। इसमें पश्चिम का विराट प्रवाह भी आ मिला है और इसमें समाहित हो गया है।

सिंध नदी को सिंधु कहते थे। उसके आसपास की भूमि को 'सिंधु' कहते थे। हिंदी शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु' से माना जाता है। यह सिंधु शब्द ईरानी में जाकर हिंदू और फिर हिंद हो गया ओर इसका अर्थ हुआ- सिंध प्रदेश। 'हिंद' शब्द धीरे धीरे भारत का पर्यायवाची शब्द बन गया। इसी में ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' बना है जिसका अर्थ है 'हिंद का'। हिंदी 'हिंदीक' का तद्‌भव रूप है जिसका अर्थ है 'हिंद का'। यों यह विशेषण है जो संज्ञा के रूप में भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भाषा के रूप में हिंदी के वास्तविक अस्तित्व में आने का समय 1000 ई. माना जाता है। यों सहस्त्र वर्षों की विपुल साहित्य राशि हिंदी में विद्‌यमान है। जैसे संस्कृत प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति की वाहक रही, जन्म संस्कार से मृत्यु संस्कार तक के विधि निषेधपरक संस्कारों की माध्यम रही, वैसे ही भारत-भारती हिंदी आधुनिक भारतीय जीवन की गतिविधियों की वाहक रही है, इसमें कोई संदेह नहीं। हिंदी साहित्य में भारतीय जनजीवन के अनेक पहलुओं का विविध एवं व्यापक चित्र उपलब्ध होता है। भारतीय साहित्य में उक्त विशेषताओं का उल्लेख पाया जाता है, क्योंकि शताब्दियों से मध्य प्रदेश की संस्कृति परिलक्षित होती है, जो 'लोके चव बेदे च' रूप में वैदिक धारा के रूप में एवं लौकिक धारा प्राचीनकाल से भारत में चलती आ रही है जो भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य में मुखरित है।

वैदिक विचारधारा ही वास्तविक भारतीय संस्कृति है। राजशेखर की दृष्टि में रामायण और महाभारत इतिहास के अंतर्गत आते हैं। पुराणों में प्राचीन आख्यानों की विशेषता रही है। रामायण महाकाव्य है जो कर्मप्रधान है 'महाभारत' इतिहास है, जो ज्ञान प्रधान है। भागवत पुराण है जो भक्ति प्रधान है। ये तीनो भारतीय साहित्य के उपजीव्य काव्य हैं जिनमें भारतीय कवियों ने अपने विषय के लिए एवं काव्य शैली के लिए सतत् स्फूर्ति ग्रहण की है और आज भी कर रहे हैं।

दक्षिण के अनेक वैष्णव आचार्यों ने वृंदावन को अपना केंद्र बनाकर भागवत माहात्म्य की उस वृद्धा भक्ति की कथा को सार्थक कर दिया है जो ज्ञान वैराग्य रूपी अपने शाश्वत पुत्रों को लेकर द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, गुजरात में बूढ़ी हुई किंतु वृंदावन तक आते-आते 'नवीनेव सुरूपिणी' हो गई। उसी भक्ति का नवोन्मेष हिंदी भाषी क्षेत्रों में सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, जायसी जैसे सांप्रदायिकता रहित उदार एवं उदात्त प्रेम भाव से परिपूर्ण संतों की वाणी हिंदी साहित्य को दे गया। कश्मीर की समृद्ध काव्यशास्त्रीय परंपरा संस्कृत से होती हुई हिंदी तक आई और रीति काव्य के रूप में सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति से युक्त अद्भुत मुक्तक साहित्य दे गई। रसखान, रहीम, जायसी जैसे कवियों की रचनाओं को देखकर कहीं यह नहीं लगता कि हिंदू और मुसलमान के बीच में कभी कोई सांप्रदायिक वैमनस्य रहा हो। रामचरितमानस की प्रशस्ति में लिखा गया रहीम का यह दोहा, जो मानस के गुजराती अनुवादक द्वारा उद्धृत किया गया है, साहित्य के स्तर पर मानवीय एकता का असाधारण उद्घोष करता है।

रामचरितमानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिंदुआन को वेद सम, जवनहि प्रकट क़ुरआन।

यह रहीम का ही साहस था कि मानस जैसे काव्य ग्रंथ पर रीझकर उन्होंने उसे अपने लिए क़ुरआन के समान प्रिय मान लिया। कृष्ण भक्ति और राम भक्ति ने भाषा भेद, जाति भेद, संप्रदाय भेद तथा प्रदेश भेद सबका अतिक्रमण किया है और भक्ति के जिस स्वरूप की स्थापना इन्होंने की, उसमें ऊँच-नीच और छुआछूत का कहीं कोई स्थान नहीं है।

सूर ने लिखा है—

बड़ी है राम नाम की ओट।
बैठत सभा सबै हरि जू की कौन बड़ो को छोट॥

इसी तरह हरिराम व्यास ने लिखा—

भगति में कहाँ जनेऊ जाति।

तुलसी जो भुजा उठाकर इस बात का राम के द्वारा उद्घोष कराते रहे कि राम नाम सबको पावन करने में सक्षम है—

स्वपच, सबर, खस, जमन जड़, पावन कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात॥

उन्होंने यह भी लिखा है—

भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी॥

प्रारंभ से ही हिंदी साहित्य ने जिस आदर्श को प्रतिष्ठित किया वह सांस्कृतिक एकता, मानवीय समता तथा सारे संसार को अपने भावनात्मक विस्तार में समेट लेने की, देशव्यापी ही नहीं, विश्वव्यापी सामासिक चेतना से युक्त हो रहा है। महाराजा छत्रसाल के गुरु महामति प्राणनाथ ने खड़ी बोली हिंदी में कुरआन तथा इतर धर्मग्रंथों के श्रेष्ठ तत्वों का ज्ञान प्रस्तुत करके जो समन्वय किया है वह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संस्कारों में प्रकट होकर स्वतंत्रता संग्राम का सशक्त हथियार बना। स्वामी प्राणनाथ के द्वारा 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' की भावना कबीर से अधिक प्राणनाथ की देन है। कबीर की तरह ही प्राणनाथ ने भी धर्मों के आडंबरों और संकीर्णताओं की आलोचना भी की।

हिंदी मुसलमान रे फिरंगी के जाने होदी बोदी जैन अपार।
बादें सों बोध बधारिया करि अगनी उदेकार॥

श्री नानकदेव द्वारा समर्थित एवं सम्मानित संत वाणियों का संग्रह व्यापक हिंदी भाषा की विविध छवियों से युक्त गुरु ग्रंथ साहब पहला धर्म ग्रंथ है, जिसने हिंदी को इतना बड़ा गौरव प्रदान किया। रामचरितमानस अवधी की काव्य रचना होकर भी सारे भारत में धर्म ग्रंथों की तरह पूजित हुआ और आज देश-विदेश की अनेकानेक भाषाओं में उसके अनुवाद उपलब्ध हैं। लोकप्रियता की दृष्टि से बाइबिल के बाद मानस का स्थान आता है, किंतु बाइबिल काव्य ग्रंथ नहीं है, जबकि मानस एक अत्यन्त उत्कृष्ट काव्यग्रंथ है। तुलसी कृत 'रामचरितमानस' समन्वय की विराट चेष्टा है। सबलसिंह चौहान नें दोहा चौपाइयों में महाभारत का अनुवाद किया था। 'जय भारत' महाभारत की कथा का हिंदी रूपांतर है। 'सूर सागर' संस्कृत भागवत का अविकल अनुवाद ही नहीं वरन् उच्च कोटि का काव्यग्रंथ है। भागवत महापुराण भारतीय साहित्य के गीति काव्यों और प्रगति मुक्तकों का अक्षय स्रोत है। भारतवर्ष में रामायण, महाभारत एवं भागवत की कथा लंबी अवधि तक चलती रही है। इस विषय में सांस्कृतिक परंपराओं की अखंडता एवं सार्वदेशिकता आश्चर्यजनक है। हिंदी के भक्त कवियों की सगुण साधना वैदिककाल से प्रवहमान भक्ति का ही एक रूप था। अवतारवाद की कल्पना के साथ-साथ भारत देश में सगुण भक्ति के व्यापक भक्ति-भाव को स्थान मिल गया है और इसके विभिन्न रूप और प्रकार विकसित होने लगे थे। संत काव्यधारा के दार्शनिक, सांस्कृतिक आधार अनेक हैं, जिनमें से प्रमुखतया उल्लेखनीय हैं उपनिषद, शंकर का अद्वैत दर्शन, नाथ-पंथ, इस्लाम धर्म तथा सूफी दर्शन। संतों के चिंतन जीवन दर्शन एवं काव्यधारा पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव है। मुल्ला दाउद, जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान, शेख नबी आदि सूफी कवियों के काव्य तथा हिंदू कवियों में नंददास, नारायणदास आदि की रचनायें, आध्यत्मिक प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में प्रमुख हैं। दक्खिनी हिंदी में भी प्रेमाख्यान काव्य परंपरा विरचित आख्यान काव्य उपलब्ध होते हैं। निजामी मुल्ला बजही, गवासी, तबई आदि दक्खिनी हिंदी के प्रमुख कवि हैं। रीतिकाल में विलासता पूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक हुई थी। रीतिकाल कवियों ने काव्य को शुद्ध कला के रूप में स्वीकार किया। भारतेंदु युग के कवियों में हिंदी के प्रति राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट निष्ठा थी। द्विवेदीयुगीन काव्य सांस्कृतिक

पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण सुधार एवं उच्चादर्श का काव्य है। गुप्त जी की ख्याति का मुख्य कारण 'भारत भारती' है, जिसने हिंदी भाषियों में जाति और देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाएँ उद्दीप्त की है। 'कामायनी' में मानव सभ्यता के विकास का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। आध्यात्मिक सत्य पर पंत की आस्था बनी हुई है, किंतु वह भौतिक समृद्धि की अनिवार्यता को स्वीकार करती है। निराला में पुनर्जागरण के प्रभाव के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय परंपरा के प्रति निष्ठा का भाव है। प्रसाद ने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव गायन के लिए नाटकों की रचना की थी। प्रेमी जी ने भारतीय इतिहास के मुस्लिम को अपने नाटकों का मुख्य विषय बनाया और हिंदू मुस्लिम एकता पर उनका ध्यान अधिक रहा। छायावादी कविता में राष्ट्रप्रेम और सांस्कृतिक गरिमा का चित्रण हुआ है। महादेवी की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवाद से संबलित हैं। प्रगतिवादी कवि जन जीवन में सौंदर्य की खोज करते हैं। प्रयोगवादी कविता लघु मानव की हीनता एवं महत्ता का चित्रण करती है। नई कविता में क्षणों, अनुभूतियों का सच्चा प्रतिबिंब है। लोक जीवन की ओर नई कविता उन्मुख होती है। पंत कृत 'लोकायतन' में स्वाधीनता पूर्वोत्तर भारतीय जीवन की बाँकी झाँकी है। आज की कविता में जीवन की विषम संवेदनाएँ एवं बोध हैं। इसमें जीवन की विविध एवं गहरे रूप अंकित हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के विकास में केवल युगीन चेतना का विकास ही नहीं वरन् पूर्ववर्ती परंपराओं का न्यूनाधिक योगदान रहा है।

व्यष्टि और समष्टि का घनिष्ठ संबंध है। इसका दूसरा रूप है मानव और मानवता का संबंध। व्यक्ति स्वार्थी है पर परार्थ चिंतन में भी लगा रहता है। मानव अपने जीवन का उत्सर्ग परिवार की भलाई के लिए करता है। परिवार समाज की भलाई के लिए, समाज जाति की भलाई के लिए, जाति देश की भलाई के लिए तथा देश विश्व की भलाई के लिए, विश्व मानवता की भलाई के लिए उत्सर्ग करता है। मानवता का आधार है करुणा और मैत्री। दूसरों के दु:ख को देखकर दुखी बनना करुणा है, दूसरों के सुखों को देखकर सुखी बनना मैत्री है। हिंदी साहित्य का इतिहास आदिकाल से ही मानवता का उन्नायक रहा है। आदिकालीन साहित्य जन जीवन की अनुभूतियों से अनुप्राणित है। यह भीड़ का साहित्य नहीं है। इसमें एक ओर नारी और युद्ध पर आधारित लोककाव्य की प्रवृत्तियाँ हैं, तो दूसरी ओर एक स्वतंत्र जाति के अहंकार की भावराशि है। गोरख वाणी में इंद्रिय-निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, मन: साधना, शून्य समाधि आदि व्यक्गित साधना का वर्णन है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता है। निगुर्ण भक्ति में गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कबीर की दृष्टि में पंडित वही है जिसने प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ लिए हैं।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

संत काव्य का प्रेरणा स्रोत था – सामान्य मानव का हित साधन। अत: संत कवियों ने समाज कल्याण का मार्ग अपनाया। वैष्णव भक्ति का वैशिष्ट्य अनेक रूपों में हिंदी साहित्य में प्रतिबिंबित

हुआ। 'रामचरितमानस' में व्यक्ति और समष्टि का संतुलन दिखाया गया है। सूरदास पुष्टिवाद के उन्नायक थे। तुलसी के राम शील, शक्ति और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति थे। सूफी साधना में भी गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेममार्गी जायसी कहते हैं–

गुरु सुआ जई पंथ देखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

सांसारिक प्रपंच से ऊपर उठकर अलौकिक सत्ता की प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है। काम, क्रोध आदि सब साधना में अड़चनें डालते हैं। मुस्लिम कवियों में कुछ कवि सूफी मतानुयायी थे। सूफी साधना का विकास इस्लाम के परिधान में माना जाता है। सूफियों के लिए त्याग का बड़ा महत्व है। त्याग ही आत्मसमर्पण की भावना को उत्पन्न करता है। फना में साधक के गुण, कार्य और चेतना ईश्वर के गुण, कार्य एवं चेतना का रूप धारण करते हैं। प्रस्तुत युग में एक नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण गृहीत हुआ, सामान्य मानव के गौरव की प्रतिष्ठा पहली बार इसी युग में हुई। छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पनाप्रधान है। यह अनुभूति के स्तर पर मानव मात्र की एकता की स्थापना करने में समर्थ हुआ है। 'कामायनी' में मनुष्य की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं की अनेक रूपता का वर्णन है। छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ सामाजिकता से प्रतिबद्ध भी रहा है। प्रेम और मस्ती के कवियों में यथार्थ की अधिक सशक्त अभिव्यक्ति मुखरित हुई है। महादेवी ने सर्ववादी दर्शन को अपनाया है, जिसमें लोक कल्याण की भावना निहित है। प्रगतिवाद वर्तमान जन जीवन में सौंदर्य खोजता है। प्रयोगवादी कविता में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गी समाज का चित्रण है। ये मध्य वर्ग के व्यक्ति के मन के सत्यों का उद्घाटन करते हैं। नई कविता का नाम स्वतंत्रता के बाद लिखी गई कविताओं के लिए रूढ़ हो गया। नई कविता जीवन के प्रत्येक क्षण को सत्य मानती है। अत: नई कविता में क्षणों की अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण है। आज की कविता में कुछ और विद्रोही पीढ़ी की कविताएँ हैं। आज की कविता में एक ओर व्यक्तिगत पीड़ा का अंकन है, तो दूसरी ओर विषमता का विद्रोह करने का आक्रोश भी है।

भारत भूमि सुजला एवं सुफला है, अत: सुखदा एवं वरदा है। प्रकृति संस्कृति का मूलाधार है। प्रकृति तीन गुणों से बनती है। वे हैं- सत्व, रज एवं तम। भारत सात्विक गुण भावना प्रधान देश है, अत: यहाँ की संस्कृति उच्चतम एवं सुखमय होती है। इसी सात्विक गुण के कारण भारत में अनंत काल से आध्यात्मिकता का प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। उपनिषद की अवतारणा इस देश में हुई है। यह ऋषि मुनियों की धर्मभूमि है। भारतीयों ने पृथ्वी को माता का पद प्रदान कर आदर भाव व्यक्त किया है। यों उसे हमने गरिमा प्रदान की है। इसलिए भारत के सामने नतमस्तक होकर अवनत होते हैं। हिंदी साहित्य में प्रकृति के विभिन्न स्वरूप उभर आये हैं। वीरगाथाकालीन काव्यों में एक ओर भुजाओं को फड़काने वाले वीररस की व्यंजना है, तो दूसरी ओर शृंगार की सहज सरसता दिखाई देती है। कहीं कहीं धार्मिक प्रवृत्तियों का सात्विक चित्रण भी मिलता है। रासोकारों ने प्रकृति के रमणीय चित्र प्रस्तुत करके भाव

चित्रण को सौंदर्य प्रदान किया है। वसंत विकास में स्त्री पुरुष प्रकृत तीनों में प्रस्फुटित मदोन्मत्तता का चित्रण मिलता है। प्रेमाख्यान काव्यों में प्रकृति के विभिन्न दृश्यों एवं ऋतुओं का वर्णन है। मीरा, रहीम, रसखान आदि कवियों की रचनाओं में प्रकृति प्रेम उदात्त भूमि पर मिलता है। सेनापति का प्रकृति वर्णन शुद्ध आलंबन का वर्णन है, जिसमें प्राकृतिक उपादान सजीव हो उठे हैं। प्रत्येक ऋतु में उठने वाले लोक मानस के सहज भाव छंदों में तरंगित हो उठते हैं। इनके ग्रीष्म एवं वर्षा के वर्णन सुंदर ही नहीं वरन् अत्यंत प्रभावशाली भी हैं। वृंद ने बसंत और हेमंत ऋतुओं का विशद वर्णन किया है। द्विजदेव का प्रकृति प्रेम स्वछंद है। प्रकृति सौंदर्य का स्वछंदतापूर्ण वर्णन भारतेंदुयुगीन कविता की अंगभूत विशेषता है। किंतु अधिकतर कवियों ने परंपरा निर्वहन ही किया है। द्विवेदी युग में प्रकृति स्वतंत्र रूप से काव्य का विषय बनीं। इस प्रकृति चित्रण में प्रकृति स्थूलता है एवं कल्पना वैभव का अभाव है। फिर भी उसमें ताजगी है, नवीनता है। छायावादी कवियों ने चेतन सृष्टि के विविध रूपों के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। इन्होंने प्राकृतिक चित्रण में सूक्ष्म, संश्लिष्ट एवं नवीन उद्भावनाएँ की हैं। इनकी प्रकृतिगत दृष्टि में ताजगी और नवीनता है। यहाँ आकर जड़ और चेतन का द्वैत मिट गया है। महादेवी के अनुसार सृष्टि एक असीम सत्य की सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति है, इसलिए सृष्टि के प्रति प्रेम और मूल सत्य के प्रति प्रेम में समानता है। 'लोकायतन' में जहाँ प्रकृति के चित्र आये हैं, वहाँ कविता बिंबात्मक एवं रससिक्त हो उठी है। नई कविता में प्रकृति की रंगमयता है। यों हिंदी के कवि प्रकृति के अनेक विधि रूपों के साथ मनुष्य जीवन के विभिन्न स्वरूपों को चित्रित करनें में सक्षम रहे हैं। उनके पास प्रकृति के सौंदर्य को ग्रहण करने की ही नहीं, उससे अपनी अभिव्यंजना को समर्थ बनाने की प्रतिभा भी विद्यमान है।

मनुष्य की विकसित अवस्था है। जगत गतिशील है। विकास गति सापेक्ष है। गति तीन प्रकार की होती है- अधः ऊर्ध्व और तिर्यक। अधोगति के लिए परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। अन्य दो गतियाँ सायास होती हैं। इन दो गतियो का विवेचन हिंदी साहित्य में हुआ है। देव तीन प्रकार के होते हैं- दिव्य, अप्य तथा पार्थिव। मानव में इन देवों के अंश विद्यमान हैं। हाथ-पैर आदि इंद्रियाँ पार्थिव देवों में, मन, मति आदि अप्य देवों में तथा मेधा, प्रज्ञा आदि दिव्य देवों में परिगणित होते हैं। पवित्र मन दैवी कहलाता है। दैवी मन ही हमें दिव्य बुद्धि की ओर ले जाता है। मेधा महती शक्ति है। इससें दिव्यता आत्मसात् होती है। वह प्रज्ञा में स्थिर हो जाती है। देव प्रकाश के प्रेमी हैं। वे अंधकार से ज्योतिर्मय मार्ग की ओर चलते हैं। देव अमृत रूप हैं। देव की विशेषता दिव्यता है। ऐश्वर्य ईश्वर का भाव है। ऐश्वर्य के ऊपर दिव्यता है। हिंदी साहित्य में ऐश्वर्य एवं दिव्यता का उल्लेख अनुस्यूत है। मध्य युग के संत कवि ईश्वर की सत्ता और सर्वशक्तिमत्ता में अटूट विश्वास रखते थे। संत संप्रदाय विश्वधर्म है। इस विश्वधर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। प्रेमाख्यान धारा के कवि आध्यात्मिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम का वर्णन करनें में कवि कर्म की सार्थकता मानते थे। सूफी संप्रदाय में आत्मा सदैव परमात्मा की प्राप्ति के लिए व्याकुल रहती है। इस व्याकुलता में ईश्वर का प्रेम ही उसका एक मात्र संबल है। मीरा, रहीम, रसखान, सेनापति आदि कवियों की रचनाओं में भक्ति, ईश्वर प्रेम जिस

उदात्त भूमि पर मिलता है, वह अत्यंत दुर्लभ है। मध्य युग में राम, कृष्ण एवं शिव भक्ति का प्रचार बड़े उत्साह और भावना के साथ हुआ। महादेवी ने मध्यकालीन रहस्य-साधना की परंपरा को स्वीकार किया और युगबोध के अनुरूप लोक मंगल की भावना को स्वीकार किया तथा युगबोध के अनुरूप लोक मंगल की भावना को जोड़कर नए आयाम का उद्घाटन किया। डॉ. रामकुमार वर्मा की रचनाओं में सर्ववादी चेतना को व्यक्त करने का प्रयास दिखाई देता है।

भारतीय संस्कृति में समन्वय की विराट चेष्टा परिलक्षित होती है। भारतीय साहित्य इसका अपवाद नहीं है। संत काव्यों में समन्वय दृष्टि का स्वस्थ रूप से विकास हुआ था। अद्वैतवाद, वैष्णवधर्म, सिद्धों-नाथों की सरल सहज साधना आदि का समन्वय इन्होंने किया था। यह समन्वय भावना सर्वसुलभ होने के कारण सामाजिक स्तर पर भी सुलभ ग्राह्य बन गई थी। सूफी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास किया है। काव्य के माध्यम से भावात्मक एकता का यह प्रयास हिंदी भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। 'रामचरितमानस' समन्वय काव्य है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "उसमें केवल लोकशास्त्र का ही समन्वय नहीं है गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण एवं काव्य का, भावावेश एवं चिंतन का समन्वय है। 'रामचरितमानस' में आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।" छायावादी कवियों ने भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृतियों के समन्वय का यत्न किया है, यही नहीं व्यक्ति व्यक्ति और समाज में समन्वय का प्रयास किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने इस सत्य का उद्घाटन किया है कि आध्यात्मिकता और सामाजिकता का समन्वय जीवन के चतुर्दिक विकास के लिए अनिवार्य है। राष्ट्रीय कवियों में भगवद्शक्ति और लोक कल्याण की भावनाओं में समन्वय का प्रयास दिखाई देता है। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में एक ऐतिहासिक प्रसंग के द्वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। पंत ने 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कृतियों में भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय ढूँढा है। महादेवी ने अनुभूति को विचार से समन्वित करने का प्रयास किया है। 'आँसू' में व्यक्तिगत निराशा एवं विश्व वेदना का सुंदर संतुलन है। 'कामायनी' में नारी पुरुष का, धर्म एवं विज्ञान का, शास्त्र एवं लोक का, हृदय एवं बुद्धि का संतुलन अंकित है। दिनकर की कविता में संवेदना और विचार का बड़ा ही सुंदर समन्वय दिखाई पड़ता है। सियारामशरण की कविता में करुणा और यातना का समन्वित रूप उभरा है। 'उन्मुक्त' आधुनिक संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। इसमें युद्ध और त्याग का, यातना एवं करुणा का समन्वय है। प्रेम और मस्ती के काव्य में व्यक्ति-चेतना एवं अहं केंद्रित भावना का समन्वय है। प्रेम जी ने अपने नाटकों में हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया है और दोनों हृदयों को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया है।

हिंदी साहित्य साहित्यकारों की व्यक्तिगत प्रतिभा के बल पर, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परंपराओं की भित्ति पर युगीन परिस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं चेतना से परिपुष्ट होकर, द्वंद्व से प्रेरित

होकर गतिशील होता आया है, जिसका परम लक्ष्य संतुलन की स्थापना में निहित है। यह सच है कि हिंदी मध्य प्रदेश की भाषा है परंतु मध्य प्रदेश की भाषा ही भारत की सार्वभौमिक भाषा रही है। यह कोटि-कोटि जनों की अमृतवाणी है। फिर भी आज हिंदी के तीन रूपों की चर्चा बड़े जोरों पर है- राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा। पर आश्चर्य की बात है कि हिंदी के किसी भी रूप का आज तक स्थिरीकरण नहीं हुआ है क्योंकि राजनीति का भूत इसका पीछा कर रहा है। आजकल भी इसे मात्र क्षेत्रीय भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। गांधी जी का सपना था—

एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो,
एक हृदय हो भारत जननी।

हिंदी भारतीय हृदय की वाणी है। यह भारत भारती है, जिसमें भारतीय आत्मा मुखरित हो रही है। आंध्र भारती, केरल भारती, तमिल भारती, कन्नड़ भारती आदि भारतीय भाषाओं की वाणी इसमें मुखरित हो यही हमारा दृढ़ संकल्प होना चाहिए। हिंदीतर भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद लिप्यंतरण सहित हिंदी में हो तो हिंदी परिपुष्ट होगी। यह राष्ट्रीय प्रश्न है, भावात्मक एकता का प्रश्न है। संकल्प शुद्धि का सात्विक परिणाम ही क्रिया सिद्धि है। हमें इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए, तन, मन, धन से प्रयत्न करना चाहिए।

❑❑

"दक्षिण भारत में हिंदी के बढ़ते कदम"

—योगेन्द्र शर्मा "अरुण"

सारांशः

वैदिक काल से ही भारत वर्ष को एक अखंड भू-भाग के रूप में माना गया है, इसीलिए किसी भी पवित्र कर्म के लिए 'संकल्प-विधान' करते हुए हम सदैव "जम्बू द्विपे भरतवर्षे भरतखंडे" का उच्चारण करते आए हैं। यही क्यों, हमने तो अपने जल-कलश में "गंगे च यमुने चौव, गोदावरि सरस्वती, नर्मदे, सिंधु, कावेरी, जलेस्मिन सान्निधिं कुरु" का आह्वान करके समग्र भारत की मुख्य प्राणदायिनी नदियों को अपनी प्रार्थना में सम्मिलित कर लिया है। मेरे कहने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि मेरा भारत सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से सदा "एकत्व" का पक्षधर रहा है। साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो हम पाएँगे कि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' और महर्षि वेद व्यास प्रणीत 'महाभारत' के प्राण-पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की कथा उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम अर्थात समग्र भारत वर्ष में लोकप्रिय रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो दार्शनिकों और पंडितों के हृदय सम्राट जगद्गुरु आदिशंकराचार्य दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में पैदा हुए और उन्होंने पूरे भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए "चार पीठ" स्थापित की थी। इसी प्रकार तमिलनाडु के स्वामी रामानुजाचार्य, कर्नाटक के स्वामी मध्वाचार्य आदि अनेक वैष्णव आचार्यों ने पूरे भारत में भ्रमण करके धार्मिक एकता के साथ ही साथ "भक्ति-आंदोलन" की आधारशिला भी रक्खी थी।

"हिंदी ही भारत को जोड़ने की सामर्थ्य रखती है"—भाषा विज्ञान के अध्येताओं का सर्वमान्य मत यह रहा है कि हिंदी ही ऐसी एकमात्र भारतीय भाषा है, जो संपूर्ण देश में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो कई बार कहा भी कि भारत को एकता के सूत्र में बांधने वाली भाषा हिंदी ही "राष्ट्रभाषा" होने का गौरव पा सकती है। विश्व भर में जो भी राष्ट्र स्वाधीन हुए हैं, उन्होंने अपनी भाषा को ही "राष्ट्रभाषा" घोषित किया और विकास

की ऊँचाइयों को छुआ है। हमारा यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि स्वाधीनता के बाद जब 'संविधान सभा में राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर चर्चा होने लगी, तो अंग्रेजी मानसिकता के कुछ राजनेताओं ने 15 वर्षों के लिए हिंदी के साथ अंग्रेजी में भी राजकाज करने का प्रावधान संविधान में रखवा कर सबकी आकांक्षाओं को दबाकर "हिंदी" को "राजभाषा" के रूप में स्वीकृति दिलवा दी। इसके बाद, यह 15 वर्षों की अवधि बार-बार बढ़ाई जाती रही और पूरे भारत को एकता के सूत्र में पिरो देने की क्षमता रखने वाली "हिंदी" अपने ही राष्ट्र में "सहभाषा" बनकर रह गई।

भाषा विज्ञानियों का सर्वमान्य मत यह रहा है कि विश्व की समस्त भाषाओं की तुलना में "हिंदी" पूर्णत: वैज्ञानिक भाषा है, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस भाषा में "जो बोला जाता है, वही लिखा और पढ़ा भी जाता है, जबकि अन्य भाषाओं में यह गुण नहीं मिलता। संस्कृत से होकर मध्यकालीन आर्य भाषाओं, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से विकसित होती हुई "आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं" में हिंदी ही सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा बन गई है। इधर तो राजनीति में भी सुखद परिवर्तन हुए हैं और प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने जब "संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में स्वर्गीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी को भेजा था, तो उन्होंने संयुक्त राष्ट्र सभा के अधिवेशन में अपना व्याख्यान "हिंदी भाषा" में देकर पूरे विश्व मे हिंदी की ध्वजा फहराई थी। उनके बाद विदेश मंत्री के रूप में स्वर्गीय श्रीमती सुषमा स्वराज ने अपना भाषण "हिंदी भाषा" में दिया था, तो संयुक्त राष्ट्र महासभा में जैसे तहलका ही मच गया था। सन् 2014 में जब भारत की राजनीति में ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ और श्री नरेन्द्र भाई मोदी प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए, तो लगा कि हिंदी के सौभाग्य का सूर्य उदय हो गया है। अब भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी जब विदेश यात्रा पर जाते हैं, तो उनके हिंदी में दिए जाने वाले भाषण का अनुवाद उन देशों की भाषाओं में होता है, तो पूरे भारत के साथ "हिंदी भाषा" का गौरव भी बढ़ता है। हमें विश्वास है कि आने वाला समय भारत के साथ-साथ पूरे विश्व मे हिंदी भाषा के वर्चस्व का होगा।

स्मरणीय है कि भारत के स्वाधीनता आंदोलन में उत्तर और दक्षिण तथा पूरब और पश्चिम का कोई भेद न मानते हुए, समग्र भारत का जन-जन एक होकर पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के लिए सन्नद्ध हो गया था। भारत के लिए खेद की बात यह है कि जो भारत आदि शंकराचार्य के युग में एकत्व की डोर में बंधा हुआ था, उसी भारत को राजनीति के कुत्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए "भाषा" के आधार पर बाँटने का प्रयास, कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा किया गया और उस "हिंदी" को इसका आधार बनाया गया, जिसके प्रचार-प्रसार के लिए स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मद्रास में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" की स्थापना की थी। यही नहीं, पूज्य महात्मा गांधी के सुपुत्र श्री देवदास गांधी इस के पहले "हिंदी प्रचारक" बने थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा स्थापित "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" का उद्देश्य वाक्य भी अत्यंत प्रेरक और विलक्षण के साथ अत्यंत अर्थवान है। वह ध्येय वाक्य है - "एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो, एक हृदय हो भारत-जननी" और इसी ध्येय के बीच

"तीन हृदय परस्पर जुड़ें हुए" दिखाए गए हैं, जो वस्तुतः भारत की "हिंदी" की प्रतिष्ठा का स्वर्णिम स्वप्न रहे हैं। ये तीन हृदय हैं- 1. क्षेत्रीय हृदय, 2. राष्ट्र हृदय और 3. विश्व हृदय।

सच तो यही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तो हिंदी को "क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर" फलते-फूलते देखने का सपना संजोए हुए थे, लेकिन राजनीति की शतरंज के धूर्त खिलाड़ियों ने क्षुद्र स्वार्थों को साधने के लिए "हिंदी" के नाम पर भारत को बाँटने का षड्यंत्र रचा, जो धीरे-धीरे अब भारतवासियों की समझ में आ गया है और दक्षिण भारत में भी अब "हिंदी" का प्रचार-प्रसार द्रुतगति से हो रहा है। मैं दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के बढ़ते हुए वर्चस्व और प्रभाव का यहाँ संक्षेप में उल्लेख करना चाहूँगा, ताकि पाठकगण यह जान सकें कि आज भारतीय संस्कृति और धार्मिक परंपराओं के प्रभाव से दक्षिण के चारों राज्यों में हिंदी खूब फलफूल रही है और यहाँ उच्चतर कक्षाओं के साथ ही हिंदी भाषा और साहित्य में शोधकार्य संपन्न हो रहे हैं।

"दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास"—सन् 1918 के मार्च महीने में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का वार्षिक अधिवेशन इंदौर में हुआ और गांधी जी इसके अध्यक्ष बने, तो दक्षिण भारत में भी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराने के लिए इसके प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। यहीं महात्मा गांधी ने कहा कि गुजराती, मराठी, बंगाली भाषा-भाषियों के लिए तो हिंदी सीखना सरल है, लेकिन 'द्रविड़ भाषा-भाषियों' के लिए यह कठिन है। तभी गांधी जी ने "हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग" से दक्षिण में हिंदी का प्रचार करने का अनुरोध किया और इसके लिए पर्याप्त धन की माँग भी की। आश्चर्य की बात यह थी कि महात्मा गांधी के अनुरोध पर तत्कालीन इंदौर नरेश सेठ हुकुमचंद जी ने तुरंत दस-दस हजार रुपयों की थैलियाँ गांधी जी को भेंट कर दी। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि सन् 1918 के मई के प्रथम सप्ताह में मद्रास के "गोखले हॉल" में हिंदी वर्ग का शुभारंभ हुआ, जिसका उद्घाटन 'होमरूल लीग के कार्यालय में डॉ. एनिबेसेंट ने किया और समारोह की अध्यक्षता सर सी. पी. रामस्वामि अय्यर ने की थी। यहाँ से गांधी जी के पुत्र देवदास गांधी "पहले हिंदी प्रचारक" बने। अगस्त 1918 में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को यहाँ हिंदी पढ़ाने के लिए "सम्मेलन" द्वारा भेजा गया। हिंदी के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित स्वामी सत्य देव परिव्राजक ने "हिंदी की पहली पुस्तक" के नाम से पाठ्य-पुस्तक तैयार की, जो दक्षिण में हिंदी-शिक्षण की आधारशिला बनी। काका कालेलकर, पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे अनेक हिंदी-सेवियों के अथक परिश्रम से दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार को समर्पित इस "सभा" को सन् 1964 में भारत की संसद ने एक "विधेयक" के द्वारा "राष्ट्रीय महत्व की संस्था" (An Institution of National Importance) घोषित किया और यहाँ उच्च शिक्षा के साथ हिंदी भाषा और साहित्य में शोध के द्वार भी खुल गए। इस संस्था की "स्वर्ण जयंती" 29-30 अप्रैल, 1971 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरी की अध्यक्षता में मनाई गई और "हीरक जयंती" 25, 26 और 27 सितंबर, 1979 को बड़ी धूमधाम से मनाई गई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने किया था। हर्ष

और गर्व का विषय है कि दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की शताब्दी बड़े ही गौरवशाली रूप से मनाई गई थी, जिसके समारोह में राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद पधारे थे। चेन्नई के साथ ही "सभा" पूरे दक्षिण भारत में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं उन्नयन में प्राणपन से जुटी हुई है। आज चेन्नई में 'हिंदी विद्यापीठ', और 'साहित्यनुशीलन समिति' जैसी अन्य संस्थाएँ भी निरंतर हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नयन और प्रचार-प्रसार में लगी हुई हैं।

"आंध्र प्रदेश में हिंदी का प्रचार-प्रसार"—दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी रहा है। यहाँ भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा और नेतृत्व के कारण ही हिंदी को विशेष प्रोत्साहन और महत्व मिला है। आंध्र प्रदेश में सन् 1921 में विधिवत रूप से "राजमहेन्द्री शहर" में हिंदी प्रचारक विद्यालय शुरू हुआ, जहाँ पंडित हृषिकेश शर्मा और पंडित रामानंद शर्मा हिंदी के शिक्षक थे। "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" की शाखा का कार्यालय सन् 1920 में "नेल्लूर" शहर में खोला गया और मोटूरि सत्यनारायण आंध्र प्रदेश की शाखा के संचालक बने। सन् 1923 में काकिनाडा शहर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वागत समिति के अध्यक्ष कोंडा वेंकटप्पय्याजी ने अपना "स्वागत भाषण" जब हिंदी में दिया तो महात्मा गांधी सहित सभी ने उसका समर्थन और स्वागत किया। इसी के फलस्वरूप आंध्र के काकिनाडा, विजयवाड़ा, राजमहेन्द्री, गुंटूर और नेल्लूर जैसे शहरों में म्युनिसिपल स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। यहाँ के हिंदी-प्रेमी राजनेताओं में पट्टाभिसीता रामय्या, डॉ. चेन्ना रेड्डी, संजीवा रेड्डी और सबसे बढ़कर श्री पी. वी. नरसिम्हा राव का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। प्रसन्नता की बात यह है कि आंध्र प्रदेश के छोटे-बड़े 140 से अधिक केंद्रों पर स्वयंसेवी सज्जनों की मदद से "हिंदी प्रेमी मंडलियों" का संचालन होता है। इनकी देख-रेख में यहाँ हिंदी महाविद्यालय भी चलाए जाते हैं। हिंदी के सार्थक प्रचार-प्रसार में आंध्र प्रदेश की हिंदी नाट्य- मंडलियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आंध्र हिंदी नाट्य मंडली तो पूरे दक्षिण भारत में प्रख्यात है। यहाँ के हिंदी लेखकों में बालशौरि रेड्डी, आंजनेय शर्मा, भीमसेन 'निर्मल' तो अखिल भारतीय स्तर पर जाने जाते हैं और यहाँ से प्रकाशित "कल्पना" और "मिलाप" का स्थान भी महत्वपूर्ण रहा है। निश्चय ही, आंध्र प्रदेश में हिंदी को लेकर कभी भी कोई वैमनस्य का भाव जन-मन में नही रहा, इसीलिए यहाँ तमिलनाडु जैसी कट्टरता और घृणा का भाव नहीं देखा गया। यहाँ तो हिंदी के प्रति राजनेता भी समर्पित रहे हैं, इसीलिए आंध्र प्रदेश में और अब तेलंगाना में भी हिंदी के कदम बढ़ते जा रहे हैं, जो भारत की एकता के लिए शुभ संकेत माना जा सकता है। हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद और हिंदी अकादमी, हैदराबाद के साथ ही हैदराबाद हिंदी लेखक संघ का कार्य भी महत्वपूर्ण रहा है। केंद्रीय सरकार के "त्रिभाषा सूत्र" को अपनाने वाले राज्यों में आंध्र प्रदेश अग्रणी है। यहाँ पाँचवीं से दसवीं कक्षा तक हिंदी का अध्ययन अनिवार्य है।

"कर्नाटक में हिंदी का प्रचार-प्रसार"—दक्षिण भारत के राज्य कर्नाटक में भी सन् 1922 से ही महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिंदी के प्रचार-प्रसार में युवा-वर्ग प्राणपण से जुटा रहा है। मैसूर हिंदी

प्रचार सभा कर्नाटक में सर्वप्रथम पंजीकृत होने वाली हिंदी प्रचार संस्था रही है, जिसका अपना भवन है, तो अपना भव्य पुस्तकालय और वाचनालय भी है। यहाँ हिंदी की सर्व प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं के पुराने अंकों को जिल्द बंधवाकर सुरक्षित रखा गया है। बैंगलुरु और मैसूर में हिंदी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किए गए। यहाँ सन् 1935 में श्री निटटूर श्रीनिवास राव के नेतृत्व में "अखिल कर्नाटक प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा" की स्थापना बैंगलूर में हुई थी। सभा के प्रमुख हिंदी प्रचारकों में सिद्ध नाथ पंत, यमुना प्रसाद श्रीवास्तव, पं. सिद्ध गोपाल 'काव्यतीर्थ', टी. कृष्णस्वामी, पी. वेंकटाचल शर्मा, एस. वी. शिवराम शर्मा आदि के नाम सम्मान के साथ याद किए जाते हैं। कर्नाटक में "महिलाओं की हिंदी सेवा" सर्वाधिक स्मरणीय रही है। कर्नाटक महिला हिंदी सेवा-समिति, बेंगलूर की स्थापना भी गांधीजी की प्रेरणा से हुई थी। यह समिति महिलाओं में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सर्वोत्तम कही जा सकती है। कर्नाटक में अनेक संस्थाएँ हिंदी की ध्वजा फहरा रही हैं, जिनमें "मैसूर रियासत हिंदी प्रचार समिति", "कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा, गुलबर्गा", "हिंदी प्रचार सभा, कोड्डुग", "हिंदी प्रचार सभा, तुमकुर", "हिंदी प्रचार सभा, चामराज नगर" और "हिंदी प्रचार सभा, बेलगांव" प्रमुख हैं। यह सारा विवरण देखकर विद्वान पाठकगण सहज ही यह समझ सकते हैं कि "कन्नड़ भाषा" के राज्य कर्नाटक में "हिंदी भाषा और साहित्य" का प्रचार-प्रसार कितनी तीव्रता से हो रहा है। मैसूर और बेंगलुरु जैसे बड़े नगरों में उत्तर भारत से जाने वाले हिंदी भाषा-भाषी कर्नाटक में जाकर स्वयं को अपने ही परिवेश में पाते हैं, यह वर्तमान का वह सत्य है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं।

"केरल में हिंदी का प्रचार-प्रसार"—दक्षिण भारत के चारों राज्यों में केरल ही एकमात्र ऐसा राज्य है, जहाँ प्रयोग की दृष्टि से हिंदी किसी भी रूप में अजनबी अथवा पराई भाषा नहीं है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निर्देशानुसार मद्रास में सन् 1918 से हिंदी का प्रचार कार्य आरंभ हो गया था, लेकिन केरल में एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में हिंदी के प्रचार का कार्य श्री एम के दामोदरन उन्नी के नेतृत्व में सन् 1922 से शुरू हुआ। उन्होंने "हिंदी-मलयाली स्वबोधिनी" नामक पुस्तक लिखी थी, जो बड़ी प्रसिद्ध हुई। अखिल केरल हिंदी प्रचार सम्मेलन एर्नाकुलम के महाराजा कॉलेज में 10 फरवरी, 1929 को हुआ था, जिसने केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार की आधारशिला का कार्य किया।

सन् 1929 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस के संस्थापक पंडित मदन मोहन जी मालवीय ने केरल के प्रमुख नगरों का भ्रमण किया। एर्नाकुलम और कोचिन के सार्वजनिक सम्मेलनों में उनके व्याख्यान हुए, जिनमें से एक सम्मेलन में मालवीय जी ने कहा था- "बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कोचिन में हिंदी प्रचार की काफी प्रगति हुई है। मलयालियों की मधुर भाषा मलयालम में संस्कृत शब्दों की भरमार है, अतएव वे आसानी से हिंदी सीख सकते हैं। कोचिन की विधान सभा में हिंदी को अनिवार्य विषय के तौर पर सिखाने के संबंध में जो प्रस्ताव पास किया, उससे देश का कल्याण होगा।"

सन् 1922 से 1932 तक के दस वर्षों में केरल राज्य में हिंदी के प्रचार का कार्य "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" ही कर रही थी। सन् 1932 में सभा ने केरल में अलग-अलग दो

शाखा-समितियाँ खोली थी, उन्हीं की तरफ से सन् 1934 और 1935 से केरल में हिंदी के प्रचार का कार्य शानदार ढंग से हो रहा है। उक्त विवरण से यह तो पूर्णत: सिद्ध हो ही जाता है कि दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने और उसे राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के उद्देश्य से ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" की स्थापना की थी, जिसे भारत की संसद ने "राष्ट्रीय महत्व की संस्था" घोषित करके हिंदी की महत्ता और राष्ट्रीय स्वीकार्यता पर मुहर लगाई है। हमें विश्वास है कि निहित राजनीति स्वार्थों को पराजित करती हुई भारत के जन-जन की भाषा "राष्ट्र की भाषा" अवश्य बनेगी।

निष्कर्ष: मैं अत्यंत गर्व और हर्ष के साथ कह सकता हूँ कि हिंदी का भविष्य भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी पूर्णत: समुज्ज्वल है। सच्चाई तो यह है कि हिंदी को तो अब विश्व भाषा बनना है, जिसके लिए "विश्व हिंदी सम्मेलन" के आयोजन के माध्यम से स्वर्णिम नींव पड़ चुकी है और यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी के नेतृत्व में हिंदी "विश्व भाषा" का गौरव भी प्राप्त करेगी।

❑❑

हिंदी की आंचलिकता

—मृदुल कीर्ति

भाषा व्यक्तायाँ वाची। भाषा जो बोलकर व्यक्त की जाती हैं। अत: भाष्यते यथा सा भाषा जिसे वाणी से बोलकर व्यक्त किया जाता है वह भाषा है। इस प्रकार अंतर्निहित विचार और अस्तित्व को व्यक्त करने का जो माध्यम है, वही भाषा है। परा ज्ञान के अनुसार पृथ्वी और अनंतलोकों तक विचारों की तरंगों का पसारा है और विचारों की आयु भी अनंत है, क्योंकि इसकी जड़ें भूमा तक हैं, जहाँ से आदि मन नि:सृत हुआ, जिसे हम अन्त:करण अथवा मन कहते हैं- जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। उसी आदि मन में ही संस्कृति और संस्कार के बीज समाहित हैं। ब्रह्म विषयक ज्ञान के अनुसार गर्भ से ही इनका विकास और सिंचन होता है, जिसे हम जगत में बोली जाने वाली भाषा से बोलकर व्यक्त करते हैं। अत: छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार भाषा वह है जो— येनाश्रुतं श्रुतं, भवत्य मतं मतम, विज्ञातं विज्ञात मिति।- छान्दोग्य उपनिषद- प्रथम खंड-3 जिसके द्वारा अश्रुत-श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है। वह भाषा है।

वस्तुत: भाषा स्वयं में ही मुखरित संस्कृति है। जो अंतर्निहित संस्कृति के अव्यक्त रूप को व्यक्त करती है और समाज में अधिष्ठित होती हुई संस्कृति को जीवंत भी रखती है। युगों-युगों की सभ्यता और संस्कृति को संचित और संचरित करती हुई आगामी पीढ़ी तक भाषा ही तो ले जाती है। भाषा विचारों की संवाहिका है और विचारों का जन्म संस्कारों से होता है किंतु इससे भी पहले अर्थ आत्मा में विद्यमान रहता है, तत्पश्चात तदनुकूल शब्द का प्रयोग किया जाता है- अर्थात शब्द अर्थ निमित्तिक हैं, अर्थ शब्द निमित्तिक नहीं। ऋषि पातंजलि ने- अर्थ निमित्तिक एव शब्द:- कहा है।

यजुर्वेद में चिदसि, मनसि, धीरसि- अर्थात वाणी (शब्द) अभिव्यक्त होने से पूर्व आत्मा में रहने वाली है। इस तरह शब्द के तीन भेद उद्भासित होते हैं। पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी। सार ध्यातव्य है- शब्द अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में पहले आत्मा में विद्यमान रहता है, जो नित्य है। मध्यमा वाक् जो बुद्धिस्थ है और इसका उपादान कारण बुद्धि है। बैखरी अर्थात वाक्- भाषा जो बोलकर व्यक्त की जाती है। इस तरह अस्तित्व को और अंतश्चेतना को व्यक्त करने का पहला चरण मुखर

होना और दूसरा चरण लिखित भाषा है। अति आरंभिक काल में तो हम श्रुति परंपरा के ही वाहक रहे हैं, इसीलिए वेदों को श्रुति कहा गया है। तदंतर ऋषियों के चेतनाकाश की अनुभूतियाँ तत्कालीन संस्कृत भाषा में वृक्षों की छाल, ताम्र पत्र आदि में फिर ग्रंथों में लिपिबद्ध हुए। वही भाषा जब लिपि में आती है तो साहित्य बनता है। जिस भाषा की लिपि नहीं होती उसे बोली कहते हैं। भाषा यदि लिपि बद्ध न होती तो अति पुरातन संस्कृतियों, सभ्यताओं और घटनाओं का ज्ञान, गौरवमयी इतिहास, समय के उतार चढ़ाव के स्वर्णिम और कलुषित पृष्ठ हम न पढ़ पाते और न ही लाभान्वित हो पाते। अत: किसी भी संस्कृति और सभ्यता के बीज भाषा के गर्भ में समाहित हैं। स्थापत्य, वास्तु, मंदिरों, और ऐतिहासिक विशाल राज्यों के अवशेष और पत्थरों की भी अपनी लिपि और उकेरी हुई मौन भाषा है, जिसे पुरातत्ववेत्ताओं के अध्ययन से हम जान पाते हैं। यहाँ कहना होगा- पत्थर भी संस्कृति, सभ्यता और मान्यताओं को जीवंत और मुखरित करते हैं। सच कहें तो यह प्रकृति की वर्तुलाकार यात्रा है, जो सृजन, स्थिति और प्रलय के चारों ओर परिक्रमायित है।

संस्कृति क्या है? धर्म, दर्शन, इतिहास, भाषा, वेशभूषा और कला ये संस्कृति के छ: लक्षण हैं। "को धर्मो दर्शनम, किम वा पुरावृत्तम च किम दृशमय भाषा, भूषा, कलश्चौव संस्कृते षड लक्षणम", इस प्रकार मनुष्य की सर्वविधि अभ्युदय की कामना का भाव हमारी संस्कृति का बीज मंत्र है। संस्क्रीयते - जो सुसंकृत करे वही संस्कृति है।

आंचलिक संस्कृति से अंत: संबंध—आंचलिक संस्कृति को दूसरे शब्दों में लोक संस्कृति भी कह सकते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात है कि आगे की वार्ता में -संस्कृति, संस्कार, सभ्यता और भाषा चारों की वैचारिक और भाषाई यात्रा लोक संस्कृति तक कैसे जाती है? भाषा और लोक संस्कृति के अन्त: संबंध की बात करें तो पहले हमें बीज-अर्थात् सांस्कृतिक ग्रंथों की बात करनी होगी केवल पत्तों की बात से हम तथ्य तक नहीं जा सकते। हमारे आर्ष ग्रंथों, प्रवर मनीषियों, तात्विक विचारकों ने, पूर्वजों ने, विचार और कर्म क्षेत्र में जो कुछ भी श्रेष्ठ किया है, उसी धरोहर का नाम संस्कृति है। जो मूर्त और अमूर्त दोनों तरह से अस्तित्वान है। चारों वेदों के ज्ञान को यदि एक शब्द में कहें तो, वह शब्द है मनुर्भव है। चूंकि विचार संक्रमित करते हैं, अत: वैचारिक संक्रमण की यह यात्रा कालांतर में लोक संस्कृतियों तक पहुँची तो ग्रामीण अंचल में यही मनुर्भव भलो मनई हुए जा। भलो मानुस बन। भलो करम कर में रूपांतरित होकर जनमानस की भाषा में नैतिक संदेश बना। बात वही है किंतु भाषा लोक संस्कृति की यात्रा करके मनुष्य का मनई और मानुस हो गया। लेकिन गुणवत्ता और छिपी नैतिकता से लोक संस्कृति ने समझौता नहीं किया है। कुछ अप्रिय होने पर जौ भले मानुस को काम नाय हतो। जौ नीको काम नाय हतो। जैसी लोक भाषा में संस्कृति उतर कर सिद्धांत से व्यवहार के लोक जीवन में उतरी। ऐसे और दृष्टांत भी देखते हैं।

उपनिषदों के 'मा गृधा' को लोक संस्कृति ने लालच बुरी बला है- जिसे जातक कथाओं से भी सिखाया गया। कस्य स्विद धनं का ही लोक भाषा रूपांतरण है- तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मोरा।

गीता का निष्काम कर्म का संदेश लोक संस्कृति में नेकी कर कुएँ में डाल के रूप में प्रवाहित है। असतो मा सद गमय –साँच बराबर तप नहीं समय के परिवर्तन के साथ भाषायी परिवर्तन तो हुए लेकिन सांस्कृतिक ग्रंथों के कालजयी सूक्तों, संदर्भों और जीवन मूल्यों को अंतस से थामे हुए, भाषा के तद्भव और तत्सम को अपनाते हुए, लोक संस्कृति की भाषा से अन्तः संबंध भी बनाए रखा।

यथा—सत्यं वद, धर्मं चर, ऋतस्य गोपा न दाभाय, सत्यमेव जयते, (मुंडकोपनिषद) भद्रं मनः, मा निंदत, मनुर्भव, आयुष्मान भव, सौभाग्यवती भव, अहिंसा परमो धर्मा, ऊनेन हीयते आदि- जैसे सूक्त लोक संस्कृति के संस्कार कृत वाक्य बन गए। जिन्हें कभी लोकोक्तियों में तो कभी मुहावरों के रूप में नैतिकता को उभारने और स्मृति में लाने के लिए बोलना लोक संस्कृति का स्वभाव हो गया। स्वभाव में जो भी घटित होता है वह विचार तल के साक्षी भाव होते हैं। इसके लिए कभी ग्रंथ नहीं खोले गए, ये तो जन मानस के चिंतन का स्वभाव और अभिन्न भाग हैं, जो स्वभाववश ही मुखरित होता है और अनायास ही आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाते हैं। इसीलिए कहा जाता है ज्ञान का पढ़ाई से अधिक संबंध आंतरिक अनुभूतियों से हैं। कबीर पढ़े लिखे नहीं थे किंतु वे आध्यात्मिक दार्शनिक थे।

ऋतस्य गोपा न दभाय
साँच को आंच नहीं
सत्यम वद, धर्मं चर।
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप
ऊनेन हीयते।
संगति ही गुन ऊपजे, संगत ही गुन जाए
कृण्वन्तो विश्वमार्यम- ऋग्वेद 1/63/5
सब जग लागे आपुनो
सत्यमेव जयते नानृतम।
सत्य की जय, असत्य की नहीं
मनः सत्येम शुद्धति।
सत से शुद्ध होइ मन जाको।
मामेकं शरणं ब्रज।
हरि शरणम् या भगवान् तेरो ही सहारो है।

आदि के सूक्त लोक भाषा में, सच बोलो, धर्म करो, साँच को आँच नहीं, सत्य की जय हो अधर्म का नाश हो जीते रहो पाँव लागूँ, निंदा नहीं करो, दूधो नहाओ पूतों फलो के आशीष वचन की लोक भाषा के रूप में हिंदी की आंचलिकता का यह अन्तः संबंध ही तो है। नीति परक संदेशों से भी इतर लोक संस्कृति जनकल्याण और जन स्वास्थ्य के लिए भी सजग है, जो ऋषि चरक के स्वास्थ्य सूक्त हित भुक, मित भुक, ऋतु भुक जैसे सूक्त को हिंदी की आंचलिक भाषा में ग्राह्य और सुगम

बनाया यही तो हिंदी की आंचलिकता का मूल हिंदी से अंत: संबंध है। यही तो संस्कृति और भाषा का लोक संस्कृति में रूपांतरण है।

वर्ष के बारह महीनों का अद्‌भुत स्वास्थ्य परक संदेश देखें—

चौते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पंथ असाढ़े बेल।
सावन साग न भादों दही, क्वार करेला न कातिक मही॥

अगहन जीरा पूसे धना, माघे मिश्री फागुन चना।
ई बारह जो देय बचाए, वहि घर बैद कबौं न जाए॥

लोकोक्तियों में जनहित के स्वास्थ्य परक, नीतिपरक और नैतिकता के संदेश के सन्निहित बीज, संस्कृति की ही देन और लोक संस्कृति की ग्राह्यता का परिणाम है। विभिन्न प्रांतों की लोक भाषाओं में मूल संस्कृति का ही पसारा है। आंचलिक भाषाओँ में हिंदी के मुहावरों का स्वरूप बदलता है किंतु भाव या अर्थ नहीं। संदेश यथावत रहता है। एक कहावत है- कोस-कोस पर पानी बदले बीस कोस पर बानी। किंतु ध्यान दें प्यास और पानी से मिली तृप्ति का संबंध तो चिरंतन है और एक सा ही है, लोक भाषा में कुछ कहें किंतु पानी, प्यास और तृप्ति का संबंध पूरी सृष्टि में, हर जीवधारी के लिए एक सा है।

अत: कह सकते हैं कि—एक तरह से संस्कृति समाज का अदृश्य संविधान ही है, जो अंतस को अदृश्य रूप से सचेत रखता है। जो संचयी होता हुआ भी परिवर्तनों को आत्मसात कर ही प्रगतिशील होता है। सृष्टि में सदा से ही शुभ-अशुभ विचारों की सत्ता रही है किंतु संस्कृति केवल शाश्वत और कल्याणकारी, अभ्युदय और नि:श्रेयस की ओर ले जाने वाली संस्कृति का ही संवहन करती है, जैसे- पर द्रव्य लौष्ठवत, मा निंदत, आत्मा अनिभृष्टा:, मातृवत परदारेषु, आत्मवत सर्वभूतेषु आदि। ये वैचारिक अलख जो अंतर्निहित है उसका शंखनाद संस्कृति करती है और लोक संस्कृति में उसका भाषा रूपांतरण होता है, भाव रूपांतरण नहीं। जो भाषा, परंपराओं, मान्यताओं, विचारों, आचरण, स्थापत्य, वास्तु, मूर्तियों में मूर्त और अमूर्त रूप में व्यक्ति से लेकर समस्त समाज में परिलक्षित होती है, यही संस्कृति है। यह कहना त्रुटिपूर्ण न होगा कि अदृश्य रूप में 'भाषा मनुष्य के भाव, विभाव, अनुभाव, प्रभाव और स्वभाव को रचती है और सभ्य आचरण से सभ्यता से प्रगट करती हैं। मूर्त, दृश्य रूप में इन्हीं भावों को स्थापत्य कला, वास्तु, आध्यात्मिकता के मंदिर, लोक संस्कृति, लोक कथाएँ, प्रथाओं को उकेरे हुए चित्रों और पारंपरिक परिधानों, आभूषणों का चित्रांकन, उस युग में प्रयुक्त वस्तुओं, आदि से युग विशेष की पूरी जीवन शैली का विवरण मिल जाता है।

पत्थर बोलते हैं—पुरातत्व वेत्ताओं ने पुरातन अवशेषों के आधार पर उस युग की संस्कृति, सभ्यता और जीवन पद्धति का विश्लेषण किया है। बाबड़ी से पानी की व्यवस्था, बर्तनों के आकार

प्रकार, मिले हुए सिक्कों से उस युग की विनिमय शैली, उकेरे हुए चित्रों से उस युग की जीवन पद्धति का अध्ययन करने के सूत्र संग्रहित किए अर्थात पत्थर भी बोलकर हिंदी भाषा के आंचलिक प्रभाव और युग को मुखरित करते हैं।

अतः कह सकते हैं—हिंदी जो संस्कृत से निःसृत है वस्तुतः एक विराट पसारे का नाम है। हिंदी की संस्कृति शब्द में समग्रता को समेटने का प्रयास भर है, पूर्णता नहीं, क्योंकि वह उससे भी बहुत परे है, जिसे एक शब्द में समाहित नहीं किया जा सकता। संस्कृति में दृश्य जगत और अदृश्य की भावनाओं, विचारों तथा मान्यताओं के गहरे समीकरण समाहित हैं। इन सबसे भी कहीं परे भारतीय संस्कृति में तो पाँच तत्वों की भी संस्कृति है। जैसे- पुरवाई चले और बदली छाये तो मन मोर से लेकर जंगल के मोर और कवित्त हृदय स्पंदित भी होकर कालीदास महाकाव्य 'मेघदूत' लिख देते हैं। पुरवा बयार चले पुरानी चोट भी दुखती है और प्रिय जन दूर हैं तो बयार से संदेश भेजने का भावनात्मक जुड़ाव भी हमारी संस्कृति का प्रकृति से जुड़ाव का परिचायक है। बहे पुरवा पवनिया, संदेसा लेके जाओ मितवा। कुम्हार के चाक से बने एक घड़े का आकार और उस पर उभरी कलाकृति से लेकर तिरुपति, पद्मनाभ और कोणार्क मंदिरों के स्थापत्य और वास्तु सब संस्कृति को ही मुखरित करते हैं।

संस्कृति में युग के आचार—विचार, जीवन शैली, पर्व, त्योहार, धर्म, जलवायु, गीत, संगीत, कला, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि सबका समावेश है। घरों की बनावट, स्थापत्य, वास्तु, मूर्त कलात्मक अंकन प्रकृति की पूजा, पेड़-पौधों से भी जुड़ी संस्कृति, जीवन दायिनी नदियों में गंगा माहात्म्य का पक्ष भी है, जो विश्व में एक अनूठी संस्कृति है। यहाँ एक दुखता हुआ पक्ष भी है जिसे अनकहा करने का साहस नहीं है। इस सांस्कृतिक जीवनदायिनी धरोहरों का सदुपयोग और संरक्षण, भौतिकता प्रधान मनोवृति के कारण पूरी निष्ठा से नहीं हो रहा। सब कुछ दयनीय स्थिति में है, जिसके प्रति युद्ध स्तर पर सजग होने की आवश्यकता है।

लोक संस्कृति—जनमानस के अंतस में जमी वे मान्यताएँ हैं जिनको पीढ़ी दर पीढ़ी जाने अनजाने लोकोक्तियों और परंपराओं के संवहन के रूप में निरंतरता मिलती है। वस्तुतः संस्कृति निष्ठ परंपराएँ और संस्कार अंतर्निहित गुणात्मक सत्ता है, सभ्यता जिसका व्यवहारिक परिशीलन है। संस्कृति और संस्कार ही वे आंतरिक गुण हैं, जो सभ्य आचरण के रूप में किसी व्यक्ति, जाति समाज और राष्ट्र का निर्माण करते हैं। अंततः यह कोई औपचारिक प्रथाओं का परिशीलन मात्र नहीं, इनमें राष्ट्र का स्पंदन है जिसे साक्षात् देखना है तो भारत के गणतंत्र दिवस की झाँकियों में देखों। कितनी लोक संस्कृतियों का संवहन है, जैसे विभिन्न पुष्पों का गुलदस्ता हो। अनेकत्व में एकत्व की अद्भुत संस्कृति समेटे, सभ्यता और भाषा का देश भारतवर्ष है, जिसमें अखंड राष्ट्रीयता ध्वनित होती है। संस्कृति हमारी शिराओं में बहती हैं, यह वायु और जल की तरह आकार हीन है किंतु जिस पात्र में डालो पानी का वही आकार होता हो जाता है, वैसे ही संस्कृति में समाई शाश्वती किसी भी लोक संस्कृति में परिणत हो जाती है।

वस्तुत: सामूहिक रूप से स्वीकृति मान्यताओं का नाम लोक संस्कृति है। भाषा, सामाजिक, धार्मिक, परिधान, खान-पान, रीति-रिवाज और पर्व की सामूहिक मान्यता का नाम ही लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी हैं जितनी मानवता है। इनमें आंशिक परिवर्तन भले ही होते रहे हों किंतु मूल तात्विक स्तोत्र यथावत ही हैं। कटु सत्य तो यह है गाँव, देहातों और आंचलिक क्षेत्रों ने ही भाषा को बचा रखा है वरना शहरी लोगों को तो राम-राम कहते भी लाज आती है। व्यक्ति और समाज में निहित आंतरिक संस्कार ही संस्कृति है और उनका व्यवहृत स्वरूप ही सभ्यता है। भाषा और संस्कृति का लोक संस्कृति पर प्रभाव यदि देखना है तो मणिपुर की संस्कृति पर रुकने की चाह होती है। विशुद्ध भारतीयता की सोंधी सुगंध आती है। राज्य का नाम मणिपुर, भाषा विष्णुप्रिया, माटी चंदौन, परिधान भारतीय ऊपर अंग वस्त्र और जनेऊ, नीचे धोती, वाद्य यंत्र मृदंग। आंध्र प्रदेश में देखें तो नव संवत्सर को युगाधि अर्थात युग का आदि बोलते हैं और इस दिन विशेष चटनी बनती है, जिसमें गुड़, नीम और अन्य कई चीजें होती हैं। गुड़ और नीम का सांकेतिक अर्थ है कि जीवन में सुख-दु:ख दोनों आते हैं।

भाषा, विचार और संस्कार संक्रमित करते हैं। देश छूट जाते हैं किंतु अंतस में भाषा और संस्कृति के रूप में देश बसा रहता है उसी आधार पर वह स्वयं अपना परिवेश जहाँ भी रहें, बना ही लेते हैं। इसके ज्वलंत उदाहरण मॉरीशस में दृष्टव्य हैं, राम-रामायण अंतस में लेकर आए तो अयोध्या यहीं बना लिया। गंगा के रूप में भावगंगा का सरोवर बना लिया। नमन है मॉरीशस वासियों को जो हिंदी संस्कृति से पोषित हैं। किसी ने ऋषि दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्राकाश' की एक प्रति यहाँ छोड़ी थी। उस एक ग्रंथ ने यहाँ आर्य समाज स्थापित किए। यह संस्कृति और साहित्य की शक्ति और लोक संस्कृति में परिणत होने के ज्वलंत प्रमाण है।

❑❑

हिंदी की विकास–यात्रा में दक्खिनी हिंदी का स्थान

–पूर्णिमा आर.

दक्खिनी हिंदी आधुनिक खड़ी बोली के आदि रूप का विकसित रूप है। दक्षिण की किसी भी भाषा से इसका कोई संबंध नहीं। वह मूलत: दिल्ली के आसपास की हरियाणी एवं खड़ी बोली ही थी। इस पर ब्रजभाषा, अवधी और पंजाबी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। साथ ही साथ मराठी, गुजराती और तेलूगू का प्रभाव भी इसमें परिलक्षित है। मुसलमानों के शासनकाल में हिंदी भाषा उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक पहूँची। यहाँ इसका विकास एक अलग स्वरूप में हुआ। हिंदी का दक्खिनी कहलाना केवल इन दक्खिनी राज्यों के कारण है। मुसलमानों के साथ यह आगे चलकर कर्नाटक, आँध्र, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में फैल गईं दक्षिण में जाने के बाद इस पर गुजराती–मराठी का भी प्रभाव पड़ा। उस समय में भी द्राविड़ राज्यों में तेलुगू, तमिल और कन्नड़ बोली जाती थी।

दक्खिनी हिंदी मूलत: हिंदी का ही पूर्व रूप है। इसका विकास ईसा की 14वीं शती से दक्खिन के बहमनी, कुतुब शाही और आदिल शाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। दक्खिनी हिंदी के विकास में मुसलमानी रियासतों, उनके शासकों एवं उनके दरबार के अन्य रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों ने 1297 ई में आँध्र पर और 1308 में कर्नाटक पर विजय पाई। इन राज्यों को दिल्ली का सूबा माना गया। कुछ वर्ष के उपरान्त मोहम्मद तुग्लक ने 1347 में दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया। फिरोज तुग्लक के राज्य काल में यह राज्य स्वतंत्र हो गया, और हसन गंगो बहमनी ने 1347 में गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित किया। दक्षिण में आदिलशाही, कुतुबशाही, बरीदशाही, इमादशाही तथा निजामशाही सल्तनतें बनी। ये राज्य उत्तर भारत से आने वाले कवियों, सैनिकों, कर्मचारियों एवं धर्म प्रचारकों को आश्रय देते थे। ये सभी हिंदी भाषी थे। इनका संपर्क दक्षिण भारतीय भाषाओं से हुआ और उनके संपर्क में एक नई भाषा विकसित हुई, जो दक्खिनी हिंदी कहलवाईं डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "हिंदी भाषा का विकास और उसमें साहित्य–रचना का कार्य केवल उत्तरी भारत में नहीं हुआ है। मुसलमान फकीरों, सैनिकों और

राज्य संस्थापकों के द्वारा साहित्यिक हिंदी दक्षिण भारत में पहुँची थी और पन्द्रहवीं शताब्दी तक उसमें उच्चकोटि का साहित्य निर्मित होने लगा था।"[1]

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का अभिमत है कि "दक्खिनी हिंदी, हिंदी का अभिन्न अंग हैं।"[2] जार्ज ग्रियर्सन इसे हिंदुस्तानी का बिगड़ा रूप न मानकर उत्तर भारत की साहित्यिक हिंदुस्तानी को ही इसका बिगड़ा रूप मानते हैं। डॉ. चटर्जी इसे हिंदुस्तानी नहीं, तो उसकी सहोदरा भाषा अवश्य मानते हैं। दक्खिनी हिंदी के प्रमुख अध्येता डॉ. श्रीराम शर्मा तो नव्य भारतीय आर्य भाषा के क्रमिक विकास को समझने के लिए भी दक्खिनी को ही आधार मानते हैं। उनके अनुसार "हिंदी की जिन बोलियों पर न. भा. आ. की विशेषताएँ परिलक्षित हुई, दक्खिनी उनमें अग्रगण्य है।"[3]

राजभाषा के रूप में:

दक्खिनी हिंदी को हिंदवी, दकनी, दखनी, देहलवी, गूजरी, हिंदुस्तानी, जबाने हिंदुस्तानी, दक्खिनी उर्दू, मुसलमानी आदि भी कहा जाता है। यह राजकाज में प्रयुक्त होती थी। दक्खिनी भाषा (हिंदवी, हिंदी) को राजभाषा बनाने का श्रेय दक्षिण भारत को उपलब्ध है। दक्षिण भारत में शताब्दियों पहले हिंदी का राजकाज में प्रयोग होता रहा। इस संबंध में श्री सीताराम शास्त्री ने अपने खोजपूर्ण निबंध में लिखा है- आज से छह सौ वर्ष पूर्व दक्खिनी भाषा (हिंदी) दक्षिण भारत की जनसाधारण की भाषा थी और तीन सौ वर्ष पर्यंत राजभाषा के पद पर आसीन होकर न केवल राज्य के कार्य कलापों में, वरन् सामान्य जनता के वैचारिक आदान-प्रदान और भावात्मक एकता की प्रतीक बनी रही। यह बात इतिहास के गर्भ में छुपा हुआ रहस्य अवश्य है, किंतु छह सौ वर्ष पूर्व के दक्षिण भारत के इतिहास के पन्ने उलटिए, तो इस रहस्य का उद्घाटन होगा। आज से छह सौ वर्ष पहले दक्खिनी भाषा दक्षिण भारत की जनसाधारण की भाषा थी, यह राजभाषा के पद पर आसीन होकर सामान्य जनता के वैचारिक आदान प्रदान की भाषा भी बनी। दक्खिनी को राजभाषा बनाने का श्रेय हसन गंगू के माल विभाग के महामंत्री मंगू ब्राह्मण को है। इतिहासकारों के अनुसार तेलुगू, कन्नड, मराठी आदि भाषाओं के विभागों में राज्य बँटा होने के कारण इनमें से किसी को राजभाषा का पद नहीं दिया जा सकता था। दक्खिनी भाषा सर्वत्र बोली और समझी जाती थी। वह एक प्रकार की आंतर भाषा थी। इसीलिए शासन उसे राजभाषा का पद देने में विवश था।

बहमनी राज्य के शासक दक्खिनी हिंदी के कवियों और साहित्यकारों को आश्रय देते थे। औरंगजेब ने दक्खिन में जाकर बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर, बरार तथा अहमद नगर में बसे सल्तनतों पर आक्रमण कर उन्हें मिटा दिया। उन सलतनतों के आश्रित कवि एवं साहित्यकार कुछ काल के लिए निराश्रित हो गए, मगर उनकी साहित्य रचना होती रही। सन् 1652 में औरंगजेब ने औरंगाबाद को अपना केंद्र बनाया और कुछ कवियों को वहाँ पनाह मिली। उनकी मृत्यु के बाद मुगल शासन समाप्त

होता रहा। उसके बाद निजाम राज्य के संस्थापक निजामुलमुल्फ आसफजाह दक्खिन के सुबेदार बन गए। इन्होंने दक्खिनी के साहित्यकारों को आश्रय और विशेष प्रोत्साहन दिया।

प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने उल्लेख किया है कि बहमनी राज्य के कार्यालयों में हिंदी भाषा का प्रचलन था और सरकार ने उसे सरकारी भाषा का पद भी दिया था। बहमनी सल्तनत के बिखरने के बाद भी हिंदी का यह पद सुरक्षित रखा गया। फारसी के रहते हुए भी हिंदी इस कारण से राजभाषा बनी। दक्षिण की मराठी, कन्नड और तेलुगू भाषाओं की जानकारी उत्तर से आए सिपाहियों और संत दरवेशों को नहीं थी। कई सिपाही फारसी भी नहीं जानते थे। इसलिए हिंदवी या दक्खिनी हिंदी के साथ खड़ी बोली हिंदी का भी अपना स्थान बना रहा।

हिंदी, हिंदवी, दक्खिनी:

प्राचीनकाल में खड़ी बोली हिंदी के तीन नाम प्रचलित थे– हिंदवी, हिंदी और दक्खिनी। हिंदी अथवा हिंदवी शब्द का अर्थ है हिंदुओं की भाषा। संस्कृत निष्ठ हिंदी से यह भाषा कई बातों से भिन्न है। यह तत्कालीन जनसाधारण की भाषा थी। हिंदवी शब्द बहुत प्राचीन है। प्रसिद्ध दक्खिनी विद्वान शेख अशरफ, मुल्ला वजही आदि विद्वानों ने इस भाषा के लिए स्पष्टत हिंदवी शब्द का व्यवहार किया है। निशाती, रुस्तमी आदि लेखकों ने इसे दक्खिनी कहा है। शाह बुर्हानुद्दीन जानम बीजापुरी इसे हिंदी पुकारते हैं। हिंदवी, हिंदी, दक्खिनी तीनों शब्द एकही भाषा को द्योतित करता है। मुंशी इंशा अल्लाखाँ ने आम जनता की प्रचलित भाषा के अर्थ में हिंदवी शब्द का प्रयोग किया। हिंदवी के साहित्यक रूप दक्खिनी का प्रचार उस समय उत्तर भारत में नहीं था। किंतु अल्पकाल में ही यह संपूर्ण हिंदी साहित्य की मुख्य भाषा बन गई।

दक्खिनी की विशेषताएँ:

दक्खिनी हिंदी की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

1. दक्खिनी और खड़ी बोली में बहुत साम्य है। मिट्टा, सुक्का, किच्चड आदि द्वित्व व्यंजन युक्त शब्द दक्खिनी में मिलते हैं।
2. दक्खिनी मेंन्द, म्ब आदि के स्थान पर क्रमश न, म्म आदि बोला जाता है, जैसे चान्दनी> चाननी, गुम्बज>गुम्मज आदि।
3. कारक परसर्गों में कर्म में कू करण में सू संबंध में क्या, केरा, अधिकरण में मने, रो आदि अतिरिक्त परसर्ग पाए जाते हैं।

दक्खिनी के रचनाकार:

दक्खिनी हिंदी का किसी भी दक्खिनी आर्य या अनार्य (द्रविड) भाषा से किंचित भी संबंध नहीं है। इस भाषा का संबंध दक्षिण के छोटे–छोटे राज्यों से था, जहाँ हिंदी के कवियों और साहित्यकारों

को संरक्षण मिला था। इस कारण इस भाषा को दक्खिनी नाम से अभिहित किया गया। दक्षिण में इस भाषा के विकास के समानांतर वहाँ मराठी, तेलुंगु, कन्नड़ आदि भाषाओं में उच्च कोटि के साहित्य का सृजन हो रहा था। साहित्यकारों की प्रतिद्वंद्विता में दक्खिनी साहित्य पनप गए। दक्खिनी के इस विकास में मुसलमानी सुल्तानों का विशेष हाथ था। 17वीं शताब्दी तक के दक्खिनी भाषा के ग्रंथों के लेखक सभी मुसलमान हुए। दक्खिनी के पहले ग्रंथकार ख्वाजा बंदावाज गेसूदराज सैयद हुसैनी (1318-1422) थे। इनका बचपन दक्खिन में बीता था और जीवन के आखिरी बीस साल भी दक्खिन में ही बीते। एक अच्छे फकीर होने के कारण उन्होंने धर्म प्रचार के लिए अनेक पुस्तकें गद्य रूप में लिखीं। दक्खिनी का पहला कवि निजामी, बहमनसुल्तान अहमद शाह तृतीय के शासनकाल (1460-62) में था। इस प्रकार दक्खिनी साहित्य का गद्य एवं पद्य रूप 14-15वीं शताब्दी के बीच शुरु हुआ। गद्य के ग्रंथों में दो प्रकार का साहित्य दिखाई देता है, धर्म संबंधी ग्रंथ और तसव्वुफ।

फारसी भाषा से अनूदित धर्म प्रचार संबन्धी ग्रंथ का साहित्यिक महत्व प्राय: कम है।1622 में मौलाना अब्दुल्ला ने एहकामूलसल्वाह नाम फारसी से अनूदित ग्रंथ लिखा, जिसे फिर दक्खिनी भाषा में अनूदित किया गया। तसव्वुफ का प्रमुख ग्रंथ 1635 में रचितमुल्ला वजाही का सबरस है। दर्शन और आचार शास्त्र पर उन्होंने बहुत-सी रचनाएँ की है। साहित्य के अलावा विज्ञान, गणित और रसायनशास्त्र जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर उन्नीसवीं सदी के पहले चरण में दक्खिनी में अनेक रिसाले लिखे गए। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हैदराबाद के निजांम के संरक्षण में यूरोप्य विद्वानों के विभिन्न विषयों के ग्रंथों का अनुवाद उर्दू में होने लगा। परिणामस्वरूप उस्मानिया विश्वविद्यालय में उर्दू के माध्यम से उच्चतम शिक्षा का प्रबंध हुआ। फारसी से अनूदित बहुत-सी मसनवियाँ दक्खिनी में लिखी गई। मसनवी कदम राव व पदम दक्खिनी हिंदी की प्रथम कविता है। गुलाम अली ने दक्खिनी में पद्मावती और रत्नसेन की कहानी को आधार बनाकर पद्मावत नामक एक मसनवी दक्खिनी में लिखी। इसका रचनाकाल 1680 है। इशरती की मसनवियों में जीवन-पतंग, चितलगन और नेहदर्पण उल्लेखनीय है। प्रेम के किस्से और युद्ध का वर्णन इन मसनवियों में अधिक मात्रा में है।

1596 में रचित सुल्तान इब्राहिम की रचना नवरस की भाषा में फारसी की अपेक्षा हिंदी शब्दों की संख्या अधिक है। दक्षिण भारत के गोलकुंडा राज्य के कुतुब शाही सुल्तान स्वयं एक अच्छे कवि भी थे। मुहम्मद कुली (1580-1611) मुहम्मद कुतुब शाह (1611-25) अब्दुल्ला कुतुबशाह (1625-72) और अबुल हसन (1672-86) भी अच्छे कवि थे। मुहम्मद कुली कुतुबशाह की रचनाएँ कुल्लियात के रूप में प्रकाशित हुई हैं। इन सुल्तानों ने मसनवी, गजल, रूबाई आदि भी लिखी हैं। इन व्याख्यानों में आदिकालीन हिंदी का प्रयोग मिलता है। इसकी लिपि फारसी होने के कारण हिंदी प्रेमियों को यह दुर्बोध है। हिंदी की दक्खिनी शाखा के कलाकार प्राय: सभी मुसलमान थे, किंतु अपनी रचनाओँ में उन्होंने भारतीयता को निभाने का प्रयास किया। दक्खिनी का प्रथम कवि निजामी था। बहमनी सुल्तान अहम्मद शाह तृतीय के शासनकाल में ये मौजूद थे। दक्खिनी गद्य में दो प्रकार के

साहित्य मिलते हैं- धर्म प्रचारक संबंधी और तसव्वुफ संबंधी। तसव्वुफ के ग्रंथों में कथाओं के द्वारा दर्शन और आचार शास्त्र के तत्व समझाए गए है। इनमें प्रमुख ग्रंथ सन् 1635 में लिखित मुल्ला वजही का सब रस है। इसमें लिखा गया है "फातही ने दस्तूर उश्साक नाम की एक मसनवी फारसी में लिखी थी। इसमें पाँच हजार पद्य थे। उसके बाद दो ग्रंथ और उसी विषय को लेकर लिखे गए- शबिस्ताने ख्याल और हूसनो दिल। हूसनो दिल गद्य में था। वह बहुत लोकप्रिय हुआ। इसी को आधार मानकर वजही ने सबरस हिंदी में लिखा"[4] तसव्वूफ के अन्य ग्रंथों में मीरांजी हुस्न खुदानुमा के शरह तमहीत हमदानी, बुहार्नुद्दीन औलिया के शुमायालूल् इत्किया, तूतूनामा इखलाके हिंदी आदि उल्लेखनीय है। इनमें से एक दो मौलिक है, बाकी फारसी अरबी के ग्रंथों के अनुवाद या दख्खिनी का रूपांतरण है। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चरण में हैदराबाद में लिखे गए दक्खिनी के रिसाले प्रमुख है। गणित, रसायन शास्त्र जैसे महत्वपूर्ण विषय इसमें है। बीसवीं शती के पूर्वार्ध में हैदराबाद के निजाम के संरक्षण में यूरोप्य विद्वानों के विभिन्न विषयों के ग्रंथों का अनुवाद उर्दू में होने लगा। जिसके फलस्वरूप उस्मानिया विश्वविद्यालय में उर्दू के माध्यम से उच्चतम शिक्षा का प्रबंध संभव हुआ।

दक्खिनी में अन्य बहुत-सी मसनवियाँ लिखी गई, जिनमें कुछ फारसी से अनूदित हैं। मसनवी कदम राव व पदम दक्खिनी हिंदी की प्रथम कविता है। वजही की कुतुब मुश्तरी मौलिक रचना है। जायसी के पद्मावत की कहानी पर आधृत गुलाम अली कृत दक्खिनी की मसनवी पद्मावत है। इसका रचनाकाल 1680 ई माना जाता है। मसनवियों में अधिकतर प्रेम के किस्से और कहानियाँ हुआ करती थी। नायकों का चरित्र-चित्रण, उनके युद्ध आदि का वर्णन भी इन मसनवियों में मिलता है। इसी तरहह नसरती का गुलशन इश्क जिसमें कुँवर मनोहर और मदमालती की कथा है, वली वेलूरी की तीन मसनवियाँ जिनमें से एक पद्मावती की कथा है। इशरती की तीन मसनवियाँ-जीवन पतंग, चितलगन और नेहदर्पण आदि उल्लेखनीय है।

दक्खिनी साहित्य के इतिहास में वली मुहम्मद अत्यंत महान कवि है। उस समय उर्दू उत्तर भारत की भाषा बनी रही, दक्खिनी दक्षिण प्रांत की भाषा के रूप में कायम रही। वली ने उस समय दक्खिनी और रेख्ता (उर्दू) दोनों भाषाओं में काव्य रचना की।" वली प्राय: काव्य के सभी रूपों-गजल, कसीदा, मसनवी, रूबाई, तरजी, बंद आदि में कविता करते थे। इस प्रकार प्रारंभ से ही वे दक्खिनी के उच्चकोटि के कवि माने जाने लगे थे।"[5]

वली की गजलों में प्रेम भावना दिखाई देती है, मगर वह आध्यात्मिक रूप लेकर सूफी प्रेम का रूप ग्रहण करती है। वली की एक दक्खिनी कविता—

जिसे इश्क का तीर कारी लगे।
उसे जिंदगी क्यों न भारी लगे॥
न हीव उसे जग में हरगिज करार॥

जिसे इश्क की बेकरारी लगे॥
वली को कहे तूँ अगर एक वचन।
रकीबों के दिल में कटारी लगे॥[6]

प्रेमचन्द का दक्खिनी संबंधः

प्रेमचन्द जी की राम चर्चा दक्खिनी हिंदी के सभी गुणों से परिपूर्ण एक उत्कृष्ट कृति है। यह पुस्तक फारसी हरुफ में छाप दिया है। न अपनी तरफ से एक लफ्ज जोड़ा है, न असल में से एक नुक्ता घटाया है। इसमें प्रेमचन्द ने समर्थ भाषा में धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। हिंदी में राम चर्चा का प्रकाशन सरस्वती प्रेस से सन् 1938 में प्रेमचन्द के मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। दक्षिण भारत हिंदुस्तानी प्रचार सभा ने प्रेमचन्द के सुपुत्र श्रीपतराय की अनुमति से 1950 में इसे प्रकाशित किया। पुस्तक के संबंध में प्रकाशक का कहना है राम की कहानी और प्रेमचन्दजी की कलम-उसके बाद और कुछ कहने को नहीं रह जाता। इतनी आसान जबान लिखना प्रेमचन्द जी का ही काम था। दक्खिन के लोग इसको पढ़कर प्रेमचन्द जी की सलीस उर्दू का लुत्फ उठा सकते हैं।

दक्खिनी की विशेषताएँः

दक्खिनी हिंदी की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. दक्खिनी और खड़ी बोली में बहुत साम्य है। मिट्टा, सुक्का, किच्चड आदि द्वित्व व्यंजन युक्त शब्द दक्खिनी में मिलते हैं।
2. दक्खिनी मेंन्द, म्ब आदि के स्थान पर क्रमश न, म्म आदि बोला जाता है, जैसे चान्दनी> चाननी, गुम्बज>गुम्मज आदि।
3. कारक परसर्गों में कर्म में कू करण में सू संबंध में क्या, केरा, अधिकरण में मने, रो आदि अतिरिक्त परसर्ग पाए जाते हैं।

उर्दू साहित्य लेखक दक्खिनी को उर्दू का एक अंग मानते थे। सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक सुनीति कुमार चाट्टर्जी जैसे विद्वान दक्खिनी को शुद्ध हिंदी के अंतर्गत रखने के पक्ष में थे। भाषा विज्ञान की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यक दक्खिनी के भाषा-रूपों में विविध बोलियों का सम्मिश्रण है। उदाहरणार्थ बहुवचन में ओं के स्थान पर आं का प्रयोग, सर्वनाम में सामन्य सर्वनाम के साथ प्रत्यय जोड़ने की प्रक्रिया, जैसे हमना, तुमना। दक्खिनी हिंदी में तद्भव शब्दावली की प्रधानता है। दक्खिनी शब्दकोश में मराठी, कन्नड, तेलुंगु तथा मुंडा भाषा परिवार के भी शब्द सम्मिलित है। दक्खिनी साहित्यकारों ने विदेशी शब्दों को स्वीकार किया है। किंतु उनमें विदेशी ध्वनियों के स्थान पर परिचित देशी ध्वनियों को रख दिया है।

निष्कर्षः दक्खिनी का विकास ईसा की 14वीं शती से 18वीं शती तक दक्खिन के बहमनी, कुतुब शाही और आदिल शाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। सुदूर उत्तर से दक्षिण में आकर यह भाषा अपना एक अलग वर्चस्व बनाई है। इसमें इस भाषा से जुड़े साहित्यकारों की अतुलनीय देन है। हिंदी, दक्खिनी हिंदी और उर्दू भाषा के अपने गुण और गरिमा है। दक्खिनी हिंदी हिंदी का अभिन्न अंग है। दक्खिनी हिंदी के बिना हिंदी का सर्वांगपूर्ण इतिहास नहीं लिखा जा सकता है।

संदर्भः

1. सक्सेना बाबूराम, 1952, दक्खिनी हिंदी, हिंदुस्तानी एकाडेमी, इलाहाबाद, प्रकाशीय, पृ. 85–86
2. प्रसाद डॉ. विश्वनाथ, अली आदिल शाह संग्रह (प्रस्तावना) प्रदान संपादक, पृ. 1
3. शर्मा डॉ. श्रीराम, दक्खिनी हिंदी का साहित्य, पृ. 38
4. वर्मा धीरेन्द्र, वर्मा ब्रजेश्वर, 1959, हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग, पृ. 582–83, 584

❑❑

हिंदी के सुलगते सवाल

—राजेश कुमार

हिंदी की स्थिति बहुत उलझी हुई है। इसमें बहुत सारी गलत अवधारणाएँ फैली हुई है, जिन्हें समझे बिना लोग इसके बारे में फैसला सुनाने लगते हैं। बहुत सारे लोग हिंदी को लेकर भावुक होकर बात करने लगते हैं, और इस प्रक्रिया में भी असली मुद्दा भूल जाते हैं। बहुत सारे लोग हिंदी को लेकर बहुत सारे काम करना चाहते हैं, लेकिन वे नहीं जानते कि करना क्या है। बहुत सारे लोग यथास्थिति को बनाए रखना चाहते हैं, क्योंकि इससे उन्हें बहुत सारे लाभ मिलते हैं। बहुत सारे लोग कुछ करने की स्थिति में होते हैं, बल्कि वे कुछ करने के लिए मोटी तनख़्वाह भी लेते हैं, लेकिन वे सोचते हैं कि अगर उन्होंने कुछ कर दिया, तो फिर उनके पास आगे करने के लिए कुछ नहीं रह जाएगा।

केंद्र सरकार ने हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने के लिए एक पूरा विभाग, राजभाषा विभाग के नाम से खोला हुआ है, लेकिन आज भी वह लोगों को हिंदी में कामकाज के लिए प्रेरणा देने के काम में ही उलझा हुआ है। केंद्र सरकार और राज्य सरकारों ने हिंदी के काम के लिए बहुत सारे संस्थान खोले हैं, और उनमें बहुत सारा बजट भी होता है, लेकिन जाने क्यों बात कुछ बनती हुई नजर नहीं आती?

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में अंग्रेज़ी भाषा का ही बोलबाला है, हिंदी वहाँ दूसरे दर्जे की भाषा है, और आमतौर से सरकारी नियमों का पालन करने के लिए अंग्रेज़ी में किए गए कुछ काम का हिंदी में अनुवाद करवा दिया जाता है। तथापि, यह वैधानिक चेतावनी भी दे दी जाती है कि किसी भी विवाद की स्थिति में अंग्रेज़ी टेक्स्ट को ही संदर्भित किया जाएगा, और वही मान्य होगा। देश अपनी नई शिक्षा नीति बनाता है, और उसमें बढ़-चढ़कर कहा जाता है कि शिक्षा का माध्यम हिंदी और भारतीय भाषा रहेंगी, लेकिन वह शिक्षा नीति अंग्रेज़ी भाषा में तैयार की जाती है, और फिर बाद में उसका अनुवाद बल्कि कहना चाहिए कि भ्रष्ट अनुवाद किया जाता है, जो अंग्रेज़ी शब्दों की बैसाखी के बिना आगे नहीं बढ़ पाता। अनुवाद में हमें अंग्रेज़ी शब्द ही नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी लिपि तक दिखाई देती है,

जिससे यह साबित होता है कि हिंदी भाषा अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों के बिना, और यहाँ तक की अंग्रेज़ी लिपि के बिना आगे बढ़ने में असमर्थ है। ऐसे बहुत सारे मुद्दे हैं, जिन पर स्पष्टीकरण जिसके जाने की आवश्यकता है, ताकि बहस आगे बढ़ सके, हम सही दिशा में सही काम कर सके। आगे हम इन्हीं बातों पर चर्चा की शुरुआत करना चाहते हैं।

क्या हिंदी विश्व भाषा है?

अगर मैं इसके लिए कहूँ कि हाँ, तो आप ख़ुश हो सकते हैं, हो सकता है कि मेरे इस कथन से मुझे कुछ सम्मान वगैरह भी मिल जाए। इसके लिए मैं कुछ तर्क भी दे सकता हूँ कि यह सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, और यह कि हिंदी भाषा का अध्ययन विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में होता है। अनेक देशों में विश्वविद्यालयों में भारत की ओर से हिंदी प्रोफेसर नियुक्त किए जाते हैं, बॉलीवुड की हिंदी फिल्में हर देश में देखी जाती हैं, आदि-आदि। लेकिन ये सब कारण किसी भाषा को विश्व भाषा बनाने के लिए काफी नहीं है। अगर किसी देश की जनसंख्या अधिक हो, उसके बोलने वाले वालों की संख्या बहुत बड़ी हो जाए, तो इसमें इससे उसका विश्व भाषा होने का दावा नहीं बन जाता। विश्व भाषा बनने के लिए भाषा के बोलने वालों की संख्या उस भाषा के देश के बाहरी देशों में बोलने वालों की संख्या, अन्य देशों में राजकाज में उसके उपयोग, भाषा के शब्द-भंडार, भाषा के वाङ्मय, भाषा के लचीलेपन, भाषा की सरलता, आदि के आधार पर निर्धारित होगी।

आइए देखते हैं कि वे कौन-सी विशेषताएँ हैं, जो किसी भाषा को विश्व भाषा का दर्जा दिलवाते हैं। ये मोटे तौर पर निम्नलिखित हो सकती हैं—

1. आप दुनिया के किसी भी भाग में उस भाषा से काम चला सकते हैं।
2. वह अंतरराष्ट्रीय व्यापार की भाषा है।
3. अपने मूल देश के अलावा वह अन्य देशों में भी प्रमुख भाषा है।
4. उस भाषा में मौलिक कार्य होते हैं, जिसका अनुवाद करने के लिए दूसरी भाषाएँ तैयार रहती हैं।
5. संदर्भ के लिए उस भाषा की सामग्री को देखा जाता है।
6. उस भाषा के अनेक रूप यानी भाषिक रजिस्टर उपलब्ध हैं।
7. वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन के माध्यम के रूप में मान्यता प्राप्त होती है।
8. वह मनोरंजन की प्रमुख भाषा होती है, और विदेशी भाषाएँ उस भाषा में अपनी मनोरंजक सामग्री की के सबटाइटल देती है।
9. उस भाषा के अंतरराष्ट्रीय उपलब्धि स्तर और मानकीकृत परीक्षाएँ निर्धारित होती हैं।
10. सॉफ्टवेयर, गेम्स आदि में वह प्रमुख या वैकल्पिक भाषा होती है।
11. विभिन्न उपकरणों के मैनुअल आदि उस भाषा में भी तैयार किए जाते हैं।

12. उस भाषा में प्रायः सभी देशों में अध्ययन की सुविधाएँ होती हैं, मानकीकृत अध्ययन सामग्री उपलब्ध होती है, पुस्तकों आदि का प्रकाशन होता है।
13. भाषा में अध्ययन करने से रोजगार के अच्छे अवसर उपलब्ध हो जाते हैं।
14. भाषा में गाइड, अनुवादक, दुभाषिये आदि के काम बहुतायत से उपलब्ध होते हैं।

हम जानते हैं कि ऊपर के निकषों पर कसे जाने पर, हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा नहीं बनती। भारत के अलावा, फ़ीजी आदि, जिन देशों में हिंदी भाषा प्रमुख रूप से इस्तेमाल की जाती है, वहाँ भी अब इसका उपयोग घटने लगा है। हम इसे विश्व भाषा का दर्जा दिलाने के लिए विदेशों में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित करते हैं, जो मेलों से ज्यादा बढ़कर कुछ और उपलब्धि हासिल नहीं कर पाते। उनकी कोई कार्य-सूची और फॉलो-अप नहीं होता।

भारत में बिना हिंदी जाने भी लोग अपना काम चला सकते हैं, बिना हिंदी जाने भी हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार कर सकते हैं, हमारे अपने ही देश में हिंदी पूरी तरह से कामकाज की भाषा नहीं है, हम नवीनतम सामग्री और शोध आदि के संदर्भ के लिए हिंदी भाषा पर भरोसा नहीं कर सकते, हिंदी भाषा के बहुत अधिक रजिस्टर उपलब्ध नहीं है और अगर वे हैं भी तो हम उन्हें हतोत्साहित करने की कोशिश करते रहते हैं और शुद्ध हिंदी के इस्तेमाल पर बल देते हैं। हिंदी किसी भी रूप में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन की भाषा नहीं है- विज्ञान, कंप्यूटर, चिकित्सा, कानून, आदि क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा का इस्तेमाल नहीं होता, मनोरंजन आदि के क्षेत्र में भी हिंदी भाषा को वह मान्यता उपलब्ध नहीं है, जो अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, स्पैनिश आदि भाषाओं को उपलब्ध है, ज्यादातर सॉफ्टवेयर, गेम्स आदि में हिंदी भाषा का इस्तेमाल नहीं होता और बहुत सारे उपकरणों के मैनुअल भी हमें हिंदी भाषा में नहीं मिलते, हिंदी भाषा में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचुर मात्रा में अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है, हिंदी भाषा में अध्ययन करके अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रोजगार भी उपलब्ध नहीं है, क्योंकि अपने देश में भी इसकी कमी ही है। इन सभी दृष्टि से देखे तो हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनने के लिए अभी हिंदी में बहुत अधिक काम किए जाने की आवश्यकता है।

हिंदी संस्कृतनिष्ठ या उर्दूनिष्ठः

एक समस्या हिंदी और उर्दू को लेकर पेश की जाती है। ख़ास तौर से राष्ट्रवादी कहे जाने वाले लोग इस बात पर जोर देते हैं, माफ कीजिए बल देते हैं कि उर्दू शब्दों से बचा जाना चाहिए। वे अज्ञानी यह बात नहीं जानते कि उर्दू शब्द जैसे कोई शब्द नहीं है। जिन शब्दों को वे उर्दू शब्द कहते हैं, दरअसल वे अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं से आए हुए शब्द हैं। वे लोग एक पूरी सूची देते हैं कि किन उर्दू शब्दों के आधार के स्थान पर, कौन से संस्कृत शब्दों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, वे कहते हैं कि परिंदे के स्थान पर पक्षी, जरूरत के स्थान पर आवश्यकता, अगर के स्थान पर यदि, एहसास के स्थान पर भाव, जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। यह सुझाव

देते हुए, वे इस बात को भूल जाते हैं कि कोई भी दो शब्द एक जैसा अर्थ कभी नहीं देते, चाहे कितना ही बारीक हो, लेकिन उनमें अर्थ का महीन अंतर हो ही जाता है। वे शायद कहना चाहते हैं कि कृष्णा सोबती को जिंदगीनामा लिखने के बजाए जीवनकथा लिखनी चाहिए थी, या प्रेमचंद को गबन लिखने के बजाए धन-षड्यंत्र जैसा उपन्यास लिखना चाहिए था, आदि-आदि।

वे यह बात भूल जाते हैं कि भाषा का मुख्य काम अर्थ का संप्रेषण होता है, भाषा अपने आप में मुख्य तत्व नहीं है। यहाँ ध्यान रखने की बात है कि शब्दों का चयन हमेशा संबोधित व्यक्ति या समूह के आधार पर होता है, न कि भाषा के आधार पर। दूसरी बात यह है कि ख़ास तौर से काव्य के क्षेत्र में शब्द भंडार की अधिकता काव्यात्मकता को उत्पन्न करने में मदद करती है। ऐसे बहुत सारे शब्द हैं, जिनका हिंदी में कोई शब्द नहीं है, क्योंकि वह संकल्पना हिंदी में नहीं है। उदाहरण के लिए वेबिनार, सॉफ्टवेयर, ई-बुक, ई-कॉमर्स, वायरस, ट्रोजन हॉर्स, रैनसमवेयर, और चिकित्सा के क्षेत्र में भी ऐसे बहुत सारे शब्द हैं, जिनके लिए हिंदी में कोई शब्द नहीं है। इसलिए या तो हम उन शब्दों के लिए नए शब्द गढ़ें और भाषा को दूभर बनाएँ, या फिर संकल्पना के साथ उस शब्द का इस्तेमाल अंगीकार कर लें, और भाषा को सहज रूप से विकसित होने दें। अतः भाषा की व्यापकता को बढ़ाने के लिए, और उसे विभिन्न क्षेत्रों में अभिव्यक्ति में सक्षम बनाने के लिए, उसके शब्द भंडार पर किसी तरह की कोई पाबंदी न होना ही अच्छा होगा। यही कारण है कि अंग्रेज़ी भाषा विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनाकर इस तरह से विशाल, व्यापक भाषा बन पाई है।

विशेष बात यह है कि हिंदी और उर्दू भाषा का व्याकरण एक ही है, और उसमें अंतर मात्र शब्दों के चयन का होता है, या फिर भाषा के साथ जुड़ी अस्मिता का अंतर आता है। इसलिए हमें इस जंजाल को बढ़ाना नहीं चाहिए, बल्कि उर्दूनिष्ठ हिंदी भाषा को हिंदी भाषा का विशेष रूप मान लेना चाहिए।

अंग्रेज़ी शब्दों का उपयोग:

हिंदी भाषा में बहुत से अंग्रेज़ी शब्द भी आ गए हैं, और शुद्धतावादी विद्वान उन पर भी उसी तरह का एतराज करते हैं, जैसा कि वे अरबी, फारसी आदि के शब्दों पर करते हैं। बहुत सारे शब्द ऐसे हैं, जिनके लिए हिंदी में कोई शब्द नहीं है, इसलिए उन पर तो वे लोग किसी तरह की टिप्पणी नहीं कर पाते, लेकिन बहुत से शब्द ऐसे हैं, जिनके लिए हिंदी में शब्द मौजूद हैं, लेकिन फिर भी लोग आम बोलचाल में, क्या यहाँ तक कि साहित्य में भी अंग्रेज़ी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे शब्दों में, थैंक यू, वेलकम, लेट होना, सॉरी, गुड मॉर्निंग, बाय-बाय, हैलो, हाय, टेंपरेचर, टाइम, हरि अप, यस-यस, नौ-नो, सी यू, नो प्रॉब्लम, जैसे शब्द हैं। इनमें से बहुत सारे शब्दों का इस्तेमाल तो मेड, चौकीदार, ड्राइवर, जैसे लोग भी करते हैं, जो बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं होते। इसका एक कारण शायद यह भी है कि अंग्रेज़ी के प्रति हम लोगों के मन में आकर्षण है, जो उसके साथ जुड़े प्रभुत्व और आर्थिक समृद्धि से भी प्रभावित रहता है।

इन शब्दों के उपयोग पर आपत्ति वैसे लोग भी करते हैं, जो आमतौर से अरबी–फारसी आदि शब्दों के इस्तेमाल पर आपत्ति नहीं करते। अब यह बात समझ में नहीं आती कि अगर एक तरह के विदेशी शब्दों पर आपत्ति है, तो दूसरे विदेशी शब्दों पर क्यों नहीं? कारण चाहे कुछ भी हो, उन लोगों की आपत्ति के बावजूद इस तरह के शब्द भाषा में आम इस्तेमाल में रहते हैं, और यहाँ तक कि आपत्ति करने वाले लोग भी गाहे–ब–गाहे इन शब्दों का इस्तेमाल करते हुए देखे जाते हैं।

हिंदलिश:

हिंदलिश को लोग अनेक रूपों में देखते समझते हैं। यह हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी भाषा के कुछ शब्दों के उपयोग से आगे की बात है। आमतौर पर समझा जाता है कि हिंदी में जब हम लोग बहुत अधिक अंग्रेज़ी शब्दों का उपयोग करते हैं, तो वह हिंदलिश भाषा बन जाती है, लेकिन हिंदलिश, हिंदी भाषा का वह रूप है, जिसमें न केवल अंग्रेज़ी के बहुत अधिक शब्द होते हैं, बल्कि उसे लिखा भी रोमन लिपि में ही जाता है। जैसे– please mere liye lata Mangeshkar ka song laga den, या bedroom men light on kar den

शुद्धतावादी लोग अवश्य ही भाषा के इस रूप पर आपत्ति करते हैं, और इसे हमारी हिंदी भाषा और यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति पर भी आक्रमण के रूप में देखते हैं। लेकिन अगर हम उनकी बात को अलग रखकर इसे हिंदी भाषा के एक रूप के तरह से देखें, तो यह भाषा के विकास की एक दिशा हो सकती है। इस भाषा रूप में साहित्य की रचना भी की गई है।

लिपि क्या हो:

एक सवाल यह है कि हिंदी भाषा की लिपि क्या हो? कई लोगों ने इसके लिए रोमन लिपि का प्रस्ताव किया है, कुछ लोग चाहते हैं कि इसमें सिर्फ रोमन लिपि का पूर्ण विराम लिया जाए और लिपि यही रहे। तथापि, ध्यान रखने की बात यह है कि लिपि और भाषा का बहुत अन्योन्याश्रित संबंध रहता है और यही कारण है कि लिपि को इतनी आसानी से नहीं बदला जा सकता। यह अवश्य है कि लिपि में विकास से और सुधारों को अवश्य स्थान दिया जाना चाहिए। हम देखते हैं कि पहले जिस तरह से 'अ' लिखा जाता था, उस तरह से अब नहीं लिखा जाता। अगर ऐसा लगता है कि किन्हीं विकास और सुधारों से भाषा की लिपि में सुधार या आसानी संभव है, तो उसे स्वीकार किया जा सकता है, अन्यथा हिंदी भाषा को रोमन भाषा में लिखने की कोई आवश्यकता समझ में नहीं आती।

हिंदी में टाइपिंग:

हिंदी में टाइपिंग के अनेक रूप दिखाई देते हैं। सबसे पहले, हमें वह रूप दिखाई देता है, जिसमें अलग–अलग वर्णों को टाइप किया जाता है, जिसे आमतौर से रेमिंगटन कीबोर्ड के रूप में जाना जाता है। यह दरअसल अंग्रेज़ी भाषा के आधार पर तैयार किया गया कीबोर्ड है और इसलिए यह

यूनिकोड टाइपिंग के लिए समर्थ नहीं है। इसके बाद हमें इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड मिलता है, जिसमें हम यूनिकोड रूप को टाइप करते हैं। यह बहुत वैज्ञानिक और आसानी से टाइप करने के लिए तैयार किया गया वैज्ञानिक कीबोर्ड है, जिसमें बाईं ओर हमें स्वर और मात्राएँ तथा दाईं ओर व्यंजन दिखाई देते हैं। इसे सीखना बहुत आसान है।

इसके बाद उन लोगों की सुविधा के लिए फोनेटिक कीबोर्ड तैयार किया गया है, जो अंग्रेज़ी भाषा टाइप करके हिंदी भाषा लिखना चाहते हैं। हालाँकि इन लोगों को यही सलाह दी जाती है कि जब वे इस प्रक्रिया का इस्तेमाल करते हैं, तो यह आसान लग सकती है, किंतु क्योंकि इसमें दो भाषाएँ शामिल हो जाती है और हम एक तरह से एक भाषा के माध्यम से दूसरी भाषा को टाइप कर रहे हैं, तो चाहे देखने में यह आसान लगे, लेकिन इसमें दुगुना श्रम लगता है, क्योंकि हम लगातार अंग्रेज़ी में सोचते हुए हिंदी में टाइप करते हैं। इसके बजाए अगर हम लोग इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड को सीख लें, तो इससे हमें टाइप करने में बहुत आसानी हो जाएगी, चाहे हमें शुरू में इसे सीखने में थोड़ा समय ही क्यों न लगें।

मीडिया की भाषा:

मीडिया की भाषा पर हमें दो तरह से विचार करने की आवश्यकता है। एक तो इस भाषा में हमें बहुत अधिक उत्तेजनापूर्ण और अश्लील अभिव्यक्तियों के दर्शन होते हैं, जैसे–मिर्ची लगना, घुटनों पर आना, धो देना, तिलमिलाना, आदि। इस तरह की भाषा का उद्देश्य दर्शकों–श्रोताओं को उत्तेजित करना और अपनी और आकर्षित करके अपने चैनल की टी.आर.पी. बढ़ाना होता है। इसके साथ ही, यह प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है कि जिसमें हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का खुलकर इस्तेमाल किया जाता है, जैसे प्रॉब्लम, फोर्स, डिसमिस, ब्रैड, अंडरस्टैंडिंग, मार्केट, शर्ट, शॉपिंग, ब्रेकफास्ट, लंच, डिनर, लेट, वाइफ, हस्बैंड, सिस्टर, फादर, मदर, फेस, माउथ, गॉड, कोर्ट, लैटर, मिल्क, शूगर, टी, सर्वेंट, डैथ, एक्सपायर, बर्थ, हेड, हेयर, एक्सरसाइज, वॉक, बुक, चेयर, टेबल, हाउस, पीएम, वी. आई.पी., आदि, हालाँकि इनके लिए बहुत आसान हिंदी शब्द आसानी से उपलब्ध होते हैं।

अशुद्ध भाषा, अमानक भाषा:

भाषा की शुद्धता–अशुद्धता, मानकता–अमानकता का निर्णय आखिर किस आधार पर किया जा सकता है? हम अक्सर कहते हैं कि "मेरे को देर हो रही है", या "आप करिए" जैसे वाक्य अशुद्ध है, किंतु इनका भाषा में बड़ी मात्रा में उपयोग होता है। वैसे भी, भाषा वास्तव में समाज की वस्तु है; इसलिए उस पर शुद्धता–अशुद्धता का दावा किया जाना बहुत अधिक उपयोगी नहीं होगा; क्योंकि इससे भाषा पर अनावश्यक रूप से नियंत्रण हो जाएगा, जिससे उसके उपयोग में बाधा होगी। कहा भी गया है कि भाषा बहता नीर है। इसलिए इसकी निर्मलता के लिए इसका बहते रहना, उपयोग में रहना ही उपयुक्त है, क्योंकि भाषा का प्रवाह रुकने से इसका सहज विकास भी अवरुद्ध हो जाएगा। कौन कह सकता है कि जिस "साहस" शब्द को हम आज सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, पूर्व में उसका अर्थ "चोर–डाकुओं का कार्य" होता था।

इसलिए इस बात पर सहमति बन सकती है कि कुछ प्रयोग तो अनिवार्य रूप से अशुद्ध है, जैसे—

1. कृपया, चिन्ह, उपरोक्त, सन्यास, उज्वल, आदि शब्द।
2. वह चले गए, राम खाना खाई, जैसे वाक्य।

इनका उपयोग करने से बचना चाहिए। लेकिन कुछ प्रयोग ऐसे हैं, जिन्हें स्वीकार किया जा सकता है, और हो सकता है कि भाषा के विकास क्रम में वे शुद्ध रूप मान लिए जाए।

सिमटता दायराः

एक और तो हम अंतरराष्ट्रीय विश्व हिंदी की बात करते हैं, उसी साँस में हम इस बात की चिंता करते हैं कि हिंदी का उपयोग करने वाले लोगों की संख्या कम होती जा रही है। इसके साथ ही यह भी देखने में आता है की हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थी कम होते जा रहे हैं, विदेशों में हिंदी का उपयोग घटता जा रहा है, जहाँ हिंदी का उपयोग युवा पीढ़ी कर भी रही है, वह इसके लिए देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि का उपयोग करना ज्यादा आसान और सहज समझती है। इस बात पर चिंता करते हुए हम यह सोचना भूल जाते हैं कि ऐसी क्या बात है कि युवा पीढ़ी हिंदी की तरफ नहीं आ रही, और अंग्रेज़ी भाषा की तरफ जा रही है। हिंदी भाषा में किन चीजों की कमी है कि युवा पीढ़ी इसकी तरफ आकर्षित नहीं होतीं। क्या हिंदी पढ़ने से रोजगार आसानी से मिल जाता है, क्या हिंदी जानने से हमें देश-दुनिया के अंतरराष्ट्रीय विज्ञान, चिकित्सा, कंप्यूटर आदि क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त हो जाता है, क्या हिंदी जानना हमें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने के लिए काफी रहता है? ये ऐसी बातें हैं, जिन पर विचार करने और उनके लिए उचित श्रम करने की आवश्यकता है, न कि केवल हिंदी के उपयोगकर्ताओं की घटती हुई संख्या पर चिंता करने की!

संसाधन कम हैंः

अगर कोई व्यक्ति हिंदी सीखना चाहता है, तो क्या उसके लिए हमारे पास पर्याप्त संसाधन हैं? क्या हमारे पास मानक पाठ्यक्रम, व्याकरण पुस्तक, शब्दकोश, शैली गाइड आदि संसाधन हैं, जो विद्यार्थी को मदद कर सकते हैं? क्या ये आसानी से उपलब्ध हैं? क्या सरकार द्वारा इनके प्रचार-प्रसार के लिए काम किया जाता है? इन सबका उत्तर हमें संतोषजनक रूप में नहीं मिलता।

टेक्नोलॉजी और हिंदीः

टेक्नोलॉजी और हिंदी पर भी बहुत विचार किया जाता है। इसके लिए सरकार और विभिन्न संस्थाओं द्वारा कार्य किए जाते हैं, पुरस्कार वितरित किए जाते हैं, तथा इसी तरह की बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं। लेकिन अभी भी टेक्नोलॉजी के स्तर पर हिंदी भाषा अनेक विकसित भाषाओं की तुलना में बहुत पीछे है, जिनसे प्रतिस्पर्धा करके हिंदी भाषा विश्व स्तर पर स्थापित होने की इच्छा करती है। हिंदी की टेक्नोलॉजी या प्रौद्योगिकी अभी भी कंप्यूटर पर हिंदी टाइप करने तक सीमित है, और टाइप

करने में भी बड़ी-बड़ी उलझने हमारे सामने आती है। हम अभी भी प्रूफ रीडिंग पर निर्भर करते हैं, क्योंकि हम अभी तक प्रकाशन के आधुनिक सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल करना नहीं चाहते। यह भी देखने में आते हैं कि हम सॉफ्टवेयर पर व्यक्तिगत और यहाँ तक की संस्थागत स्तर पर भी पैसा ख़र्च करने से बचते हैं, और नकली और चोरी के सॉफ्टवेयर पर ही काम करते रहते हैं। हिंदी भाषा का कीबोर्ड भी ऐसा नहीं है, जिसमें हमें सभी जरूरी कुंजियाँ मिल जाए, जैसे इसमें, ! या ? आदि अनिवार्य चीजें नहीं मिलतीं। अन्य भाषाओं में जहाँ वर्तनी सुधार, से आगे बढ़कर संपादन में सुविधाओं की दिशा में काम हो रहा है और कृत्रिम बुद्धि के द्वारा लेखन में सहायता दी जा रही है, हम लोग अभी भी टेक्नोलॉजी के स्तर पर बुनियादी चीजें भी हिंदी भाषा में उपलब्ध नहीं करा पाए है।

भाषा और बोलियाँ:

हिंदी भाषा खड़ी बोली के आधार पर विकसित भाषा रूप है, लेकिन यह खड़ी बोली नहीं है, क्योंकि यह भाषा है और खड़ी बोली, बोली है। अक्सर हिंदी भाषा में भाषा और बोलियों के संघर्ष को हवा दी जाती है। भाषा समग्र क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाली अपनी बोलियों की शक्ति को अपने भीतर समा लेने वाली इकाई को कहा जाता है, जिसके साथ सभी बोलियों के उपयोगकर्ता अपनी अस्मिता को जोड़ते हैं। ऐसा संभव हो सकता है कि किसी बोली का रूप बहुत विकसित हो, उसमें लिखित साहित्य हो, और साथ ही उसमें वे सब गुण हों, जो उसे भाषा के रूप में स्थापित करने में मदद करें, लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि अगर कोई बोली भाषा से अलग होती है, तो वह भाषा की शक्ति को क्षीण करती है, और साथ ही भाषा के साथ जुड़े रहने से उसकी जो महत्ता होती है, वह भी कम होती है। उदाहरण के लिए, अगर भाषा को विश्वभाषा बनना है, तो यह भी ध्यान में रखा जाता है कि उसके बोलने वालों की संख्या क्या है, जो बोलियों के उपयोगकर्ताओं के समुद्र से बनती है। बोली भाषा से अलग हो जाती है, तो वे भाषा की उपयोगकर्ताओं की संख्या को स्वाभाविक रूप से कम कर देती है। इसकी क्षति भाषा और बोली दोनों को ही होती है। इस बात को समझे बिना और इस प्रक्रिया के पीछे के षड्यंत्र को समझें बिना बहुत से लोग बोली को भाषा का दर्जा देने के लिए आंदोलन करते हैं। साथ ही, ऐसा नहीं हो सकता कि जिसकी बोली के साहित्यकारों, भाषा रूपों आदि का अध्ययन जिस मूल भाषा के साथ होता है, उसे अचानक समाप्त कर दिया जाए। यह अवश्य है कि हमें भाषा और उसकी बोलियों को एक साथ विकास के पथ पर ले जाना चाहिए, बोलियों में भी वही सुविधाएँ और साधन उपलब्ध करवाए जाने चाहिए, जो भाषा को उपलब्ध है, तथापि बोली को भाषा के रूप में स्थापित करने के आंदोलनों से बचा जाना चाहिए। हमें आशा है कि यह अगर इस सामग्री के माध्यम से हिंदी के क्षेत्र में फैले हुए कुछ भ्रम को दूर किया जा सके, और हम लोग हिंदी के विकास के लिए सही किस्म की योजनाएँ तैयार कर सकें तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

❑❑

हिंदी पाठ पूर्व–संसाधन
(प्राकृतिक भाषा संसाधन के परिप्रेक्ष्य में)

—अंजना किशनपुरी, धीरेन्द्र यादव, हर्षलता पेटकर

सारांश:

डिजिटल प्रारूप में पाठ्य डेटा ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों मोड में आजकल तेजी से बढ़ रहा है, इन दस्तावेजों को प्रबंधित करना और पुनर्प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) जैसे अभिलेखीय, पुनर्प्राप्ति, प्रश्न प्रतिक्रिया, पाठ सारांश, मशीनी अनुवाद आदि पाठ्य दस्तावेजों के कुशल पूर्व–संसाधन पर अत्यधिक निर्भर है। प्राकृतिक भाषा संसाधन के इस विशेष क्षेत्र में शोधकर्ताओं को मशीन लर्निंग एल्गोरिदम को भाषाओं के आधार पर स्वचालित रूप से पूर्व–संसाधन के लिए दस्तावेजों पर लागू करने के लिए प्रेरित किया है, जो इसके संदर्भ के आधार पर दस्तावेजों को संसाधित करने के तरीकों को विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र के अंतर्गत प्राकृतिक भाषा संसाधन के परिप्रेक्ष्य में पूर्व–संसाधन अनुप्रयोग प्रस्तावित किया गया है। पूर्व संसाधन पाठ्य खनन, प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) और सूचना पुनर्प्राप्ति (IR) में एक महत्वपूर्ण कार्य है। हालाँकि, पूर्व–संसाधन के बिना कोई भी असंचरित पाठ्य डेटा पर कार्य नहीं किया जा सकता है। पाठ्य पूर्व संसाधन ठीक से निष्पादित होने पर सर्वोत्कृष्ट परिणाम सुनिश्चित करता है। प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में, डेटा पूर्व–संसाधन का उपयोग असंरचित पाठ्य डेटा से रोचक एवं ज्ञान निकालने के लिए किया जाता है। इस शोध–पत्र के द्वारा हिंदी विधि डोमेन के लिए पूर्व–संसाधन अनुप्रयोग प्रस्तावित किया गया है, जिसके अंतर्गत् सामान्यीकरण, टोकनाइजेशन, विराम शब्द निष्कासन एवं स्टेमिंग जैसी महत्वपूर्ण भाषिक प्रक्रियाओं की व्यापक और उपयोगी समझ प्रदान कराना है।

मुख्य शब्द (Keywords) – पूर्व–संसाधन, सूचना पुनर्प्राप्ति, प्राकृतिक भाषा संसाधन, सूचना निष्कर्षण।

1. परिचयः

पूर्व–संसाधन पाठ्य खनन, प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) और सूचना पुनर्प्राप्ति (IR) में एक महत्वपूर्ण कार्य और महत्वपूर्ण कदम है। पाठ्य खनन के क्षेत्र में, डेटा पूर्व–संसाधन का उपयोग असंरचित पाठ्य डेटा से रोचक एवं ज्ञान निकालने के लिए किया जाता है। सूचना पुनर्प्राप्ति अनिवार्य रूप से यह निर्णय लेने का विषय है कि एक संग्रह में कौन से प्रलेखों को पुनः प्राप्त किया जाना चाहिए ताकि प्रयोक्ता की सूचना की आवश्यकता को पूरा किया जा सके। प्रयोक्ता की सूचना की आवश्यकता को प्रश्न या प्रोफाइल द्वारा व्यक्त किया जाता है और इसमें एक या अधिक खोज शब्द (पद), साथ ही कुछ अतिरिक्त जानकारी जैसे शब्दों के भार को समाहित किया जाता है। अतः पुनर्प्राप्ति निर्णय प्रश्नों की शर्तों की तुलना सूचक शब्दों (महत्वपूर्ण शब्दों या वाक्यांशों) के साथ स्वयं प्रलेख में प्रस्तुत होने से की जाती है। यह निर्णय द्विआधारी (पुनः प्राप्त/अस्वीकार) हो सकता है या जिन प्रलेखों में प्रश्न होते हैं उसमें प्रासंगिकता की उस डिग्री का प्राक्कलन समाहित हो सकता है। दुर्भाग्यवश, प्रलेखों तथा प्रश्नोत्तरों में दिखाई देने वाले शब्दों के संरचनात्मक प्रकार प्रायः अनेक प्रकार के होते हैं। अतः प्रलेखों से सूचना पुनर्प्राप्ति से पहले, डेटा पूर्व–संसाधन तकनीकों को डेटा सेट के आकार को कम करने के लिए लक्ष्य डेटा सेट पर लागू किया जाता है, जिससे डेटा सेट के आकार को कम किया जा सके और इस अध्ययन का उद्देश्य इनके पूर्व–संसाधन विधियों जैसे- सामान्यीकरण, टोकेनाइजेशन, विराम शब्द निष्कासन एवं स्टेमिंग का विशलेषण करना है।

2. पूर्व–संसाधनः

पाठ पूर्व–संसाधन किसी भी NLP प्रणाली का एक अनिवार्य भाग है, क्योंकि चरण पर पहचाने गए अक्षर, शब्द और वाक्य आगे की प्रक्रिया चरणों में पारित की जाने वाली मूल इकाईयाँ हैं। विश्लेषण और टैगिंग के घटकों जैसे कि रूपिम विश्लेषक (Morphological Analyzer) और शब्द–भेद टैगर (Part-of-Speech Tagger) को सूचना पुनर्प्राप्ति और मशीन अनुवाद प्रणाली जैसे अनुप्रयोगों के माध्यम से किया जाता है। यह गतिविधियों का एक संग्रह है, जिसमें पाठ प्रलेख पूर्व संसाधित होते हैं क्योंकि पाठ डेटा में प्रायः कुछ विशेष प्रारूप होते हैं, जैसे संख्या प्रारूप, तिथि प्रारूप और सबसे सामान्य शब्द जो पाठ्य खनन में मदद करने की संभावना नहीं रखते हैं, जैसे कि पूर्वसर्ग, लेख, और सर्वनामों को समाप्त किया जा सकता है।

NLP प्रणाली में पाठ पूर्व–संसाधन की आवश्यकता हैः–

(Need of Text Pre-processing in NLP System)

1. मूल पाठ प्रलेख की सूची फाइल के आकार को कम करने के लिए,
   i. किसी विशेष पाठ प्रलेख में शब्दों के कुल शब्द गणना का 20-30% विराम शब्द (Stop word) का होना।
   ii. स्टेमिंग (Stemming) द्वारा पाठ के आकार को 40-50% तक कम कर सकता है।

2. सूचना पुनर्प्राप्ति प्रणाली की दक्षता एवं प्रभावशीलता को सुधारने के लिए,

   i. विराम शब्द (Stop words) खोज या पाठ खनन के लिए उपयोगी नहीं होते है तथा वे पुनर्प्राप्ति प्रणाली को भ्रमित कर सकते हैं।
   ii. स्टेमिंग (Stemming) किसी पाठ प्रलेख में समान शब्दों के मिलान में प्रयुक्त होती है।

3. साहित्य पुनरवलोकन:

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राकृतिक भाषा संसाधन, सूचना पुनर्प्राप्ति एवं सूचना निष्कर्षण में पूर्व-संसाधन की प्रक्रिया को केंद्रित किया गया है। विशाल और गुरप्रीत (2011) ने बताया की सर्वप्रथम प्राकृतिक भाषा संसाधन के अंतर्गत् पंजाबी पाठ के लिए पूर्व-संसाधन पर कार्य किया गया था। इन्होंने इस शोध-पत्र में पंजाबी पाठ सारांशीकरण प्रणाली के लिए पूर्व-संसाधन के विभिन्न चरणों का गहन विश्लेषण कर कार्यान्वयन किया था। पूर्व-संसाधन में उपयोग किए जाने वाले अधिकांश शाब्दिक संसाधन जैसे पंजाबी स्टेमर, पंजाबी उचित नाम सूची, अंग्रेजी-पंजाबी संज्ञा सूची आदि को स्क्रैच प्रोग्रामिंग इंटरफ़ेस द्वारा विकसित किया। तथा इन संसाधनों को विकसित करने के लिए मानवीकृत एवं स्वचालित उपकरणों का प्रयोग करके पंजाबी शब्द संग्रह और पंजाबी शब्द रूपों का गहन विश्लेषण किया।

पॉल (2013) द्वारा हिंदी के लिए एक लेमेटाइज़र के विकास पर चर्चा की गई है। जो कि नियम आधारित दृष्टिकोण का उपयोग करता है, जिसमें सभी हिंदी शब्द शामिल हैं, जो आमतौर पर दैनिक जीवन में उपयोग किए जाते हैं। इस दृष्टिकोण ने स्थान के बजाए समय अनुकूलन समस्या पर भी जोर दिया है। चूंकि आजकल जगह/विस्तार कोई बड़ी समस्या नहीं है, इसलिए उनके दृष्टिकोण का उद्देश्य समय को अनुकूलित करना और बहुत ही कम समय में सटीक परिणाम उत्पन्न कराना था। प्रणाली द्वारा 91% सटीकता प्रदान की गई है।

Fan Sun (2014) ने असंरचित ऑनलाइन वित्तीय ग्रंथों से अवांछित पाठ हटाने और ऐसे पाठों को एक उन्नत प्रारूप में व्यवस्थित करने के लिए एक प्राकृतिक भाषा संसाधन आधारित पूर्व-संसाधन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। जो पाठ्य विशेषता निष्कर्षण के लिए अधिक उपयोगी है। ऑनलाइन अनौपचारिक पाठ में अवांछित पाठ को कम करने के लिए प्रस्तावित दृष्टिकोण, छह प्राकृतिक भाषा संसाधन प्रसंस्करण चरणों को एकीकृत करता है, जिसमें एक विकसित वाक्य विन्यास संबंधी (Syntactic) एवं अर्थ-संबंधी (Semantics) संयुक्त निषेध संचालित कलनविधि (Negation

handling Algorithm) शामिल है। साथ ही प्रत्येक प्रणाली कार्यान्वयन में त्रिवर्गीय भाव वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया। प्रायोगिक परिणाम बताते हैं कि प्रस्तावित पूर्व–संसाधन दृष्टिकोण अन्य पूर्व–संसाधन विधियों से बेहतर प्रदर्शन करता है।

Ashish (2014) ने इस शोध–पत्र में पाठ के आकार को कम करने के लिए पाठ सारांशीकरण के पूर्व–संसाधन के चरणों पर चर्चा की है। पूर्व–संसाधन चरण में हाइफ़न, विराम शब्द, समानार्थी शब्द और समानार्थी वाक्यों को निष्कासित कर दिया जाता है। साथ ही इस शोध–पत्र में पाठ सारांशीकरण के संदिग्ध विषय परिभाषित हैं। इस शोध–पत्र में परिभाषित पूर्व–संसाधन चरण के सभी चरणों का उपयोग करके सभी संदिग्ध विषयों को हल किया जा सकता है।

Jaideep और Jatinder (2016) ने संस्कृत भाषा के लिए विराम शब्द निष्कासन एल्गोरिथम और इसके कार्यान्वयन को डिजाइन करने के लिए एक सरल दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। एल्गोरिथ्म और कार्यान्वयन शब्दकोश आधारित दृष्टिकोण का उपयोग करता था। शब्दकोश आधारित दृष्टिकोण में विराम शब्दों की पूर्वनिर्धारित सूची की तुलना लक्ष्य पाठ से तब की जाती थी, जब विराम शब्द निष्कासन की आवश्यकता होती थी।

Anjusha (2016) ने प्रस्तावित शोध–पत्र में हिंदी पाठ सारांश प्रणाली के लिए पूर्व–संसाधन चरण पर चर्चा की है। पूर्व–संसाधन में उपयोग किए जाने वाले अधिकांश संसाधन जैसे हिंदी स्टेमर, हिंदी विराम शब्द सूची आदि को डोमेन विशेष अच्छे परिणाम उत्पन्न करने के लिए विकसित किया गया। पूर्व–संसाधन का इनपुट कोई भी असंरचित हिंदी पाठ और आउटपुट संरचित पाठ होता है।

Mozammel और Mahmudul (2018) द्वारा यह शोध अध्ययन मुख्य रूप से बंगाली क्रिया के विश्लेषण पर केंद्रित किया गया था। इस शोधपत्र ने अनुकूलित बैग–ऑफ–वर्ड्स बनाने के लिए बंगाली क्रिया के बहुरूप से एक अद्‌वितीय और सार्थक शब्द खोजने के लिए एक एल्गोरिदम और संबंधित नियमों का प्रस्ताव दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप पाठ वर्गीकरण अधिक सटीक होगा।

Ravi & Stanislaus (2018) ने अपने सर्वेक्षण पत्र में सामान्य रूप से पाठ खनन और विशेष रूप से प्राकृतिक भाषा संसाधन के लिए पूर्व–संसाधन टूल प्रस्तुत किया था। साथ ही सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली पाठ खनन तकनीकों की व्यापक श्रेणियाँ भी प्रस्तुत की। उनके शोध–पत्र का उद्‌देश्य पाठ संसाधन तकनीकों और टूल्स की कई विशेषताओं का पता लगाना और उनका विश्लेषण करना था।

Anand (2019) का यह शोधपत्र हिंदी में किसी शब्द के मूल रूप को खोजने के लिए एक एल्गोरिथम प्रस्तुत करता है। प्रस्तावित एल्गोरिथ्म word2vec का उपयोग करता है, जो एक अर्ध–पर्यवेक्षित शिक्षण एल्गोरिथ्म है, जो एक कॉर्पस से 10 सबसे समान शब्दों को खोजने के लिए

है फिर मूल रूप को खोजने के उपर्युक्त कार्य को प्राप्त करने के लिए एक गणितीय कार्य प्रस्तावित किया जाता है। प्रस्तावित एल्गोरिथम को किसी एनोटेट कॉर्पस की आवश्यकता नहीं है और स्टेम को खोजने के लिए किसी जटिल कोडेड नियमों का उपयोग नहीं करता है। परिणामों को एक संग्रह से बेहतर ढंग से लिए गए 1000 हिंदी शब्दों के एक सेट का चयन करके और प्रस्तावित एल्गोरिथम द्वारा दिए गए परिणामों और मैन्युअल रूप से बनाए गए वास्तविक परिणामों की तुलना करके सत्यापित किया जाता है।

Apurva (2020) ने मराठी ई-न्यूज आलेखों (शैक्षिक, राजनीतिक और खेल समाचारों जैसे डोमेन विशेष) पर पूर्व-संसाधन तकनीकों का ध्यान केंद्रित कर अन्वेषण किया है। वे एक ऐसी पूर्व-संसाधन प्रणाली विकसित करने की कोशिश कर रहीं हैं जो मराठी ई-न्यूज को सारांशित करने के लिए तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम और कुशल होगी।

Ayisha और Rajendra (2020) ने अपने सर्वेक्षण पत्र में प्राकृतिक भाषा संसाधन के पाठ्य विशेषता निष्कर्षण तकनीकों का उपयोग करके सूचना पुनर्प्राप्ति के साथ-साथ पाठ पूर्व-संसाधन तकनीकों के उपयोग के महत्व पर जोर दिया है। जिसके अंतर्गत् पाठ्य विशेषता निष्कर्षण, बैग ऑफ वर्ड्स, टी. एफ. आई. डी. एफ. (TF-IDF) जैसी तकनीकों को सविस्तार से समझाया है।

4. पूर्व-संसाधन प्रक्रिया:

1. सामान्यीकरण (Normalization) - इस प्रक्रिया में पाठ डेटा में प्राय: कुछ विशेष प्रारूप होते हैं। जैसे संख्या प्रारूप, तिथि प्रारूप और सबसे सामान्य शब्द जो पाठ्य खनन में मदद करने की संभावना नहीं रखते हैं। जैसे कि रिक्त स्थान, अन्य विशेष प्रतीकों, पूर्वसर्ग और संक्षेपाक्षर को समाप्त किया जाता है साथ ही वाक्यों को विघटित किया जाता है और फिर प्रत्येक वाक्य में शब्दों की संख्या गिनी जाती है। हिंदी में, वाक्य की सीमा 'पूर्ण विराम' की पहचान करके जिससे वाक्य समाप्त होता है, को खंडित किया जाता है।

2. टोकेनाइजेसन (Tokenization) - एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें वाक्य से शब्दों, वाक्यांशों, प्रतीकों को तोड़ने का कार्य किया जाता है और अन्य पृथक अर्थ पूर्ण पद को token कहा जाता है। टोकेनाइजेशन का उद्देश्य एक वाक्य में शब्दों की खोज करना है। इन Tokens की सूची आगे संसाधन जैसे Parsing या पाठ खनन के लिए इनपुट बन जाता है। भाषा विज्ञान (जहाँ यह पाठ विभाजन का एक रूप है) और कंप्यूटर विज्ञान में, जहाँ यह शाब्दिक विश्लेषण का एक भाग है, दोनों में ही टोकेनाइजेशन उपयोगी होता है। शाब्दिक डेटा, प्रारंभ में वर्गों का केवल एक खंड होता है। सूचना पुनर्प्राप्ति की सभी प्रक्रियाओं में डेटा सेट के शब्दों की आवश्यकता होती है। इसलिए, parser के लिए प्रलेखों का टोकेनाइजेशन होना आवश्यक होता है। टोकेनाइजेशन का मुख्य उपयोग सार्थक कीबोर्ड की पहचान करना होता

है, भिन्न संख्या और समय प्रारूपों में विसंगति हो सकती है। दूसरी समस्या संक्षिप्ताक्षर (abbreviations) और acronyms शब्द हैं, जिन्हें एक मानक रूप में रूपांतरित करना होता है।

टोकेनाइजेसन की समस्याएँ—टोकेनाइजेसन में चुनौतियाँ भाषा के प्रकार पर निर्भर करती है। अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी भाषाओं का अंतराल सीमांकित माना जाता है क्योंकि अधिकांश शब्द सफ़ेद स्थानों से अलग-अलग होते हैं। चीनी और थाई जैसी अखंडित भाषाओं को जिसमें शब्दों को स्पष्ट सीमाओं में नहीं रखा गया है। अखंडित भाषा वाक्यों को tokenize करने के लिए अतिरिक्त शाब्दिक एवं रुपवाचक जानकारी की आवश्यकता होती है। शब्दों के लेखन–प्रणाली तथा शब्द–मुद्रण की संरचना से टोकेनाइजेशन प्रभावित होता है। भाषाओं की संरचना को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:

Isolating (पृथक): शब्द छोटे इकाइयों में विभाजित नहीं करते हैं। उदाहरण: Mandarin Chinese.

Agglutinative: शब्द छोटे इकाईयों में विभाजित होते हैं। उदाहरण: जापानी, तमिल।

Inflectional: रूपिम के बीच की सीमाएँ व्याकरणिक अर्थ के संदर्भ में अस्पष्ट और संदिग्धार्थक हैं। उदाहरण: लैटिन।

3. विराम शब्द निष्कासन (Stop Word Removal) – प्रलेख में प्राय: अनेक शब्द पुन: प्रयोग होते हैं परंतु अनिवार्य रूप से निरर्थक होते हैं क्योंकि इसका प्रयोग वाक्यों में शब्दों को एक साथ जोड़ने में किया जाता है। यह सामान्यत: समझा जाता है कि पाठ प्रलेखों के संदर्भ या विषय वस्तु में विराम शब्द योगदान नहीं देते। विराम शब्दों की उच्च आवृत्ति आने के कारण, पाठ्य खनन में उनकी उपस्थिति से प्रलेखों के विषय–वस्तु को समझने में बाधा आती है। विराम शब्द प्राय: सामान्य शब्दों जैसे 'और', हैं', 'यह' आदि का उपयोग किया जाता है। वे प्रलेखों के वर्गीकरण में उपयोगी नहीं होते हैं इसलिए उन्हें हटाना ही चाहिए। फिर भी, ऐसी विराम शब्दों की सूची का विकास पाठ स्त्रोतों के बीच कठिन और असंगत है। यह प्रक्रिया पाठ डेटा को भी कम करती है और प्रणाली के निष्पादन में सुधार करती है। प्रत्येक पाठ प्रलेख इन शब्दों से संबंधित होते हैं जो पाठ खनन अनुप्रयोगों के लिए आवश्यक नहीं हैं। उदाहरण:- के, का, एक, में, है, यह, और, इस, जो, कर, अपने,ने, गया, किया, जबकि, हालाँकि इत्यादि।

4. स्टेमिंग (Stemming) – स्टेमिंग, एक शब्द के भिन्न रूपों के मिलान के एक सामान्य प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, शब्द: "राष्ट्रीय", "राष्ट्रीयता", "राष्ट्रीयकरण", "राष्ट्रवाद" सभी को "राष्ट्र" रूप में कम करके प्रदर्शित किया जा सकता है। यह पाठ

संसाधन में सूचना पुनर्प्राप्ति के लिए एक व्यापक रूप से प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया है जो कि इस धारणा पर आधारित है। Stemming में त्रुटियाँ (Error in Stemming)- Stemming में मुख्य रूप से दो त्रुटियाँ होती हैं:—

1. Over Stemming— जब दो शब्द अलग-अलग stems के साथ एक ही root पर stemmed होते हैं, वह प्रक्रिया Over Stemming कहलाती है। इसे false positive के नाम से भी जाना जाता है।

2. Under Stemming जब दो शब्द एक ही root पर stemmed नहीं होते हैं, वह प्रक्रिया Under Stemming कहलाती है। इसे false negative के नाम से भी जाना जाता है।

5. प्रस्तावित कार्य-कार्य प्रणाली एवं टूल निर्माण:

इस शोध-पत्र में हिंदी पाठ के लिए पूर्व-संसाधन के प्रत्येक चरण का गहन विश्लेषण कर प्राकृतिक भाषा संसाधन के अनुप्रयोगों के लिए एक मॉडल विकसित करना है। हिंदी पाठ के रूप में विशेष विधि डोमेन का चुनाव कर, विश्लेषण कर टूल निर्माण किया जाना है।

6. पूर्व-संसाधन प्रक्रिया के कार्यान्वयन चरण:

6.1 सामान्यीकरण (Normalization) - इस चरण में रिक्त स्थान, अन्य विशेष प्रतीकों, पूर्वसर्ग और संक्षेपाक्षर को समाप्त किया जाता है साथ ही वाक्यों को विघटित किया जाता है और फिर प्रत्येक वाक्य में शब्दों की संख्या गिनी जाती है। हिंदी में, वाक्य की सीमा की पहचान करके वाक्य को खंडित किया जाता है जो अंत चिन्हक 'पूर्ण विराम = 1' के साथ समाप्त होता है।

6.2 टोकेनाइजेसन (Tokenization) - यह अल्पविराम, रिक्त स्थान और अन्य विशेष प्रतीकों की पहचान करके वाक्यों को शब्दों में विभाजित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण:- *'अभिलेख' 'से' 'यह' 'प्रतीत' 'होता' 'है' 'कि' 'आवेदकगण' 'म' 'प्र' 'उत्पाद' 'अधिनियम' 'की' 'धारा' '34' '2' 'के' 'अधीन' 'दंडनीय' 'अपराध' 'हेतु' 'न्यायिक' 'मजिस्ट्रेट' 'प्रथम' 'श्रेणी' 'जिला' 'पन्ना' 'के' 'समक्ष' 'लम्बित' 'दांडिक' 'वाद' 'संख्या' '268' '2019' 'में' 'विचारण' 'का' 'सामना' 'कर' 'रहे' 'हैं'।*

6.3 विराम शब्द निष्कासन (Stop Word Removal) पाठ में विराम शब्द सबसे अधिक बार आने वाले शब्द हैं। इस चरण में बिना शब्दार्थ वाले सामान्य शब्द और जो पाठ के बारे में प्रासंगिक जानकारी एकत्र नहीं करते हैं, उन्हें समाप्त कर दिया जाता है। हमने हिंदी के लिए विराम शब्दों की सूची बनाई है जिसमें लगभग "390" विराम शब्द प्राप्त हुए। हिंदी कार्पस का विश्लेषण विधि डोमेन पर किया गया है। हमने मैन्युअल रूप से इन अद्‌वितीय शब्दों का विश्लेषण किया और विराम शब्दों की पहचान की। कार्पस के विश्लेषण में, हमनें देखा की विराम शब्द पाठ के 40% को

कवर करते हैं। उदाहरण:- यह, इसके, उन्होंने, अपने, क्या, जो, किसे, किसको, कि, ये, हूँ, में, के, की, कोई, जिसे, यद्यपि, हालाँकि, इसलिए, जबकि, केवल, वह, द्वारा, करते, होते इत्यादि।

क्रमांश सं.	**वाक्य**	**विराम शब्दों को हटाने से पहले शब्दों की संख्या**
01.	अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि आवेदकगण म प्र उत्पाद अधिनियम की धारा 342 के अधीन दंडनीय अपराध हेतु न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी जिला पन्ना के समक्ष लम्बित दांडिक वाद संख्या 268 2019 में विचारण का सामना कर रहे हैं	42
02.	इस न्यायालय ने अभिलेख तथा दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों का परिशीलन किया है	17

सारणी 1. सामान्यीकरण एवं टोकेनाइजेसन के परिणाम

क्रमांश सं.	**वाक्य**	**विराम शब्दों को हटाने से बाद शब्दों की संख्या**
01.	अभिलेख प्रतीत आवेदकगण म प्र उत्पाद अधिनियम धारा 34 2 अधीन दंडनीय अपराध न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी जिला पन्ना समक्ष लम्बित दांडिक वाद संख्या 268 2019 विचारण सामना	28
02.	न्यायालय अभिलेख दोनों पक्षकारों विद्वान अधिवक्तागण प्रस्तुत तर्कों परिशीलन	9

सारणी 2. विराम शब्द निष्कासन के परिणाम

6.4 स्टेमिंग (Stemming) –

स्टेमिंग प्रक्रिया में, विभक्त शब्दों से प्रत्यय और उपसर्ग को हटाकर मूल शब्द प्राप्त किए जाते हैं। हमने हिंदी के लिए मूल शब्द, प्रत्यय और उपसर्ग की सूची तैयार कर कार्यान्वयन किया गया है। उदाहरण:—

क्रमांक सं.	विभक्त शब्द	मूल शब्द	प्रत्यय/ उपसर्ग
1.	लेखा	लेख	आ =“ा”
2.	योग्यता	योग्य	ता
3.	समाप्ति	समाप्त	इ = "ि"
4.	आदर्शवाद	आदर्श	वाद
5.	परिस्थितियाँ	स्थिति	परि, यां

सारणी 3. हिंदी मूल शब्द, विभक्त शब्द, प्रत्यय एवं उपसर्ग के उदाहरण

7. कलनविधि:

चरण 1. प्रोग्राम शुरू किया गया।

चरण 2. टेक्सट बॉक्स 1 में हिंदी वाक्यों के संग्रह को इनपुट किया गया।

चरण 3. इनपुट में दिए गए वाक्य संग्रह पर सामान्यीकरण की प्रक्रिया की जाएगी। फिर आउटपुट के रूप में टेक्स्ट बॉक्स 2 में दिखा दिया जाएगा।

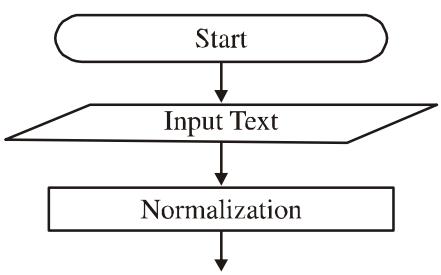
चरण 4. तत्पश्चात इनपुट में दिए गए वाक्य संग्रह पर टोकेनाइजेसन की प्रक्रिया की जाएगी। फिर आउटपुट के रूप में टेक्स्ट बॉक्स 2 में दिखा दिया जाएगा।

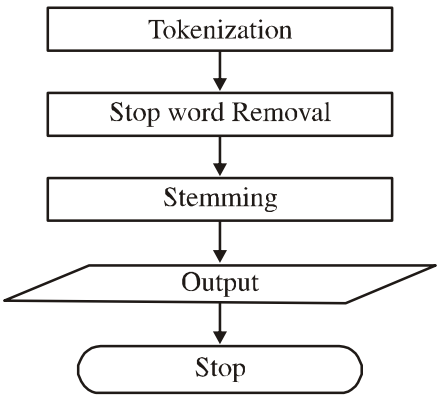
चरण 5. तत्पश्चात इनपुट में दिए गए वाक्य संग्रह पर विराम शब्द निष्कासन की प्रक्रिया की जाएगी। फिर आउटपुट के रूप में टेक्स्ट बॉक्स 2 में दिखा दिया जाएगा।

चरण 6. तत्पश्चात इनपुट में दिए गए वाक्य संग्रह पर स्टेमिंग की प्रक्रिया की जाएगी। इसमें पहले मूल शब्द डेटाबेस में मिल गए तो उपसर्ग को आउटपुट के रूप में टेक्स्ट बॉक्स 2 में दिखा दिया जाएगा।

चरण 7. प्रोग्राम बंद किया गया।

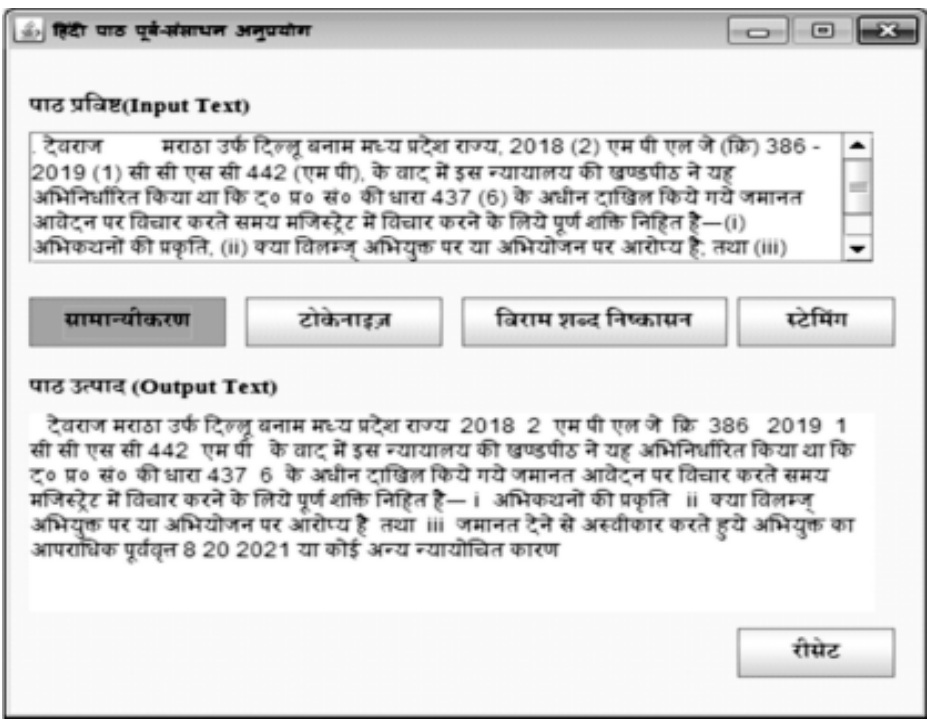
8. फ्लो चार्ट



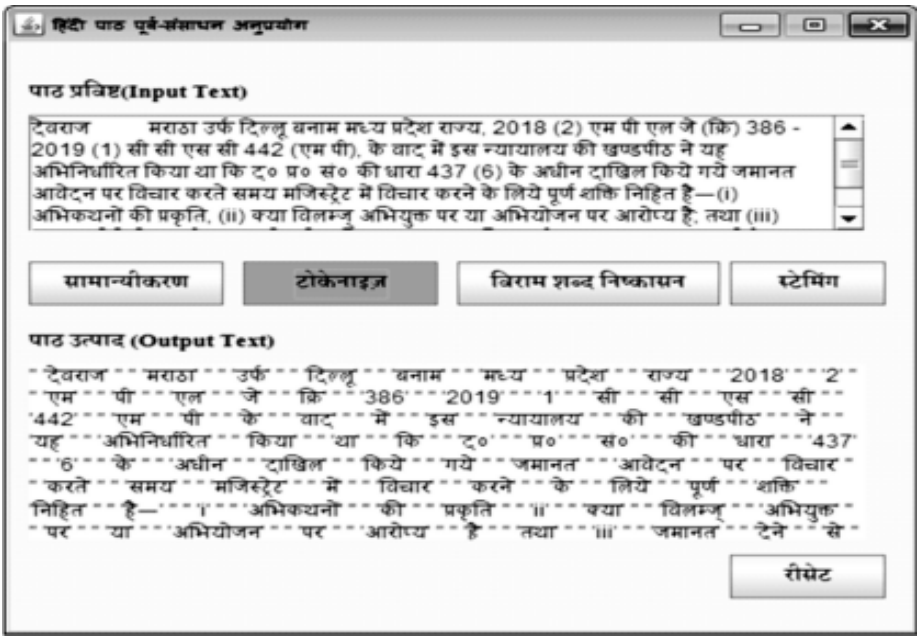


8. स्क्रीनशॉट

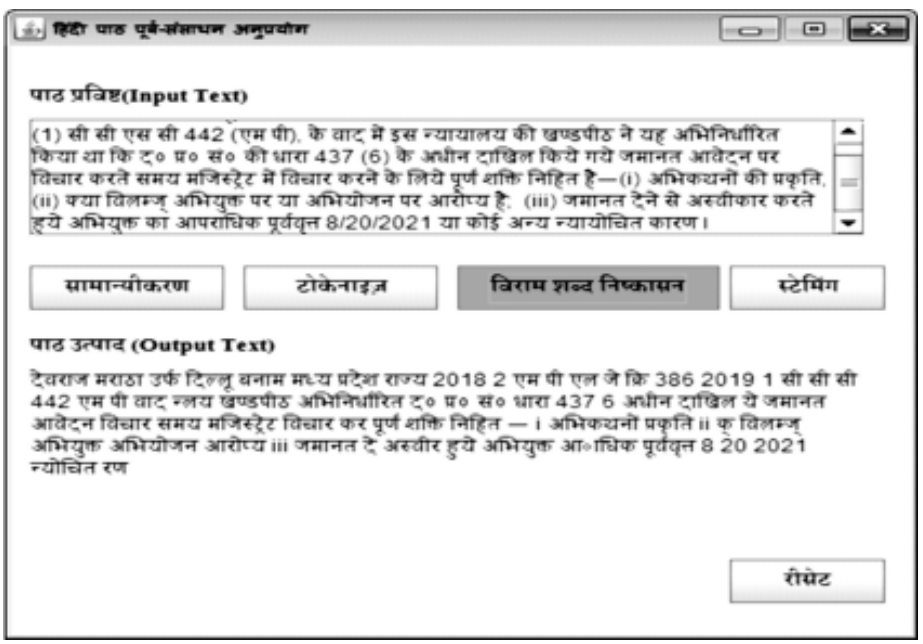
1. प्रथम स्क्रीनशॉट - सामान्यीकरण



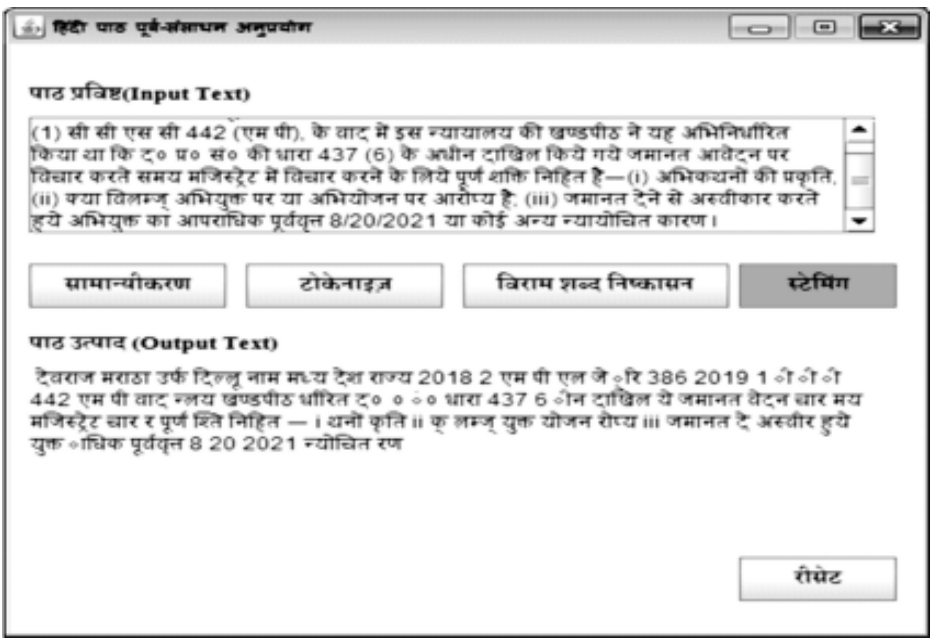
2. द्वितीय स्क्रीनशॉट – टोकेनाइजेसन



3. तृतीय स्क्रीनशॉट – विराम शब्द निष्कासन



4. चतुर्थ स्क्रीनशॉट



9. निष्कर्ष एवं संभावनाएँ— इस शोध–पत्र में हिंदी पाठ के लिए पूर्ण पूर्व–संसाधन चरण पर चर्चा की है। पूर्व–संसाधन में उपयोग किए जाने वाले अधिकांश संसाधन, जैसे– हिंदी सामान्यीकरण, टोकेनाइजेसन, विराम शब्द निष्कासन एवं हिंदी स्टेमर आदि को डोमेन विशिष्ट अच्छे परिणाम उत्पन्न करने के लिए विकसित किया जाना था। इन संसाधनों को विकसित करने के लिए मैन्युअल और स्वचालित टूल का उपयोग करके हिंदी कार्पस, हिंदी रूप का गहन विश्लेषण किया जाना था। इस चरण के परिणाम हिंदी के लिए प्राक्रतिक भाषा संसाधन (NLP) अनुप्रयोगों को विकसित करने के लिए फायदेमंद हो सकते हैं।

संदर्भः

1. धावले अपूर्वा, कुलकर्णी सोनाली और वैशाली कुंभकर्ण, "आटोमेटिक प्री–प्रोसेसिंग ऑफ मराठी टेक्सट फॉर समराइजेसन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग एंड एडवांस्ड टेक्नोलॉजी (IJEAT) ISSN: 2249-8958 (Online), वॉल्यूम– 10 (2020),
2. गुप्ता विशाल और लेहल गुरप्रीत, "प्रीत–प्रोसेसिंग फेज़ ऑफ पंजाबी लैंग्वेज टेक्सट समराइजेसन", कम्युनिकेशन्स इन कंप्यूटर एंड इनफार्मेशन साइंस, ISBN: 978-3-642-19402-3 (2011),

3. हॉक मोज़म्मेल और हसन महमुदल, "प्री- प्रोसेसिंग दी बंगाली टेक्स्ट: एन एनालिसिस ऑफ एप्रोप्रियेट वर्ब्स", बंगाली कंप्यूटिंग (एन.एल.पी.) (2018),

4. लार्डसामी रवि और अब्राहम स्टनिस्लौस, "ए सर्वे ऑन टेक्स्ट टेक्निक्स एंड टूल्स", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर साइंसेज एंड इंजीनियरिंग, E-ISSN: 2347-2693 वॉज्यूम-6 (2018),

5. पॉल स्निग्धा, निशीथ जोशी और माथुर इति, "डेवलपमेंट ऑफ ए हिंदी लेम्माटाईजर", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स एंड नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग, वॉल्यूम-2, ISSN: 2279-0756 (2013),

6. पिम्पलशेंटे अंजुषा और महाजन ए.आर., "प्री-प्रोसेसिंग फेज़ ऑफ हिंदी लैंग्वेज टेक्स्ट समराईजेसन सिस्टम", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर साइंस एंड इनफार्मेशन सिक्यूरिटी (IJCSIS), वॉल्यूम नं. 14, (2016),

7. पांडेय बी.पी., तामता पवन और धामी एच.एस., 'देवनागरी स्क्रिप्ट बेस्ड स्टेमर', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स रिसर्च, वॉल्यूम-5 (2014),

8. रौलजी जयदीप सिंह और सैनी जतिंदर कुमार, "स्टॉप वर्ड रिमूवल एंड इट्स इम्प्लीमेंटेशन फॉर संस्कृत लैंग्वेज", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर एप्लीकेशन, (0975 - 8887) वॉल्यूम-150, (2016)

9. राजकुमार एन., सुबाशिनी टी.एस., राजन के और रामलिंगम वी., "प्री-प्रोसेसिंग: दी फर्स्ट स्टेप टुवर्डस टेक्स्ट डॉक्यूमेंट क्लासिफिकेशन-ए रिब्यु", "इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्ज इन एड्वेंट टेक्नोलॉजी", (IJRAT) विशेष अंक- ISSN: 2321-9637 (2018)

10. सुन फेल, बेलात्रेचे अम्मार, "प्री-प्रोसेसिंग ऑनलाइन फाइनेंसियल टेक्स्ट फॉर सेंटिमेंट क्लासिफिकेशन : ए नेचुरल लैंग्वेल प्रोसेसिंग एप्रोच", आई. ई.ई.ई. कंप्यूटेशनल इंटेलिजेंस फॉर फाइनेंसियल इंजीनिरिंग एंड इकोनॉमिक्स (2014),

11. सिंह सोनित, 'नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग फॉर फाइनेंसियल एक्सट्रैक्शन' arXiv:1807, 02383v1 [cs.CL] (2018),

12. तिकार्य आशीष बी. कोठारी मयूर और पटेल पिंकेह एच., "प्री-प्रोसेसिंग फेज़ ऑफ टेक्स्ट समराइजेसन बेस्ड ऑन गुजराती लैंग्वेज", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेशन रिसर्च इन कंप्यूटर साइंस एंड टेक्नोलॉजी (IJIRCST) ISSN: 2347-5552, वॉल्यूम-2 (2014),

13. तबस्सुम आईशा और पाटिल डॉ. राजेंद्र, "ए सर्वे ऑन टेक्स्ट प्री-प्रोसेसिंग एंड फीचर एक्सट्रैशन टेक्निक्स इन नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग", इंटरनेशनल रिसर्ज जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (IRJET) e-ISSN: 2395-0056 (2020),

❑❑

देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी के मानक रूप का विवेचनात्मक अध्ययन

—कृपा शंकर

सारांश:

मनुष्य के मुख से निसृतं ध्वनि लहर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कान में पहुँचकर शून्य में विलीन हो जाती है। भाषा या ध्वनि का प्रभाव मनुष्य की स्मृति में सुरक्षित रहता है किंतु कालांतर में वह भी धूमिल होने लगता है। परिणामत: नष्ट भी हो जाता है। ज्ञान-विज्ञान के प्रचुर तत्वों को मात्र स्मृति में सुरक्षित रखना संभव भी नहीं है। ज्ञान-विज्ञान और साहित्य से संबद्ध भावों और विचारों को सुरक्षित रखने तथा दूर स्थित व्यक्तियों के लिए संप्रेष्य बनाने के लिए ध्वनि चिन्हों का आविष्कार किया या जिन्हें लिपि की संज्ञा दी गई। आरंभ में भावों या विचारों को व्यक्त करने के लिए चित्रों के प्रयोग किए गए जिन्हें चित्र लिपि कहते हैं। धीरे-धीरे इन चित्रों का अर्थ विस्तृत हुआ। इनका तात्पर्य केवल उतना ही नहीं रह गया जितना चित्र में प्रदर्शित किया गया था। इनसे प्रतीक रूप में पूरा शब्द व्यक्त होने लगा। धीरे-धीरे चित्र संक्षिप्त हो गए और अक्षर रूप में ढल गए। ये अक्षर ध्वनि विशेष को प्रकट करने लगे। इस प्रकार ध्वनि मूलक लिपि विकसित हुई। भारत की समस्त लिपियाँ अक्षरात्मक हैं। मुख्य बिंदु- निसृंतध्वनि, कालांतर, आविष्कार, अक्षरात्मक, संबद्ध भावों, धूमिल, ज्ञान-विज्ञान, ध्वनि चिन्हों, लिपि, संज्ञा, धीरे-धीरे, संक्षिप्त, मूलक, अक्षरात्मक।

भारत में लिपि कला का विकास बहुत प्राचीन है। सिंधु घाटी की खुदाई में लिपि के प्राचीनतम नमूने प्राप्त हुए हैं। आर्यों के भारतागमन के पश्चात् खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपियों का विशेष प्रचार हुआ। ललित विस्तार नामक गंथ में कहा गया है कि बोधिसत्व ने 64 लिपियाँ सीखी थी। इनमें ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों का उल्लेख है। प्राचीन रचनाकारों तथा

मनीषियों ने लिपि के महत्व को पूर्णतया समझा था। रघुवंश में कालिदास राजमार्ग का वर्णन करते हुए लिखते हैं- "लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मय नदीमुखेनेव समुद्राविशत् अर्थात लिपि के यथावत् ग्रहण (ज्ञान) से वाङ्मय तक उसी तरह पहुँच जाता है जैसे नदी के द्वारा समुद्र तक पहुँचा जाता है।"[1] प्राचीन भारत में प्रारंभिक पाठशालाओं को लिपिशाला ही कहा जाता था। 'तेषां दारकाणां मातृका वाचयताम्' अर्थात जैसे ही बालक लिपि का उच्चारण करते हैं, इस वर्णन में लिपि को सीखने की प्रक्रिया का स्पष्ट वर्णन है। (देवनागरी का क्रमिक विकास शिवराम मूर्ति का लेख पृ.16) अथर्ववेद में उल्लेख है, पृथ्वी हम तुम्हें भौतिक बंधनों से आबद्ध कर देंगे। तुम्हारा शरीर दो योग का है। समानी और विकृत। जो कुछ भी तुम पर लिखा गया है वह एक विशिष्ट धातु से लिखा गया है। पाणिनि ने लिपि और लिपिकार का उल्लेख किया है। रामायण (वाल्मीकि) में हनुमान सीता के सम्मुख राम के नाम से अंकित अंगूठी प्रस्तुत करते हैं नामांकित चेदि पश्यं देविअंगुलीयकम्।

"प्राचीन काल में भारतीय भूमि पर आए हुए यात्रियों ने अपने यात्रा विवरणों में भारतीयों के लेखन ज्ञान का परिचय दिया है। चीनी यात्री ह्वेनसाग के विवरण से ज्ञात होता है कि भारतीय लिपि सब लिपियों से पुरातन है। उसने जन्मपत्री के प्रवचन तथा सड़कों के किनारे मील स्तंभों का भी उल्लेख किया है।"[2]

पुरातात्विक स्रोतों से भी लिपि ज्ञान तथा उनके प्रयोग की प्राचीनता के द्योतक अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। श्री विंटरनित्स के अनुसार, भारत में लेखन कला विकास 18वीं शताब्दी ईसा पूर्व में हो चुका था। वेदों के रचनाकाल का निश्चय न हो पाने के कारण इस तिथि को अंतिम नहीं माना जा सकता किंतु इतना तो निश्चित एवं निर्विवाद है कि बौद्धकालीन भारत में लेखन कला पूर्ण विकसित थी। खरोष्ठी- प्राचीन लिपियों में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी दो प्रमुख लिपियाँ हैं। खरोष्ठी के नाम के विषय में अनेक अनुमान किए गए हैं। "डॉ. प्रजिलुस्की के विचार से यह लिपि आरंभ में गधे की खाल पर लिखी जाती थी इसलिए इसे खरपृष्ठी कहते थे इसी से खरोष्टी संज्ञा का विकास हुआ। डॉ. राजबली पांडेय के अनुसार, खर (राधे) के ओष्ट (ओठ) के समान भद्दी लिखावट होने के कारण इसे खरोष्ठी कहा जाता था। इस लिपि में वर्णों की संख्या 36 है, जिनमें 11 वर्ण आरमाइक से लिए गए हैं और 26 वर्ण ब्राह्मी के हैं। इसे विदेशी लिपि माना जाता है।"[3] इस लिपि के नमूने शाहबाजगढ़ी (पंजाब युसुफजई जिला और मानसेरा) (पंजाब का हजारा जिला) में अशोक के शिला लेखों में उपलब्ध है। विद्वानों का अनुमान है कि उत्तर पश्चिमी भारत में लगभग एक हजार वर्ष तक इस लिपि का ग्रथों में सं व्यवहार होता रहा। खरोष्ठी हखमनी साम्राज्य की राजलिपि थी। यह भू-भाग कभी ब्राह्मी लिपि ईरानियों के अधिकार में था, जिससे यहाँ इस लिपि का प्रचलन हुआ। इसे दाहिने से बाएँ ओर लिखा जाता है। देवनागरी का इस लिपि में कोई संबंध नहीं है अत: इस पर यहाँ पर विस्तृत विचार अपेक्षित नहीं है।

ब्राह्मी—देवनागरी लिपि के विकास को ब्राह्मी से ही संदर्भित किया जाता है। ब्राह्मी ऐसी लिपि है जो देवनागरी की ही नहीं बल्कि अधिकांश भारतीय लिपियों की जननी है। ब्राह्मी की व्युत्पत्ति की तीन संभावनाएँ हैं—

- "ब्रह्मा द्वारा निर्मित होने के कारण इसे ब्राह्मी कहते हैं।
- ब्राह्मणों द्वारा निर्मित तथा प्रयुक्त होने के कारण इसे ब्राह्मी कहते हैं।
- ब्रह्म-देव या ज्ञान की संरक्षिका होने के कारण यह लिपि ब्राह्मी है।"[4]

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अनेक मत है। डॉ. अल्फ्रेड मूलर, जेम्स प्रिंसेप तथा सेनार्ट आदि ब्राह्मी की उत्पत्ति यूनानी लिपि से मानते हैं। इनका विचार है कि सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् यूनानियों के संपर्क से भारतीयों ने लिखने की कला सीखी। पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि भारत में लिपि कला का ज्ञान बहुत प्राचीन है। मोहन जोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई से इसके कतिपय प्रमाण प्राप्त हुए हैं। छठी शताब्दी ई. पू. के बौद्ध ग्रंथ सुंतत में अक्खरिका का उल्लेख मिलता है। थंदोग्योपनिषद तैत्तिरीय उपनिषद् में अक्षर, वर्ण, स्वर, मात्रा आदि के उल्लेखों से भी भारत में लिपि ज्ञान की प्राचीनता सिद्ध होती है। अत: यूनानी लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति मात्र कल्पना है।

"टेलर तथा केनन ने ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति दक्षिणी सामी लिपि से, बेवर, कस्ट, बेनफे तथा जेनसन ने सामी लिपि की फीनीशियन शाखा से सिद्ध की है। ब्राह्मी तथा सामी लिपि में साम्य बहुत कम है। इसीलिए ब्राह्मी की उत्पत्ति सामी से सिद्ध करने का प्रयास अतार्किक एवं अवैज्ञानिक है। गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा का कथन है।"[5] उच्चरित अक्षर और लिखित वर्ण के संबंध को निभाने के उद्देश्य का विचार करें तो ब्राह्मी लिपि सर्वोत्तम है। ऐसी (सेमेटिक या सामी जैसी) अपूर्ण और क्रमरहित लिपि को लेकर, उसकी लिखावट का रुख पलटकर वर्णों से तोड़-मरोड़कर, केवल अठारह उच्चारणों के चिह्न उसमें पाकर बाकी उच्चारणों के संकेत स्वयं गढ़कर स्वरों के लिए मात्रा चिह्न बनाकर अनुस्वार और विसर्ग की कल्पना का स्वर-व्यंजन को पृथक कर, उन्हें उच्चारण के स्थान और प्रयत्न के अनुसार नये क्रम से सजाकर सर्वांगपूर्ण योग्यता जिस में मानी जाती है, क्या वह इतनी सभ्य नहीं रही होगी कि केवल अठारह अक्षरों के संकेतों के लिए दूसरों का मुँह न ताक कर उन्हें स्वयं ही अपने लिए बना ले। (प्राचीन लिपिमाला, पृ. 26) "डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ब्राह्मी लिपि का विकास सिंधुघाटी लिपि से माना है। उनका कहना है कि यह सोचना अधिक समीचीन होगा कि ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी में किसी समय ऋचाओं और मंत्रों के वैदिक साहित्य तथा अपने पूर्वजों के यज्ञ संबंधी ब्राह्मण ग्रंथों के संकलनकर्ताओं ने मोहन जोदड़ो की अंतिम रेखिक लिपि से एक प्रकार की आदि ब्राह्मी लिपि का विकास किया और इस प्रकार ब्राह्मी लिपि अस्तित्व में आयी। एडवर्ड थामस आदि विद्वानों ने ब्राह्मी लिपि के मूल आविष्कार का श्रेय द्रविड़ों को दिया है। डाउसन कर्निघम और थामस का विचार है कि आर्यों ने किसी लिपि चित्र से ब्राह्मी का विकास किया। वासुदेव शरण अग्रवाल ब्राह्मी की कतिपय विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मी को

वास्तव में भारतीय मस्तिष्क का एक चमत्कार समझना चाहिए जिसमें स्वर और व्यंजनों के सुव्यवस्थित चिन्हों द्वारा वर्णमाला की सभी मूलभूत ध्वनियों का स्पष्ट विभाजन है।"[6] सबसे पहले उसमें सामान्य स्वर और संयुक्त स्वर है। फिर कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य, पाँच वर्गों में विभाजित स्पर्श व्यंजन है, जिनमें भारत में क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, टवर्ग और पवर्ग कहते हैं। इन 25 व्यंजनों के अंत में चार अंतस्थ और तीन स्वर प्रत्याहार के अक्षर एवं एक महाप्राण (ह) है। यदि हम इन व्यंजनों में स्वर चिन्हों की पूर्ण संख्या- उनके ह्रस्व और दीर्घ में जोड़ दें तो हमें 47 या 46 चिह्न देवनागरी और लगभग सभी भारतीय लिपियों से मिलते हैं।

ब्राह्मी की प्रमुख विशेषताएँ जिन्हें भारतीय लिपि ही सिद्ध करती है—

- "ब्राह्मी के अक्षर उच्चारण के आधार पर लिखे जाते हैं।
- इसके कुल 64 चिह्न हैं।
- इसमें दीर्घ तथा ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग मिलता है।
- अक्षरों का ध्वनि संबंधी विभाजन उच्चारण के आधार पर हुआ है।
- चिह्नों के द्वारा स्वरों का संबंध व्यंजन से किया गया है (पुराभिलेख डॉ. शिवस्वरूप सहाय- पृ. 25)"[7]

ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम नमूना तीसरी सदी ईसवी पूर्व का है। धीरे-धीरे इसका विस्तार तथा क्षेत्रीय भेद बढ़ता गया। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में ब्राह्मी का विस्तार लगभग संपूर्ण भारत में था। इसे तत्कालीन राष्ट्रीय लिपि कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। इसके पश्चात् ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में शुंग तत्पश्चात् प्रथम शताब्दी में कुशाण युग में इसका विकास परिलक्षित होता है। ब्राह्मी की उत्तरी शैली से गुप्तकाल में गुप्तलिपि विकसित हुई। इसका फैलाव समस्त उत्तरी भारत में था। दक्षिण में भी इसी का एक बेद मंजूषा शिक्षक (वाक्सहेडेड) का प्रचलन हुआ। इसे पल्लव लिपि कहा गया है। छठी सातवीं शताब्दी में गुप्त लिपि से कुटिल लिपि का विकास हुआ। जिसका वास्तविक नाम सिद्ध लिपि है। इसे सिद्धामातृका भी कहते हैं। इसका प्रचार भारत में ही नहीं सीमित था बल्कि मध्य एशिया तथा जापान तक धार्मिक ग्रंथों का लेखन इसी लिपि में किया गया। इस लिपि का प्राचीनतम साक्ष्य जापान के हीरो ऊर्जी मंदिर में सुरक्षित ताड़पत्रों पर अंकित हस्तलेख है।

देवनागरी लिपि का नामकरण एवं संक्षिप्त इतिहास बोधगया के महानाम शिलालेख में और लेखमंडल की प्रशस्ति में (588 ई.) नागरी के कतिपय लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। सातवीं शताब्दी में ये लक्षण और भी स्पष्ट हो गए थे और आठवीं शताब्दी तक तो देवनागरी पूर्णतया विकसित हो गई थी। सिद्धमातृका से 6वीं सदी के आसपास प्राचीन नागरी का विकास हुआ। जिसे उत्तर भारत में नागरी और दक्षिण भारत में नन्दि नागरी कहते थे। इन दो लिपि भेदों के अतिरिक्त पश्चिम में अर्धनागरी तथा पूर्व की पूर्वी नागरी भी उल्लेखनीय है। गुजरात के राजा जयभट्ट ने अपना हस्ताक्षर देवनागरी में किया है। उसने लिखा है 'स्वहस्तोमम जयभट्टस्य'। देवनागरी में लिखे गए शिलालेखों में सबसे प्राचीन राष्ट्रकूट दंतिवर्ण के समय (728 ई.) का समंगद का शिलालेख माना जाता है। इसके पश्चात् 780 ई.

लिखित गोविन्दराज द्वितीय का धुलिया शिलालेख, प्राप्त होता है। राष्ट्रकूट राजाओं ने अपने शिलालेखों में देवनागरी के प्रयोग की परंपरा को सुरक्षित रखा। "गोविंदराज तृतीय के पैथन शिलालेख (764 ई.) और ध्रुवराज के बड़ौदा शिलालेख को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। दसवीं शताब्दी तक देवनागरी परिपक्वता को प्राप्त कर चुकी थी। ग्यारहवीं शताब्दी में इसका व्यापक प्रचार, गुजरात, राजस्थान और दक्षिणी भारत में हो गया था। इस समय के अनेक शासकों जैसे हैहय, परमार, चंदेल, गाहडवाल, चाहमान आदि ने देवनागरी को ही अपनाया था। सिद्धमातृका से नागरी और शारदा दो लिपियों का विकास हुआ। शारदा से टाकरी, लहन्डा, गुरुमुखी तथा कश्मीरी लिपि का विकास हुआ। नागरी की पूर्वी शाखा से बंगला, असमी, उड़िया आदि लिपियाँ विकसित हुई।"[8]

देवनागरी के वर्तमान लिपि चिह्नों का विकास अनेक रूपांतरों से गुजरने के पश्चात् सुनिश्चित हुआ। ब्राह्मी से देवनागरी तक अक्षरों की बनावट में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में अक्षर सीधे तथा कोणाकार है। अक्षरों की ऊँचाई को समान रखने की चेष्टा परिलक्षित होती है। अक्षरों के शिरोभाग खुले दिखाई देते हैं। "खड़ी पड़ी रेखाओं, वृत्तों, अर्धवृत्तों, कोण, बिंदु के आधार पर अक्षरों का निर्माण किया गया है। जैसे–

+ (क), (द) (ट) 0 (ठ) ^ (ग) इ

कुषाण काल तक ब्राह्मी लिपि में थोड़ा और परिवर्तन हुआ है। अक्षर बौने तथा चौड़े दृष्टिगत होते हैं।"[9] अक्षरों की बनावट में कुछ अधिक उतार-चढ़ाव है। ह्रस्व स्वरों में थोड़ा सा परिवर्तन करके दीर्घ रूप बनाया जाने लगा। अनुस्वार और विसर्ग के लिए बिंदुओं का प्रयोग भी शुरू हो गया। साँची के अभिलेख में 'ऴ' का पूर्ण रूप प्राप्त होता है, 'अ' की बनावट नागरी के अधिक समीप आ गई थी। 'आ' की मात्रा कुछ नीचे खिसक गई है। "गुप्तकालीन लिपि में अक्षरों की बनावट के साथ उनमें लगने वाली मात्राओं में भी बदलाव आया है। विस्तृत क्षेत्र में ब्राह्मी लिपि के प्रचार-प्रसार के कारण नए-नए प्रयोग हो रहे थे। इन्हीं नवीन प्रयोगों के परिणामस्वरूप कुटिल लिपि का निर्माण हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी तक देवनागरी के वर्तमान स्वरूप का निर्माण हो गया था।"[10]

देवनागरी के नामकरण का आधार देवनागरी के नाम के विविध आधार बताए गए हैं। कुछ विद्वानों के नाग लिपि से विकसित लिपि को नागरी माना जिसका बार्नेट महोदय ने जोरदार खंडन किया। कुछ विद्वानों के अनुसार गुजरात के नागर ब्राह्मणों से संबद्ध होने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा। देवनागरी संस्कृत इस लिपि में लिखी जाती थी इसीलिए देवशब्द को जोड़कर देवनागरी शब्द रच लिया गया। पं. हरि प्रसाद शास्त्री का मत है कि देवताओं की उपासना के लिए त्रिकोणादि यंत्रों के बीच कुछ सांकेतिक चिह्न निर्मित किए जाते थे। इन चिह्नों को देवनागर कहते थे। उसी के कारण इसे देवनागरी कहा गया। कुछ लोग इसका संबद्ध चन्द्रगुप्त तथा पाटिल पुत्र से जोड़ना चाहते हैं। उनका कथन है कि चन्द्रगुप्त को देव तथा पाटिल पुत्र को नगर कहते थे। देवनागर से प्रचलित होने के कारण इसे देवनागरी कहा गया।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता की विशेषताएँ– "देवनागरी भारत की व्यापक तथा प्रधान लिपि है। इसकी लोकप्रियता अन्य लिपियों से अधिक है। यह विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।"[11]

- इसमें 11 स्वर और 35 व्यंजन ध्वनियाँ हैं। संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र, ज्ञ इसके अतिरिक्त हैं। नयी ध्वनियों के लेखन की आवश्यकता तथा विदेशी ध्वनियों के आगमन को ध्यान में रखकर ड, ढ, क. ग. ज. फ को भी देवनागरी में स्थान दिया जाने लगा है।
- देवनागरी अक्षरों का नाम ध्वनि के अनुकूल है, जैसे ग, अंग्रेजी में जी (ळ) (प्रयोग ग के लिए) इसी प्रकार आई (I) का प्रयोग इ ध्वनि के लिए होता है।
- प्रत्येक ध्वनि का अपना एक निश्चित चिह्न है, जैसे अंग्रेजी में S स, ज दोनों है और क के लिए ब. ज्ञ, फ तीन लिपि चिह्नों का प्रयोग किया जाता है।
- देवनागरी में जितना लिखा जाता है उतना पढ़ा भी जाता है। इसमें कोई ध्वनि साइलेंट नहीं रखी जाती। इसके विपरीत रोमन में Half, Walk, ज्ञदपमि, में स और ज्ञ साइलेंट हो।
- स्वरों और व्यंजनों का क्रम बड़ा वैज्ञानिक है– पहले ह्रस्व स्वर फिर दीर्घ। क से म तक स्पर्श व्यंजन य से व तक अंतस्थ स प श ह ऊष्म व्यंजन है। वर्ग का पहला वर्ण हैं सघोष है। पाँचवे वर्ण (ङ, ञ, न, ण, म) अनुनासिक है।
- देवनागरी वर्णों में लिखा गया शब्द अपेक्षाकृत कम जगह घेरता है, जैसे– नाद्रनी (उत्तरी) Northern, अंबरीष Ambrish, èkez Dharma
- देवनागरी के संयुक्त व्यंजन भी स्पष्ट रूप से उच्चरित होते है, जैसे– सच्चा, अच्छा, अंग्रेजी के Grass, Batle आदि में संयुक्त वर्ण का स्पष्ट उच्चारण नहीं होता।

देवनागरी लिपि के दोष—

- देवनागरी में संयुक्त व्यंजनों के लिखने की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे प्रेम (परेम), नर्म, कद्र, यंत्र। प्रथम तीन शब्दों में र तीन तरह से वर्ण के साथ संयुक्त किया गया है। र् को संयुक्त करने की विधि लगभग निश्चित हो गई है। र ध्वनि का उच्चारण यदि होने वाले वर्ण के बाद होता है तो र का संयोग वर्ण में किया जाता है, जैसे प्रेम, भ्रम, क्रम, यदि र् का उच्चारण पहले हो तो र ऊपर लगाया जाता है जैसे नर्म, मर्म ? त्र, त्र में त्र का प्रचलन अधिक व्यापक हो रहा है।
- देवनागरी लिपि को सही अर्थों में राष्ट्रीय लिपि बनाने के लिए द्रविड़ के ध. र. नं. मराठी च, ज कश्मीरी वर्त्स्य, च. ज. य ध्वनियों के लिए नये लिपि चिह्नों को अपनाना चाहिए। इसके लिए नये लिपि चिह्न बन गए हैं।

- वर्णों, संयुताक्षरों और मात्राओं को मिलाकर 403 की बड़ी संख्या हो जाती है। इसलिए टंकण में असुविधा होती है।
- कुछ अक्षरों की बनावट ऐसी है कि रेखा इधर-उधर होने पर वे दूसरे अक्षर होने का भ्रम पैदा कर देते हैं, जैसे ध (घ) भ (म)
- ए, ओ के ह्रस्व रूप भाषा में प्रचलित हैं किंतु देवनागरी लिपि में इनके अलग चिह्न नहीं है।
- देवनागरी लिपि पूर्ण रूप से वर्णात्मक नहीं है, जैसे कर्म (क़्अ़्म्अ) पाँच ध्वनियाँ किंतु लिखी गईं तीन व्यंजन में अ स्वर अंतर्युक्त रहता है। थोड़े से ज्ञान से कोई कठिनाई नहीं होती है।
- ख की बनावट ऐसी है, जिसे रव भी पढ़ा जा सकता है।

स्थानीय बोलियों से भी उच्चारण में अशुद्धता आ जाती है। हिंदी में अशुद्ध उच्चारण का कारण विभिन्न प्रांतीय भाषाओं का प्रभाव भी है। यदि ध्यान से देखा जाए तो कुछ विशेष प्रकार की गलती प्रत्येक भाषा के बोलने वाले करते पाए जायेंगे। इस प्रकार बंगाल की हिंदी में जो अशुद्धियाँ होंगी वे अलग होंगी। पंजाब की हिंदी में कुछ अलग प्रकार की अशुद्धियाँ होंगी और महाराष्ट्र तथा गुजरात की हिंदी में कुछ अन्य प्रकार की ही अशुद्धियाँ होंगी। यही बात तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र और कर्नाटक की हिंदी में भी मिलेगी।

श्री विनय मोहन शर्मा ने अपनी लघु पुस्तक हिंदी का व्यावहारिक में परिनिष्ठित: हिंदी (खड़ी बोली) के अहिन्दी प्रान्तों में बोले जाने वाले रूपों की बनगी प्रस्तुत की है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी के शुद्ध रूप मानक रूप को प्रतिष्ठित कर सकता कठिन नहीं है। अहिंदी भाषी क्षेत्रों को भी हिंदी के परिनिष्ठत रूप को सीखने में कोई कठिनाई न होगी। उन्हें करना केवल इतना ही है कि जितनी दूर तक उनकी अपनी प्रान्तीय भाषा और हिंदी की प्रकृति मेल नहीं खाती उसे ठीक से समझ लें और उसका प्रयोग करने में सावधानी बरतें।

संदर्भ:

1. दीक्षित चन्द्रिका प्रसाद, संस्करण-2005, सामान्य हिंदी, साहित्य रत्नालय-कानपुर, पृ. 229
2. वही, पृ. 30
3. वही, पृ. 31
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 33

❑❑

मॉरीशस के भोजपुरी लोक–गीतों में संस्कृति

–कमल किशोर गोयनका

मॉरीशस में जो भारतीय मजदूर के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में गए थे। वे प्रमुख रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के भोजपुरी भाषी हिंदू थे। जो अपने साथ 'हनुमान चालीसा', 'राम चरित मानस', 'आल्हा' आदि ग्रंथों के साथ भोजपुरी जीवन के संस्कार, रीति–रिवाज, जीवन शैली तथा भाषा एवं संस्कृति साथ में ले गए थे। यद्यपि प्रत्येक भारतीय मज़दूर पत्थरों के नीचे दबे सोने को निकालने के लालच में फँसकर गए थे और वहाँ पहुँच कर उन्हें समुद्र–यात्रा के भयानक कष्टों से भी अधिक पीड़ित करने वाली गोरों की गुलामी में जीना पड़ा। उन्हें खेतों से पत्थर हटाने पड़े, उसमें गन्ना बोना और काटना पड़ा और गोरे मालिकों के कोड़े खाने पड़े, लेकिन इस हिंदू समाज के पास राम और सीता की कथा थी, जिन्होंने वनवास के कष्ट झेले थे और पत्नी नियोग में राम दर–दर भटके थे। इस प्रकार राम, सीता, हनुमान आदि ने उन्हें जीवित रहने की ताकत दी और संगठित होकर दु:खों को झेलते हुए अपनी भाषा और संस्कृति को छाती से चिपका कर रखने की समझ पैदा की। भोजपुरी भाषा और संस्कृति ने उस भारतीय समाज को संगठित किया, जीवित रखा और लोक गीतों, कथाओं, मुहावरों, पहेलियों आदि के व्यापक संसार को बचाके रखा। मॉरीशस का यह लोक साहित्य भारत से गए भोजपुरी हिंदू समाज का प्रतिबिंब है, जिसमें उनकी धर्म, नीति, रीति–रिवाज, समाज, कला, साहित्य, सभ्यता आदि की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। मॉरीशस का यह भोजपुरी का लोक साहित्य गीत और कथाएँ, पहेलियाँ और मुहावरे आदि काफी बड़ी मात्रा में भारत से जाने वाले भोजपुरी भाषी मजदूर साथ ले गए थे और काफी कुछ मॉरीशस के साथ अब मॉरीशस का भोजपुरी लोक साहित्य कहलाता है। मॉरीशस में आरंभ में जो भोजपुरी भाषा का स्वरूप था, वह बदलता रहा है और उस पर अंग्रेजी, फ्रेंच तथा क्रिओली बोली का प्रभाव पड़ा है। मॉरीशस की भोजपुरी पर पश्चात्य प्रभाव तथा भोजपुरी भाषियों द्वारा भोजपुरी के स्थान पर क्रिओरी को दी गई प्राथमिकता ने भी भोजपुरी की शक्ति और विस्तार को प्रभावित किया है। आज शहरों में क्रिओली बोली जाती है, लेकिन गाँवों में हिंदू जन तथा पुरानी पीढ़ी के भारतीय वंशज प्राय: भोजपुरी का उपयोग करते हैं। इस प्रकार भोजपुरी भाषा पर संकट बना हुआ है।

मॉरीशस में भोजपुरी लोक साहित्य के संरक्षता और अध्ययन में अनेक अध्येताओं ने अपना योगदान किया है। मॉरीशस में भोजपुरी लोक साहित्य को लिखने की कोई परंपरा नहीं थी और ऐसा लोक साहित्य मौखिक परंपरा से चलता रहता था। मॉरीशस में भोजपुरी लोक गीतों का पहला संकलन सन् 1939 में पं. गया सिंह पत्नी भाग्यवती देवी ने 'विवाह मंगल' के नाम से किया, जिसमें 44 विवाह गीत थे। इसके बाद मॉरीशस के राष्ट्र कवि ब्रजेन्द्र कुमार मंगल 'मधुकर' के तीन भोजपुरी गीत–संग्रह प्रकाशित हुए। ये लोकगीत संग्रह थे— 1. 'मधुकलश' (1970), 81 भोजपुरी गीत, 2. 'मधुबहार' (1985) 26 भोजपुरी लोकगीत, 3. 'मधुलिका' (1991) 69 भोजपुरी लोकगीत। इस प्रकार 'मधुकर' जी जे 176 भोजपुरी लोकगीतों की रचना की। 'मधुकलश' की भूमिका में 'मधुकर' जी ने लिखा, "ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तो मॉरीशस में भोजपुरी का महत्व और भी बढ़ जाता है। यहाँ के लगभग चार लाख से अधिक प्रवासी भारतीय नित्य प्रति भोजपुरी बोलते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हम लोगों ने एक शताब्दी के बाद भी धार्मिक आस्था, आचार–विचार, वेष–भूषा, संस्कृति–सभ्यता, कला–कौशल आदि भारत जैसे ही जैसे ज्यों–के–त्यों बनाए रखे हैं। इसका सारा श्रेय भोजपुरी भाषा को है।" 'मधुकर' जी का 'मधुकलश' मॉरीशस के ग्रामीण लोक गीतों का पहला संग्रह था, जिसमें भजन, विवाह–गीत, देवी–देवताओं के गीत बिरहा, झूमर आदि का संकलन है। 'मधुबहार' में राजनीति, धर्म, उत्सव, स्वराज्य आदि से संबंधित लोकगीत हैं। 'मधुलिका' में चैती, कजरी, सोहर झूमर, फाग, विरहा आदि के लोकगीत हैं, जो मॉरीशस के लोकगीतों की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

मॉरीशस के दिमलाला मोहित ने भोजपुरी के प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों का संकलन करके 'लोक संगीत गीत माला' तैयार किया और रूद्रदत्त पोखन ने 'भोजपुरी गीत नाम से लोकगीतों की एक पुस्तक माला प्रकाशित कराई। इसके बाद रविवेद प्रचारिणी सभा ने 'भोजपुरी कविता' पुस्तक प्रकाशित की। सन् 1980 में 'बसंत' पत्रिका का 'भोजपुरी विशेषांक' अभिमन्यु अनत के सम्पादकत्व में हुआ तथा सन् 1982 में दयानन्द लाल बसंत राय ने 'गीता' का भोजपुरी में अनुवाद किया और 'श्रीमद भगवदगीता नाम से प्रकाशित हुआ। सुचिता रामदीन ने 'महात्मा गांधी इंस्टिट्यूट' के अंतर्गत् ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया और 235 भोजपुरी लोकगीतों को 'संस्कार मंजरी' के नाम से सन् 1989 में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक में भोजपुरी संस्कारों को रेखाचित्रों से भी प्रस्तुत किया गया। ये रेखाचित्र मीरा रामदीन ने बनाए जो सुचिता रामदीन की छोटी बहन है और मॉरीशस की प्रसिद्ध चित्रकार हैं। मॉरीशस की सरिता बुद्ध ने भी लोक साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। सरिता बुद्ध ने भोजपुरी पर अनेक कार्यक्रम किए और लोक साहित्य को प्रचारित किया। भोजपुरी की लोककथाओं के क्षेत्र में प्रहलाद रामशरण का काम विशेष महत्व का है, जिसमें मॉरीशस की लोककथाएँ (1974) 'मॉरीशस की लोककथाएँ भाग 1–2 (1988) तथा 'मॉरीशस में भोजपुरी लोकगीत परंपरा (2002) विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीमती सीता रामयाद की पुस्तक 'पत्थर के लोर' (1997) भी लोक–साहित्य में एक उपलब्धि मानी गई है।

सुचिता रामदीन की पुस्तक 'संस्कार मंजरी' भोजपुरी लोक-साहित्य का जीवन्त दस्तावेज है। इसके पहले खंड में लोक साहित्य का सिद्धांत पक्ष एवं इतिहास है और दूसरे खंड में चालीस उपखंड़ों में सोहर, मुंडन उपनयन विवाह तथा मृत्यु तक के संस्कारों पर लोकगीतों का संकलन है। आर्ष ग्रंथों में सोलह संस्कारों का विधान है परंतु मॉरीशस में जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार ही प्रधान हैं और आज भी हिंदू समाज तथा नई पीढ़ी भी बड़े उत्साह और जागरूकता से उन्हें अपनाऐ हुए है। मॉरीशस के हिंदू प्रवासियों के धार्मिक जीवन में हिंदू देवी-देवताओं के साथ शिव की पूजा प्रचलित है। शिव का वहाँ विशेष महत्व है और लाखों हिंदू प्रत्येक वर्ष कावड़ में जल होकर भारत की तरह ही देश के कोने-कोने से निकल पड़ते हैं। मॉरीशस के भोजपुरी लोकगीतों में शिव तथा पार्वती के विवाह से संबंधित लोकगीतों का विशेष महत्व है, जिन्हें 'महादेव गीत' कहा जाता है। सुचिता रामदीन ने लिखा है कि विवाह-गीतों के आरंभ में देवी-देवताओं के गीतों के तुरंत बाद 'महादेव गीत' गाए जाते हैं। उसके बाद ही माने कम-से-कम दस-पाँच 'महादेव गीत' गाने के पश्चात ही विवाह के अन्य गीत गाने की परंपरा है। यह प्रथा आज भी इसी रूप में सर्व प्रचलित है। इन 'महादेव गीतों में शिव जी को साधारण ग्रामीण वर के रूप में तथा पार्वती को साधारण कन्या के रूप में वर्णित किया गया है। इन महादेव गीतों की विशेषता यही है कि शिवजी एक साधारण मनुष्य है और पार्वती साधारण स्त्री। मॉरीशस में लोक जीवन के इस व्यवहार से साधारण जनता का भगवान शिव और भवानी पार्वती के साथ तादात्म होना सरल हो जाता था। लोक जीवन में वे देवी-देवता तो थे ही, परंतु वे उनके समान पुरुष और स्त्री भी थे। इससे मनुष्य और देवी-देवता की दूरी समाप्त हो जाती थी और साधारण जनता भी शिव-पार्वती की तरह प्रेम करने, विवाह करने को पवित्र कार्य समझती थी।

'महादेव गीत' के अंतर्गत 19 लोकगीत मिलते हैं, जिनमें शिव-पार्वती की बातचीत विवाह से पूर्व, शिवजी की अद्भुत बारात, गाने-बाने के साथ महादेव-विवाह बरानि, महादेवजी की विचित्र बारात एवं बाराती, विवाह से पूर्व सास की महादेव से बातचीत, शिव-विवाह बरानि, महादेव का विवाह करने आना, शिव-विवाह संबंधी विधियों का .... शिव विवाह के समय शिवजी का गौरी से बातें करना गौरा द्वारा अपने दहेज का वर्णन, महादेव जी का बाग में गौरी को डराना, महादेव जी का पार्वती जी से बातचीत, महादेव जी की प्यास तथा गौरा देवी का जल पिलाना, महादेव द्वारा गौरा पार्वती के सत की परीक्षा, महादेव का व्यापार करने जाना तथा दूसरा विवाह कर लाना गौरा का स्वप्न में शिवजी के अद्भुत श्रृंगार देखना, महादेव जी के दूसरे विवाह का वर्णन, बिना निमंत्रण गौरी का अपने पिता के यज्ञ में जाना तथा बिना आमंत्रण गौरी का पिता के यज्ञ में उपस्थित होना आदि के संबंध में लोकगीत गाए जाते रहे हैं। यहाँ इनमें से कुछ लोकगीत प्रस्तुत हैं—

शिव-पार्वती की बातचीत विवाह से पूर्व

मोरे पिछुबरिया लवंरिया के गंछिया
लवंग चूवेला सारी रात हो
लवंग में चुनी चुनी ढेरिया लगवलों
सीउ जी आँचरवा धइले ठार हो॥ 1॥

छोडु छोडु सीउ जी हो हमंरो अँचरवा
सुनि पइहे दादी हमार हो
दादी के सुनले जुलूस होइ जइहें
भलु गउरा रहियें कुँवार हो॥ 2॥

मोरे पिछुवरिया जइतुनिया के गंछिया
जइतुन चूवेला सारी रात हो
जइतुन मैं चुनी–चुनी ढेरिया लगवलों
सीउ जी अंचरवा धइले ठार हो॥ 3॥

छोडु छोडु सीउ जी हमरो अँचरवा
सुनि पइहें मइया हमार हो
मइया के सुनले जुलूम होइ जइहें
भलु गउरा रहियें कुँवार हो॥ 4॥

मोरे पिछुवरिया चमेलिया के गंछिया
चमेली फूलेला सारी रात
चमेली मैं गुही–गुही हरवा बनवलों
सीउ जी अँचरवा धइले ठार हो॥ 5॥

छोडु छोडु सीउ जी हो हमरो अँचरवा
सुनि पइहें चाची हमार हो
चाची के सुनले जुलूम होइ जइहें
भलु गउरा रहियें कुँवार हो॥ 6॥

मेरे घर के पीछे लवंग का वृक्ष है। सारी रात उस वृक्ष से लवंग टूटकर नीचे गिरते हैं, जब मैंने लवंग बीन–बीन कर ढेर लगा दिए तब शिवजी मेरा आँचल पकड़ कर खड़े हो गए॥ 1॥

हे शिवजी! मेरा आँचल छोड़िए, कहीं मेरी दादी ने सुन लिया तो आफत आ जाएगी। भले ही गौरी देवी कुँवारी क्यों न रह जाए॥ 2॥

मेरे घर के पीछे जैतुन का एक वृक्ष है। सारी रात उस वृक्ष में से जैतुन टूटकर नीचे गिरते हैं। जब मैंने जैतुन चुन–चुन कर ढेर लगाए। तब शिव जी ने मेरा आँचल पकड़ लिया॥ 3॥

हे शिव जी! मेरा आँचल छोड़ दीजिए। कहीं मेरी माता ने सुन लिया तो जुल्म हो जाएगा। चाहे गौरी कुँवारी क्यों न रह जाए॥ 4॥

मेरे घर के पीछे चमेली का पेड़ है। उस पेड़ पर सारी रात चमेली फूलती है। जब मैंने चमेली के फूल चुन-चुन कर माला गूँथ ली, तब शिवजी मेरा आँचल पकड़ कर खड़े हो गए॥ 5॥

हे शिवजी! मेरा आँचल छोड़िए, कहीं मेरी चाची ने सुन लिया तो आफत आ जाएगी। भले ही गौरी कुँवारी क्यों न रह जाए॥ 6॥

यह प्रेम गीत है। हिंदू समाज में विवाह से पहले वर कन्या का स्पर्श भी नहीं कर सकता। गौरी इसी मर्यादा की रक्षा की प्रार्थना करती है। लोकगीत में लवंग, जैतुन तथा चमेली के फूलने में प्रेमिका के स्नेह, कोमल तथा रागात्मक वृत्रि का होने का वर्णन है। कन्या बचपन को छोड़कर युवावस्था को प्राप्त हुई है। अतः वह वृक्ष के समान हरे-भरे 1. घर के पीछे, 2. लौंग, 3. गाँछ, छोटा पेड़, 4. टूट-टूट कर गिरते हैं, 5. आँचल पकड़कर, 6. मुसीबत, 7. भले ही, 8. गूँथ-गूँथ कर, 9. हार, माला शरीर वाली है।

शिवजी की अद्‌भुत बारात

रिमिर झिमिर बाजन बाजे सीउ जी बियाहन आये जी
रिमिर झिमिर बाजन बाजे सीउ जी बियाहन आये जी॥ 1॥

बंसहा चढ़ल सीउजी बियहन आये आठो अंग भभूति चढ़ाये जी
सीउजी सजइले हो साजे बरियतियागन सब बजन बजाये जी॥ 2॥

भूत पिचास हो नाचत बावे डॉकिनी खप्पर लाये जी
सीउजी बढ़इले हो सावागज के दाढ़ी नवगज जाट्टा सजाये जी॥ 3॥

सेस हो नाग जे गलवा में लटके कनवे नगिनिया बइसाये जी
रूप अमंगल धइले हो सीउजी गउरा से बियहन आये जी॥ 4॥

आगे आगे चलते हो सीउ के बरियतिया पाछे सब देव मुसुकाये जी
मुँहवा रूमाल देइ हँसेले हो बिसुन जी देव सब हँसे ठठ्ठा मार जी॥ 5॥

झनाझन बजते हुए वाजे-गाजे के साथ शिवजी विवाह करने चले॥ 1॥

बैल पर सवार होकर शिवजी, समस्त अंगों में विभूति मल कर विवाह करने चले। सभी बारातियों का दल शिवजी ने सजाया तथा गण लोग बाजा बजा रहे हैं॥ 2॥

भूत-पिशाच नाचते आ रहे हैं तथा डाकिनियाँ खप्पर लेकर चली आ रही है। शिवजी ने सवा गज की दाढ़ी बढ़ा रखी है तथा नव गज की जटा (सिर पे) सजा रखी है॥ 3॥

शेष नाग (उनके) गले में लटक रहे हैं और कानों पर नागिन बैठी हुई है। (ऐसा) अमंगल रूप धारण करके शिव जी गौरा (पार्वती) से विवाह करने आए॥ 4॥

शिवजी की बारात आगे–आगे चली जा रही है तथा पीछे (खड़े) देवता लोग मुस्करा रहे हैं। विष्णुजी मुँह पर रूमाल रख कर, खिलखिलाते हुए हँस रहे हैं॥ 5॥

जब बारात मंडप में प्रवेश हुई तब नवरंग बाजे बजने लगे॥ 6॥

सास मदागिन (मेना) वर को परछने के लिए गृह से बाहर आई। सारी सखियाँ मंगलाचार गाने लगीं। एक हाथ में परछने वाला लोढ़ा लेकर तथा दूसरे में अक्षत–भरा थाल लेकर सास बाहर आई॥ 7॥

(वर को परछते हुए) सास ने (उसके) सिर पर एक बार लोढ़ा घुमाया तथा (जब) दूसरी बार लोढ़ा फेरा तो (शिवजी के सिर की) जटा बिखर गई। (जटा बिखरते देखकर शिवजी के गले का) सर्प फुफकार छोड़ने लगा। (सास के हाथ से) लोढ़ा भूमि पर जा गिरा॥ 8॥

सास अक्षत–भरा थाल पटक कर, गृह के अंदर (भाग) चली। उसने सारा अक्षत (भूमि पर) छितरा दिया। सास मदागिन अपना सिर धुन–धुन कर बिलाप करने लगी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी॥ 9॥

(सासु मदागिन कहने लगी) ऐसे तपस्वी को मैं अपनी पुत्री नहीं दूँगी, चाहे गौरी भले ही (सारी उम्र) कुँवारी क्यों न रह जाए। (तब गौरी ने कहा) हे अम्माँ! आप ऐसा वचन मत बोलिए। ज़रा (मेरी) बात पर विचार कीजिए॥ 10॥

(माँ ने कहा) हे बेटी! तुम सौत की डाह भले ही सह लोगी, परंतु सर्प की फुफकार (डंक) तुम सह नहीं पाओगी। (पार्वती ने उत्तर दिया) हे माता! आपके लिए गले का साँप होगा, मेरे लिए तो वह गजमोतियों का हार है। (शिवजी के साथ) सौत भी हो तो मेरे लिए सखी–सहेली होगी। (उनकी) विभूति मेरे लिए विवाह का चिह्न (सिंदूर) होगा॥ 11॥

शिव की बारात का यह अद्‌भुत वर्णन है जो 'शिवपुराण' तथा 'रामचरितमानस' के अनुरूप है। इसमें हास्य, भयानक, रौद्र, करूणा आदि रसों की अनुभूति होती है।

गाजे–गाजे के साथ महादेव विवाह–वर्णन

महादेव चलेलन अपन बियाह
एजी आठो रंग बजन बजायो जी॥ 1॥

धावऽ तुहूं नउवा दिलिया कोस के बराहमन
एजी धाइ अवधपुर में जायो जी॥ 2॥

ओही तऽ अजोधिया में सोने के चउकावा
एजी धाइ चउका लेले आयो जी॥ 3॥

सोने के चउकवा मनुस कहाँ पइहन
एजी ऑटा से चउका पूरायो जी॥ 4॥

महादेव चलेलन अपन बियाह
एजी आठो रंग बरिआत सजायो जी॥ 5॥

1. बाजे बजाते है। 2. दौड़ कर जाओ। 3. दिल्ली के। 4. चौका-दुल्हे के बैठने के स्थान को लीपकर उस पर बाटा, कबीर रंग आदि के अल्पना बनाना, इसी को चौका कहा जाता है। यह अल्पना कहीं छोटी चौकी पर बनती है और कहीं ज़मीन पर। चाहे ज़मीन पर बनी हो चाहे चौकी के ऊपर, इसके चारों ओर की लकीरें समान भुजा वाली होती है और चारों कोण की दूरी बराबर पर रहती है। इस कारण इसे चौका कहा जाता है। 5. मनुष्य 6. आटा 7, बनाना, पूरा करना।

शिव जी अपना ब्याह रचाने जा रहे हैं। आठों रंग के बाजे-गाजे साथ में हैं॥ 1॥

हे नाई और दिल्ली के ब्राह्मण, आप लोग अवधपुर तक जाइए॥ 2॥

उसी अयोध्या नगरी में सोने का 'चौका' वह चौका ले आइये॥ 3॥

सोने का चौका मनुष्य को कहाँ प्राप्त है? वह तो आटे से चौके की अल्पना बनाता है॥ 4॥

महादेव जी आठ रंगों से बारात सजाकर ब्याह करने चले॥ 5॥

हे नाई और दिल्ली के ब्राह्मण, आप लोग अवधपुर में जाइए और वहाँ से सोने की 'हरिस' लेते आइए॥ 6-7॥

सोने की हरिस तो मनुष्य को प्राप्त नहीं हो सकती। वह तो बाँस की हरिस से ब्याह संपन्न करवाता है॥ 8॥

महादेव जी आठों अंगों पर विभूति लगाकर पार्वती को ब्याहने चले॥ 9॥

हे नाई और दिल्ली के ब्राह्मण, आप अवधपुर में जाइए और वहाँ से सोने का कलश लेते आइए॥ 10-11॥

सोने का कलश मनुष्य को कहाँ नसीब होता है? वह तो मिट्टी के कच्चे कलश से विवाह की विधि संपन्न करता है॥ 12॥

इसमें शिवाजी साधारण से असाधारण हो जाते हैं। इसमें विवाह-हेतु अवधपुर से सुनहरे चौके, स्वर्ण कलश एवं सोने की हरिस मंगाने का उल्लेख हुआ है। ये वस्तुएँ साधारण वर के लिए तो दुर्लभ हैं। इमसें 'दिलिया कोस' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है दिल्ली जो कोसों दूर है। अत: यह रचना आधुनिक समय की है।

विवाह-पूर्व सास की महादेव जी से बातचीत

जब हो महादेव गउरा से बियाउ करबऽ
गउरा जोगे सजन लेइ आवऽ जी॥ 1॥

हमरो नगऽरिया सासु सजन न बाटे हो
सांप गोजर अनबों बरिआत जी॥ 2॥

जब हो महादेव गउरा से बियाह करबऽ
गउरा जोगे बजन लेइ आवऽ जी॥ 3॥

हमरो नगऽरिया सासु बजनो न बाटे हो
दुंदुभी से करिबों बियाह जी॥ 4॥

जब हो महादेव गउरा से बियाह करबऽ
गउरा जोगे सेन्दूर लेइ आवऽ जी॥ 5॥

हमरो नगऽरिया सासु सेन्दूर न बाटे हो
भभूति से करिबों बियाह जी॥ 6॥

1. सज्जन लोग, बाराती। 2. है। 3. लाऊँगा। 4. बाजा। 5. नगाड़ा। 6. भस्म। 7. मृगचर्म। 8. सुहाग सूचक एक डोरा, जो विवाह में बधू को दिया जाता है।

(सास मेना कहती है) हे महादेव। अगर आप गौरी से विवाह करना चाहते हैं तो गौरी-योग्य (सज्जन पुरुषों की) बारात लेकर आइए॥ 1॥

(इस पर महादेव जी उत्तर देते हैं कि) हे सासु! मेरे नगर में सज्जन पुरुष कहाँ? मैं तो साँप गोजर की बारात सजाकर (गौरी से) विवाह करने आऊँगा॥ 2॥

(सास कहती है) हे महादेव! अगर आप गौरी से विवाह करना चाहते हैं तो गौरी के लिए योग्य गाने-बजाने वालों को लेकर आइए॥ 3॥

(महादेव जी जवाब देते हैं) मेरे नगर में सासु जी, गाने-बजाने वाले कहाँ? मैं तो दुंदुभि लेकर (गौरी से) विवाह करने आऊँगा॥ 4॥

(सास आगे कहती है) हे महादेव! अगर आप गौरी से विवाह करना चाहते हैं तो गौरी के लिए सिंदूर लेकर आइए॥ 5॥

(महादेव जी फिर उत्तर देते हैं) हे सासु जी, मेरे नगर में सिंदूर नहीं। मैं तो विभूति लेकर (गौरी से) विवाह करने आऊँगा॥ 6॥

(सास फिर कहती है) हे महादेव! अगर आप गौरी से विवाह करना चाहते हैं तो गौरी के लिए योग्य चुनरी (वस्त्रादि) लेकर आइए॥ 7॥

(महादेव जी फिर जवाब देते हैं) हे सासु जी, मेरे नगर में चुनरी कहाँ? मैं तो मृगछाला लेकर (गौरी से) ब्याह रचाने आऊँगा॥ 8॥

(सास ने कहा) हे महादेव! अगर आप गौरी से विवाह करना चाहते हैं तो गौरी-योग्य आभूषण लेकर आइए॥ 9॥

(महादेव जी कहते हैं) मेरे नगर में सासु, गहने नहीं हैं। मैं तो तागपाट लेकर (गौरी से) विवाह करने आऊँगा॥ 10॥

तुलसीदास कहते हैं कि जो (भक्त) प्रभु-चरणों की कामना करता है, वह उन चरणों को प्राप्त करने के लिए (प्रभु के) गुण गाता है॥ 11॥

इसमें शिवजी तथा सास का संवाद है। सास बेटी का विवाह धूमधाम से करना चाहती है। इसीलिए वह महादेव जी से निवेदन करती हैं कि वे शानदार बारात, गाजे-बाजे तथा वधू के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषण लाएँ। यह लोकगीत 'भारतीय माता की इस भावना को स्पष्ट करती है कि वह अपनी पुत्रियों को प्रतिष्ठित तथा संपन्न वरों से ही विवाह करना चाहती हैं।

शिव-गौरी विवाह संबंधी विधियों का वर्णन

गंगा जी से बालू मंगाइला बेदी बनाइला हो
अहो बेदी चढ़ि बइसेलन महादेव अबे हो गउरा बियहब हो॥ 1॥

धीरजा धरऽ ए प्राभु धीरजा धरऽ अबहीं में अम्मां के हो
जब अम्मां इमली घोंटइहें तबे हो रउरा बियहन हो॥ 2॥

गंगा जी से बालू मंगाइला बेदी बनाइला हो
अहो बेदी चढ़ि बइसेलन महादेव अबे हो गउरा बियहन हो॥ 3॥

धीरजा धरऽ ए प्राभु धीरजा धरऽ अबही में बाबा के हो
जब बाबा दीहें कनिआदान तबे हो रउरा बियहन हो॥ 4॥

गंगा जी से बालू मंगाइला बेदी बनाइला हो
अहो बेदी चढ़ि बइसेलन महादेव अबे हो गउरा बियहब हो॥ 5॥

धीरजा धरऽ ए प्राभु धीरजा धरऽ अबहीं में भइया के हो
जब भइया लावा मिलइहें तबे हो रउरा बियहन हो॥ 6॥

गंगा जी से बालू मंगाइला बेदी बनाइला हो
अहो बेदी चढ़ि बइसेलन महादेव अबे हो गउरा बियहन हो॥ 7॥

धीरजा धरऽ ए प्राभु धीरजा धरऽ अबही में भउजी के हो
जब भउजी सेंदूर बहूरिहें तबे हो रउरा बियहन हो॥ 8॥

मैंने गंगा–तट से रेत मंगबाई है तथा बेदिका बनबाई है। उसी वेदिका पर महादेव जी चढ़कर बैठे। (महादेव जी मन–ही–मन कह रहे हैं) अब गौरी से मेरा विवाह होगा॥ 1॥

(महादेव जी की इस अधीरता को देखकर गौरी कहती है) हे प्रभु! आप धीरज धरिए। अभी मेरी माता जी की (बारी) है। जब माता जी 'इमली घोटाने' की विधि पूरी करेगी, तभी मेरा ब्याह आपसे होगा॥ 2॥

गंगा जी से बालू मंगवाकर मैंने वेदी बनवाई जिस पर महादेव जी चढ़कर बैठे हैं (तथा मन–ही–मन कह रहे हैं कि) अब मेरा ब्याह गौरी से होगा॥ 3॥

(गौरी कहती है) हे प्रभु! आप धीरज धरिए। अभी मेरे पिता की (बारी) है। जब पिता जी कन्यादान की विधि संपन्न करेंगे तभी मेरा विवाह आपसे होगा॥ 4॥

गंगा जी से बालू मंगाकर मैंने वेदी बनवाई जिस पर महादेव जी चढ़कर बैठे हैं। (महादेव जी सोच रहे हैं) अब मेरा विवाह गौरी से होगा॥ 5॥

(गौरी कहती है) हे प्रभु! आप धैर्य धरिए। अभी मेरे भैया की (बारी) है। जब भाई 'लाज मेराइ' विधि को संपन्न करेंगे, तभी मेरा विवाह आपसे होगा॥ 6॥

गंगा जी से रेत मंगाकर मैंने वेदी बनवाई। महादेव जी उसी वेदी पर चढ़कर बैठे (तथा मन–ही–मन सोच रहे हैं कि) अब गौरी से मेरा विवाह होगा॥ 7॥

(गौरी कहती है कि) हे प्रभु! आप धीरज रखिए। अभी मेरी भौजी की (बारी) है। जब भौजी सिंदूर लौटाने की विधि संपन्न करेंगी तभी मेरा विवाह आपसे संपन्न होगा॥ 8॥

एक ओर पार्वती के नैहर के लोग बैठे हैं तथा दूसरी ओर उसकी ससुराल के लोग। (विवाह के बाद) ससुराल वाले हँसते हुए उठे तथा नैहर वाले रोते हुए उठे। महादेव जी भी हँसते हुए उठे (तथा कहने लगे कि) अब गौरी मेरी है॥ 9॥

इस लोकगीत में हिंदू–विवाह की कुछ विधियों का वर्णन है। इसमें 'इमली घोंटाई', 'कन्यादान', 'लाजा होमा–विधि', 'सिंदूर बहुराई' आदि लौकिक विधियों का वर्णन हैं। इसमें वधू–पक्ष दु:खी तथा वर–पक्ष प्रसन्न दिखाया गया है जो स्वाभाविक है।

गौरा द्वारा अपने दहेज का वर्णन

गाइ के गोबरे महादेव आँगना लीपाइ
गजमोती अहो महादेव चउका पुराइ
सिउ चउका पुराइ सुनु ए सिउ॥ 1॥

ताही चउका बइसे महादेव गइले अलऽसाइ
अँगूठा जे मरिले गउरा देइ लीहले जगाइ
सिउ लीहले जगाइ सुनु ए सिउ॥ 2॥

आनके मरऽलके महादेव मने मुसुकाइ
गउरा देइ के मरले महादेव चलले कुंहाइ
सिउ चलले कुंहाइ सुनु ए सिउ॥ 3॥

बहियाँ लफाइ गउरा देइ लीहले मनाइ
बहियाँ लफाइ गउरा देइ लीहलें मनाइ
सिउ लीहले मनाइ सुनु ए सिउ॥ 4॥

बिअहे के बेरिया महादेव किछुवो नाहीं हो
गवने के बेरिया महादेव सभे किछु हो
सिउ सभे किछु हो सुनु ए सिउ॥ 5॥

खाइ के थारी हो पइबउ अँचवे के लोटा
सुतेके गलइया हो पइबउ ओढ़े के रजाइ
सिउ ओढ़े के रजाई सुनु ए सिउ॥ 6॥

गाय के गोबर से आँगन लीपा गया तथा गजमोतियों से चौका पुराया गया॥ 1॥
उसी चौके पर महादेव जी बैठे-बैठे ऊँघने लगे। यह देखकर गौरी ने महादेव जी को अँगूठा मार कर जगाया॥ 2॥

दूसरों के मारने पर महादेव जी मुस्कराते थे। परंतु गौरी के मारने से महादेव जी क्रोधित हो, उठकर चल दिए॥ 3॥

गौरी ने बाँह फैलाकर महादेव जी को मना लिया॥ 4॥

(गौरी ने कहा) हे महादेव जी! ब्याह के समय आपको कुछ भी नहीं मिलेगा, परंतु गौने के समय आपको सब कुछ मिलेगा॥ 5॥

खाने के लिए थाली, हाथ-मुँह धोने के लिए लोटा, सोने के लिए फूलदार बिछावन तथा ओढ़ने के लिए रजाई। हे शिव! यह सब कुछ आपको मिलेगा॥ 6॥

मेरे बाबा आपको हाथी देंगे तथा माता धेनु गाय देंगी। मेरे भाई आपको कन्हावर देंगे और भाभी अँगूठी भेंट करेंगी॥

इस 'महादेव गीत' में गौने के समय दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख है। स्पष्ट है कि कन्या का बाल विवाह हुआ है और अब गौने की रस्म पूरी हो रही है। यहाँ दहेज में गाय देने का भी उल्लेख है, जो खुशहाली का प्रतीक है। मॉरीशस में आज दहेज की प्रथा नहीं है, परंतु विवाह के समय वर को कीमती वस्तुएँ दी जाती हैं। इसके मूल में ससुराल में लड़की को आदर मिलने का भी लक्ष्य होता है।

महादेव द्वारा गौरा के सत की परीक्षा

लवंगिया लदऽनिया हो चलेलन महादेव
तिरसूल दीहलन उठंगाइ॥ 1॥

बारह बरीस पर अइलन महादेव
गउरा से मांगेलन विचार॥ 2॥

जबऽही जे गउरा देइ बरम्हा गोड़ लागेलन
बरम्हा बिसुन दीहलन असीस॥ 3॥

एहू किरिअवा गउरा हमें नाहीं मानब हो
हमरो दऽ सुरुज विचार॥ 4॥

जबऽही जे गउरा देइ सुरुज गोड़ लागेला
सुरुज बाबा भइले छपीत॥ 5॥

एहू किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो
हमरो दऽ सरप विचार॥ 6॥

जबऽही हो गउरा देइ सरप हाँथे लीहली
सरप बइसेला गेंरुड़ मार॥ 7॥

एहू किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो
अगिन विचरवा मोही देहू॥ 8॥

जबऽही जे गउरा देइ अगिनी हाँथे लीहली
अगिनी भइले हो झंचाइ॥ 9॥

एहू किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो
तुलसी विचरवा मोही देहू॥ 10॥

जबऽही जे गउरा देइ तुलसी गोड़ लागी
तुलसी भइले कचनार॥ 11॥

एहू किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो
गंगिया विचार मोही देहू॥ 12॥

जबऽही जे गउरा देइ गंगिया समइली हो
गंगिया परेला बलुवा रेत॥ 13॥

फाटऽहु धरती समाइ बलु जइबों हो
अइसन पुरुष मुख ना देखबों॥ 14॥

कर जोरी मिनऽती से बोलेलन महादेव
जबले रहिए जिनगनिया गउरा देइ
तबले रहबों तोहर दास॥ 15॥

नइहरे तरलू गउरा सासुर तरलू
तारी देहू कुल परिवार॥ 16॥

1. व्यापार, बैल या घोड़े पर सामानों को लादकर ले जाना। 2. त्रिशूल। 3. साक्षी, गवाही। 4. सौगंध। 5. अस्त हो गया, छिप गया। 6. कुंडली। 8. तेज हीन, मुरझा जाना। 9. समा गई। 10. बालू। 11. बल्कि। 12. पुरुष। 13. हाथ। 14. तब तक। 15. मायके, मातृ-गृह। 16. तार दिया, उद्धार कर दिया। 17 ससुराल।

लौंग के व्यापार के लिए महादेव जी चलने लगे। जाते-जाते वे अपना त्रिशूल खड़ाकर गए॥ 1॥

बारह वर्ष के बाद महादेव जी (व्यापार करके) लौटे और गौरी के सत की परीक्षा लेने लगे॥ 2॥

गौरी ने जब (परीक्षा देने के लिए) ब्रह्मा जी के पैर छुए (तथा सौगंध खाई) तब ब्रह्मा जी तथा विष्णु जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया॥ 3॥

(इस सौगंध के बाद महादेव जी ने कहा कि) हे गौरी! मैं इस सौगंध से संतुष्ट नहीं हूँ। तुम सूर्य की सौगंध खाओ॥ 4॥

जब गौरी ने सूर्य देवता की सौगंध खाई तब सूर्य देवता (सती के सत के सामने झुक गए और) डूब गए॥ 5॥

(शिव जी ने कहा कि) हे गौरी, मैं इस सौगंध से भी संतुष्ट नहीं हूँ। (उन्होंने गौरी से कहा कि) तुम सर्प की सौगंध खाओ॥ 6॥

गौरी ने जब (सौगंध खाते हुए) सर्प को हाथ में उठाया तब सर्प कुंडली मार कर बैठ गया॥ 7॥

(महादेव जी ने फिर कहा कि) हे गौरी! मैं तुम्हारी इस सौगंध से भी संतुष्ट नहीं। तुम अग्नि देवता की शपथ खाओ॥ 8॥

गौरी ने अग्नि को हाथ में उठाया। गौरी के सत के सामने अग्नि भी बुझ गई॥ 9॥

महादेव जी ने इस शपथ को भी स्वीकार नहीं किया तथा गौरी से तुलसी की शपथ लेने को कहा॥ 10॥

गौरी ने तुलसी की शपथ ली। शपथ के लेते ही तुलसी हरी–भरी हो गई॥ 11॥

महादेव जी ने इस सौगंध को भी नहीं स्वीकारा, तथा गौरी से गंगा की शपथ लेने के लिए कहा॥ 12॥

गौरी अपने सत की परीक्षा देने के लिए गंगा में समा गई। गौरी के गंगा में समाते ही गंगा पीछे हट गई तथा रेत से भर गई॥ 13॥

गौरी ने कहा कि हे धरती! तुम फट जाओ ताकि मैं तुममें समा जाऊँ। मैं ऐसे पुरुष का मुख भी नहीं देखना चाहती (जो अपनी स्त्री पर विश्वास भी नहीं कर सके)॥ 14॥

(यह देखकर महादेव जी शांत होकर कहने लगे कि) हे गौरी! जब तक जीवन रहेगा मैं तुम्हारा दास बनकर रहूँगा॥ 15॥

(महादेव जी ने आगे कहा कि) हे गौरी! तुमने अपने सत के बल पर अपने माता–पिता तथा सास–ससुर, दोनों कुलों की लाज रख ली॥ 16॥

इस लोकगीत में महादेव के माध्यम से साधारण मनुष्य के पति रूप में प्राप्त अधिकार तथा स्त्री की शोचनीय दशा का वर्णन है। इस लोकगीत के अनुसार पत्नी विश्वसनीय नहीं है और उसे सत की परीक्षा देनी होगी, परंतु स्त्री अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए गंगा में समा जाना उचित समझती है। इसमें स्त्री की सामाजिक स्थिति का मार्मिक वर्णन है।

इस प्रकार मॉरीशस के भोजपुरी लोकगीत वहाँ के हिंदू जीवन के सांस्कृतिक जीवन, उनके रीति–रिवाज, विवाह संस्कार, स्त्री की स्थिति आदि को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। मॉरीशस में ये भोजपुरी लोकगीत आज भी विवाहादि अवसरों पर गाए जाते हैं और नई पीढ़ी की रुचि को देखते हुए आशा है कि भविष्य में भी अर्थवान तथा उपयोगी बने रहेंगे।

❑❑

विश्व भाषा का परिकल्प और हिंदी

—सूर्यप्रसाद दीक्षित

'विश्वभाषा' यों तो विश्व की उस प्रत्येक भाषा को कहा जा सकता है, जिसके प्रयोक्ता, एकाधिक देशों में बसे हुए हैं, किंतु 'विश्वभाषा' पद की वास्तविक अधिकारिणी वे भाषाएँ है, जो विश्व के अधिकतर देशों में पढ़ी, लिखी, बोली, सुनी और समझी जाती है। वस्तुत: प्रत्येक 'विश्वभाषा' के पाँच प्रमुख प्रकार्य होते हैं- 1. बोलचाल एवं जनसंपर्क, 2. साहित्य सृजन, 3. शिक्षण एवं जनसंचार माध्यम, 4. प्रशासनिक कामकाज (राजकाज), 5. व्यावसायिक और तकनीकी अनुप्रयोग।

'विश्वभाषा' की अवधारणा से जुड़ा हुआ एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है- विश्वबोध या वैश्विक चेतना। सही अर्थों में 'विश्वभाषा' उसे ही कहा जा सकता है, जिसका चिंतन क्षेत्रीय परिधि को लाँघ गया हो, जो राष्ट्र की सीमा का भी अतिक्रमण कर गया हो और समग्रत: विश्व मानव की चेतना में रूपान्तारित हो रहा हो। यह तभी संभव हो पाता है, जब भाषा अपने क्षेत्र, वर्ग, जाति आदि के सामुदायिक चरित्र से ऊपर उठ जाती है। इस दृष्टि से अंग्रेजी, फ्रेंच का स्वरूप भी संदिग्ध है। विलायती अंग्रेजी का चरित्र अंधराष्ट्रवादी तथा औपनिवेशिक है, जर्मन फासिस्ट है और रूसी, चीनी, अरबी, स्पेनिश आदि अद्‌र्धविकसित है।

'यूनेस्को' की एक रिपोर्ट के अनुसार संप्रति विश्व के लगभग 137 देशों में हिंदी भाषा विद्‌यमान है। हिंदी भाषियों की कुल संख्या अनुमानत: 72 करोड़ है। इनमें तीन प्रकार के राष्ट्र हैं। पहले भारत के प्रतिवेशी राष्ट्र हैं, जैसे- नेपाल, चीन, हॉगकॉग, सिंगापुर, वर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड, मलेशिया, तिब्बत, भूटान, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालद्‌वीप आदि। इन देशों में अनेक राष्ट्र पहले बृहत्तर भारत के अंग थे। यहाँ हिंदी भाषी परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी निवास कर रहे हैं। नेपाल मूलत: हिंदू देश है। वहाँ की भाषाएँ नेपाली, गोरखी मुख्यत: हिंदी की ही विभाषाएँ हैं। पृथक्‌तावादी राजनीति के कारण भारत विरोध के नाम पर वहाँ हिंदी विरोध की जो हवा चली, उससे स्थानीय भाषाओं की बढ़त और हिंदी की कुछ क्षति हुई है, अन्यथा हिंदी सेवा का सुदीर्घ, इतिहास नेपाल से संबंध है। वहाँ

के रचनाकारों में श्री देवकोटा, मोतीराम, लाखाराम, गिरीश बल्लभ, रघुनाथ 'व्यथित' आदि का योगदान अविस्मरणीय है। नेपाल में दैनिक समाचार पत्र और अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति वर्मा और भूटान की है। पाकिस्तान और बांग्लादेश में, जहाँ उर्दू और बांग्ला प्रचलित है, वह यदि देवनागरी में लिख दी जाये तो हिंदी से भिन्न नहीं होगी। यही स्थिति जावा, सुमात्रा और इंडोनेशिया की है। वहाँ के मुसलमान जिस उर्दू का प्रयोग करते हैं, वह लिप्यन्तरण के बाद हिंदी ही है।

हिंदी भाषी विश्व का दूसरा वर्ग है- भारत मूल के अप्रवासी भारतवंशी बहुल राष्ट्र, जिन्हें भारत उप-महाद्वीप कहा जा सकता है। इनमें प्रमुख हैं- मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद गयाना और दक्षिण अफ्रीका। इन देशों में लगभग डेढ़ सौ वर्षों से हिंदी विद्यमान है। अंग्रेजों ने इन द्वीपों में भारतीय गिरमिटिया (एग्रीमेंट) मजदूरों को जा बसाया था। प्रवजन का क्रम सदियों तक जारी रहा। धीरे-धीरे ये देश सरसब्ज हो गए। वहाँ कुछ आदिम जन और कुछ अन्य देशों के प्रवासी भी आ बसे। किंतु फिर भी वहाँ भारतीयों की संख्या सर्वाधिक रही। मॉरीशस में 70 प्रतिशत से भी अधिक भारतीय हैं। मणिलाल ठाकुर गांधी जी को निर्देशानुसार मॉरीशस की यात्रा पर गए तो वहाँ के शोषित भारतीयों में नवस्फूर्ति का संचार हुआ और उन्होंने सुनियोजित रूप से अपनी संस्कृति का सर्वांग विकास करते हुए हिंदी माध्यम के विद्यालय खोले, संस्थाएँ स्थापित की, हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ शुरू की और हिंदी पठन-पाठन तथा परीक्षण की व्यवस्था जुटाई। मॉरीशस में आर्यसमाज एवं सनातन धर्म सभा ने हिंदी प्रचार के क्षेत्र में अपूर्व योगदान किया है। वहाँ 50 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। संप्रति वहाँ प्रारंभिक विद्यालय से रर्सरी स्तर तक हिंदी पढ़ाई जा रही है। हिंदी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा केंद्र वहाँ स्थान-स्थान पर है। मॉरीशस रेडियो इस दिशा में पर्याप्त सक्रिय है। इसी प्रकार मुद्रण, प्रकाशन, पुस्तकालय और हिंदी प्रतियोगिताओं की वहाँ अच्छी व्यवस्था है। 1976 और 1995 में आयोजित विश्व-हिंदी सम्मेलन इस कथन का प्रमाण हैं कि मॉरीशस हिंदी की दृष्टि से एक लघु भारत ही है। रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी मॉरीशस काफी आगे है। वहाँ वासुदेव विष्णुदयाल, सोमदत्त बखोरी, 'रसपुंज', मुनीश्वर चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, प्रहलाद रामशरण, ब्रजेन्द्र 'मधुकर' आदि अनेक ख्यातिलब्ध कवि लेखक हुए हैं और अधुना सक्रिय हैं। फ्रांसीसी समाज की स्पर्धा में 'हिंदी समाज' का एकजुट रहना मॉरीशस की राजनीतिक आवश्यकता है। भारत में जो उपयोगिता अल्पसंख्यक और बहुजन की है, वही मॉरीशस में हिंदी भाषियों की है।

कुछ ऐसी ही स्थिति फ़ीजी की है। वहाँ भारतवासियों का बाहुल्य है। हिंदी संस्थाओं पत्र-पत्रिकाओं और परीक्षाओं की मात्रा उत्साहवर्धक है। हिंदी रचनाकारों में पं. कमलप्रसाद मिश्र, विवेकानन्द, कंबल, बलराम आदि बहुचर्चित है। इसी प्रकार सूरीनाम, त्रिनिडाड और गयाना में लाखों हिंदी भाषी निवास कर रहे हैं। यह हमारा वृहत्तर हिंदी जगत है, विश्व हिंदी परिवार। तीसरा प्रकार है- विश्व के समुन्नत राष्ट्रों के हिंदी अप्रवासियों का संप्रति यह हिंदी भाषी समाज, यूरोप, अमेरिका,

विभिन्न विकसित राष्ट्रों में फैला हुआ है, जैसे- ब्रिटेन में भारतीयों की कई कालोनियाँ हैं। अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, इटली, रूस, नार्वे, हालैंड, पोलैंड, जर्मनी आदि देशों में भी पर्याप्त मात्रा में हिंदी भाषी जन निवास कर रहे हैं। हिंदी से इन देशों का संबंध कई वर्षों का है। फ्रांस के विद्वान गार्सा द तॉसी ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा था। इटली निवासी तेस्सीतेरी ने और इंग्लैंड निवासी डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी विषयक शोधकार्य करके विश्वस्तर पर इस भाषा की पहचान बनाई थी। इन दिनों यूरोप, अमेरिका के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। क्योंकि वे भारत की भाषा के रूप में मुख्यत: हिंदी को मान्यता देते हैं। वहाँ जनसंचार में भी हिंदी को स्थान मिला है। इनमें बी.बी.सी. (लंदन) का कार्यक्रम तो अत्यंत जनप्रिय है। इसी प्रकार बीजिंग रेडियों (चीन) और 'वायस ऑफ अमेरिका' का कार्यक्रम उल्लेखनीय है। इन देशों में हिंदी के अनेकानेक विद्वान हुए हैं और अभी भी हैं, जैसे- रूस में बाराकोव, चेलीशेव, इटली में तुर्बीयानी, फ्रांस में निकोल से बलवीर, आस्ट्रेलिया में प्रो. जार्ज, डेनमार्क में प्रो. थीसन, चेक में डॉ. ओदोनेल स्मेकल, अमेरिका में डॉ. करीम शोमर, पोलैंड में ब्रिस्की, हालैंड में पेशोकर जर्मनी में डॉ. लोठार लुसे जापान में प्रो. दोई आदि। इनके अतिरिक्त भारतमूल के अनेक विद्वान वहाँ हिंदी कार्य में संलग्न हैं। इन्होंने अनेक संस्थाएँ तथा पत्रिकाएँ शुरू की हैं। इनके कई संकलन प्रकाश में आ चुके हैं। भारतीय दूतावास, सांस्कृतिक संबंध परिषद और भारत उच्चायोग के माध्यम से इन देशों में हिंदी को प्रश्रय दिया गया है। इनमें सार्क (दक्षेस) राष्ट्रों और राष्ट्रमण्डलीय देशों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार ये तीनों प्रकार के राष्ट्र न्यूनाधिक रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबंध हैं। यदि इन सबकी घरेलू व्यवहार भाषा की सही गणना की जाए तो बहुभाषिकता के आधार पर हिंदी दूसरे स्थान की भाषा सिद्ध हो जाए, किंतु विडंबना यह है जनगणना करते हुए हिंदी भाषा के क्षेत्रीय रूपान्तरों को हिंदी परिवार से अलग कर दिया गया है, जैसे- हरियाणा (जो शुद्ध हिंदी की भाषी क्षेत्र है) की भाषा को 'किसान भाषा' लिखा जा रहा है और राजस्थान की बोलियों को राजस्थानी अर्थात् हिंदी कहने के बजाए राजपूती, जयपुरी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूँढ़ारी, हाड़ोती आदि नाम दिए जा रहे हैं। इसी प्रकार बिहार, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र की बोलियों को अलग-अलग करते हुए भागलपुरी, विलासपुरी, नागपुरी आदि नाम दिए गए हैं और उसे सोलहवें स्थान पर कर दिया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि यदि लिपिभेद समाप्त कर दिया जाए तो उर्दू, बांग्ला, गुजराती, पंजाबी, सिन्धी, मैथिली आदि समस्त भाषाओं का हिंदी में सरलतापूर्वक विलयन हो सकता है। इसी तरह कुछ देशों में भोजपुरी को हिंदी से अलग किया जा रहा है। मॉरीशस में भोजपुरी, डच, फ्रेंच मिश्रित एक स्थानीय क्रिओली के रूप विकसित हो गई है। जिसमें हिंदी भाषा के शब्दों को कुछ-कुछ बदल करके मूर्ति को मूठी, खिचड़ी को कीचरी, पिता को पोइया कहा जाने लगा है। उसकी वाक्य संरचना भी दिनों-दिन बदल रही है। जैसे- परबू (प्रभु) तेरे महीमा (तेरी महिमा) कहा जाऊ (कहाँ जाऊँ)। भाषा का यह विरूपण सप्रयास और सोद्देश्य प्रतीत होता है। इसके पीछे फ्रांसीसी व्यापारियों तथा अंग्रेज मिशनरियों का हाथ है। उन्होंने पाश्चात्य चकाचौंध से दिग्भ्रमित करके वहाँ भी भारतवंशियों को इतना 'आधुनिक'

बना दिया है कि आगे हिंदी का भविष्य बहुत सुरक्षित नहीं दिखाई देता। इस क्रिओलीकृत हिंदी भाषा का पुनः संस्कार अपेक्षित है। विश्वभाषा बनने की अनिवार्य शर्त है- वैश्विक चेतना का संस्पर्श। हिंदी विश्व-मानव के विचार-विनियम का माध्यम रही है। भारतीय संस्कृति तथा विश्व-बंधुत्व की बिरासत उसे संस्कृत से मिली है। हिंदी के प्राचीन, अर्वाचीन समस्त साहित्य में भवसागर एवं लोकजीवन की भरमार है।

यह देश ब्रिटेश उपनिवेशवाद का सुदृढ़ अंग रहा है और विश्व की विशिष्ट विभूतियों, घटनाओं तथा प्रसिद्ध प्राकृतिक स्थलों के प्रति सजग रहा है। कंपनी शासन काल से यह क्रम निरंतर बरकरार है। भारतेन्दु जी ने रानी विक्टोरिया और राजकुमार के अभिनन्दन स्वरूप अनेक रचनाएँ लिखी थीं। शेक्सपीयर के कई नाटकों के अनुवाद उन्होंने किए थे। उनके युग के और कई कवि-लेखक इस दिशा में सक्रिय थे। श्रीधर पाठक कृत 'ऊजड़ गाँव' और 'एकान्तवासी योगी' जैसी अनूदित कृतियाँ आज भी विशिष्ट कही जाएँगी। विदेशी भाषाओं की कालजयी कृतियों के रूपांतर का क्रम द्विवेदी युग, छायावाद और प्रगति-प्रयोग काल में भी चलता रहा। इस बीच मिल्टन, शेक्सपीयर, टेनीसन, कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ, गोर्की, हार्डी, डिकेन्स, रिचर्ड्स, इलियट, सार्तृ, टाल्स्टाय, वर्नाडश आदि के कई हिंदी अनुवाद प्रकाश में आए। दूसरी ओर रामचरितमानस, कबीर सूर, मीरा और अष्टछापी कवियों के अनेक पद विश्व-भाषाओं में रूपान्तरित हुए। प्रसाद जी ने कार्नेलिया (चन्द्रगुप्त(शैला, (तितली) जैसे चरित्र गढ़े निराला ने सम्राट एडवर्ड अष्टम को संवेदना अर्पित की, पंत ने 'लोकायतन' का परिकल्प प्रस्तुत किया, दिनकर, अज्ञेय, भीष्म साहनी, राहुल, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा आदि ने विश्व-बोध का आह्वान किया। तात्पर्य यह है कि पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण हिंदी वैश्विक चेतना से जुड़ी रही और उसका विश्व-बोध तीव्र से तीव्रतर होता रहा।

हिंदी भाषा का प्रकृति परिवेश अपेक्षाकृत बहुत विस्तीर्ण है। वियतनाम में गोली चलती है तो हताहत प्राणियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए हिंदी जगत में कवि गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं और काव्य संकलन प्रकाशित होते हैं। आज संचार के साधन बढ़ गए हैं और विश्व गोलार्द्ध की परिधियाँ सिमटती चली जा रही हैं। आवश्यकता केवल जागरूकता की है। यदि हम 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ता हमारा' की ध्वनि को कुछ धीमा करके भूमा भारती की साधना करने लगें तो उससे हिंदी का क्षितिज सहस्रगुना विकसित हो जाए। विश्व-स्तर पर हिंदी के समक्ष सबसे बड़ी स्पर्द्धा है अंग्रेजी से। उसमें हर देश, जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति आदि से संबंधित विश्वकोश हैं, उच्चस्तरीय सम्मोहक सर्जनात्मक साहित्य है, आधारभूत मौलिक विचार साहित्य है, अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हैं और माध्यमोपयोगी श्रव्य-दृश्य सामग्री है। किंतु विडंबना यह है कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र की अभी तक मान्य भाषा नहीं बन पाई है। बल्कि सच तो यह है कि अभी पूरे भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई है। लेकिन हताश होने की स्थिति हितेय नहीं है। यदि हिंदी विश्वस्तरीय भाषा मान ली जाएगी तो वह भारत की संपर्क भाषा अपने आप हो जाएगी। यहाँ विदेशी लेबिल के लगते ही हर वस्तु महिमा मंडित हो जाती है। इस भाषिक मनोविज्ञान की दृष्टि से विश्व हिंदी का समुन्नयन आवश्यक है।

विश्वभाषा के रूप में हिंदी के समक्ष अभी कई समस्याएँ हैं, जैसे- विदेशों में जिस अनुपात में भारतीय/हिंदू संस्कृति का ह्रास और पश्चिमी भोगवादी सभ्यता का विकास होता चला जा रहा है, उसी मात्रा में हिंदी का प्रचलन न्यून होता जा रहा है। यह भाषा टिकी हुई है, भारत से पलायन करने वाले युवा बुद्धिजीवियों और श्रमिकों पर, किंतु ये देश तेजी से अंग्रेजियत के रंग में रंगे जा रहे हैं। उनकी अगली पीढ़ी हिंदी से अपरिचित सी है। अब वे भारतीयता की रक्षा और अपनी अस्मिता के लिए हिंदी से जुड़ रहे हैं। अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार में मिशनरी संस्थाएँ नवीनतम संसाधनों के साथ सक्रिय हैं। जबकि हिंदी अपने देशी सियासती षड्यंत्र से आक्रांत है और साथ ही विदेशी भारत विरोधी अभिसंधियों से पीड़ित भी। हिंदी के पास आधुनिक टेक्नोलॉजी का अभाव है। अभी तो वह प्रायः पर्यटकों और व्यापारियों की कामकाजी भाषा है। इस दिशा में हमारे दूतावास भी पूर्ण सचेष्ट नहीं हैं। उसके संपूर्ण अभ्युत्थान के लिए इस योजनाबद्ध अनुष्ठान की आवश्यकता है।

1. विदेशों में हिंदी मुद्रण-टंकण, आशुलेखन कंप्यूटर आदि की सुविधा का विस्तार हो।
2. हिंदी की कालजयी कृतियों का विनिश्चय करके विभिन्न भाषाओं में उनके रूपांतर की व्यवस्था हो।
3. विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन तथा उनका सुलभ बिक्री-वितरण हो।
4. भारतवंशी बहुल राष्ट्रों में हिंदी संस्थाओं का सक्रिय संचालन हो।
5. प्रतिवर्ष विश्व हिंदी सम्मेलनों, रामायण-सम्मेलनों तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन हो।
6. विश्व के प्रमुख नगरों हिंदी पुस्तकालयों और सूचना केंद्रों की स्थापना हो।
7. विश्वस्तीय हिंदी कवि-लेखकों के परिचय कोशों का अधिकाधिक प्रकाशन हो।
8. हिंदी पठन-पाठन और परीक्षण से संबंधित संस्थाओं का सक्रिय संचालन हो।
9. विश्वभाषाओं से संबंधित द्तिभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों, विश्वकोशों का संपादन-प्रकाशन हो।
10. हिंदी कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की रूप रचना और हिंदी कूटपदों तथा संकेताक्षरों का प्रचलन हो।
11. कृत्रिम उपग्रहों, रेडियो और टी.वी. के उपयुक्त 'संचार भाषा' का अधिकाधिक प्रसारण हो।
12. हिंदी की विश्वव्यापी प्रकृति की रूपरचना, व्याकरण का नव निर्माण, लिपि का सरलीकरण और व्यवहार की दृष्टि से सुगम हिंदी के शोध केंद्रों की स्थापना हो।
13. हिंदी प्रतियोगिता, अनुदान, वृत्ति, पुरस्कार आदि के प्रावधान हो।
14. इन सूत्रों के कार्यान्वयन हेतु 'विश्व हिंदी पीठ' की सक्रियता में वृद्धि हो।

विश्व में हिंदी का परिविस्तार यों तो अवश्यम्भावी है, किंतु वह समय सापेक्ष अवश्य है। वर्तमान भौतिक प्रवाह में हिंदी को अपना स्थान बनाने के लिए कठिन संघर्ष करना होगा। प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में वह अंग्रेजी के समक्ष अभी नहीं ठहर सकती। विदेशों में वह ठहर सकती है, भारतीय संस्कृति और अध्यात्म की भाषा बनकर। हिंदी भक्ति काव्य के प्रति पश्चिम में रुचि बढ़ती जा रही है। विडंबना यह है कि हम इस सांस्कृतिक संपदा को निर्यात न करके अपने तथाकथित आधुनिक लेखन या उधार लिए चिंतन का प्रदर्शन विदेशों में कर रहे हैं और वह भी या तो किसी दलीय विचारधारा का सहारा लेकर अथवा कलात्मक प्रयोगों के कौतुकी करतब दिखा-दिखाकर, जबकि ये दोनों चीजें पश्चिमी पाठकों के लिए कालातीत यानि उबाऊ हो गई हैं। भौतिकता से संत्रस्त उनका मन हिंदी में भारतीय-दर्शन के प्रति ध्वनि-प्रतिच्छवि चाहता है। मैं इसे ही 'साहित्याध्यात्म' कहता हूँ। इसका हिंदी में संक्रामक प्रभाव है, जिसे मैंने पश्चिम के अनेक देशों में प्रयोग परीक्षण करके पहचाना है। अगली शती की वही 'विश्व हिंदी' होगी। जन बाहुल्य वाला भारत देश मानवीय संसाधन विकास का एक शक्ति केंद्र होगा और हिंदी उसके संप्रेषण की सहज सशक्त माध्यम भाषा होगी, किंतु अभी हमें विकट संघर्ष झेलना है। शक्ति संतुलन के मिट जाने के कारण अमेरिकी आतंक बढ़ता जा रहा और वाणिज्यिक अंग्रेजी का फंदा कसता जा रहा है। अमेरिकी अर्थतंत्र ने रूसी, चीनी, जापानी, फ्रांसीसी, जर्मन जैसी भाषाओं के पैर उखाड़ दिए हैं। खतरा हिंदी के अस्तित्व को भी है। जो न्यूनाधिक प्रवासी भारतीय हिंदी बोल लेते हैं और औपचारिक रूप से हिंदी संबंधी दिखावे कर रहे हैं, उससे अति उल्लसित होकर हिंदी को सहसा विश्वभाषा या ब्रह्मांड भाषा मान लेना (मन ही मन फूल उठना) हितकर नहीं होगा। हाँ, संभावनाओं के आधार पर उसके वैश्विक चरित्र का संधान और सुनियोजित स्वरूप निर्माण हमें समय रहते अवश्य करना होगा।

❑❑

कनाडा के अग्रणी हिंदी प्रसारक श्री जगदीशचंद्र शारदा, "शास्त्री जी"

—रत्नाकर नराले

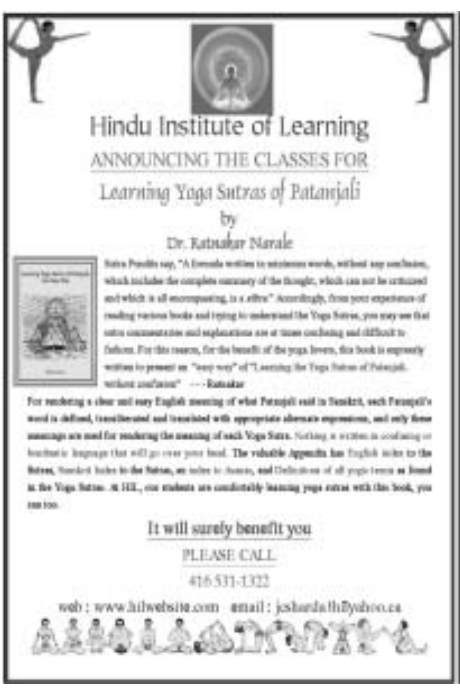
कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥

कनाडा के स्वयं प्रेरित हिंदी प्रचारक सज्जनों और संस्थाओं में भूत एवं वर्तमान कालीन उल्लेखनीय नाम हैं- क्विबेक शहर के श्री कुमुद त्रिवेदी जी की हिंदी संघ नामक संस्था की "हिंदी शाला" (1975), बर्नबी शहर की "विश्व हिंदू परिषद" (1975), कैलगरी शहर के वेदिक हिंदू सोसायटी की "रामायण भजन मंडली" (1980), हैलिफेक्स शहर में मेमोरियल युनिवर्सिटी केंपस पर प्रो. सिंह जी की "हिंदी कक्षा" (1980), विनिपेग शहर में प्रो. वेदानंद झा जी के हिंदू सोसायटी की "हिंदी परिषद" (1982), टोरंटो महानगर के रघुवीर सिंह जी की "हिंदी परिषद" (1982), ग्वेल्फ नगर के प्रो. ओम प्रकाश द्विवेदी जी की "लिटररी सोसायटी ऑफ कनाडा" (1983), एडमिंटन नगर के हिंदू परिषद के "हिंदी वर्ग" (1985), वैनकुवर शहर के महालक्ष्मी मंदिर की "हिंदी स्कूल" (1991), सरी नगर की वेदिक हिंदू कल्चरल सोसायटी का "हिंदू मंदिर" (1997), टोरंटो के प्रो. हरिशंकर आदेश, डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव तथा श्री श्याम त्रिपाठी जी की "हिंदी प्रचारिणी सभा" (1997) और फिर उस संस्था से विभाजित होकर डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव जी की डॉ. कैलास भटनागर जी के साथ "हिंदी साहित्य सभा" (1998), वैनकुवर के श्री श्रीनाथ द्विवेदी जी की हिंदी लिटररी सोसायटी आफ कनाडा द्वारा "हिंदी शिक्षा" (1998), रिचमंड नगर के वेदिक कल्चरल सोसायटी के "हिंदी वर्ग" (2004), आदि अल्पजीवी संस्थाओं द्वारा कनाडा में आप्रवासी भारतीयों के बच्चों को हिंदी शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं का गत पचास वर्षों का यह संक्षिप्त इतिहास इधर-उधर लिखा हुआ फुटकर रूप में प्राप्त किया जा सकता है. ऐसे ही एक हिंदी प्रचारक थे, हिंदू इंस्टीट्यूट के श्री जगदीश चंद्र शारदा शास्त्री जी।



दीर्घ काल से चलती आ रही कनाडा की एकमेव चिर स्थाई हिंदी के प्रचार-प्रसार-विस्तार की पंजीकृत चैरिटेबल संस्था है "हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ लर्निंग" (Reg'd Charity #1014851-20C), सन् 1994 में श्री जगदीश चंद्र शारदा शास्त्री जी (1920-2017) ने 2511 Dundas Street East, Toronto पर हिंदू इंस्टीट्यूट आरंभ किया था, जो 1995 से पुस्तक भारती के साथ मिलकर तीस साल से विश्व प्रचारक स्वरूप में चलती आ रही है। संस्था के आजीवन अध्यक्ष शास्त्री जी बन गए। हिंदू इंस्टीट्यूट के साथ प्रधानाचार्य के पद पर हमने गत 28 साल में हजारों-हजारों लोगों को हिंदी पढ़ाकर संस्था को कनाडा की नंबर एक की हिंदी शिक्षण संस्था का गौरव अर्जित करा दिया है।[2]

शिशु से वृद्ध तक सभी अप्रवासी भारतीय, भारतीय डायस्पोरा और अभारतीय भारतीय-संस्कृति के प्रेमियों को हिंदी प्रशिक्षण के उद्देश्य से खोली गई यह संस्था धीरे-धीरे संस्कृत, गीता, रामायण, संगीत, नृत्य, योग आदि की कक्षाएँ चलाने लगी और कनाडा की अग्रगण्य और विश्वख्यात प्रशिक्षण संस्था बन गई। संस्था के इस लंबी सफलता का मुख्य कारण था उसके बीस निष्ठावान और समर्पित शिक्षक।


Hindu Institute of Learning

ANNOUNCING THE CLASSES FOR

Learning Yoga Sutras of Patanjali

by

Dr. Ratnakar Narale

It will surely benefit you

PLEASE CALL

416 531-1322

web : www.hilwebsite.com email : jcshardathl@yahoo.ca


Hindu Institute of Learning

ANNOUNCING NEW SANSKRIT CLASS

Hindu Institute of Learning - Sanskrit Class

Hindu Institute of Learning - Sanskrit Class

Dear friend , Saprem Namaste,

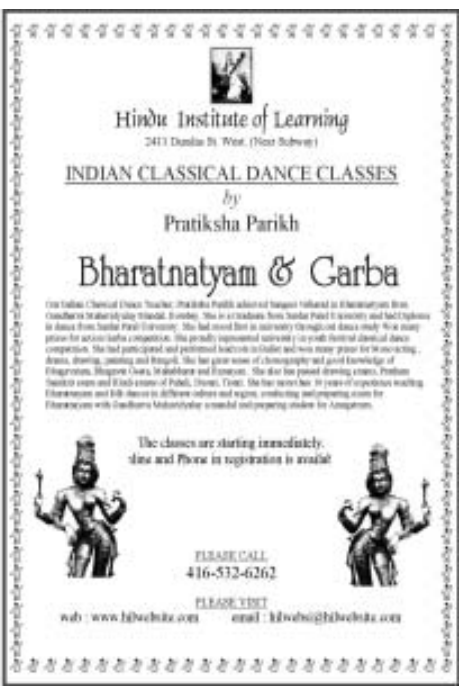
You will be pleased to know that Hindu Institute now has a new **READ, WRITE and SPEAK SANSKRIT** class at Bickford High School, 777 Bloor Street, West , close to Christie Subway Station, with effect from Sept 21, 2019.

Kindly confirm your participation immediately by e mail or phone to our Principal Prof. Ratnakar Narale at 416-739- 8004 or email rnarale@yahoo.ca


Hindu Institute of Learning
Sant Gyaneshwar Ashram
ANNOUNCING SANSKRIT CLASS
Learn to understand the Sanskrit Shlokas
Learn Sanskrit from Gita and Gita In Sanskrit
Registration Fees are Only $100.00 for one year
SATURDAY, DECEMBER 16, 2006
FOR REGISTRATION PLEASE CALL
Pandit Phool Kumar Shastri
905-794-5530 (at the ashram)
Ratnakar Narale
416-739-8004 (home)


Hindu Institute of Learning
Centre for Languages, Arts & Cultures
MUSIC CLASSES
by
Music Scholar Tanya
in
vocal and instrumental
Appointments are available
for
Weekends and Week Days
Please Call
HIL Office 416-532-6262


Hindu Institute of Learning
ANNOUNCING HINDI and SANSKRIT
CLASSES
At Our Location
2411 Dundas St. West, Toronto M6P 1X3
(3 Min. walk from Dundas West Subway)
We Offer Excellent Courses in
Classes for children and adults of all ages
Sanskrit and Hindi Speaking Classes coming soon
PLEASE CALL


Hindu Institute of Learning
2411 Dundas St. West, (Near Subway)
INDIAN CLASSICAL DANCE CLASSES
by
Pratiksha Parikh
Bharatnatyam & Garba
The classes are starting immediately.
Time and Phone in registration is avail
PLEASE CALL
416-532-6262
PLEASE VISIT

कनाडा के अग्रणी हिंदी प्रसारक श्री जगदीशचंद्र शारदा, "शास्त्री जी"



हिंदू इंस्टीट्यूट के प्रशिक्षण कार्य के साथ-साथ पुस्तक भारती संस्था ने हिंदी, संस्कृत और संस्कृति के संवर्धन और समृद्धि के उद्देश्य से शैक्षणिक एवं साहित्यिक पुस्तक प्रकाशन कार्य बेजोड़ रचनाओं से संपन्न किया। कनाडा के भारतीय समाज के लिए इस अतीव लाभकारी व असामान्य योगदान का मूल्यांकन और सराहना करते हुए हमें नवंबर 12, 2017 पर कनाडा की 150 वीं सालगिरह के अमृत महोत्सव में सरकार की ओर से हमें "हिंदुरत्न" उपाधि प्रदान की थी। चित्र में मारखम कंसिल हॉल में श्री शास्त्री जी व्हील-चेयर में हमारे आगे बैठे दिखाई दे रहे हैं। लाल अंग वस्त्र में मारखम मेयर बिल स्कारपिट्टी जी हैं।

शास्त्री जी स्वयं हिंदी कवि थे और हिंदी कवि सम्मेलनों में आनंद से भाग लेते थे। कनाडा के हिमवृष्टि पर लिखी हुई उनकी कविता, "बरफ बरफ चारों तरफ" बहुत लोकप्रिय थी। शास्त्री जी



हिंदी कवि थे फिर भी उनका मत यह था कि, एक हिंदी कवि ने हिंदी सम्मेलन में चार हिंदी भाषी लोगों के आगे हिंदी कविता पढ़ी तो इसमें मात्र मनोरंजन या हिंदी के आदान-प्रदान का काम हुआ। हिंदी सम्मेलन के पहले हिंदी जानने वाले जितने लोग थे उतने ही सम्मेनल के बाद भी रह गए। इसमें हिंदी भाषा का प्रसार नहीं हुआ। मगर, एक हिंदी जानने वाले ने हिंदी न जानने वाले चार लोगों को हिंदी सिखाई तो हिंदी जानने वाले एक से पाँच हो गए। यही सही मायने में हिंदी का प्रसार कार्य है। इस विचार धारा से शास्त्री जी ने हिंदू इंस्टीट्यूट चला कर जीवन के अंत तक हिंदी पढ़ाने का काम किया और सेंकड़ों काले-गोरे अहिंदी भाषी लागों को बिना शोर-शराबे के हिंदी भाषी बना दिया। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

बचपन से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के छात्र होने के कारण उनकी रग-रग में भारत प्रेम भरा होता था और वे सबको सदा-सर्वदा राष्ट्रभक्ति से प्रेरित करते रहते थे। वे एक अथक, नि:स्वार्थ, प्रेमल, मधुरभाषी और मेगनेटिक व्यक्ति थे। शास्त्री जी पंजाब के "चरिक" नामक छोटे से गाँव से



1922 में जन्में थे और सत्रह साल की बाल आयु में कर्मठ संघ प्रचारक बन गए। 1946 में उन्होंने नैरोबी अफ्रीका आकर आर्य समाज स्कूल में संस्कृत के शिक्षक का पद स्वीकार कर लिया और वहाँ से गंभीर रूप में संघ प्रचार आरंभ कर दिया। सन् 1980 में कनाडा आकर वे टोरंटो के बिकफोर्ट हाईस्कूल में हिंदी के शिक्षक बन गए और इसके साथ-साथ उन्होंने घर से ही ओंटेरिओ स्कूल नामक एक गैर सरकारी संस्था चला कर हिंदी और संस्कृत पढ़ाने का काम आरंभ कर दिया। उनके छात्रों में पैसा देकर हिंदी-संस्कृत

सीखने वाले बहुतप्राय गुयाना–ट्रिनीडाड के वेस्ट इंडीज के सांस्कृतिक ज्ञान पिपासु विद्यार्थी होते थे। और कई विद्यार्थी कनेडियन गोरे लोग भी होते थे। भारतीय हिंदी भाषी आप्रवासी या उनके बच्चे हिंदी के विद्यार्थी बहुत कम होते थे। आप्रवासी भारतीयों पर वेस्टर्न कल्चर का आकर्षण हावी होता है, हिंदी या संस्कृत के विकास से उन्हें अतीव कम मतलब होता है।

शास्त्री जी के हिंदी प्रशिक्षण और तपस्वी जीवन की यात्रा का संपूर्ण ब्यौरा मुंबई के डॉ. रतन शारदा जी ने Memoirs of A Global Hindu नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है, जिसका प्राक्कथन नागपुर के डॉ. शंकरराव तत्ववादी जी ने लिखा है। हिंदू इंस्टीट्यूट की स्थापना के साथ इंस्टीट्यूट की अपनी भव्य इमारत बने यह शास्त्री जी का दूरदर्शी सपना था। यह काम शास्त्री जी बिना किसी सरकारी दान के केवल भारतीय समाज के आर्थिक बलबूते पर ही करना चाहते थे। इस हार्दिक प्रकल्प के लिए शास्त्री जी प्रति वर्ष भव्य वार्षिक फंड रेजिंग डिनर एंड कल्चरल प्रोग्राम रखते थे। इस कार्यक्रम में टोरंटो की सभी हिंदी प्रचारक संस्थाएँ, विद्वज्जन, दानी लोग और मंदिरों के कर्मचारी आमंत्रित होते थे। मंच पर सभी वक्ता गण हिंदी और संस्कृत प्रशिक्षण का आह्वान करके छात्रों को दाखिला लेने के लिए प्रेरित करते थे। वक्तव्य से प्रोत्साहित अतिथि लोग खुले दिल से दान प्रदान करते रहे हैं और प्रतिवर्ष दस से बारह हजार डालर का चंदा जोड़ देते थे। शुद्ध शाकाहारी सहभोजन और हिंदी गीतों के साथ मनोरंजन विशेष तौर पर नियोजित होता था। इतनी महान सफलता हिंदी राइटर्स गिल्ड के सिवा अन्य किसी संस्था को प्राप्त नहीं होती थी। इस साफल्य के पीछे टोरंटो महानगर के लोगों का शास्त्री जी के प्रति दृढ़ स्नेह और उनकी नि:स्वार्थ सेवा पर अटूट विश्वास होता था जो शास्त्री जी ने आखरी साँस तक कायम रखा था।

शास्त्री जी का हिंदी और भारतीय–संस्कृति के प्रचार–प्रसार में पूर्णतया समर्पित जीवन देख कर ओंटेरिओ सरकार ने उन्हें वेदिक कल्चरल सेंटर, लक्ष्मीनारायण मंदिर, हिंदुसभा मंदिर, विश्वहिंदू परिषद्, ब्रह्मसमाज, ओंटेरिओ सरकार आदि की ओर से सम्मान प्राप्त थे। उनके ध्येय एवं उनकी संस्था के प्रति हमारी लिखी हुई विद्या मंदिर प्रार्थना:

हिंदु विद्या मंदिर की प्रार्थना
श्लोक छंद
शारदा च योगेशश्च दद्यातां न: शुभाशिषौ।
सिद्धिं गच्छेत् द्रुतं याभ्यां हिंदु विद्या निकेतनम् ॥1

समायान्तु नवाश्छात्रा: शिक्षकाश्च गुणान्विता:।
श्रेष्ठा: सुकार्यकर्तारो विद्यासंस्थानवर्धका:॥ 2

कर्तार: संघटेयुश्च सज्जना: संघबांधवा:।
सर्वजनप्रयासेन सम्भवेज्ज्ञानमन्दिरम् ॥ 3

वित्तकोशे भवेत् वृद्धिः उत्कर्षश्च सुशिक्षणे।
धर्मस्य स्वाभिमानस्य संस्कृतेश्च सुरक्षणे॥ 4

उदारा दानवीराश्च सुहृदो ज्ञानप्रेमिणः।
सर्वे चलंतु सम्मिल्य स्नेहिनः शुद्धबुद्धयः॥ 5

हिंदू इंस्टीट्यूट के विशाल निष्ठावान सेवक संघ में जिन कर्मवीरों ने तन-मन-धन से हिंदी और भारत की सेवा हेतु अपना बहुत समय और योगदान प्रदान किया उनका नाम निर्देशन करना यहाँ अति आवश्यक कर्तव्य है। वे नाम है: सर्वश्री चंद्र खन्ना, राजकुमार शर्मा, गौरी शंकर रोहतगी, जेफ लाल, आशा महाराज, मोहन सूकदेव, यश कपूर, महेंद्र गुप्ता, रमेश कुमार अगरवाल, रमण वासुदेव, राकेश शर्मा, डेविड करनाहन, डेविड हंसबर्ग, विजय पंडया, बॉब बकी, स्निजीना सोनीना, जयराम तिवारी, जॉन मक्लाउड, बिहारी सिंग, पॉल स्याल, दीना नौबत, अरविंद नराले, वसंथा जगनाथन, कमलेश शारदा, शंभु बंसल, अमर एरी, शैलजा सक्सेना, विजय विक्रांत, भारतेंदु श्रीवास्तव, शिवराम त्रिचूर, गुरुदेव सिंग मान, कैलास चंद्र भटनागर, कुलदीप सिंग भंडारी, रणवीर डोगरा, नवीन मेहता, केसो महाराज, जो सेफ स्कूल्ज, इत्यादि।

कै, श्री शास्त्री जी के सैंकडों हिंदी छात्र और हम सभी हिंदी प्रेमी लोग उनकी पुण्य स्मृति को सदैव याद करते हैं और करते रहेंगे। उनकी हिंदी की सेवा अमर रहे। नमो नमः।

संदर्भः

1. विश्व हिंदी पत्रिका 2019, डॉ. रत्नाकर नराले, ज़, 107-111
2. http://www.vishwahindi.com/hi/vhs/downloads/VHP2020.php pp.114
3. http://www.amazon.com/Sangit-Shri-Krishnayan-1-Sangit-Shri-Krishna-Ramayan-Hindi-Sanskrit-English-Hindi/dp/1897416822/ref=sr_1_20?crid=11M0TBE4HNIKX-keywords=ratnakar+narale&qid=1660157150&sprefix=Ratnakar+%2Caps%2C159&sr=8-20 pp. iv
4. http://www.indoamerican-news.com/a-tribute-to-jagdish-chandra-sharda/
5. ISBN 978-81-906434-0-5, Hinduhttp://www.vakmumbai.org/memories-of-a-global-hindu.pdf. Published by Vishwa Adhyayan Kendra, Mumbai & Vishwa Niketan, New Delhi

❑❑

हिंदी का व्यापक होता क्षितिज

—आलोक गुप्त

बीसवीं सदी के अंत में हिंदी प्रेमियों के लिए गर्व करने का समाचार प्रकाशित हुआ था। प्रो. सैम्युअल हटिंग्टन के अनुसार विश्व में सही अंग्रेजी प्रयोक्ताओं की संख्या घट रही है। सन् 1958 में वे 9.8 प्रतिशत थे। सन् 1997 में घटकर 7.6 प्रतिशत रह गए हैं। दूसरी ओर, यूनेस्को ने हिंदी को विश्व की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता दी। हिंदी के कई समर्पित और 'भावनाशील' विद्वान हिंदी को विश्व की प्रथम भाषा मानते हैं, जिसके बोलने – समझने वालों की संख्या 1 अरब से अधिक हो गई है। यह तथ्य हिंदी प्रेमियों के उत्साह को बढ़ाने वाले हैं।

एक भाषा का सर्वमान्य गुण उसके बोलने- समझने वालों के विचारों-भावों को व्यक्त करना होता है। उसकी अभिव्यंजना शक्ति एवं शब्द संपदा उसकी क्षमता के मापदंड होते हैं। इस दृष्टि से कोई भी भाषा अविकसित नहीं मानी जा सकती। जहाँ तक हिंदी भाषा का संबंध है, उसके बारे में प्रसिद्ध भाषाशास्त्री जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि 'देशज शब्दों का एक विशाल भंडार उसके पास है और सूक्ष्म विचारों (एब्स्ट्रेक्ट टर्म्स) को व्यक्त करने के लिए पूर्ण सूक्ष्म तंत्र है।' ग्रियर्सन का उदाहरण इसलिए दिया है जिससे पूर्वग्रह न लगे; वैसे डॉ. धीरेंद्र वर्मा और पं. किशोरीदास वाजपेयी जैसे भाषाशास्त्रियों के कथन प्रमाणित करते हैं कि हिंदी की क्षमता किसी भी विकसित भाषा से कम नहीं है।

एक विकसित भाषा होते हुए भी हिंदी का राजभाषा बनने पर विरोध हुआ। कुछ-कुछ इस तरह कि, 'वो बात सारे फसाने में जिसका जिक्र न था, वो बात बहुत नागवार गुजरी है।' हिंदी को ज्ञान- विज्ञान की भाषा न मानने के पीछे तर्क दिया जाता है कि उसमें पारिभाषिक शब्दावली नहीं है। यह आरोप भी एक विशेष दृष्टि से परिचालित है। भाषा का सामान्य विद्यार्थी भी जानता है कि विभिन्न क्षेत्रों की पारिभाषिक शब्दावली उस क्षेत्र के कार्य करने वालों के लिए बनाई जाती है, इसे विशेषज्ञ बनाते हैं। विभिन्न क्षेत्रों की शब्दावली भिन्न-भिन्न होती है। एक क्षेत्र का प्रयोक्ता दूसरे क्षेत्र का विशेषज्ञ हो, यह अनिवार्य नहीं होता। डॉ. रघुवीर ने 'पारिभाषिक शब्दावली और अभिव्यक्ति

कोश' भारत के विभिन्न विषयों के 70 शीर्षस्थ विद्वानों के सहयोग से तैयार किया था। प्रो, दिलीप सिंह ने सही लिखा है: "डॉ. रघुवीर ने हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का ऐसा सुदृढ़ आधार प्रदान किया कि आज हिंदी भाषा गौरवपूर्ण ढंग से ज्ञान के विस्तृत क्षेत्र में खड़ी हो सकी है। उन्होंने ज्ञान के विस्तृत होते समस्त क्षेत्रों को समेटकर यह धरोहर आने वाली पीढ़ी को सौंपी है। हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण में इस कोश का अपना महत्व है। यह कोश आकार की दृष्टि से पूरे एशिया में सबसे बड़ा है और इसकी उपादेयता असंदिग्ध है।" (हिंदी भाषा चिंतन, पृष्ठ 14) भारत सरकार का वैज्ञानिक और तकनीकी आयोग इस क्षेत्र में निरंतर सक्रिय है। उसके द्वारा हिंदी की तकनीकी शब्दावली के परिमार्जन का कार्य हो रहा है।

स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रप्रेम की वाहक हिंदी—कंपनी सरकार और ब्रिटिश शासन में मिशनरियों एवं थॉमस बैविंगटन मैकाले के प्रयासों से प्रशासन और शिक्षा माध्यम में 17 मार्च 1835 से अंग्रेजी प्रस्तावित हुई। इस कार्यप्रणाली से सभी विद्वान परिचित हैं। लेकिन भारत के बहुभाषा-भाषी समाज ने अपनी भाषा की उन्नति के माध्यम से भारतीय स्वाभिमान को जगाने में पहल की। भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' काव्य, भारतीय समाज के स्वाभिमान को जगाने का प्रस्थान है। यह व्यापक रूप में सभी भारतीय भाषाओं के लिए कहा गया था। धीरे-धीरे हिंदी भारतीय राष्ट्रीय चेतना का वाहक बनी। इसे हिंदीतर क्षेत्र के विद्वान और राजनेताओं का समर्थन मिला। बांग्ला के केशवचंद्र सेन और गुजरात के नवलराम ने हिंदी का समर्थन किया था। संस्कृत के विद्वान स्वामी दयानंद ने केशवचंद्र सेन के सुझाव से 'सत्यार्थप्रकाश' हिंदी में लिखा। बीसवीं सदी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी- हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया और तर्क दिया कि 'राष्ट्र सेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो।' उन्होंने स्पष्ट कहा और लिखा भी कि सारे राष्ट्र के लिए जो भाषा होगी, वह हिंदुस्तानी ही हो सकती है: "हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सोचती है और उसे धारण करती है। देश का कोई सच्चा प्रेमी हिंदी का तिरस्कार नहीं कर सकता। दुनिया से कह दो, गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।" गांधी जी के आग्रह के कारण हिंदी राष्ट्रीय चेतना की वाहक बनी और हिंदीतर प्रदेश के विद्वानों का भी समर्थन मिला। सुभाषचंद्र बोस ने कहा, 'हिंदी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चलकर हिंदी से लिया जाए। अपनी माता से अधिक प्यारी मातृभाषा को तो हम कदापि नहीं छोड़ सकते। लेकिन भारत में भिन्न-भिन्न प्रांतों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी को तो हमको सीखना ही चाहिए।'

हिंदी का विकास—हिंदी, स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रप्रेम की वाहक बनी। भाषाई दीवारों के बीच खिड़कियाँ बन गई। क्या यह सिर्फ राजनीतिक कारणों से हुआ या इसमें हिंदी की प्रकृति और भाषा का विशेषताओं का भी योगदान है? इसके लिए हिंदी के विकास पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा। 'विभिन्न भारतीय राजाओं और राज दरबारों में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग

11वीं 12वीं शताब्दी से ही प्रारंभ हो चुका था। फारसी-उर्दू के प्रयोग का युग तो बहुत बाद में आया था। फारसी-उर्दू के प्रयोग के बावजूद राजपूत राजाओं द्वारा हिंदी अथवा उसके किसी न किसी रूप का प्रशासनिक कार्यों में प्रयोग फिर भी होता रहा है।' (आमुख, (बाल गोविंद मिश्र) रामबाबू शर्मा, 12 वीं सदी से राज काज मे हिंदी) श्री रामबाबू शर्मा ने अपने ग्रंथ '12 वीं सदी से राजकाज में हिंदी' में राष्ट्रीय अभिलेखागार की फाइल से राजपूत कालीन दो पत्र उद्धृत किए हैं' जिनमें राजस्थानी और ब्रजभाषा से सामीप्य दिखाई देता है। उन्होंने लिखा है: "पृथ्वीराज और समर सिंह के पत्र उस समय की प्रशासनिक हिंदी के उदाहरण है। राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त दस्तावेजों में तत्कालीन राजाओं की भाषा संबंधी नीति का पता लगता है। राजपूतकालीन हिंदी सामग्री इस बात की द्योतक है कि राजपूतों के शासन् में हिंदी भाषा का राजकाज में प्रयोग आरंभ हो गया था और उस समय का शासन अपनी नाना प्रकार की अभिव्यक्ति या हिंदी भाषा के माध्यम से ही करता था।" (पृष्ठ 40) श्री बाबूराम शर्मा ने मुसलमानों के राजकाज में हिंदी के प्रयोग का विस्तृत परिचय दिया है। मोहम्मद गौरी शहाबुद्दीन और बाद में अलाउद्दीन खिलजी ने राजकाज में हिंदी का समुचित आदर किया। दिल्ली में तुगलक वंश का शासन होने और जर्जर प्रशासनिक और राजनीतिक अवस्था होने पर मोहम्मद तुगलक अपनी राजधानी दिल्ली से उठाकर 1327 में देवगिरी ले गया। इस कारण दिल्ली के सैनिक श्रेष्ठियों और सामंतों द्वारा हिंदी दक्षिण में पहुँची, जो दक्खिनी के रूप में प्रसिद्ध हुई। मुगलों के भारत में आगमन और प्रशासन में भी हिंदी को स्थान मिला था। बाबूराम शर्मा ने अकबर के प्रशासन में हिंदी भाषा के लिखित दस्तावेज अमलदस्तूर (बीकानेर अभिलेखागार में 14 भाग सुरक्षित) का उल्लेख किया है, जो सम्राट अकबर द्वारा अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों को दिए गए आदेश हैं। इनके अनुसार चलने से प्रजा और प्रशासन को सुख और शांति प्राप्त होती थी। (पृष्ठ 48) शर्मा जी ने 17वीं सदी के सरकारी हिंदी पत्रों (खतूत अहलकारान के उदाहरण देकर उनमें नाना प्रकार के हिंदी वाक्य, उपवाक्य, मुहावरे, वाक्यांश शब्दों को रेखांकित किया है। ये ऐसे विषय और वाक्य हैं जो हमें हिंदी के माध्यम से राजकाज चलाने में केवल सहायक ही नहीं, अपितु प्रशासन और उसकी राजभाषा को जनता के अधिक निकट लाने में समर्थ होंगे। सैकड़ों वर्ष पूर्व इसी सरल हिंदी में काम-काज चलता था और इस हिंदी में आज भी वह जीवन शक्ति है, जो प्रशासन और प्रशासक की भाषा और जनता में सामंजस्य स्थापित कर सकती है। (वही, पृष्ठ 96)।

यह तथ्य संकेत देते हैं कि राजपूत राजाओं और हिंदी दिल्ली सल्तनत ने हिंदी का प्रयोग प्रशासन को सरल-सुगम बनाने के लिए किया। परंतु 19वीं सदी के अंत में हिंदी-उर्दू विवाद को अकारण हवा दी गई। इसके कारणों पर यहाँ विचार करना औचित्यपूर्ण नहीं है। श्री पद्म सिंह शर्मा ने अपने ग्रंथ 'हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी' में इस पर पर्याप्त विचार किया है। क्रिया प्रतिक्रिया चलती रही। उर्दू लेखकों ने 'वीरता के उल्लेख में रुस्तम, पक्षियों में बुलबुल, पुष्पों में नरगिस ... पहाड़ों में तूर, प्रेमियों में कैस और फरहाद' का उल्लेख किया और यहाँ के 'भीम और अर्जुन, कोयल और मोर, गंगा और जमुना, हिमालय विंध्याचल, कर्ण और विक्रम आदि का भूल कर भी वर्णन नहीं किया।' तो

'विशुद्ध हिंदी के पक्षपातियों ने भाषा में व्यवहृत अनेक सरल और सुबोध प्रचलित फारसी तद्भव और तत्सम शब्दों को भी, जिन्होंने हिंदी का चोला धारण कर लिया था, अछूत समझकर हिंदी के मंदिर से निकाल बाहर किया और उनके स्थान पर संस्कृत के भारी-भारी पंडिताऊ शब्दों को बिठा दिया।' (वही, पृष्ठ 45) यह अलग बात है कि तत्कालीन स्थित-परिस्थितियों से उत्पन्न विवाद के बीच समन्वय के कम प्रयत्न नहीं हुए, लेकिन यह भी सच है कि हिंदी की प्रगति निरंतर से होती रही।

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री पंडित किशोरीदास बाजपेयी की हिंदी की उत्पत्ति और विकास की प्रस्थापनाएँ भिन्न हैं। यह अलग बात है कि उनको हिंदी के परवर्ती भाषा शास्त्रियों ने अपनाया नहीं, तो उनकी स्थापनाओं का विरोध भी नहीं किया। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिंदी शब्दानुशासन' की भूमिका में उन्होंने पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी को उत्तर देते हुए लिखा है कि 'जिस प्राकृत से हिंदी राष्ट्रभाषा मूल खड़ी बोली का विकास है, वह आँखों के सामने है ही नहीं। उसमें साहित्य बना नहीं और बना तो लुप्त हो गया। साहित्य में जो प्राकृत प्राप्त है, उससे हिंदी राष्ट्रभाषा का गठन मेल नहीं खाता।' (पृष्ठ 3) उन्होंने आगे लिखा, 'खड़ी बोली नाम भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी खरा उतरता है। 'मीठा', 'खाता' 'आता' आदि में जो खड़ी पाई आप देखते हैं, वह हिंदी के अतिरिक्त इसकी किसी भी दूसरी बोली में न मिलेगी। ब्रज में मीठो, अवधी में मीठ चलता है- मीठो जल, मीठ पानी। इस तरह जात है, खात है आदि रूप होते हैं।' (पृष्ठ 15) हिंदी के भाषिक गठन एवं व्याकरणगत विशेषता के कारण हिंदी को गांधीजी ने राष्ट्रभाषा के पद के रूप में प्रस्तावित करना चाहा और स्वतंत्रता के बाद इसे राजभाषा के पद पर आसीन किया गया। भाषाबार प्रांत रचना एवं भाषाई राजनीति के चलते राजभाषा के रूप में हिंदी पर्याप्त स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकी। संघ के कामकाज की भाषा, संपर्क भाषा बनते ही हिंदी का विरोध होने लगा और उसे जबरदस्ती थोपने के आरोप लगने लगे। राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होते ही, हिंदी के विकास और प्रचार का दायित्व सरकार पर डाल दिया गया और धीरे-धीरे स्वाधीनता आंदोलन के समय का समर्पण भाव एवं प्रेम कम होता गया। क्षेत्रीय भाषा समूहों के विरोध का कारण यह आशंका भी थी, कि गणतंत्र भारत में सरकारी उच्च पद हिंदी भाषियों की झोली में चले जाएँगे। यह एक बड़ा कारण था जिसे स्पष्ट तो नहीं कहा गया परंतु तुलनात्मक दृष्टि से अविकसित भाषा, पारिभाषिक शब्दावली का न होना आदि आरोपों के द्वारा अंग्रेजी का समर्थन किया गया। विडंबना है कि प्रारंभ में 15 वर्ष अंग्रेजी को भी राजभाषा रखा गया, वे 15 वर्ष अभी तक पूरे नहीं हो पा रहे हैं। 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू हुआ, उसके 13 वर्ष बाद 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ और उसके बाद सन् 1976 में राजभाषा नियम बने। यह स्वतंत्र देश की राजभाषा को लागू करने की प्रक्रिया है जिसके बचाव के सारे तर्क हास्यास्पद होंगे। हाँ, सकारात्मक पक्ष यह अवश्य है कि संसदीय राजभाषा समिति के गठन से राजभाषा के क्षेत्र में सक्रियता अवश्य आई है।

व्यापक होता क्षितिज—राजभाषा हिंदी को 72 वर्ष हो गए हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सर्जनात्मक क्षेत्र में जिस तरह की वृद्धि हुई है, उसको खुले मन से स्वीकार करना चाहिए। हिंदी का

अध्ययन-अध्यापन जिस गति से देश-विदेश के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हो रहा है, क्या किसी अन्य भारतीय भाषा को यह अवसर मिला है? और इस अवसर के कारण हिंदी का प्रचार-प्रसार और विकास हुआ है, उस पर गर्व करने की आवश्यकता है। सरकार को भेजे जाते सुझावों का निरंतर विनियोग किया जाता रहा है। उसे क्रियात्मक रूप देने का दायित्व, उस क्षेत्र के विद्वानों, अधिकारियों और कर्मचारियों का है। मैं जब यह कह रहा हूँ, तो व्यवधानों की उपेक्षा नहीं कर रहा। हिंदी के तीनो रूप-साहित्य की भाषा, जन भाषा और प्रयोजनमूलक भाषा का विकास इस विकासशील देश के लिए और उनके नागरिकों के लिए गौरव की बात है। विविध राजनीतिक दबावों, प्रमादों और भाषाई राजनीति के चलते भी, हिंदी का क्षितिज जिस तरह से विस्तृत हुआ है, उसमें सरकार की नीतियों एवं उसका प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन देना भी महत्वपूर्ण कारण है। जब किसी भाषा को इतना बड़ा कैनवास मिलता है तो उसकी अभिव्यंजना शक्ति सघन होती है और नए नए क्षेत्र सम्मिलित होते जाते हैं। बाजार, पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं सोशल मीडिया में हिंदी को प्राथमिकता मिली है। इंटरनेट, वर्ल्ड वाइड वेब, सर्च इंजन में हिंदी को अपनाने से खुला आकाश प्राप्त हुआ है। यूट्यूब, ई-मेल, ट्विटर पर हिंदी में किया जा रहा आदान-प्रदान किसी आदेश पर निर्भर नहीं रहा। हिंदी से सच्चा प्रेम करने वाले किसी भी व्यक्ति को पर्याप्त अवसर है कि वह अपनी शक्ति-सामर्थ्य से इस क्षेत्र में अपना स्थान बनाए, सिर्फ महिमा मंडन के लिए इसका उपयोग नहीं करे। भाषा-साहित्य के क्षेत्र में स्थान बनाने और प्रसिद्धि प्राप्त करने में बहुत धैर्य की भी आवश्यकता होती है। यह हम पर निर्भर है कि इस अवसर का हम कैसे उपयोग करते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिए कि भाषा के इस विस्तार का अटूट संबंध व्यवहार से होता है। प्रौद्योगिकी की आँधी में अपने से, अपनों से और अपने सह-यात्रियों से संवाद ही इसे केंद्रीयता दिला पाएगा। नई शिक्षा नीति 2020 से आशा बढ़ी है। उसमें प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को प्रस्तावित करते हुए भारतीय सांस्कृतिक विरासत के जतन के लिए शिक्षा के क्षेत्र में गंभीरता से विचार-विमर्श एक सकारात्मक दिशा-निर्देश है।

❑❑

मॉरीशस के प्रेमचंद अभिमन्यु अनत

—कृष्ण कुमार मिश्र

आज प्रवासी हिंदी साहित्य को बहुत बढ़ावा मिल रहा है। प्रवासी हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा और उसके साहित्य को विश्वपटल पर पहचान दिलाने में अपनी अहम भूमिका निभा रहा है। इसका प्रमाण हम हाल में संपन्न दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में प्राप्त कर चुके हैं। हिंदी दिवस 14 सितंबर से ठीक दो दिन पहले यानि 10 सितंबर से प्रारंभ होकर 12 सितंबर को संपन्न हुए इस सम्मेलन में मैंने एक प्रतिभागी के रूप में अपनी उपस्थिती दर्ज कराई और देखा कि वहाँ पर देश-विदेश से आए हुए हिंदी प्रेमियों, साहित्यकारों को भारत सरकार और हिंदी प्रेमी संस्थाओं ने कितने आदर के साथ सम्मानित किया।

मैं अपने इस लेख में प्रवासी लेखक, साहित्यकार, उपन्यास सम्राट तथा मॉरीशस के प्रेमचंद के नाम से पहचान पाने वाले अभिमन्यु अनत के साहित्यिक अवदान की बात कर रहा हूँ। जिस तरह से भारत के हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद सबसे महान उपन्यासकर और कहानीकार ठहरते हैं ठीक उसी प्रकार मॉरीशस में अभिमन्यु अनत का स्थान है। प्रेमचंद ने अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और क्रांतिकारी उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से हिंदी प्रेमियों की ही नहीं, समस्त मानव जाति के उत्थान की बात की है, बिल्कुल वैसी ही कहानियाँ और उपन्यास अनत के यहाँ भी देखे जा सकते हैं। यह एक संयोग है कि अभिमन्यु का जन्म (1937) प्रेमचंद की मृत्यु (1936) के एक साल के भीतर होता है। ऐसा लगता है कि प्रेमचंद परलोक सिधारते समय अपनी लेखनी को जहाँ पर विराम दिए थे अभिमन्यु अनत ने उसी लेखनी से उनके ही विषय और कृतित्व को आगे विस्तारित किया है।

अभिमन्यु अनत बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, लघुकथा लेखक, जीवनीकार, आत्मकथा लेखक, पत्रकार, संपादक, नाटय निर्देशक, चित्रकार और फोटोग्राफर आदि अनेक रूपों में उन्होंने साहित्य और कला की सेवा की है। उन्होंने अपने नाटकों का निर्देशन किया और टीवी के लिए धारावाहिक भी बनाए हैं। वह मुख्यत: कवि और कथाकार हैं, लेकिन नाटक के प्रति भी उनकी रुचि दिखती है। उनका सबसे प्रसिद्ध और ख्यातिलब्ध

तीन खंडों में प्रकाशित महाकाव्यात्मक उपन्यास 'लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे' एवं 'और पसीना बहता रहा' है। 'लाल पसीना' का फ्रेंच में अनुवाद हुआ। जिसकी वजह से वे शेष विश्व में भी प्रसिद्ध हो गए। इस उपन्यास में मॉरीशस गए भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की दासता, दमन और शोषण के यथार्थ को लेखक ने जीवंतता प्रदान की है। भारतवंशी मजदूर इस शोषण के बावजूद अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति एवं अस्मिता को बचाकर रखने में सफल हुए। अभिमन्यु मुख्यतः प्रश्न और विद्रोह के लेखक हैं। वह दासता से मुक्ति और मॉरीशसीय अस्मिता के रचनाकार हैं। अभिमन्यु अनत का उपन्यास 'लाल पसीना' जब 'सारिका' पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ तो हिंदी पाठकों को मॉरीशस के भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की त्रासदी, दमन और शोषण के गूंगे इतिहास की जानकारी हुई और अभिमन्यु हिंदी के प्रवासी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गए। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि अनत के माध्यम से लोग मॉरीशस को जानने लगे। इसके फ्रेंच अनुवाद के जरिए शेष विश्व के साहित्य प्रेमी मॉरीशस के भारतवंशियों पर हुए अत्याचारों की गाथा पढ़ रहे हैं।'

अनत का सबसे ज्यादा चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास 'लाल पसीना' को लेकर कमल किशोर गोयनका जी ने उनसे लंबी बातचीत की, जिसमें उन्होंने जो कहा, उसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है, "गोयनका जी, सदहन की रातों में जब हम अंगीठी के सामने बैठे माँ-बाप से बेलवंती रानी, शीत वसंत राजकुमार सबुर की कहानियाँ सुना करते थे तो साथ-साथ दादा-दादी और नाना-नानी की संघर्ष कथाएँ भी हमें सुनाई जाती थीं। मुझे संघर्ष कथाएँ परियों की कहानियों से भी अधिक प्रभावित करती थीं। जब खेतों में पत्थरों की मेड़ों को देखता तो जमीन से निकला एक-एक पत्थर मुझे सौ साल पहले की कहानी सुनाने लगता। खेतों की वह गहरी हरियाली मुझे बरसात के पानी की सिंचाई का फल लगकर गन्नों की जड़ों में प्रवाहित हो रहा दादा-दादी और नाना-नानी का खून-पसीना लगता, जो आज भी अपनी तरलता के साथ प्रवाहित हो रहा है। जब मैं खेतों से जुड़ा तो वहाँ के मजदूरों की स्थितियों को झेलकर इतिहास की यातनाओं को महसूस करता रहा। उन्हीं दिनों मेरे भीतर 'लाल पसीना' लिखने की छटपटाहट शुरू हुई। मेरे भीतर सवाल पैदा होते रहे कि अपनी अस्मिता से इस तरह कटते जा रहे लोग क्या अपनी पहचान को बना रखने के ऐतिहासिक दारुण दंड को भूल गए? प्रलोभन में आकर डेढ़ सौ साल की संस्कृति को नीलाम कर देने का अधिकार हमें कहाँ से मिला? मेरे लिए वह श्रम और संघर्ष की संस्कृति है, जिसे मैं युवा पीढ़ी के सामने रखना चाहता हूँ ताकि इतिहास की उस शारीरिक गुलामी से बदतर मानसिक गुलामी को नई पीढ़ी स्वीकार करने से इनकार कर दे। यही सोचकर मैं 'लाल पसीना' लिखने बैठ या था।"

'लाल पसीना' (1977) उपन्यास का दूसरा खंड या उसी का विस्तार है 'गांधी जी बोले थे' (1984)। 'गांधीजी बोले थे। प्रवासी भारतीयों की दास्ताँ' इस उपन्यास में अनत प्रवासी भारतीयों में संतोष की भावना को प्रतिष्ठित करते हुए दिखाई देते हैं- "तुम लोग हड़बड़ाकर कुछ करना चाहते हो- ऐसा करने से कुछ भी हासिल नहीं होगा। तुम देखो, आज स्थिति बदलने लगी है- अब धीरे-धीरे कुछ

इलाकों में मजदूरों की अपनी भी जमीन-जायदाद होने लगी है। तुम्हारी भी होगी। पिछले दिनों तो कुछ भारतीयों ने एक-दो छोटी कोठियाँ भी खरीद ली हैं।" (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली) इस उपन्यास में अनत ने गांधीवादी विचारधारा का अनुसरण किया है और सत्य, अहिंसा तथा संतोष पर बल दिया है। उपन्यास का तीसरा भाग 'पसीना बहता रहा' (1993) है।

आगे चलकर उनकी कहानियों की तरफ निगाह डालते हैं। जिस प्रकार से भारतीय समाज में शादी पक्की करते समय विश्वास कच्चा कर दिया जाता है झूठी शानो-शौकत की दुहाई दी जाती है ठीक उसी प्रकार अनत की एक कहानी 'अब कल आएगा यमराज' (hindisamay.com) में एक प्रसंग को देखा जा सकता है, जिसमें कहानी की मुख्य पात्र रंजीता को शादी के समय अपने ससुर और सास के द्वारा अपने बेटे की डींग हाँकते हुए देखा जा सकता है- "चेहरे पर एकदम वही बनावटी मुसकान थी, जिस मुसकान के साथ उस पहले दिन उसने रंजीता के परिवार से कहा था, 'मेरे बेटे ने शराब की बात तो दूर, जीवन में कभी सिगरेट तक नहीं पी है।' रंजीता को हँसी आ गई, पर वह मुसकराकर रह गई। उसने अपनी नजर को अपनी सास की छवि पर फिसल जाने दिया। उसे अपनी सास की बात याद आ गई जो उसने उस पहले अवसर पर रंजीता की माँ से कही थी, 'हमर लयकवात रूपिया-पइसा के बीच में काम करेला, बहिन। तोहर बेटी रानी बनके हमार घर में रही।' इस अंश में अभिमन्यु की भोजपुरी भाषा की झलक भी मिलती है।

अनत की एक और कहानी 'जहर और दवा' (hindisamay.com) की बात करें तो देखते हैं कि भारतीय समाज की तरह वहाँ भी अवैध संबंधों की समस्या स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस बात को हम कहानी के माध्यम से देख सकते हैं- "जब मैंने पिता को यह कहते सुना कि सोफिया हमारे यहाँ आकर घर के कामों को सँभाल लेगी, उस समय मुझे हैरानी तो तनिक भी नहीं हुई, लेकिन मैं उस बात पर काफी देर तक सोचता ही रह गया था। मेरी माँ को अस्पताल में दाखिल हुए आज तीसरा दिन था। उससे दो दिन पहले ही मेरी बहन चचेरी बहनों के साथ समुद्र किनारे बँगले पर सदहन की छुट्टियाँ बिता रही थी। हमारे घर के कामों को संभालने के लिए किसी व्यक्ति की जरूरत थी, इस बात को मैं पिता से अधिक समझता था। शहर में जहाँ हम रहते हैं, नौकरानियों की कमी नहीं हुई। इस प्रश्न को गौर से सोचते हुए मैं यह मान लेने को विवश था कि मेरे पिता को यह गवारा नहीं कि हाथ आया मौका यों ही चला जाए। सोफिया को लेकर हमारे घर में काफी झमेला खड़ा हो चुका था। मेरी माँ के पास बात का कोई प्रमाण नहीं था, फिर भी वह सोफिया को मेरे पिता की रखैल मानती थी। नौबत यहाँ तक आ गई थी कि मेरी माँ ने गठरी संभालते हुए पिता से कहा था कि दो में से एक यहाँ रहेगी। अगर वह रहती है तो सोफिया वाले नाटक की समाप्ति हो जानी चाहिए और अगर सोफिया वाला यह खेल खतम नहीं होता, तो वह इस घर में पल भर के लिए रहना पसंद नहीं करेगी।" (hindisamay.com)

अभिमन्यु अनत का कथासहित्य के साथ-साथ काव्य जगत पर भी समान अधिकार है, यही वह स्थान है जहाँ पर वे प्रेमचंद से दो कदम आगे दिखते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में समकालीन चुनौतियों को जगह दी है, उनकी कविताएँ बोझिल नहीं करती हैं अपितु एक अलग तरह के अनुभव से साक्षात्कार करवाती हैं। 'आधुनिक उपलब्धियाँ' कविता में इस बात को वे स्पष्ट कर देते हैं—

खुदा भाग रहा छुपाने को सर
इस शहर से उस शहर
आतंकवादी पीछे-पीछे नगर-नगर
विमान अपहरण कर
विस्फोट कर डगर-डगर
नारे लगाते फिर रहे
अब हम दम लेंगे
खुदा की भी सत्ता पलट कर। (hindisamay.com)

इस कविता में वे खुदा को भी नहीं बख्शते हैं क्योंकि आज आतंक नामक एक ऐसा चेहरा हमारे समाज के सामने है, जो मानव जाति को आक्रांत कर रहा है। इसको नियंत्रित करने में मानव क्षमता अक्षम साबित हो रही है।

अभिमन्यु अनत की कई कृतियाँ भारतीय जीवन की परिस्थितियों जैसी हैं। मॉरीशस के समाज में पतन एवं विकृति की जैसी स्थितियाँ हैं, वैसी ही भारत में भी हैं। अनत कहते भी हैं कि मॉरीशस उनकी जन्म और कर्मभूमि हैं और भारत उनकी सांस्कृतिक भूमि है। उनके साहित्य में कहीं न कहीं भारत विद्यमान रहता है। इसीलिए उनको मॉरीशस का प्रेमचंद कहा जाता है क्योंकि इन दोनों सर्जकों के सरोकारों में काफी समानता है। हिंदी के प्रवासी साहित्य में वे सबसे अधिक लोकप्रिय एवं प्रतिभा संपन्न हैं। उन्होंने हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित किया तथा भारत-मॉरीशस की निकटता और मैत्री का मार्ग प्रशस्त किया है। मॉरीशस के हिंदी साहित्य की इस 90-95 वर्ष की यात्रा में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की लंबी परंपरा के साथ साहित्य की विभिन्न विधाओं में हमें पाँच सौ से अधिक ग्रंथ मिलते हैं। सबसे रोचक बात यह है कि मॉरीशस एक द्वीप है, जो दिल्ली के बराबर है, जिसकी जनसंख्या 12-13 लाख है और इसमें 54 प्रतिशत भारतवंशी हैं, अर्थात लगभग सात लाख भारतवंशियों की जनसंख्या की जो उपलब्धियाँ हैं वो निश्चय ही कम नहीं हैं। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में मॉरीशस में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण व्यवस्था के विस्तार में मणिलाल डॉक्टर, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा के साथ अनेक साधु संतों एवं हिंदी प्रेमियों का महत्वपूर्ण योगदान है।

शांत और सौम्य व्यक्तित्व के धनी अभिमन्यु अनत मॉरीशस ही नहीं, वरन पूरे हिंदी जगत के शिरोमणि हैं। मॉरीशस में उनकी छवि विद्रोही लेखक के रूप में होती है। उनकी लेखनी में सदैव

आमजन की भावना मुखरित होती है। पद का लालच उन्हें कभी बांध नहीं पाया। अपनी लेखनी को सशक्त बनाने के लिए कई बार उन्होंने पद को भी ठोकर मार दी। उनके घर के पास स्थित समुद्र का शांत स्वरूप उनके व्यक्तित्व में स्पष्ट दिखता है। मॉरीशस में हिंदी साहित्य और अभिमन्यु एक-दूसरे के पूरक हैं। उनके अतुल्य लेखन को आज किसी भी भारतीय साहित्यकार के साथ तुलनात्मक अध्ययन या स्वतंत्र रूप से शोध का प्रारूप दिया जा सकता है। उनकी लेखनी में सदैव मॉरीशस के आमजन की परेशानियों को उकेरा जाता रहा है। उन्हें कभी भी सत्ता का भय आक्रांत नहीं कर पाया। उन्होंने कई बार अपनी लेखनी के माध्यम से सत्ता को चुनौती प्रदान की। भारत में हिंदी साहित्यकार के रूप में उनकी योग्यता को पूरी प्रतिष्ठा नहीं मिलने का मुख्य कारण भारतीय हिंदी साहित्यकारों की उदासीनता है। साहित्यकारों द्वारा अक्सर प्रवासी लेखकों से परहेज किया जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि हिंदी साहित्य में अभिमन्यु अनत की लेखनी अतुल्य है। भारत की सांस्कृतिक संपन्नता मॉरीशस की तुलना में अधिक है। अत: भारत में प्रतिष्ठा का अपना एक अलग महत्व है। भारत के हिंदी साहित्यकारों में प्रवासी लेखकों को प्रोत्साहन देने का अभाव है।

हिंदी साहित्यकारों की बात अभिमन्यु अनत (मॉरीशस) के बिना अधूरी है। अभिमंयु अनत मॉरीशस के हिंदी साहित्य का पर्याय बन चुके हैं। अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित श्री अनत के पाठकों की संख्या भारत में भी कम नहीं है। उनके योगदान को ध्यान में रखकर साहित्य अकादेमी ने अभी हाल ही में अभिमन्यु अनत को अकादमी की महत्तर सदस्यता प्रदान की है। पूरे भारत की प्रमुख हिंदी संस्थाओं ने हिंदी में उनके योगदान के लिए पुरष्कृत और सम्मानित किया है। कुछ प्रमुख सम्मान और पुरष्कारों की सूची निम्न है–

1. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत,
2. लखनऊ तथा दिल्ली हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत,
3. राजीव गांधी स्मृति परिषद द्वारा पुरस्कृत,
4. के. के बिरला फाउंडेशन द्वारा पुरस्कृत,
5. केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा द्वारा पुरस्कृत,
6. इलाहाबाद साहित्य संस्थान की ओर से जार्ज ग्रीयर्सन पुरष्कार,

साथ ही साथ आपको अनेक अन्य पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है जैसे 'साहित्य अकादमी', 'भूषण सम्मान', 'कुंभ साहित्य सम्मान', 'सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार', 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान', 'यशपाल पुरस्कार', 'जनसंस्कृतिसम्मान' इत्यादि।

निष्कर्ष–इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारत का साहित्य मॉरीशस में और मॉरीशस का साहित्य भारत में व्यापक स्तर पर सराहा और पढ़ा जाता है। दोनों देशों के मध्य साहित्यिक कृतियों का अनुवाद भी होता रहता है। इसके अलावा दोनों ही देशों के साहित्यकारों की सहभागिता में साहित्यिक

कार्यक्रम भी होते रहते हैं। भारत में साहित्यिक माफियाओं के कारण साहित्य की निर्बाध गति बाधित मानते हुए अभिमन्यु का मानना है कि अगर हिंदी साहित्य में आज तक किसी को नोबल प्राइज नहीं मिला तो इसके लिए ये साहित्यिक माफिया ही जिम्मेदार हैं। एक वर्ग दूसरे वर्ग का लेखन पसंद नही करता तो अच्छी कृति भी पाठकों तक नही पहुँचने दी जाती। मॉरीशस में नवोदित लेखकों के प्रोत्साहन से संतुष्ट अनत भारत में इसका पूर्णयता अभाव देखते हैं। विद्रोही लेखक की छवि धारण कर उन्होंने सदैव हिंदी के प्रचार-प्रसार की बात की। भारत में अपनी ही भाषा के प्रति लोगों में हीनभावना को देखकर आहत अनत का मानना है कि विश्व में ऐसा कोई भी देश नहीं जहाँ अपनी ही भाषा को हिकारत की नजर से देखा जाता है।

संदर्भः

1. अनत अभिमन्यु, 2008, लाल पसीना (उपन्यास त्रयी का संयुक्त प्रकाशन), डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
2. जोशी रामशरण, 2014 राय राजीव रंजन, भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, संपा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
3. रामशरण प्रहलाद, मॉरीशस लोक साहित्य और संस्कृति, राजेश प्रकाशन, दिल्ली
4. लीलाधर हीरालाल, मोरिशसीय हिंदी साहित्य, हसास, आत्माराम एंड संस, दिल्ली
5. संधीर संपा- डॉ. अंजना, प्रवासी आवाज़, पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद
6. डॉ. शालिनी, फ़ीजी आप्रवासी भारतीयों का नस्लीय रूपांतरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. जागासिंह डॉ. बीरसेन, मेरी कोठरियाँ, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
8. पुष्पिता, इतिहास, राजकमल कैरेबियाई देशों में हिंदी-शिक्षा और सूरीनाम हिंदी परिषद का प्रकाशन, नई दिल्ली
9. रामदीन सुचीता, संस्कार मंजरी, महात्मा गांधी इंस्टीच्यूत, मोका, मॉरीशस

❑❑

बाज़ार की भाषा और भाषा की बाज़ारीकरण (हिंदी: विकास, विमर्श और प्रतिमानीकरण)

—प्रभाकर सिंह

"सोलहवीं-सत्रहवीं सदियों में उत्तर भारत के बिखरे हुए बाज़ार एक-दूसरे से संबद्ध हुए। यूरोप के व्यापारी अवध का बना हुआ कपड़ा आगरे में खरीदते थे। यूरोपीय यात्रियों के अनुसार यूरोप सदी में आगरे की आबादी छः लाख थी। पेलसोर्ट ने लिखा था कि गुजरात, सिंध, लाहौर, दकन हर तरफ का माल आगरे से गुजरता है, सड़कों पर बेशुमार माल खासकर सूती माल-ढोया जाता है। पटना, बनारस, लखनऊ ये सभी शहर सूती कपड़े के व्यापार केंद्र थे। मुगल शासन के अंतर्गत, आर्थिक और राजनीतिक दोनों रूपों में वे परस्पर संबद्ध थे। इन बड़े नगरों में आसपास के देहात से जुलाहों की बड़ी तादाद सिमट आती थी। रोजी-रोटी की तलाश में अलग-अलग बोलियाँ बोलने वाले लोग इन शहरों में इकट्ठा होते थे। इनमें आपस के व्यवहार के लिए किसी सामान्य भाषा की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को पूरा किया व्यापारी वर्ग से संबद्ध 'खड़ी बोली' ने।"[1]

भाषा का विकास साहित्य और संस्कृति से अधिक व्यापार और वाणिज्य से जुड़ा हुआ है। किसी भी समाज में भाषायी विकास की प्रक्रिया अर्थ और व्यापार के विकास के समानान्तर ही विकसित होती है। किसी भी देश में सामंती व्यवस्था की सीमाएँ टूटती हैं, पूँजीवाद का विकास होता है। पूँजीवाद के विकास के साथ वर्णव्यवस्था और सामंती व्यवस्था कमजोर पड़ने लगती है। इस प्रक्रिया में व्यापारी, उत्पादक वर्ग और श्रमिकों की भूमिका अग्रणी होती है। कहना न होगा कि व्यापार और उत्पादन के इस विकास प्रक्रिया में पहले घरेलू और स्थानीय बाज़ार का निर्माण होता है। यों कि यह प्रक्रिया सामंती व्यवस्था में ही चिन्हित की जा सकती है, जहाँ गाँवों, कस्बों और छोटे शहरों में छोटे-छोटे बाज़ार और मेले लगते हैं। ये इन विशेष मेलों के अवसर पर दूर-दराज इलाके के व्यापारी आमजन क्रय-विक्रय करते हैं। छोटे-छोटे इन बाज़ारों को मिलाकर एक बड़े बाज़ार का निर्माण होता है। बाज़ार और व्यापार का यह रूप जैसे-जैसे विकसित होता है, बड़ा होता है वैसे-वैसे इसमें

व्यापारियों, कारीगरों, किसानों और श्रमिकों की भूमिका अग्रणी होती है। इसी प्रक्रिया में जातीय निर्माण की प्रक्रिया भी घटित होती चलती है। व्यापार के इस प्रसार में जमींदारों और पुरोहितों की भूमिका कमजोर पड़ती है। व्यापारी, किसान और कारीगरों की भूमिका अधिक हो जाती है। हिंदी भाषा के जातीय निर्माण और प्रसार में भी यही प्रक्रिया घटित हुई। अवधी, ब्रज और खड़ी बोली के विकास में यही व्यापार, वाणिज्य और बाज़ार का निर्माण मूल में रहा।

जातीय भाषा के रूप में हिंदी और सहवर्ती जनपदीय बोलियाँ:

"जातीयता का प्रमुख चिह्न है भाषा। जाति के निर्माण से भाषा के गठन और विकास का घनिष्ठ संबंध है। दिल्ली के आस-पास के प्रदेश की भाषा क्यों हमारी जातीय भाषा बन गई? कुछ लोग इसके लिए विशुद्ध भाषागत कारण ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। खड़ी बोली में कुछ ऐसे "गुण" थे जो ब्रज, अवधी आदि में नहीं थे। इसलिए उसने ब्रजभाषा को अपदस्थ कर दिया। इसके विरुद्ध ब्रजभाषा-प्रेमी यह तर्क देते हैं कि ब्रजभाषा के कवि खड़ी बोली में पैदा ही नहीं हुए; खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का हक छीन लिया, यह घोर अनाचार है। जातीय विकास के संदर्भ में इस समस्या को देखने से पता चलेगा कि सामाजिक विकास क्रम में जातीय भाषा के रूप में किसी एक बोली का प्रसार या गठन ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य घटना है। इसी तरह ब्रिटेन, रुस, फ्राँस आदि देशों में वहाँ की जातीय भाषाओं का गठन और प्रसार हुआ। इस प्रक्रिया का आर्थिक आधार व्यापार है। पूँजीवाद का अर्थ उत्पादन की पद्धति विशेष तक सीमित न करना चाहिए। पुरानी दस्तकारी के आधार पर सामन्ती व्यवस्था में बेचने और मुनाफा कमाने के लिए क्रय वस्तुओं का उत्पादन होता है। व्यापार बाज़ार का निर्माण करता है। व्यापार के आधार पर बाज़ार के अंतर्गत जितना भी इलाका आ जाए, वह सभी जातीय प्रदेश बने, यह आवश्यक नहीं। स्वाभाविक क्रिया यह है कि जो लघु जातियाँ भाषा, संस्कृति, इतिहास आदि की दृष्टि से एक-दूसरे के बहुत निकट हैं, वे मिलकर एक महाजाति का निर्माण करें। किंतु इस तरह की लघु जातियाँ कभी-कभी भिन्न होने पर भी किसी प्रबलतर जाति का अंग बना ली जाती हैं। वेल्स और स्काटलैंड के केल्ट निवासी इसी तरह अंग्रेजों के साथ ब्रिटिश जाति का अंग बनाए गए। किंतु रुस में यूक्रेनी जाति ने अखिल रूसी बाज़ार के अंतर्गत रहते हुए भी अपनी जातीयता की रक्षा की। अनेक स्लाव जातियों को जर्मन आक्रमणकारियों ने जर्मन जाति का अंग बना लेने की कोशिश की लेकिन असफल रहे। जातीयता की रक्षा जाति विशेष के प्रतिरोध पर भी निर्भर है। भारत के हिंदी भाषा प्रदेश में अन्य देशों की तरह व्यापार का विकास हुआ। इस प्रदेश का इतिहास सम्मत नाम हिंदुस्तान है, उसकी भाषा 'हिंदी या हिंदुस्तानी' है। हिंदी का आधार दिल्ली और उसके निकटवर्ती प्रदेशों की बोली-खड़ी बोली बनी, क्योंकि दिल्ली राजनीतिक और आर्थिक जीवन का एक प्रमुख केंद्र थी।"[2]

व्यापार और वाणिज्य किसी भी जातीय भाषा के विकास के मुख्य कारक हैं। हिंदी भाषा के विकास में उसके जातीय निर्माण की प्रक्रिया में व्यापार और विनिमय ने अधिक योगदान दिया। दिल्ली

की खड़ी बोली धीरे-धीरे विकसित होते-होते जातीय भाषा के रूप में हिंदी का रूप ग्रहण कर लेती है। इसके पीछे ऐतिहासिक सांस्कृतिक कारणों से अधिक उत्तरदायी है- दिल्ली में व्यापार केंद्र का कायम होना। यों हिंदी प्रदेश में अवध और आगरा का बाज़ार भी कम मजबूत नहीं था। मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा के विकास में भी बाज़ार और व्यापार का विशेष योगदान रहा। धीरे-धीरे व्यापार और वाणिज्य के विकास का केंद्र दिल्ली बना जहाँ से पूरे देश में व्यापार और वाणिज्य होता था। खड़ी बोली व्यापार-विनिमय की भाषा बनी। व्यापार के रथ पर सवार खड़ी बोली का प्रसार आगरा, पटना, बनारस, इलाहाबाद सभी जगह होने लगा। विकास और विस्तार की यह प्रक्रिया एकाएक घटित नहीं हुई, इसमें दीर्घ समय लगा। जातीय भाषा के रूप में हिंदी की विकास यात्रा संश्लिष्ट और दिलचस्प है। व्यापार के साथ ऐतिहासिक और सामाजिक विकास क्रम में पुनर्जागरण की संस्कृति में हिंदी एक महाजाति की भाषा बनी। यह भारत में ही नहीं घटित हुआ अपितु वैश्विक परिदृश्य पर भी भाषा के जातीय गठन की लगभग यही प्रक्रिया रही। जातीय भाषा के गठन में एक केंद्रीय भाषा बनती है। जाहिर है ऐसे में उसकी सहवर्ती बोलियों का तेज कम होता है लेकिन वह समाप्त हो जाती हैं ऐसा नहीं है। 'हिंदी' हमारी जातीय भाषा बनी-यह इतिहास का दबाव भी था तो युगीन परिस्थितियों की माँग भी। जातीय भाषा के इस विकास क्रम में आर्थिक कारणों के साथ ऐतिहासिक-राजनीतिक और साहित्यिक कारणों की पड़ताल जरूरी है। 19वीं शताब्दी के आरंभ से ही ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का रचनात्मक द्वंद्व और सहकार दिखता है। खड़ी बोली के रचनात्मक विकास की यह यात्रा पहले-पहल दिल्ली से नहीं कलकत्ता से आरंभ होती है। आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण का जन्म बंगाल में हुआ। सन् 1800 में फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना और उसमें खड़ी बोली का आरंभिक गद्य लेखन हुआ। यों कि इसके प्रिन्सिपल गिलक्राइस्ट और उस कॉलेज की नीतियाँ औपनिवेशिक मानसिकता को पोषित करती हैं। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि भाषा के विकास में खड़ी बोली ने आरंभिक डग यहीं भरे। साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी के विकास का रूपायन इसी कॉलेज से हुआ। इसके पूर्व 18वीं सदी के अंत में खड़ी बोली- हिंदुस्तानी की पहली रचना 'सुखसागर' है, जिसके रचनाकार मुंशी सदासुखलाल हैं। उनके गद्य में ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मिलते हैं। इसके बाद फोर्टविलियम कॉलेज में हिंदू और मुसलमान दोनों जातियों के लेखकों से उर्दू हिंदी गद्य की पुस्तकें तैयार करवायी गईं। उर्दू गद्य में मीर अम्मन ने 'बागो-बहार' और हिंदी गद्य में लल्लूलाल का 'प्रेमसागर', 1803 एवं सद्‌ल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' (1803) की रचना हुई।

बंगाल की इसी भूमि से हिंदी का पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' 1826 ई. प्रकाशित हुआ, जिसे हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मान की रक्षा हेतु एवं हिंदी भाषा के विकास को ध्यान में रखकर कानपुर के रहने वाले पं. जुगुल किशोर ने संपादित किया। भाषाई पत्रकारिता का यह रूप फिर बनारस से 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'बाला बोधिनी' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, इलाहाबाद से 'हिंदी प्रदीप' पं. बालकृष्ण भट्ट, मिर्जापुर से आनंदकादम्बिनी- प्रेमघन, कानपुर से 'ब्राह्मण'- प्रतापनारायण

मिश्र के रास्ते दिल्ली से 'सदादर्श'- लाला श्रीनिवास दास तक पहुँचा। खड़ी बोली के जातीय निर्माण और विकास का सबसे सर्जनात्मक दौर 1857 के महासंग्राम के बाद आरंभ होता है। औपनिवेशिक संस्कृति के विरोध के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता युगीन परिवेश की माँग भी थी। खड़ी बोली उसके लिए सबसे मुफीद भाषा थी। व्यापार और वाणिज्य वैसे ही इसे केंद्रीय महत्व की भाषा बना रहे थे। राष्ट्रीय आंदोलन की केंद्रीयता और उसकी भावना को पोषित करने में हिंदी समर्थ थी। यह दिलचस्प है कि अपने स्थानीयता और जातीयता के प्रति बेहद लगाव रखने वाली बंगाली जाति में पुनर्जागरण के चिंतको-समाज सुधारकों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन के लिए हिंदी का समर्थन किया। यों फोर्ट विलियम कॉलेज और साहित्यिक पत्रकारिता से हिंदी खड़ी बोली की आधार भूमि निर्मित हो चुकी थी। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की अखिल भारतीय संस्कृति निर्माण में हिंदी की भूमिका पहिले-पहल बंगाल में ही निर्मित हुई। सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इस संदर्भ में सही लिखा है, कि "बंगाल से प्रारंभिक राष्ट्रीय आंदोलन की कामना अखिल भारतीय रूप धारण करने की थी। स्वदेशी आंदोलन के प्रारंभ होने से पहले बंकिमचन्द्र चटर्जी, केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखर्जी, स्वामी विवेकानंद और रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे बंगाल के सभी राष्ट्रीय विचारधारा के लेखक जिन्होंने स्वदेशी आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया, हमेशा एक और अविभाज्य भारत की बात सोचते थे। महान उपन्यासकार और विचारक बंकिमचन्द्र चटर्जी (1938-1894) ने मातृभूमि की कल्पना देवी-स्वरूपिणी माता के रूप में भगवती उमा और श्री और वाक् के रूप में की और उसके राष्ट्रगान वंदे मातरम् ने स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन को सर्वाधिक प्रभावकारिणीं आदर्श शक्ति प्रदान की। भारत माता की कल्पना बंगाल के इन राष्ट्रीय कार्यकरों के साथ विकसित हुई। अवनीन्द्रनाथ ने अपना प्रसिद्ध भारत-माता चित्र अगली शताब्दी के प्रारंभिक दिनों में अंकित किया और अपने देश तथा इसके इतिहास के एक प्रकार से पुनरूद्घाटन से प्राप्त नए-नए उत्साह तथा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के प्रति घृणा की भावना ने इस इच्छा को जन्म दिया कि देश की अपनी परंपराओं और अपनी भाषाओं का अवलंबन किया जाए। उत्तर भारत के प्रति रामायण, महाभारत तथा भागवतपुराण के बुद्ध, अशोक, विक्रमादित्य और हर्ष के, पृथ्वीराज चौहान, प्रताप सिंह और अकबर के देश के प्रति-बंगाल में सदैव से भावुकता पूर्ण आदर का भाव रहा है और उत्तर भारत की भाषाओं, ब्रजभाषा और हिंदी को बंगाल का सहज सद्भाव प्राप्त हुआ। सारे देश को कम से कम उत्तर-भारत के लोगों को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति के रूप में हिंदी की संभावनाओं के प्रति सबसे पहले बंगाल के राष्ट्रीय नेता जागरूक हुए और उन्होंने अपने बंगला लेखों में इस बात का समर्थन किया कि उत्तर भारत की सर्वसाधारण जनता को एकता के सूत्र में बाँधने वाली भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग किया जाना चाहिए।"[3]

साहित्य की सृजनात्मकता भी धीरे-धीरे ब्रजभाषा के बरक्स खड़ी बोली की ओर उन्मुख हो रही थी। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस दौर में बंगाल की भूमि में पुनर्जागरण के फलस्वरूप हिंदी गद्य की पुस्तकें तैयार हो रही थीं, पत्रकारिता का विकास हो रहा था। उसी दौर में हिंदी प्रदेश में श्रृंगार और सौंदर्य की रीतिकालीन कविता का सृजन हो रहा था। हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र की बंगाल यात्रा ने उन पर गहरा असर किया। भारतेन्दु हरिचन्द्र के नेतृत्व में हिंदी के सर्जनात्मक और वैचारिक गद्य की पुस्तकें तैयार हुई और उनकी साहित्यिक पत्रकारिता में हिंदी 'नए चाल में ढली।' यह गौर करने वाली बात है कि हिंदी गद्य का आरंभ भले ही फोर्टविलियम या कलकत्ता से हुआ लेकिन उसको साहित्यिक संस्कार देने का काम भारतेन्दु ने ही किया। 'हिंदी जाति' या 'हिंदी समुदाय' को समृद्ध करने वाली खुली और जनधर्मी भाषा जिसमें सहवर्ती, जनपदीय भाषाओं और अन्य स्रोतों से आने वाले शब्दों की सहज स्वीकृति थी। भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने हिंदी और उर्दू दोनों साहित्यिक रूपों का प्रयोग किया तो स्थानीय बोली बानी को भी वहाँ पर्याप्त जगह मिली। भारतेन्दु के समय हिंदी खड़ी बोली की जो स्थिति थी उसमें उनके पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह की नीति का भी असर रहा। शिवप्रसाद जी का झुकाव उर्दू निष्ठ हिंदी की ओर था तो लक्ष्मण जी का संस्कृत निष्ठ हिंदी की तरफ। भारतेन्दु जी उर्दू और संस्कृत से उतना ही प्रभाव ग्रहण करते हैं जो हिंदी खड़ी बोली को पोषित पल्लवित करने में सहायक हुआ। भाषायी विकास के लिहाज से भारतेन्दु के भाषा की असली ताकत उनकी भाषा में बोलियों का बहुलता में प्रयोग है। हिंदी को जातीय भाषा के रूप में विकसित करने के लिए यह जरूरी भी था। उनके भाषा व्यवहार के इस पक्ष की प्रशंसा करते हुए रामविलास शर्मा ने सही लिखा है कि, "भारतेन्दु के गद्य की एक विशेषता यह है कि उसमें जनपदीय शब्द का धड़ल्ले से व्यवहार होता है। उनके कलात्मक गद्य की विशेषता यह है कि उसमें ब्रजभाषा की मिठास है। हिंदी भाषी क्षेत्र में मैथिल, भोजपुरी, अवधी आदि अनेक जनपदीय बोलियाँ बोली जाती हैं। यहाँ की जातीय भाषा के लिए उस भाषा के लिए जो विभिन्न जनपदों की शिष्ट भाषा के रूप में विकसित हो यह आवश्यक था कि वह इन बोलियों के नजदीक हो उन शब्दों का व्यवहार हो जो इन बोलियों में सामान्य है।"[4]

भारतेन्दु और उनके समकालीन रचनाकारों के भाषा चिंतन का महत्व इस मायने में और भी बढ़ जाता है। वह उस दौर में पैदा भाषा विवाद के समानांतर राष्ट्रीय भाषा के रूप में खड़ी बोली को मजबूत आधार मिलता गया। जब बात भाषायी राष्ट्र के निर्माण या भाषा के जातीय विकास की आती है तो जितना महत्व भारतेन्दु का है उतना ही शिव प्रसाद सितारे एवं अन्य लेखकों का है। शिवप्रसाद सितारे हिंद खड़ी बोली को उर्दू-फारसी से जोड़कर समृद्ध करते हैं। वहीं भारतेन्दु अपने व्यापक भाषायी चिंतन में या सृजन में 'हिंदी जाति की अवधारणा का विकास करते हैं, हिंदी नवजागरण को शक्ति प्रदान करते हैं, जिसमें साम्राज्यवाद के प्रतिरोध का मुखर स्वर भी विद्यमान है। जातीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए खड़ी बोली, उर्दू, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली के सहकार से हिंदी भाषा का समन्वित भाषिक रूप सृजित करने का काम भारतेन्दु ने ही किया। हिंदी समुदाय के विकास के लिए यह बात आज और भी प्रासंगिक हो जाती है कि हिंदी की बोलियों की आपस में आवाजाही हो। यह चेतना भारतेन्दु के चिंतन और सृजन से आरंभ होती है, जिसको बाद में विकसित करने का कार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला, प्रेमचन्द, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, धूमिल और केदारनाथ सिंह ने अपने साहित्य में किया।

उपनिवेशवाद, बहुभाषिकता और राष्ट्रः

"उपनिवेशवाद का वास्तविक उद्देश्य जनता की सम्पत्ति पर नियंत्रण रखना था। उन्हें इस पर भी नियंत्रण रखना था कि जनता किस चीज का उत्पादन करती है, किस तरह उत्पादन करती है और इसका वितरण किस तरह होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वास्तविक जीवन की भाषा के समूचे साम्राज्य पर उसे नियंत्रण रखना था। उपनिवेशवाद ने भौतिक संपदा के सामाजिक उत्पादन पर सैनिक विजय के जरिए अपना नियंत्रण रखा और राजनीतिक अधिकनायकवाद द्वारा उसे पुष्ट किया लेकिन प्रभुत्व का इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र उपनिवेश की जनता का मानसिक जगत था। जिस पर उसने संस्कृति के जरिए नियंत्रण स्थापित किया। बिना मानसिक नियंत्रण के आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण न तो कभी पूरा हो सकता है और न कारगर। जनता की संस्कृति पर नियंत्रण का मतलब दूसरों के संदर्भ में खुद को परिभाषित करने के उपकरणों पर नियंत्रण करना है।

उपनिवेशवादियों की इस प्रक्रिया में दो पहलू निहित थे। जन-संस्कृति का विध्वंस अर्थात् जनता की कला, नृत्य, धर्म, इतिहास, भूगोल शिक्षा भौतिक साहित्य और लिखित साहित्य का विध्वंस अथवा जान-बूझकर जन संस्कृति के महत्व को कम करके आँकना। दूसरा पहलू था उपनिवेशवादियों की भाषा को सचेत ढंग से काफी विकसित भाषा के रूप में प्रस्तुत करना। गुलाम देशों की जनता की भाषा पर उपनिवेशवादी देशों की भाषा का प्रभुत्व हो।"[5]

किसी भी राष्ट्र में उपनिवेशवाद जनता की संपत्ति पर नियंत्रण रखने के साथ उनके कला, धर्म, साहित्य और भाषा पर नियंत्रण कर अपना प्रभुत्व कायम करता है। जनता के मानसिक जगत पर प्रभुत्व स्थापित करने का सबसे कारगर हथियार उस देश की भाषा पर अपना अधिकार जमाना है। भारत में 17वीं शताब्दी में अंग्रेज आए और भारत पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए उन्होंने भाषा और शिक्षा को मुख्य आधार बनाया। सबसे पहले साजिशन संस्कृति, साहित्य और इतिहास के पुनरूद्धार के बहाने उसकी मनमानी व्याख्या करना, फिर औपनिवेशिक संस्कृति का ऐसा पाठ परोसना कि सब उसके आदती हो जाए, अभ्यस्त हो जाएँ। यह संस्कृति उन्हें उदार और अपने अनुकूल लगने लगे। कहना न होगा कि भारत में उपनिवेशवादी संस्कृति ने यही किया। यहाँ तक कि नवजागरण दौर के बहुत से अगुआ तक इस औपनिवेशिक संस्कृति के शिकार हुए। उन्हें यूरोपीय भाषा जागरण और क्रांति की भाषा लगने लगी। यह खेल अंग्रेजी राज में तो चलता ही रहा। स्वतंत्रता के बाद यह और भी गतिशील तरीके से फला-फूला।

सन् 1835 में मैकाले की शिक्षा नीतियों ने बड़ी चालाकी से भारत की पारंपरिक भाषाओं और संस्कृति को नए ज्ञान विज्ञान के लिए असमर्थ बताकर हमें हमारी समृद्ध परंपरा से काट दिया गया। भाषा का यह औपनिवेशिक पाठ हमारे राष्ट्र के लिए बहुत घातक साबित हुआ। स्वाधीनता संग्राम के दौर में अंग्रेजी राज की इन नीतियों का पुरजोर विरोध भी हुआ। स्थानीय बोली बानी में

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिरोध में अनगिनत लोकगीतों और लोकगाथाओं का सृजन हुआ। इस दौर में भी प्रभावशाली बौद्धिकों और रईसो की एक ऐसी जमात थी। जो अंग्रेजी राज का विरोध करते हुए भी मैकाले की भाषायी और शैक्षिक नीतियों का पोषण कर रही थी। आजादी के बाद अंग्रेजो से मुक्ति मिली अंग्रेजी नीतियों से नहीं। अंग्रेजों द्वारा बोया गया संकीर्ण भाषाई विवाद, भाषायी साम्राज्यवाद की नीतियाँ आजाद भारत में अधिक विकृत रूप में फली-फूली। एक चेहरा इसका अंग्रेजी वर्चस्व में दिखाई देता है तो दूसरा भारतीय भाषाओं की आपसी खींचातानी में। गाँधी जी अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज्य' में भाषा के संकीर्णतावादी दृष्टि का विरोध करते हुए अंग्रेजी के समानांतर भारत की स्थानीय भाषाओं की ओर उन्मुख होने की बात करते हैं। आजाद भारत में भाषायी जनतंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए पूंजीवाद और भाषायी साम्राज्यवाद के खतरों को लक्षित कर लोहिया जी ने कई आंदोलन चलाए।

विकास की नई पूँजीवादी अवधारणा और आधुनिकता के नए विमर्शों ने भाषायी संकीर्णता के इस विवाद को तीव्रतर कर उसे खतरनाक मोड़ पर ला खड़ा किया। इसके कई रंग हमारे सामने मौजूद हैं। हिंदी उर्दू का बैरभाव इसी का एक नमूना है। हम सब जानते हैं कि हिंदी भाषा हिंदी जाति की परंपरा, हिंदी-उर्दू की साझी विरासत की देन है, जिसको अलग करने का काम अंग्रेजों ने किया। बिना इस अलगाव के अंग्रेजी राज और अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना मुमकिन न था। अंग्रेज अपने इस मनसूबे में पूरी तरह से सफल रहे और हम असफल। कुछ वर्षों से लोक संस्कृति और लोक भाषा विकास के नाम पर पूंजीपोषित कारनामे भी खूब हो रहे हैं। कुछ संगठन और संस्थाएँ एवं व्यक्ति कुछ विशेष भाषाओं को केंद्रित कर ऐसा प्रचार-प्रसार कर रहे हैं मानो लोक संस्कृति की परंपरा की वाहक वही भाषा है शेष भाषाएँ लोक संस्कृति हीन हैं। भाषा के विकास का मसला पूँजी और सत्ता के वर्चस्व से जुड़ा होता है। सत्ता और शासन पर जिस विशेष वर्ग के लोग काबिज होते हैं, उसका विकास अधिक होता है। यह भाषा विमर्श के लोकतांत्रिक मूल्य और भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र के लिए खतरा ही है। कहना न होगा कि इन दिनों भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति को लेकर जो सजगता और संजीदगी दिखाई दे रही है उसकी तुलना में अवधी, बघेली, बुंदेली, ब्रज, छत्तीसगढ़ी और राजस्थानी जैसी लोक भाषाएँ उपेक्षित हैं। ऐसा कहकर मैं हिंदी के विकास में भोजपुरी को कमतर नहीं आँक रहा हूँ बल्कि स्थानीय उपनिवेशन की उन नीतियों का विरोध कर रहा हूँ। जो हिंदी की बहुभाषिक लोकसंस्कृति की उपेक्षा करती हैं। भारतीय राष्ट्र की कल्पना भारत की बहुभाषिक संस्कृति में निहित है। बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिक परंपरा के साथ यह राष्ट्र सोता और जागता है। हिंदी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र का गौरव है लेकिन इसके साथ ही भारत की बहुत सी भाषायें है, जिनका सम्मान और पहचान करना भारतीय राष्ट्र को मजबूत करेगा। भारतीय भाषाओं के प्रति हम हिंदी वालों की दृष्टि कम संकीर्ण नही है। दक्षिण वाले हिंदी को सीखें जाने और प्रेम करें, क्योंकि हिंदी हमारे राष्ट्रीय गौरव की भाषा है जबकि हमारे लिए दक्षिण की भाषा सीखना आवश्यक नहीं है। भारत की इन भाषाओं के प्रति हिंदी प्रदेश के लोगों का आलम यह है कि हिंदी भाषी पाठक को शायद ही यह पता हो कि तमिल, तेलुगु और

मलयालम में कौन से साहित्यकार हैं और वहाँ की सृजन-संस्कृति कैसी है? इस मामले में दक्षिण वाले हमसे थोड़ा उदार हैं। संकीर्णतावादी इस भाषाई सोच को समय-समय पर हमारे राजनेता अपने शुद्धतावादी अपने वक्तव्यों से खाद-पानी देने का काम करते रहते हैं। भारतीय भाषाओं के विकास में ही हिंदी का विकास जुड़ा हुआ है। भारतीय भाषाओं की आपसी आवाजाही और हिंदी व उसकी बोलियों के साझे विकास से राष्ट्र का विकास भी होगा और हिंदी का भी। भारत में बोली जाने वाली इस हिंदी को बाजारू हिंदी कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। यह हिंदी जिसमें आम जन अपना सौदा-सुलुफ करता है, गीत-गवनई गाता है, हँसी-मजाक करता है। व्याकरण इसके पीछे हैं यह व्याकरण के आगे। समय के साथ इसमें बदलाव भी होता रहता है। यह भारत की सामाजिक संस्कृति की भाषा है। इसमें न जाति भेद है न मन भेद। इस संदर्भ में सुनीति जी का यह कथन उल्लेखनीय है- "लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में हिंदुस्थानी व्याकरण के मोटे नियम एक पृष्ठ में ही आ गए हैं जबकि अवधी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु, आदि भाषाओं के लिए दो-दो पूरे भरे हुए पृष्ठ लगे हैं। पूर्वी पंजाबी में तीन पृष्ठ लगे हैं और मैथिली में चार। और यह तो उस स्टैंडर्ड साहित्यिक हिंदुस्तानी की बात है, जिसमें नागरी हिंदी तथा उर्दू दोनों रूपों की व्याकरण शुद्ध साधु-भाषा सम्मिलित है। जिसे या तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणी पूर्व पंजाब के निवासी ही बोलते हैं, या ऐसे लोग बोलते हैं जिन्होंने स्कूल में शुद्ध नागरी हिंदी अथवा उर्दू पढ़ी हो। पछाँह के लोगों को छोड़कर हिंदी संसार की साधारण जनता द्वारा तथा हिंदी क्षेत्र के आस-पास के प्रदेशों में साधारण जन द्वारा, जिसने हिंदुस्तानी पढ़ी नहीं, बोली जाने वाली अत्यंत प्राणयुक्त सार्वजनीन हिंदुस्तानी का व्याकरण तो और भी संक्षिप्त है। यह हिंदी या हिंदुस्तानी बिना लेश मात्र भी मानहानि के बाजारू हिंदुस्तानी या बाजारू हिंदी कही जा सकती है।"[6] बाज़ार से निकली 'हिंदी' इसी रूप में जन भाषा का दर्जा पाती है। जन-मन की भाषा बनती है। आधुनिक विचार और विमर्श के साथ उसका रूप रंग भी बदलता रहा।

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और उत्तर समय में हिंदी:

"अगला दौर नवउदारता के बाद की हिंदी का है जो पिछले पंद्रह-बीस बरसों से रहा है। इस दौर में दैनिक-साप्ताहिक अखबारों की संख्या में भारी इजाफा हुआ है। जिन अंग्रेजी शब्दों के लिए हिंदी शब्द सुलभ हैं, उनका भी प्रयोग किया जा रहा है भूमंडलीकरण का सबसे गहरा प्रभाव मिलावट का चलन है। यह मिलावट खान-पान से लेकर भाषा तक में है। कहानी, कविताओं की भाषा में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो रहा है। एक जमाने में लोग भाषा के प्रति सतर्क थे। अब अंकुश हट गया है। सब लोग स्वतंत्र हैं चाहे जैसी हिंदी लिखें।"[7]

सन् 80 के बाद भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और बाज़ारवाद का विकास वैश्विक परिदृश्य पर हुआ। भारत इसका केंद्र रहा। जाहिर है यहाँ इनके फायदे और नुकसान भी अधिक हैं। भूमंडलीकरण का संचालन अमेरिका कर रहा है। नव-साम्राज्यवाद की विचार संस्कृति का वाहक अमेरिका ही है, जो भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के सहारे संपूर्ण विश्व का अमेरिकीकरण कर रहा

है। भूमंडलीकरण और नव साम्राज्यवादी नीतियों का सबसे अधिक खतरा जन-भाषाओं या लोक भाषाओं पर है। भारत की अधिकांश भाषिक संस्कृति मौखिक और जन धर्मी है। नव साम्राज्यवादी ताकतें, बाज़ारवाद और भूमंडलीकरण के नाम पर भारत की लोकधर्मी संस्कृति और भाषा को नष्ट करने के हथकंडे अपना रही हैं। मैनेजर पांडेय भूमंडलीकरण के इसी खतरे की ओर संकेत करते हुए कहते भी हैं, "भूमंडलीकरण की जो आँधी चल रही है, उसमें भाषाओं के मरने का क्रम भी वहीं होगा जो उनके विकास का है। पहले वो भाषाएँ मरेंगी जो बोलचाल की हैं फिर वो भाषाएँ मरेंगी जिनकी केवल लिपि है और अंत में उनकी मृत्यु होगी जिनकी लिपि भी है और जो बोली भी जाती है और जिनकी प्रिंटिंग भी होती है।"[8]

असल में बाज़ारवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा बहुभाषिकता है, जिसमें उसको फूलने-फूलने का मौका नहीं मिलता। बाज़ार की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए साम्राज्यवादी शक्तियाँ भाषायी और सांस्कृतिक विविधता को नष्ट करने की साजिश रच रही हैं। इस प्रक्रिया में बाज़ार और व्यापार की एक भाषा के विस्तार की कवायद की जा रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर में अंग्रेजी को विश्व भाषा बनाने की कोशिश की जा रही है। किसी भी समाज की जातीय चेतना उसकी अपनी भाषा और संस्कृति में व्यक्त होती है। भारत भाषायी और सांस्कृतिक बहुलता वाला देश है। भाषा को संस्कृति का प्रतिरूप भी माना जाता है। किसी भी भाषा का मरना उस संस्कृति का मरना है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में लगभग 7000 भाषाएँ हैं, जिनमें आधी भाषाओं की स्थिति चिंताजनक है। रिपोर्ट के अनुसार लगभग 2500 भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है। दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में यह स्थिति अधिक चिंताजनक है। यहाँ लगभग 200 भाषाएँ लुप्त होने के कगार पर हैं। दुनिया भर में लगभग 200 ऐसी भाषाएँ है, जिनके बोलने वालों की संख्या दर्जन भर से कम है। दरअसल नवसाम्राज्यवादी नीतियाँ, उदारीकरण, भूंडलीकरण और आर्थिक विकास की नई नीतियों के नाम पर विविधताओं को खत्म कर एक संस्कृति और एक भाषा का प्रचार कर रही है। यह संस्कृति है अमेरिकी और भाषा है अंग्रेजी। कहना न होगा कि यह संकट आदिवासी और हाशिए का जीवन जीने वालो की भाषा पर अधिक है। शासन सत्ता और सरकार से गठजोड़ कर ये नव औपनिवेशिक ताकतें आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना, प्राकृतिक शक्ति, भाषा और संस्कृति को नष्ट करने पर तुली हैं। अमेरिका पोषित इस बाज़ारवादी संस्कृति द्वारा आदिवासी जन-जीवन और भाषा संस्कृति को नष्ट ही नहीं किया जा रहा है उन्हें अपने मूल से विस्थापित होने को मजबूर किया जा रहा है। आदिवासी बहुल राज्य की सरकारें इस विनाश को रोकने के बजाए पूंजीवादी ताकतों के साथ गठजोड़ कर आदिवासी समाज और संस्कृति को नष्ट कर रही हैं। आदिवासी समाज अपनी मातृभाषा और सृजन के द्वारा इस वर्चस्वशाली शक्तियों से प्रतिरोध कर रहा है। मुंडारी, संथाली खड़िया, कुडुख, गोंडी, सेमा और माउ आदिवासी भाषाओं में प्रचुर रचनात्मक लेखन हो रहा है। अपनी मातृभाषा में यह विमर्श वर्चस्वशाली संस्कृति के विरूद्ध प्रतिरोध की जनसंस्कृति का रचनात्मक स्वर है। इसी बात को लक्षित कर आदिवासी विमर्शकार बिसेश्वर प्रसाद केशरी ने लिखा भी है, "भाषा और समाज की

सहज प्रगतिकामी प्रकृति का सबसे बड़ा अवरोधक है उपनिवेशवाद, चाहे वह किसी कोटि का क्यों न हो और इस सर्वनाशी उपनिवेशवाद का एक मात्र विकल्प है स्वायतत्ता। मातृभाषा का सवाल जातीय अस्मिता की रक्षा और विकास से सीधे जुड़ा है। दूसरे शब्दों में मातृभाषा उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष का एक कारगर हथियार है। इसके माध्यम से मुक्ति कामी जनता अपने विकास के उत्तरोत्तर मंजिलों को तय करती है।"[9]

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और आधुनिकता के उत्तर समय में भाषा का विस्तार हुआ है या विकास? 1980 से 2015 के बीच हिंदी भाषा के विस्तार और विकास की बात की जाए तो इस दौर में हिंदी भाषा ने अपना चोला पूरी तरह से बदल लिया है। हिंदी के विस्तृत कथा लेखन में संस्कृत निष्ठ हिंदी से मुक्त भाषा है। आज हिंदी नहीं हिंदीयों का दौर है। साहित्य की हिंदी सिनेमा की हिंदी, टी.वी. की हिंदी, अखबार की हिंदी, एफ.एम. की हिंदी, समाज-विज्ञान की हिंदी, राजनीति की हिंदी। विविधता में शायद इससे पहले का दौर हिंदी के लिए इतना नहीं था लेकिन हिंदी का यह स्वरूप हमारी हिंदी के जातीय स्वरूप और उसकी अस्मिता को समृद्ध कर रहा है या नष्ट कर रहा है। यह विचारणीय प्रश्न है।

भूमंडलीकरण के दौर में निजीकरण की प्रक्रिया बढ़ी। निजीकरण में कार्पोरेट पूँजी ने अंग्रेजी को प्रभावशाली बनाया। अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ाने के लिए औपनिवेशिक दौर में हिंदी-उर्दू का झगड़ा पैदा किया गया तो उत्तर-औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजी परस्त हिंदी का वर्चस्व बढ़ा। अंग्रेजी-संस्कृति को पोषित करने वाले वर्ग ने 'हिंदी' को जटिल भाषा बताकर आमजन से उसे दूर किया। ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में हिंदी में प्रकाशित होने वाली किताबों की संख्या घटी। पब्लिक स्कूलों की भरमार ने भी, अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ाने में मदद की। वैश्विक बाज़ार और पूँजी के इस खेल ने रणनीतिक ढंग से हिंदी की भाषिक संस्कृति को कमजोर करने की कोशिश की। कभी हिंदी को उर्दू से लड़ाया तो कभी उसको संस्कृतमय बनाकर। फिल्मकार बलराज साहनी ने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के पहले दीक्षांत भाषण में हिंदी की हीन दशा और अंग्रेजी के वर्चस्व की सही पड़ताल करते हुए कहते हैं, "पूंजीपति हर चीज को मुनाफे के दृष्टिकोण से देखता है। उस दृष्टिकोण से उसके लिए आज भी अंग्रेजी फायदेमंद है। भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए अंग्रेजी भारत के आम मेहनतकश लोगों के लिए एक मुश्किल और अपहुँच भाषा थी। इसीलिए शासक वर्ग ने उन्हें राजभाषा का दर्जा दिया था। जिनके द्वारा वह जनसाधारण में असभ्य और अशिक्षित होने तथा हीनता और आत्मग्लानि की भावनाएँ पैदा करता था ताकि वे अपने हाथों अपनी गुलामी की जंजीरें मजबूत करते रहें और आपस में लड़लड़ कर मरते रहें। आज यही भूमिका अंग्रेजी अदा कर रही है। भारत का पूँजीपति वर्ग, देश में इंकलाब नहीं चाहता। अंग्रेजों से विरसे में मिली हुई व्यवस्था को उसी प्रकार कायम रखने में उसका फायदा है। पर वह खुलेआम अंग्रेजी को अंगीकार नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता का कोई न कोई आडंबर खड़ा करना उसके लिए जरूरी है। इसीलिए वह संस्कृतवादी हिंदी

को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का ढोंग करता है। उसे पता है कि संस्कृत के शब्दों के बोझ तले दबी नकली और बेजान भाषा, अंग्रेजी के मुकाबले में खड़े होने का सामर्थ्य अपने अंदर कभी पैदा नहीं कर सकेगी। आज के युग के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों से रिक्त होने के कारण वह हमेशा कमजोर बनी रहेगी।"[10]

भाषा का राजनीति से गहरा सरोकार होता है। भूमंडलीकरण के दौर में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण के विस्तार ने भाषा की राजनीति को प्रभावित किया है। भारतीय लोकतंत्र में विपक्ष में रहते हुए राजनीतिक पार्टियाँ भारतीय भाषाओं और हिंदी के विकास के लिए भारतीयता के परिवेश के साथ तार्किक बातें करती हैं लेकिन सत्ता पक्ष में आते ही उनका सुर बदल जाता है। वह वैश्विक पूँजीवाद और कारपोरेट संस्कृति के अनुरूप संचालित होने लगती है। वह प्राय: भाषा संबंधी नव-साम्राज्यवादी नीतियों के समक्ष घुटने टेकती नजर आती हैं। अंग्रेजी के बरक्स हिंदी और भारतीय भाषाओं से उसके संबंध पर प्राय: सरकारें उदासीन नजर आती हैं। सत्ताधारी सरकारें आंकड़ों और सरकारी रपटों के आधार पर हिंदी के बढ़ते भाषायी दायरे की बात करती हैं। यों इस शाब्दिक और आंकिक विस्तार में हिंदी का कितना विकास हुआ यह बहसतलब प्रश्न है? नई पीढ़ी के सामने विज्ञापन और बाज़ार के बीच फैली चकाचौंध में भाषा के सृजनात्मक विमर्श का कोई ढाँचा नहीं नजर आता। उत्तर-आधुनिकता और उत्तर औपनिवेशिक विमर्श ने खंडित केंद्रियता इतिहास के अंत और परंपरा के नकार की वैचारिकी का ऐसा मॉडल पेश किया है कि हम भाषा के विमर्श का कोई सार्थक रूप खड़ा नहीं कर पा रहे हैं। मीडिया कर्मी अनिल चमड़िया भाषा विमर्श के इसी संकट की ओर संकेत करते हुए सही लिखते हैं कि "हिंदी का सत्ताधारी वर्ग भाषा के विस्तार की तस्वीर पेश करके अपनी सार्थकता बनाए रखने की हर मुमकिन कोशिश करता है। वह भाषा के विस्तार के लिए हमें बाज़ार में खड़ा कर देता है। प्रयोगशाला की तरफ नहीं ले जाता है। नई पीढ़ी के सामने जब कोई विमर्श खड़ा होता है तो उसके साथ विमर्श की एक विरासत होती है। भूमंडलीकरण के जमाने में जिस पीढ़ी ने आँखें खोली उसके सामने यह बोलता और दिखता हुआ वह टी.वी. सेट था कि इतिहास का अंत हो गया है। नई पीढ़ी के लिए भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न के तौर पर खड़ा होने में यह मददगार होता है। विमर्श को विरासत से विस्थापित कर दिया गया है। जबकि किसी भी समाज निर्माण के आधार और विकास के लिए यह जरूरी है।"[11]

यों भाषा विमर्शकारों ने हिंदी का एक नया चित्र भी हमारे सामने उपस्थित किया है। बेहद सर्जनात्मक और विकास की गतिकी से भरा हुआ। हिंदी के नए उभरते चित्र में हाशिए के समाज की भूमिका को विशेष महत्व दिया गया है। राजनीति और साहित्य विमर्श में स्त्री, दलित, आदिवासी समाज की भूमिका ने हिंदी भाषा के भूगोल को ही नहीं उसके लोक को भी विकसित किया है। लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभाओं में किसिम-किसिम की हिंदी का प्रयोग सुनने को मिल रहा है। राजनीतिक सत्ता के उलटने से सांस्कृतिक सत्ता पर भी प्रभाव पड़ा है। स्त्री, दलित और

आदिवासी विमर्श में हो रही रचनाओं और वैचारिक लेखन ने हिंदी भाषा के पारंपरिक काव्यशास्त्र को चुनौती देते हुए भाषा का नया लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र रचा है। अनुवाद ने हिंदी और भारतीय भाषाओं के आपसी संबंध को विकसित किया है। हिंदी के इलेक्ट्रानिक मीडिया के विस्तार के साथ प्रिंट मीडिया का भी विस्तार हुआ है। टी.वी. में न्यूज चैनल बढ़ने के साथ अखबारों और पत्रिकाओं में भी उतनी ही बढ़ोत्तरी हुई है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी की एक नई भाषा बन रही है, जिसमें ग्लोबल के साथ-साथ हिंदी का लोकल भी बढ़ा है। इस प्रक्रिया में लिखित (मुद्रित), श्रव्य (एफ. एम. रेडियो) और दृश्य-श्रव्य (टी.वी. एवं सिनेमा) का एक साथ प्रसार हो रहा है। यों यह बात और है कि इसमें हिंदी का बनता हुआ रूप हिंदी को कितना सर्जनात्मक बनाता है? उत्तर-आधुनिक विमर्शकार सुधीश पचौरी हिंदी के इस नए बनते रूप को प्रशंसित करते हैं और इस नई हिंदी को 'हिंग्रेजी या वर्णसंकर' कहते हैं, जो मुक्त बाज़ार में निर्मित हो रही है, "सदियों बाद इस उपमहाद्वीप को एक ऐसी भाषा नसीब हुई जिसमें श्रीलंका से लेकर खाड़ी देशों तक संचार संभव हुआ है। इसे रूबी भाटिया, जावेद जाफरी, साजिद ने बनाया है। इसे चैट शो वालों ने बनाया है, इसे आमंत्रित जनता ने बनाया है। इसे देखकर शुद्धत्तावादी वैयाकरण रोते हैं तो क्या करें। यह श्रव्य और वाच्य भाषा है। इससे जीवन चलता है ... यह मुक्त बाज़ार में निर्मित मध्यवर्ग की, बाज़ार द्वारा बाज़ार के लिए बनी भाषा है और सरेआम बनती भाषा है।... अनेक चैनलों के भावी परिदृश्य में हम एक ऐसी भाषा पायेंगे जो और भी वर्णसंकर और भी खिचड़ी होगी।... बाज़ार की शक्तियों और उनके सहयोगी माध्यम टी. वी. ने यह मसला सुलझा दिया है कि कौन सी भाषा जन-संचार में सक्षम है। जो सक्षम है वह बड़ी भाषा है। यह हिंदी है जिसे वर्ण-संकर, भ्रष्ट और हिंग्रेजी कह सकते हैं।"[12]

सुधीश पचौरी के इस मन्तव्य से पूरी तरह सहमत तो नहीं हुआ जा सकता है लेकिन इसको नकार कर भी हम हिंदी का वर्तमान भाषा-विमर्श नहीं कर सकते। हिंदी का बाज़ारीकरण हो रहा है और इस प्रक्रिया से हिंदी ने अपना चोला बदल लिया है। पर इससे यह कहना कि यही हिंदी की असली छवि है, गलत होगा। यह हिंदी की कई छवियों में से एक है। हिंदी का विकास आधुनिक पुनर्जागरण के साथ हुआ। उसके साथ ही भाषा, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान की प्रशाखाओं से हिंदी जुड़ती हुई अपना रूप ग्रहण करती है। समय के प्रवाह के साथ हिंदी की चाल ढाल बदली और आज वह पुराने के साथ नए विमर्श की, नए बाज़ार की और आधुनिकता के नई वैचारिकी की भाषा है। हिंदी की छवि और उसमें निहित विचार एवं सृजन की पहचान करते हुए प्रख्यात समाजविज्ञानी और चिंतक अभय कुमार दुबे की यह मान्यता काबिले गौर है कि, "हिंदी संस्कृत की बेटी या उर्दू की दुश्मन या अंग्रेजी की चेरी नहीं है। अगर वह किसी की बेटी है तो भारतीय आधुनिकता की बेटी है। हिंदी की आलोचना करने के लिए आधुनिकता के उस कारखाने की आलोचना करनी होगी। जिसकी कारीगरी का नमूना यह अनूठी भाषा है। चूँकि इसका सीधा संबंध आधुनिकता से है इसलिए यह आधुनिक विचारों के साथ छूट लेती है। यह प्रक्रिया समाज को फायदा भी पहुँचाती है, और फायदा पहुँचाने की संभावनाएँ कभी-कभी संदिग्ध भी लगती हैं। कुल मिलाकर सभी आधुनिक विचार हिंदी के दायरे में दोनों सिरे से खुले रहते हैं।"[13]

कहना न होगा कि हिंदी जो बंगाल की जमीन से डग भरते हुए काशी में आधुनिकता और पुनर्जागरण के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के यहाँ 'नई चाल में ढली'। यहीं पर उन्होंने हिंदी को जातीय संगीत और लोकसंस्कृति से परिनिष्ठित किया। छायावादी कविता में हिंदी सर्जना को नई छवि मिली वह सजी-संवरी। कुछ वायवीय भी हुई। प्रगतिशील कविता की धारा में त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन ने उसको लोक के जन-मन की भाषा बना दिया। मुक्तिबोध और शमशेर ने उसमें गहन विचार बोध भरा। रघुवीर सहाय ने पत्रकारिता की हिंदी और साहित्य की हिंदी को एक नया मुहावरा दिया। केदारनाथ सिंह, राजेश जोशी और अरुण कमल हिंदी के नए मुहावरों और जंबादानी से उसको समृद्ध कर रहे हैं। कथा सम्राट और हिंदुस्तानी भाषा के लेखक प्रेमचन्द ने हिंदी भाषा को आम भारतीय जन की भाषा बनायी।

सृजन की इस जमीन पर आलोचना और विचार का दूसरा सोता भी भारतेन्दु के यहाँ से ही फूटता है। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के द्वारा हिंदी को व्याकरणिक संस्कार देते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और चिंतामणि निबंध संग्रहों में हिंदी की सामासिकता और प्रांजलता को बढ़ाया। हिंदी भाषा को नई जमीन मिलती है रामविलास शर्मा के 'हिंदी जाति' की अवधारणा में। रामविलास शर्मा के भाषिक चिंतन का आधार धीरेन्द्र वर्मा की पुस्तक 'हिंदी राष्ट्र या सूबा हिंदुस्तान' और किशोरी दास वाजपेयी की 'हिंदी शब्दानुशासन' है। यहाँ से हिंदी भाषा और उसकी जातीय अवधारणा को विवेचित करते हुए 'भाषा और समाज' पुस्तक में रामविलास शर्मा ने हिंदी को संस्कृत की बेटी या अनुगामी न मानकर उसकी पूर्वज भाषाओं में प्राकृत और हिंदी क्षेत्र की लोकभाषाओं की मौखिक परंपरा में तलाशने की कवायद की है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ हिंदी भाषा का विस्तार और विकास होता है। सन् 80 के बाद नए विमर्श और वैचारिकी के साथ हिंदी का विविध रंगी और बहुवर्णी रूप हमारे सामने मौजूद है। हिंदी में बाज़ारवाद, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, उत्तर-औपनिवेशीकरण और उत्तर-आधुनिक विचारधारा ने उसके रंग-रूप को बदला है तो हाशिए के विमर्श ने हिंदी का नया सौंदर्यशास्त्र रचा है। यों हिंदी पत्रकारिता में रघुवीर सहाय की 'दिनमानी हिंदी', राजेन्द्र माथुर की 'नवभारत टाइम्स' की चुटीली हिंदी और प्रभाष जोशी के संपादन में 'जनसत्ता' में गढ़ी गई हिंदी वर्तमान पत्रकारिता में खोजे न मिलेगी। न मिले कोई बात नहीं। हमारे समय में हिंदी बाज़ार, साहित्य, मीडिया, पत्रकारिता, फिल्म और विविध भारती (एफ.एम.) और टी.वी. के असंख्य चैनल में प्रवाहित हो रही है। यों यह हमें चुनना, सुनना है कि हम विविध भारती की समृद्ध-सजीली हिंदी सुनना चाहते हैं या रेडियो मंत्रा की मंत्रमुग्ध करने वाली हिंदी। हिंदी भारतीय राष्ट्र, आधुनिकता और लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा है। लोकतंत्र और आधुनिकता की बहुरंगी प्रवृत्तियाँ उसमें व्याप्त हैं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, मीडिया, साहित्य, संस्कृति, राजनीति और बाज़ार में इस भाषा के सिरों और सतरों की तलाश की जा सकती है।

संदर्भः

1. शर्मा रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 73–74, 28–282
2. चाटुर्ज्या सुनीति कुमार, भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.166–67
3. शर्मा रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्यायें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 159
4. थ्योगों न्गुगी वा, भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 26–27
5. चाटुर्ज्या सुनीति कुमार, भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 176
6. सिंह नामवर, दैनिक भास्कर, 14 सितंबर, 2011
7. पांडेय मैनेजर, इक्कीसवीं सदी : औपनिवेशिक मानसिकता और भाषा (सं. हर्षबाल शर्मा) अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ0 61
8. बिसेश्वर प्रसाद केसरी, झारखंडी भाषाओं की मौजूदा स्थिति, समकालीन जनमत, सितंबर 2003 पृ. 113
9. साहनी बलराज, भाषा का सच, संपादक, सपना चमड़िया से उद्धृत, एम.एस.जी. प्रकाशन, दिल्ली पृ. 43–44
10. चमड़िया अनिल, भाषा का सच, संपादक, सपना चमड़िया से उद्धृत, एम.एस.जी. प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 45
11. पचौरी सुधीश, 'हिंग्रेजी का समाजशास्त्र', संकलित : पुरुषोत्तम अग्रवाल और संजय कुमार (संपान) हिंदी नए चाल में ढली : एक पुनर्विचार, देशकाल प्रकाशन, पृ. 91–101
12. दूबे अभय कुमार, हिंदी में हम, आधुनिकता के कारखाने में भाषा और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 142

❑❑

हिंदी का वैश्वीकरण

—करुणा शंकर उपाध्याय

आज जब वैश्वीकरण की आँधी चल रही है तो हिंदी भी उसके स्कंध पर आरूढ़ होकर वैश्विक व्याप्ति का अनुभव कर रही है। वस्तुत: वैश्वीकरण संपूर्ण विश्व को एक रीति-नीति और अर्थतंत्र में लाने के प्रयास की अभिव्यक्ति है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद वैश्वीकरण के सहचर हैं। यह संपूर्ण विश्व को तकनीक के माध्यम से एक सर्व-सुविधा संपन्न गाँव में रूपांतरित कर रहे हैं। वैश्वीकरण का सर्वाधिक प्रभाव भाषाओं पर पड़ रहा है। इसके कारण बड़ी भाषाएँ विश्व व्यापी हो रही हैं और छोटी भाषाएँ अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी पर खुला विमर्श समय की माँग है।

यह सर्वविदित है कि अब हिंदी विश्व भाषा बन चुकी है और नई तकनीक के सहारे वह विश्व व्यापी बन गई है। हिंदी की अब तक की उपलब्धियाँ कम आश्चर्यजनक नहीं हैं, क्योंकि इसके पीछे किसी साम्राज्यवादी शक्ति और उसका धन नहीं लगा है। वह अपनी सहजता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण उपलब्धियों के बड़े शिखरों का संस्पर्श कर रही है। आज जब हम अपनी आजादी का अमृत महोत्सव पूर्ण करके अमृतकाल में प्रवेश कर गए हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम हिंदी की अद्यतन उपलब्धियों का तटस्थ विश्लेषण करें। हिंदी अपनी सर्जनात्मक और बहुविध उपलब्धियों के कारण विश्व की किसी भी भाषा की समकक्षता की अधिकारिणी बन गई है।वह स्वाधीनता संग्राम की आधिकारिक भाषा थी, जिसके कारण आजादी मिलने के बाद देश के कर्णधारों ने हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा का सम्मान दिया। आजादी के बाद शासकीय कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग बढ़ने से उसका बहुविध विकास हुआ। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के निर्देशों के अनुरूप उसका विधिवत मानकीकरण किया गया। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की सहायता से 10 लाख से अधिक नए शब्द निर्मित किए गए। वह ज्ञान-विज्ञान, कला- संस्कृति, सिनेमा- साहित्य, विधि- वाणिज्य, बैंकिंग- राजनय, पत्रकारिता-मीडिया, डिजिटल दुनिया और विनिमय के अनेक क्षेत्रों में आधिकारिक तौर पर प्रयुक्त हो रही है।

कोई दो राय नहीं है कि इस दौरान हिंदी ने अनेक अवरोध पार करते हुए उपलब्धियों के बड़े शिखर भी पार किए हैं। जब संविधान सभा में एक लंबी बहस के उपरांत हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया, तब उसे एक ऐसा संवैधानिक दर्जा मिल गया, जो अन्य भारतीय भाषाओं से उसकी पहचान अलग करता है। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि जिस हिंदी को डॉ. बी.आर. आंबेडकर की अध्यक्षता वाली मसौदा समिति ने हिंदी को राजभाषा के पद पर आसीन किया, क्या राजनीतिक कारणों से हिंदी के विरोध द्वारा कुछ लोग डॉ. आंबेडकर का भी अपमान नहीं करते? इसी तरह महात्मा गांधी जिस हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दे चुके थे। क्या हम उसी हिंदी के विरोध द्वारा गाँधीजी का अपमान नहीं करते? यह भी चिंतनीय है कि दक्षिण भारतीय राजनेता श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने हिंदी को राजभाषा घोषित करने वाले प्रस्ताव को रखा था। संविधान सभा में हिंदी और देवनागरी लिपि तथा भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप को लेकर कई दिनों तक जो बहस चली थी तो उसका समापन श्री गोपालस्वामी आयंगर एवं गुजरात के श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी द्वारा प्रस्तुत फार्मूले के रूप में हुआ, जिसे आज मुंशी-आयंगर फार्मूले के नाम से जाना जाता है। इस तरह हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिलाने में हिंदीतर भाषियों और दक्षिण भारतीयों की विशेष भूमिका रही है। ऐसी स्थिति में आज दक्षिण भारत में हिंदी का राजनीतिक कारणों से विरोध उचित नहीं है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जो हिंदी स्वाधीनता आंदोलन के समय ही इस देश की संपर्क भाषा बनकर अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुकी है वह आज भी संपूर्ण देश को एकता के सूत्र में पिरोती है। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ हिंदी राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय चेतना के विकास का कारक भी बनी। वह स्वाधीन भारत में भी देश प्रेम की उत्कट भावनाओं का प्रतीक बनी हुई है। वह देशवासियों के मध्य आपसी संवाद का सबसे बड़ा जरिया है। वह दिलों को जोड़ने का काम करती है। आज हिंदी हमारी सामूहिक अस्मिता का परिचायक है।

आज जब संपूर्ण विश्व बहुभाषिकता की ओर बढ़ रहा है और नई पीढ़ी स्वयं ही अनेक भाषाएँ सीखने के प्रति उन्मुख है, तब इस प्रकार के संकीर्ण दृष्टिकोण का कोई औचित्य नहीं रह गया है। हिंदी भारत बोध और अस्मिता बोध का संवर्धन-संवहन करती है। वह भारत के सबसे उत्तरी भाग सियाचिन ग्लेशियर स्थित इंदिरा घाटी से लेकर देश के सबसे दक्षिणी भाग ग्रेट निकोबार स्थित इंदिरा प्वाइंट तक भारतीय सेनाओं द्वारा प्रयुक्त हो रही है। इसी तरह भारत के सबसे पूर्वी क्षेत्र नागालैंड-मिजोरम से लेकर पश्चिमी छोर नलिया तक प्रयोग में है। वह भारत की सांस्कृतिक एकता का अनिवार्य आधार बन गई है। वह तमाम निराशावादियों की आशंकाओं को रौंदती हुई एक संश्लिष्ट और समंजित इकाई के रूप में निरंतर विकासमान है। वह राष्ट्रीय संपर्क भाषा से ऊपर उठकर विश्व भाषा की गरिमा का संस्पर्श कर रही है। जब हम हिंदी की विश्वव्याप्ति और वैश्विक भाषा के रूप में अद्यतन स्थिति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि आज हिंदी संपूर्ण विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारतवर्ष की विकासशील जनसंख्या हिंदी के प्रसार का एक बड़ा कारण है। आज हिंदी अनेक बोलियों से समन्वित भाषा है। उसका देश-विदेश में अपना संयुक्त परिवार है। आज जितने लोग

मातृभाषा अथवा पहली भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, उससे कहीं अधिक लोग उसका प्रयोग द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और विदेशी भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। इस समय संपूर्ण विश्व में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिल रहा है। फलतः हिंदी संपूर्ण विश्व में 65 करोड़ लोगों की पहली भाषा और 50 करोड़ लोगों की दूसरी और तीसरी भाषा है। वह गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, तेलंगाना तथा पूर्वोत्तर के भारतीय राज्यों और अधिकांश केंद्र शासित प्रदेशों तथा नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, फ़ीजी, मॉरीशस, थाईलैंड, सूरीनाम, त्रिनिदाद और गयाना जैसे देशों में दूसरी एवं तीसरी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। शेष विश्व में लगभग 20 करोड़ लोगों द्वारा चौथी, पांचवी और विदेशी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इस तरह संपूर्ण विश्व में 135 करोड़ लोग किसी-न-किसी रूप में हिंदी बोल अथवा समझ लेते हैं। यही पद्धति अंग्रेजी और चीन की भाषा मंदारिन का आकलन करने वाले भी अपनाते हैं। अंग्रेजी की संख्या का आकलन करने वाले उन भारतीयों को भी अंग्रेजी बोलने वालों में शुमार करते हैं जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़े हैं। यद्यपि अमेरिकी-ब्रिटिश और ऑस्ट्रेलियाई अंग्रेजी में पर्याप्त अंतर है लेकिन उन्हें अलग भाषा के रूप में उल्लेखित नहीं किया जाता है। ठीक इसी तरह चीन की भाषा मंदारिन भी 56 बोलियों और विभाषाओं से समन्वित है। लेकिन चीन सरकार उन्हें अलग नहीं मानती। चीन में मंदारिन के अलावा कैंटोनी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, यूगुर, तिब्बती, मंगोली और झियांग को भी आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसी तरह यह भी तुलनीय है कि भारत में 82% भारतीय हिंदी बोल अथवा समझ सकते हैं जबकि चीन में केवल 62% लोग ही मंदारिन बोल अथवा समझ पाते हैं। हिंदी को वैश्विक भाषा का दर्जा दिलाने में भारत की विकासमान अर्थव्यवस्था भी है।

इस समय भारत की जनसंख्या 138 करोड़ जबकि अमेरिका की 33 करोड़, कनाडा की लगभग 4 करोड़ , संपूर्ण यूरोप की 75 करोड़, रूस की 15 करोड़ और ऑस्ट्रेलिया की ढाई करोड़ है। कहने का आशय यह है कि इस समय धरती के लगभग 60% हिस्से पर जितनी जनसंख्या रहती है, उससे अधिक जनसंख्या भारत जैसे संपूर्ण विश्व के 6% से भी कम क्षेत्रफल वाले देश में रहती है। इस दृष्टि से भी हिंदी का पलड़ा भारी है। हमारी जनसंख्या हिंदी के संख्याबल का सबसे बड़ा आधार है। डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने भी हिंदी जानने वालों की संख्या का आकलन किया है। इन्होंने अपने शोध में बोलने वालों की संख्या में उर्दू का भी हिंदी के अंतर्गत समावेश किया है जो व्यावहारिक रूप से सही है। चूँकि उर्दू का अपना कोई व्याकरण नहीं है और वह अपनी भाषिक संरचना एवं शब्द-संपदा के लिए मूल रूप से हिंदी पर ही निर्भर है। अतः वह भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से लिपिभेद के बावजूद हिंदी की एक शैली मात्र है। ध्यान रहे यह बात केवल बोलने के संदर्भ में है, हिंदी में काम करने वालों को लेकर नहीं है। इस दृष्टि से चीजों को सही संदर्भ में समझने की अपेक्षा है।

आज डिजिटल विश्व में हिंदी सबसे तीव्र गति से बढ़ने वाली भाषा है। अब स्वयं गूगल का सर्वेक्षण यह सिद्ध करता है कि इंटरनेट पर हिंदी में प्रस्तुत होने वाली सामग्री में विगत 5 वर्षों में 94%

की दर से इजाफा हुआ है जबकि अंग्रेजी केवल 19% की दर से बढ़ रही है। इस समय भारत में 75 करोड़ लोगों के पास स्मार्ट फोन है, जिसमें से 63 करोड़ से अधिक लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं। भारत के 93% युवा यू-ट्यूब पर हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। भारतीयों द्वारा हर महीने गूगल प्ले स्टोर से एक अरब ऐप्स डाउनलोड किए जाते हैं। हिंदी वॉयस सर्च क्वेरी 400% की दर से प्रतिवर्ष बढ़ रही है और सोशल मीडिया हिंदी जानने वालों का सबसे बड़ा पटल बन गया है। इस समय जो तकनीकी सुविधा अंग्रेजी में उपलब्ध है वह हिंदी में भी उपलब्ध है। इस समय अंग्रेजी की तुलना में फेसबुक, ट्विटर पर हिंदी ज्यादा लोकप्रिय है। इसका सबसे बड़ा कारण अभिव्यक्ति की सरलता है। इसलिए अंग्रेजी की तुलना में हिंदी में प्रस्तुत होने वाली सामग्री ज्यादा शेयर भी की जाती है। अब ब्लॉगिंग के महासागर में हिंदी की उत्ताल तरंगें देखी जा सकती हैं। भारत निकट भविष्य में विश्व का सबसे बड़ा इंटरनेट उपभोक्ता बनने जा रहा है, जिसका सबसे प्रभावी माध्यम हिंदी रहने वाली है। सोशल मीडिया के कारण अब ई-मेल भी अप्रासंगिक हो रहा है। अब भाषाओं का प्रशिक्षण भी ई-लर्निंग के माध्यम से संभव है। हिंदी में इस समय जो वेब लिंक्स उपलब्ध हैं। उनमें राष्ट्रीय पोर्टल, साहित्य कोश और शब्दकोश संबंधी पोर्टल, शिक्षा एवं हिंदी शिक्षण संबंधी पोर्टल, धर्म एवं खेल संबंधी पोर्टल, पत्र-पत्रिकाओं तथा विविध चैनलों के पोर्टल का समावेश है। एक नवीनतम सूचना यह भी है कि नेट फेलिक्स (Netflix) अब पूरी तरह से हिंदी में उपलब्ध है। आप अमेजॉन पर भी हिंदी में आदेश भेज सकते हैं। संक्षेप में, आज वे सारी तकनीकी सुविधाएँ जो विश्व की किसी भी भाषा के पास हैं, वे हिंदी में या तो उपलब्ध हैं अथवा बनने की प्रक्रिया में हैं।

जब हम भाषाओं के भविष्य पर विचार करें तो यह भी जरूरी है कि हम उनके इतिहास और वर्तमान स्वरूप को भी समझ लें। हिंदी लगभग एक हजार सालों से अलग-अलग रजवाड़ों और जनपदों में राजकीय भाषा रही है। वह स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में संवाद का मुख्य जरिया बनकर उभरती है और खैबर के दर्रे से लेकर रंगून तक वह स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति का स्वाभाविक माध्यम बनती है। अपनी इसी ऐतिहासिक भूमिका के कारण वह स्वतंत्र भारत की राजभाषा बनती है। वह लंबे समय तक नेपाल की भी दूसरी राजभाषा रही है, जिसका दर्जा वहाँ की कम्युनिस्ट सरकार ने समाप्त कर दिया है। हिंदी इस समय भारत के अलावा फ़ीजी एवं संयुक्त अरब अमीरात में भी आधिकारिक भाषा बन गई है। अब संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपना ट्विटर हैंडल हिंदी में आरंभ कर दिया है। उसकी वेबसाइट भी हिंदी में उपलब्ध है। वह हर शुक्रवार एक घंटे का हिंदी कार्यक्रम रेडियो पर प्रस्तुत कर रहा है। अभी हाल ही में भारत सरकार के प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र संघ ने हिंदी में भी कामकाज करने और सूचनाएँ देने की सुविधा प्रदान की है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी संयुक्त राष्ट्र संघ और हर अंतरराष्ट्रीय मंच पर हिंदी में अपनी बात बड़े प्रभावी ढंग से रखते हैं, जिससे उनकी वैश्विक लोकप्रियता में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। इसी तरह अमेरिकी जनगणना के अनुसार सन 2000 से 2011 के बीच अमेरिका में हिंदी बोलने वाले 105% की दर से बढ़े हैं। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि विश्व के जितने भी विकसित राष्ट्र हैं। उन सबने अपनी भाषा में विकास

किया है। यह बात अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, इजरायल और चीन तक समान रूप से देखी जा सकती है। इजरायल जैसे छोटे से राष्ट्र ने हिब्रू में उत्कृष्ट तथा मौलिक शोधकार्य करके अब तक 12 नोबेल पुरस्कार प्राप्त किए हैं। ये सारे देश अपनी भाषाओं के विकास पर बड़ी धनराशि खर्च करते हैं। इसकी तुलना में भारत सरकार हिंदी एवं भारतीय भाषाओं पर बहुत कम धनराशि खर्च करती है। इन देशों की सरकारें ऐसी योजनाएँ प्रस्तुत करतीं हैं कि उनकी भाषा और साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़े और विश्व समुदाय की उन्मुखता उनकी ओर बनी रहे। हम भारत सरकार से भी यही अपेक्षा रखते हैं। यह तभी संभव है जब समूचा हिंदी जगत सरकार पर दबाव बनाए। हम भारत सरकार को इस बात के लिए तैयार करें कि वह विश्व के तमाम देशों में हिंदी और भारतीय भाषाओं की स्थिति का आकलन करने के लिए विद्वानों-विशेषज्ञों की एक समिति गठित करे। जो हर दस साल की जनगणना के बाद हिंदी और भारतीय भाषाओं की वस्तुस्थिति का खाका तैयार करे। इसी के साथ भारत में परिचालन करने तथा अंधाधुंध कमाई करने वाली तमाम कंपनियों का यह कर्तव्य सुनिश्चित किया जाए कि वे अपनी सेवाएँ हिंदी और भारतीय भाषाओं में दें। उनके विज्ञापन में हमारी भाषाओं को यथोचित सम्मान मिले। चूंकि लिपि भाषा का शरीर है अत: देवनागरी तथा दूसरी भारतीय लिपियों के प्रयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

यह हर्ष का विषय है कि आज भारत विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाले अर्थ व्यवस्था है और अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उसकी हैसियत लगातार बढ़ रही है। जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वत: महत्वपूर्ण हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान-सदृश है। अब हिंदी राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगा सागर बनने की प्रक्रिया में है। आज विश्वस्तर पर उसकी स्वीकार्यता और व्याप्ति अनुभव की जा सकती है। आने वाला समय हिंद और हिंदी का है। इस समय हिंदी राजनीति, समाज-व्यवस्था, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पर्यटन, मनोरंजन, मीडिया, खेल और रोजगार के क्षेत्र में सबसे प्रभावी भाषा बनकर उभरी है। हमें एकजुट होकर अंग्रेजी के खिलाफ खड़े होना चाहिए। हिंदी और भारतीय भाषाओं को हम शिक्षा का माध्यम बनवाकर अपनी भाषाओं के भविष्य को सदा-सर्वदा के लिए सुरक्षित कर सकते हैं। हमें अपनी सरकारों को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे शिक्षा का माध्यम हिंदी और भारतीय भाषाओं को रखें और अंग्रेजी दूसरी विदेशी भाषाओं की तरह एक भाषा के रूप में सिखाई जाए। ऐसा करके ही हम आगामी चुनौतियों के लिए अपने युवाओं को सक्षम, समझदार तथा नवाचार के योग्य बना सकते हैं। तभी वे विश्वस्तरीय मौलिक शोधकार्य कर सकेंगे। यह दौर खुली एवं विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा का है। इस युग का मंत्र है:- 'स्पर्धा में जो उत्तम ठहरे रह जावें।' हम अपने नौनिहालों को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में ही विश्वस्तरीय प्रतियोगिता के योग्य बना सकते हैं। यदि भारत को विश्व गुरु की अपनी स्वाभाविक छवि पुन: प्राप्त करनी है तो यह हिंदी और भारतीय भाषाओं द्वारा ही संभव है। हम विदेशी भाषा में विश्वगुरु नहीं बन सकते हैं।

संक्षेप में, हिंदी संपूर्ण भारत की समन्वयवादी संस्कृति और एकता की प्रतीक बन गई है। वह समस्त भारतीय भाषाओं और अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के बीच सेतु का कार्य कर रही है। वह बदलते समय के अनुरूप अपने आपको समायोजित करते हुए भारतीय जन-मन की आकांक्षा को प्रतिबिंबित कर रही है। वह भारतीय संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन और पुरस्करण कर रही है। इतना तय है कि आने वाले समय में विश्व की बड़ी भाषाओं का भविष्य और वर्चस्व बढ़ेगा लेकिन जिन उपभाषाओं और बोलियों के बोलने वाले बहुत कम हैं उनके समक्ष अस्तित्व का संकट उपस्थित होगा। इन बोलियों को भी डिजिटलकरण द्वारा सुरक्षित किया जा सकता है। इस दिशा में विश्व समुदाय को और भी गंभीर होने की जरूरत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम नवीनतम तकनीक का सदुपयोग करके भारतीय भाषाओं के समक्ष आसन्न संकट का सफलतापूर्वक सामना कर सकेंगे। इसी दिशा में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप एक बड़ा कदम उठाया गया है। इस दृष्टि से यह स्वाधीन भारत का सबसे बड़ा प्रयास है। हमारी वर्तमान सरकार इसी वर्ष से अभियांत्रिकी और चिकित्सा की पढ़ाई हिंदी में आरंभ करवाकर एक बड़े लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा चुकी है। वर्तमान भारत सरकार में अनेक मंत्रालय अपना कार्य हिंदी के माध्यम से ही संपन्न कर रहे हैं। आज सचमुच हिंदी विश्व की सबसे तीव्र गति से बढ़ने वाली भाषा बन गई है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि आज संपूर्ण भारतीय भाषाओं में क्या लिखा जा रहा है, इसकी सूचना भी हिंदी के माध्यम से ही संपूर्ण देश और विश्व को मिल रही है। वह समस्त भारतीय भाषाओं के मध्य सेतु बनाने का कार्य कर रही है। हमारी सांस्कृतिक-सामाजिक और भाषिक एकता की जड़ें कितनी गहरी हैं। हिंदी उसके प्रतिबिंबन का सबसे सशक्त माध्यम है। फलस्वरूप वह अपने विकासमान व्यक्तित्व की भाँति अपनी उपादेयता का भी निरंतर उन्नयन कर रही है। हिंदी अपनी सर्वसमावेशी दृष्टि के बलपर नवीनतम तकनीकी आविष्कृतियों तथा वैश्विक माध्यमों में अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज करा रही है। वह अपने विश्वबोध और विराटता के द्वारा न केवल राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता का मेरुदंड बनी हुई है अपितु विश्व के तमाम देशों में कार्यरत अनिवासी तथा प्रवासी भारतीयों के मन में भारत प्रेम की तरलता को बनाए हुए है। वह राष्ट्रभाषा की सार्थकता को सिद्ध करते हुए विश्व-भाषा की शक्ति तथा संभावना से अनुप्राणित होकर 21 वीं शती की आकांक्षा का प्रतिनिधित्व कर रही है। फलस्वरूप वह अपने वैभव तथा उज्ज्वल भविष्य के प्रकर्ष की ओर निरंतर विकासमान है। वह सही मायने में वैश्वीकरण के दौर की प्रमुख भाषा के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर रही है। फलस्वरूप उसका भविष्य अतिशय उज्ज्वल है।

❑❑

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार

—रेखा राजवंशी

आजकल प्रवासी भारतीय संपूर्ण विश्व में उपस्थित हैं। अनुमानत: दुनिया के डेढ सौ से अधिक देशों में आज दो करोड़ से अधिक भारतीय है। अधिकांश प्रवासी भारतीय अपने देश और भाषा से प्रेम करते हैं और अपनी संस्कृति अपने बच्चों तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। भारतीय भाषाओं में हिंदी लोकप्रिय होती जा रही है। जैसे-जैसे भारत आर्थिक शक्ति बनता जा रहा है, वैसे-वैसे हिंदी भी लोकप्रिय हो रही है। इसकी लोकप्रियता में बॉलीवुड, योग और व्यापारिक अवसरों का बहुत हाथ रहा है। 1999 में टोकियो विश्वद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने जो भाषाई आंकड़े प्रस्तुत किए थे, उनके अनुसार विश्व में चीनी भाषा बोलने वालों का प्रथम और हिंदी का द्वितीय तथा अंग्रेजी का तृतीय स्थान है।

विदेशों में चालीस से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही हैं। आजकल अहिंदी भाषी भी हिंदी सीखने प्रयास कर रहे हैं। विदेश में हिंदी भाषी लोगों को निम्न कुछ वर्गों में बाँट सकते हैं–

1. वो लोग जहाँ भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे- पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालदीव आदि।
2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जैसे- इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि।
3. जहाँ हिंदी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश।
4. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे- संयुक्त अरब अमरीरात (दुबई), अफगानिस्तान, कतर, मिस्र, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि।

विदेशों में हिंदी की स्थिति, प्रचार तथा प्रसार को लेकर अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। यूनेस्को ने सात प्रमुख भाषाओं में हिंदी को भी जोड़ा है। मीडिया संसाधनों ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य से लेकर टीवी और फिल्म जैसे बड़े कारोबार इसे लोकप्रिय बनाने में शामिल है। भारतीय दूतावास भी हिंदी के प्रचार-प्रसार की ओर ध्यान दे रहे हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी:

अन्य देशों की तरह ऑस्ट्रेलिया में भी सरकार ने हिंदी भाषा को मान्यता प्रदान की है। ऑस्ट्रेलिया में बोले जाने वाली करीब तीन सौ भाषाओं में विविध भारतीय भाषाएँ भी हैं। हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, पंजाबी, गुजराती आदि हैं। ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी अन्य देशों की भाँति पुष्पित, पल्लिवत हुई है। 2021 की जनगणना के नवीनतम आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि नए भारतीय प्रवासी भारत से तेजी से आ रहे हैं। नए आँकड़ों के अनुसार, ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषी लोगों की संख्या 197,000 से अधिक है, जबकि 2016 में 159,652 थी। जिसका मतलब है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। ऑस्ट्रेलिया में हिंदी पठन-पाठन, हिंदी साहित्य और हिंदी अनुवाद भी विकसित हो रहा है। प्रवासी हिंदी प्रेमियों के प्रयास से इस लेख में इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला जाएगा। ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न राज्यों में हिंदी शिक्षण की सुविधा उपलब्ध है—

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण:

ऑस्ट्रेलिया में उन्नीस सौ सत्तर के दौरान हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण मंदिरों में शुरू हुआ जब लोगों ने साहित्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन मंदिरों में शुरू किया। 2011 में ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार के आदेश पर अकारा (ACARA) यानि ऑस्ट्रेलियन करिकुलम एसेसमेंट एंड सर्टिफिकेशन ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए हिंदी का चयन किया। 2012 में, तत्कालीन ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने "ऑस्ट्रेलिया इन द एशियन सेंचुरी" सरकार का श्वेत पत्र जारी किया। उन्होंने घोषणा की, कि हिंदी को प्राथमिकता वाली भाषा के रूप में माना जाएगा- हर स्कूली बच्चा हिंदी सीखने में सक्षम होगा। आजकल यहाँ हिंदी, विद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा है, और हिंदी का कक्षा 1 से 12 तक राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है।

ऑस्ट्रेलिया के विद्यालयों में हिंदी शिक्षण:

ऑस्ट्रेलिया सरकार की भाषा संबंधी नीति के अनुसार कुछ विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा का प्रावधान है। कुछ संगठन और व्यक्ति निजी रूप से हिंदी की शिक्षा प्रदान करते हैं। यद्यपि उन्हें सरकार के शिक्षा विभाग की तरफ से कुछ सहायता दी जाती है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। 1986 में विक्टोरिया में मेलबर्न के ब्रिंजविक नगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहले हिंदी की कक्षाएँ प्रारंभ हुईं। 1993 में 11वीं 12वीं कक्षाओं में हिंदी पठन-पाठन को मान्यता मिल गई, जिससे अनेक विद्यार्थियों ने हिंदी पढ़ना प्रारंभ किया। 1993 में विक्टोरिया की सरकार ने 11वीं

और 12वीं कक्षा में हिंदी भाषा को हाईस्कूल में मान्यता दी। बाद में यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों में भी प्रदान की गई। आज विद्यार्थी 12वीं कक्षा की हिंदी परीक्षा में बैठ सकते हैं।

सिडनी के हिंदी विद्यालयों में मुख्य हैं बाल भारती इंडो ऑस्ट विद्यालय, जहाँ पिछले पैंतीस साल से रविवार हिंदी की कक्षाएँ लगाई जा रहीं हैं। विद्यालय का प्रारंभ माला मेहता तथा समुदाय के अन्य लोगों ने मिलकर किया। अब इस स्कूल ने मुख्य धारा के कुछ विद्यालयों में आफ्टर स्कूल हिंदी की कक्षाएँ लगानी शुरू की हैं। साउथ एशियन हिंदी स्कूल कोगरा, AHMA स्कूल ऑफ़ लैंगवेजेस ग्रीन वैली हिंदी स्कूल, लिवरपूल आर्ट्स एंड कल्चर हिंदी विद्यालय, फ़ीजी के हिंदी विद्यालय भी हिंदी पढ़ाते हैं। ऑस्ट्रेलिया में रामकृष्ण हिंदी एंड कल्चरल स्कूल, कैनबरा में कैनबरा हिंदी विद्यालय चल रहे हैं। निजी व्यक्तियों द्वारा अनेक उपनगरों में हिंदी की शिक्षा प्रदान की जाती है।

पर्थ में हिंदी समाज का हिंदी स्कूल आदि हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं। कुछ सरकारी विद्यालय हिंदी का शिक्षण मुख्य धारा के अंतर्गत करवाते हैं। जैसे न्यू साउथ वेल्स का वेस्ट राइड पब्लिक स्कूल पहला स्कूल था। जहाँ पिछले 28 साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। आजकल न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण की सुविधा कुछ स्कूलों में उपलब्ध हो गई है। 2023 से वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा कक्षा एक से कक्षा बारह तक के पाठ्यक्रम में शामिल हो जाएगी। न्यू साउथ वेल्स में हिंदी शिक्षण की सुविधा कक्षा सात से बारह तक के विद्यार्थियों के लिए शनिवार के विद्यालय, सेवन हिल्स में प्रदान की जा रही है। हिंदी ऑस्ट्रेलिया के विद्यालयों में कैसे पढ़ाई जाए। इसके लिए विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज़ और ऑस्ट्रेलिया हिंदी शिक्षा संघ जैसी संस्थाओं का प्रयास जारी है। सन् 2019 में सिडनी विश्वविद्यालय की साझेदारी में सिडनी इंस्ट्टियूट ऑफ़ कम्यूनिटी लैंग्वेजेज़ एजुकेशन की स्थापना की गई। जिसका कार्य शिक्षकों को मार्गदर्शन प्रदान करना और पाठ्यक्रम संसाधनों का विकास और आकलन भी करना है। इसमें हिंदी के संसाधन विकसित रहे हैं।

ऑस्ट्रेलिया में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षणः

तृतीय स्तर पर, हिंदी पहली बार ऑस्ट्रेलिया में 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा पेश की गई थी। 1997 में ऑस्ट्रेलिया में छह विश्वविद्यालय थे, जिनमें हिंदी पढ़ाई जाती थी। जब कि आज केवल दो विश्वविद्यालयों ऑस्ट्रेलियन नैशनल यूनिवर्सिटी कैनबरा और लॉ ट्रोब युनिवर्सिटी मेलबर्न में ही हिंदी पढ़ाई जा रही है। हालाँकि दोनों विश्वविद्यालय संसाधन की कमी से जूझ रहे हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के सीनियर लेक्चरर डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर ने राष्ट्रीय की दो हिंदी शिक्षण की कार्यशालाएँ भी आयोजित करीं। जबकि लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी में डॉ. इयन वुलफई हिंदी के प्राध्यापक हैं। पहले जिन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती थी उनमें से सिडनी विश्वविद्यालय और मोनाश, रॉयल मेलबर्न इंस्ट्यूट ऑफ

टेक्नोलॉजी में हिंदी की शिक्षा बंद कर दी गई। सिडनी यूनिवर्सिटी में भी हिंदी शिक्षण होता था पर करीब दस साल पहले बंद हो गया और उसके बाद यूनिवर्सिटी के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में हिंदी उपलब्ध थी। जो पिछले पाँच साल से बंद हो गई। चूँकि भारतीय अंग्रेजी बोल लेते हैं तो ऑस्ट्रेलिया के लोगों को हिंदी सीखने की आवश्यकता नहीं लगती।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी साहित्यः

ऑस्ट्रेलिया में भारतीयों के आगमन के साथ-साथ ही हिंदी कविताओं और कहानियों का लेखन शुरू हुआ। हिंदी प्रेमी साहित्यकारों ने मंदिरों में मिलना जुलना शुरू किया और अपने प्रवासी अनुभवों को कविता या कहानी माध्यम से अभिव्यक्त करना शुरू किया। समय-समय पर काव्य पाठ का आयोजन होने लगा। सिडने में लगभग तीन दशक पूर्व हिंदी समाज की स्थापना हुई। उसी के फलस्वरूप इंडिया लीग (यूआईए), श्री मंदिर, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय संगठनों का गठन हुआ। इसी बीच में हिंदी साहित्य और कविता आदि पर जोर देने वाले इच्छुक लोगों की अनौपचारिक साहित्यिक बैठकें होने लगीं। 1979 से इन प्रयासों को औपचारिक रूप दिया गया। इसके बाद हिंदी समाज द्वारा प्रकाशित पत्रिका चेतना 1992 से 2002 तक चली जिसका संपादन हिंदी समाज की अध्यक्ष डॉ. शैलजा चतुर्वेदी ने किया। इंडिया डाउन अंडर जैसे समाचार पत्र भी उन्हीं दिनों आए जिसकी संपादक नीना बधवार ने बाद में एक पृष्ठ हिंदी में भी निकालना शुरू किया। सन् 2010 के बाद लेखिका, कवियित्री रेखा राजवंशी ने इंडियन लिटरेरी एवं आर्ट सोसाइटी ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया की (इलासा) स्थापित की। संस्था ने हिंदी के कई कार्यक्रम आयोजित किए। डॉ. कुंवर बेचैन, अशोक चक्रधर, खुशबीर सिंह शाद के काव्य पाठ के अलावा सिडनी यूनिवर्सिटी में ऑस्ट्रेलिया हिंदी सम्मेलन का आयोजन भी सम्मिलित है। इसी संस्था ने सिडनी के संसद भवन में युवा लोगों को प्रोत्साहन के लिए कविता प्रतियोगिता का अयोजन भी किया। भारतीय विद्या भवन ने भी हिंदी के प्रसार के लिए कुछ कार्यक्रम आयोजित किए।

अब तक तीन साझा काव्य संकलन आ चुके हैं। रेखा राजवंशी के संपादन में ऑस्ट्रेलिया के कवियों के दो काव्य संकलन प्रकाशित हुए। पहला काव्य संग्रह 'बूमरैंग - ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ' 2010 में रेखा राजवंशी के संपादन और मेलबर्न के सुभाष शर्मा और पर्थ के प्रेम माथुर के सह संपादन में किताबघर से प्रकाशित हुआ। इसके बाद हिंदी और उर्दू के कवियों का दूसरा द्विभाषी काव्य संकलन 'गुलदस्ता' भारतीय विद्या भवन के सौजन्य से प्रकाशित हुआ। जिसका संपादन कवि अब्बास रज़ा अल्वी और भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष गंभीर वत्स ने किया। रेखा राजवंशी द्वारा संपादित 'बूमरैंग 2 ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ' संकलन में छह शहरों के चालीस कवियों की कविताएँ संकलित हैं। ऑस्ट्रेलिया का पहला साझा कहानी संकलन, जिसमें बीस लेखकों की बीस कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं, शीघ्र प्रकाशित होगा। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा द्वारा प्रकाशन के लिए स्वीकृत किया गया है।

सिडनी के अन्य कवियों की पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। रेखा राजवंशी, कविता, कहानी, नज़्म, ग़ज़ल, संग्रह, अनुवाद अनिल वर्मा कविता संग्रह, विजय कुमार सिंह उपन्यास कविता संग्रह, डॉ. शैलजा चतुर्वेदी कविता संग्रह, डॉ. निहाल अगर कविता संग्रह, श्रीमती विमला लुथरा कविता संग्रह, भावना कुंअर दोहा, हाइकु, चौका, कविता संग्रह, प्रगीत कुंअर–दोहा संग्रह, संजय अग्निहोत्री उपन्यास मुख्य हैं। विवेक आसरी की भी एक पुस्तक प्रकाशित है। अन्य युवा लेखकों में मृणाल शर्मा मुख्य हैं। ऑस्ट्रेलिया का सबसे पुराना हिंदी अखबार 'हिंदी समाचार पत्रिका' फ़ीजी के परशुराम महाराज ने प्रकाशित किया। कई वर्षों तक यह समाचार पत्रिका' प्रकाशित हुई। उसके बाद 2010 के दौरान एक और हिंदी समाचार पत्र 'हिंदी गौरव' प्रकाशित होना शुरू हुआ। अब यह समाचार पत्र ऑनलाइन उपलब्ध है। इसके अलावा 2011 जुगनदीप सिंह के संपादन में कुछ वर्ष पहले यहाँ 'हिंद एक्सप्रेस' नाम से एक अखबार निकला परंतु हिंदी पाठकों की रुचि और वित्तीय सहायता के अभाव में अखबार बंद करना पड़ा। भावना कुंअर गत वर्ष से त्रैमासिक ऑनलाइन 'ऑस्ट्रेलियान्चल' पत्रिका का संपादन करती हैं। अब रेखा राजवंशी के संपादन में अनन्य ऑस्ट्रेलिया ऑनलाइन पत्रिका न्यूयॉर्क कौंसलावास की वेबसाइट पर प्रकाशित हो रही है।

डॉ. सुभाष शर्मा द्वारा प्रदत्त जानकारी के अनुसार मेलबर्न में साहित्य संध्या की पौध राधेश्याम जी और रतन जी ने लगाई, जिसे बाद में सुभाष शर्मा, हरिहर झा, नलिन शारद आदि कवियों ने संभाला। औपचारिक रूप से साहित्य संध्या का आयोजन पिछले बीस वर्षों से हो रहा है। 1992 में पत्रिका 'देवनागरी' का प्रकाशन भी शुरू हुआ था। इसके संपादक सदस्यों में डॉ. श्रीवास्तव, सुधा जोशी और शशि कोछड़ थे। देवनागरी का प्रथम अंक अक्टूबर 1992 में प्रकाशित हुआ था और संभवतया अंतिम अंक 1998 में प्रकाशित हुआ था। डॉ. इयान वुल्फोर्ड ने अक्टूबर 2017 में लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी में हिंदी सम्मलेन आयोजित किया, जिसमें ऑस्ट्रेलिया के हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों के अतिरिक्त भारत से भी मृणाल पांडे और अदिति माहेश्वरी आमंत्रित थे। इसके अतिरिक्त अनेकों कवियों और लेखकों की पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। हिंदी पुष्प के प्रकाशन का प्रारंभ 2003 में South Asia Times (SAT) के परिशिष्ट के रूप में हुआ था। डॉ. दिनेश श्रीवास्तव जी इसके संपादक थे, सुधा जी और मृदुला इसमें मुख्य रूप से 'सहायक की भूमिका निभाते थे। डॉ. श्रीवास्तव के देहावसान के पश्चात् दो वर्ष से मृदुला कक्कड़ हिंदी पुष्प के संपादन का कार्य संभाल रही हैं। मेलबर्न के अंग्रेजी समाचार पत्र साउथ ईस्ट एशिया टाइम्स में मृदुला कक्कड़ के संपादन में दो पृष्ठ का 'हिंदी पुष्प' बराबर प्रकाशित हो रहा है। मेलबर्न में हरिहर झा की रचनाएँ अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित हैं। डॉ. कौशल श्रीवास्तव की पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी कविताएँ, लेख आदि नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। डॉ. सुभाष शर्मा ने बूमरैंग 1 और 2 में सह–संपादन किया है। नए कवियों मे संध्या नायर, पूजा व्रत गुप्त जैसे युवा कवि भी अच्छी कविताएँ रच रहे हैं। कवि, लेखक कुशल कुशलेंद्र जी द्वारा प्रदत्त सूचना के अनुसार पर्थ में 'हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' हिंदी साहित्य की दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रहा है।

हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया पिछले 25 वर्षों से हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सतत रूप में प्रयासरत है। हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया हिंदी भाषा से जुड़े विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे साहित्य संध्या, इंद्रधनुष, कलम दवात इत्यादि आयोजित करता रहा है। हिंदी समाज पिछले पच्चीस वर्षों से, 'भारत-भारती' के नाम से वार्षिक पत्रिका भी छापता आ रहा है, जिसमें मुख्यत: स्थानीय लेखकों को बढ़ावा दिया जाता है। हिंदी समाज के रजत जयंती वर्ष के उपलब्ध में 2021 में स्थानीय 14 स्थानीय कवियों का एक कविता संग्रह 'स्वान नदी के तट से' प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त वहाँ श्रीमती सावित्री गोस्वामी, श्रीमती लक्ष्मी तिवारी, श्रीमती रीता कौशल, संगीता बंसल और कुशल कुशलेंद्र की पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। पर्थ के वरिष्ठ कवि प्रेस माथुर जी दिल्ली विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के भूतपूर्व प्राध्यापक बूमरैंग 1 और 2 के सह-संपादक रह चुके हैं। ज्योति माथुर, कविता और अन्य अनेक कवि भी लेखन कार्य में सलंगन हैं। कैनबरा में साहित्यकार किशोर नंगरानी के प्रयासों के फलस्वरूप कुछ कवि सम्मेलन आयोजित हुए, जिनमें सिडनी और मेलबोर्न के कवियों ने भाग लिया। कैनबरा के साहित्यकारों में किशोर नंगरानी, डॉ. अवधेश प्रसाद, अभिजीत देवनाथ मुख्य हैं। एडिलेड शहर में कवि डॉ. राय कूकणा साहित्य सृजन कर रहे हैं। डॉ. राय कूकणा का कार्य अनुभूति और बूमरैंग 1-2 में प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त प्रशांत श्रीवास्तव व अन्य हिंदी प्रेमी भी हिंदी साहित्य और शिक्षण के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं।

निष्कर्ष: अगर विदेशों में हिंदी का संवर्धन और विकास करना है तो इस दिशा में निरंतर प्रयास करने होंगे। हिंदी को रोजगार से जोड़ना होगा। आज की नई तकनीक से जोड़ते हुए रोचक, शिक्षाप्रद सामग्री विकसित करनी होगी। विदेशों में युवा वर्ग के लिए ऐसी प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित करनी होगी जो उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करें। दृश्य सामग्री, अंतरजाल, यूट्यूब, स्पीच टू टेक्सट जैसी तकनीक उन तक पहुँचानी होंगी। यह आवश्यक है कि इस बारे में निरंतर विचार विमर्श किया जाए और हिंदी के प्रचार-प्रसार द्वारा अपनी अगली पीढ़ी को बराबर हिंदी से जोड़ने का प्रयास जारी रखा जाए।

❑❑

'न्यूज़ीलैंड' में हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा

—रोहित कुमार हैप्पी

इस छोटे से देश 'न्यूजीलैंड' में हिंदी का इतिहास लगभग एक शताब्दी पुराना है। हिंदी लेखन के साक्ष्य 1930 और हिंदी शिक्षण के प्रमाण 1945 के आसपास के मिलते हैं लेकिन हिंदी की वास्तविक उपस्थिति 1990 के अंतिम चरण से होती है। इस समय हिंदी प्रसारण और प्रकाशन आरंभ हुए। हर भाषा में देशज, विदेशी और संकर शब्दों का समावेश उसकी विकास यात्रा का स्वाभाविक अंग है।

देशज: वे शब्द होते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति की जानकारी नहीं होती। इनकी व्युत्पत्ति बोलचाल के आधार पर स्वत: हो जाती है। इन्हें देशी/देसी शब्द भी कहा जाता है।

विदेशी: विदेशी भाषा/भाषाओं से आये शब्दों को विदेशी या विदेशी शब्द कहा जाता है।

संकर: दो भिन्न भाषाओं के योग से बनने वाले नए शब्द को संकर शब्द कहा जाता है।

प्रवासियों के लिए इनका विशेष महत्व हैं चूंकि जिस देश में वे आ बसते हैं, उसकी अपनी सभ्यता, इतिहास और भाषा होती है और प्रवासियों को उससे सामंजस्य स्थापित करना होता है। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप दो भाषाओं के बीच भी सामंजस्य हो जाता है। यूँ तो हिंदी में अनेक अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के शब्द अपना स्वाभाविक स्थान बना चुके हैं, उसी प्रकार हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के भी अनेक शब्द अब इंग्लिश शब्दकोश में सम्मिलित हो चुके हैं। न्यूजीलैंड की अंग्रेजी में अनेक शब्द यहाँ की 'माओरी' भाषा के भी हैं। यथा स्वाभाविक ही है कि न्यूजीलैंड में उपयोग की जाने वाली हिंदी में भी वे अपना स्थान बनाएँ। बहुत से व्यक्तियों के नाम, स्थानों के नाम व प्रचलित शब्दावली के शब्दों का हिंदीकरण होना इस प्रक्रिया का अंग है।

हिंदी स्थानीय करण:

न्यूजीलैंड में उपयोग की जाने वाली हिंदी में कई विदेशी और संकर शब्दों का उपयोग अवश्यंभावी है। न्यूजीलैंड के लिए 'आओटियारोआ' लिखा जाना प्रचलन में है। अभिवादन के लिए

'किया ओरा (Kiaoran~èk, किसी बैठक, सम्मेलन, सभा के लिए 'हुई' (Huin~èk, स्वागत और आइए/प्रवेश कीजिए के लिए 'हायरेमाइ'। 'हाका' पारंपरिक माओरी नृत्य को कहा जाता है, 'कोहा' उपहार (आमतौर पर पैसा, भोजन या कीमती सामान जो अतिथि द्वारा मेजबानों को दिया जाता है) के लिए उपयोग होता है। इसी प्रकार 'फानो' विस्तृत परिवार के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के अनेक शब्द हैं, जो न्यूजीलैंड में उपयोग की जाने वाली हिंदी में प्रचलित हो रहे हैं। इन शब्दों को विदेशी हिंदी शब्द/वाक्य कहा जा सकता है। अब न्यूजीलैंड के कुछ संकर शब्दों को देखिए 'भानाफानो' 'भाना' गुजरात से आए भारतीयों का उपनाम है और 'फानो' माओरी में 'विस्तृत परिवार' के लिए उपयोग होता है। 'भानाफानो' माओरी-भारतीय हैं। न्यूजीलैंड की 1951 की जनगणना में दर्ज 3,151 भारतीयों में से 253 माओरी भारतीय मूल के थे। दस वर्षों पश्चात 1961 की जनगणना में न्यूजीलैंड में भारतीयों की जनसंख्या में अधिक बढ़ोतरी नहीं हुए लेकिन माओरी-भारतीयों की संख्या में असामान्य रूप से वृद्धि हुई और इनकी संख्या उस समय 454 थी।

अब कुछ अन्य शब्द देखिए कीवी इंडियन (न्यूजीलैंडर भारतीय), एफ.बी. आई (फ़ीजी बोर्न इंडियन / फ़ीजी में पैदा हुआ भारतीय) इत्यादि शब्द न्यूजीलैंड में उपयोग की जाने वाली हिंदी के 'संकर शब्दों/वाक्यों के उदाहरण हैं। फ़ीजी हिंदी में भी अनेक शब्द देशज, विदेशी और संकर हैं। फ़ीजी हिंदी में अवधी, मैथिली, हिंदी, भोजपुरी, उर्दू के अनेक देशज और विदेशी शब्द होना तो स्वाभाविक है। फ़ीजी हिंदी में भी संकर शब्दों के कुछ उदाहरण मिल जाएँगे जैसे, 'सोता मारो' (Sotaa Maro), यहाँ सोता फ़ीजियन भाषा का शब्द है और 'मारो' हिंदी का। इसका अर्थ है, 'गोता मारो।'

न्यूजीलैंड में भारतीय पत्रकारिता का युग:

न्यूजीलैंड की हिंदी पत्रकारिता पर चर्चा करने से पहले आवश्यक होगा कि हम न्यूजीलैंड की समूची पत्रकारिता से परिचित हों ताकि हमें हिंदी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि का ज्ञान हो। न्यूजीलैंड की भारतीय पत्रकारिता का इतिहास एक शताब्दी पुराना है। भारतीय पत्रकारिता की बात करें तो सबसे पहला प्रकाशित पत्र था, 'आर्योदय' जिसके संपादक थे, 'जे के नातली', उप संपादक थे, 'पी.वी. पटेल' व प्रकाशक थे 'रण छोड़ के. पटेल'। भारतीयों का यह पहला पत्र 1921 में प्रकाशित हुआ था परंतु यह जल्दी ही बंद हो गया। यह पत्र गुजराती में था। एक बार फिर 1935 में 'उदय' नामक पत्रिका प्रभु पटेल के संपादन में आरंभ हुई, जिसका सह-संपादन किया था 'कुशल मधु' ने। पहले पत्र की भाँति इस पत्रिका को भी भारतीय समाज का अधिक सहयोग नहीं मिला और पत्रिका को बंद कर देना पड़ा। उपर्युक्त दो प्रकाशनों के पश्चात लंबे अंतराल तक किसी पत्र-पत्रिका का प्रकाशन नहीं हुआ। 90 के दशक में पुनः अंग्रेजी में 'संदेश' नामक एक पत्र प्रकाशित हुआ व कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद बंद हो गया। इसके बाद 'द इंडियन टाइम्स', 'इंडियन पोस्ट', 'पेस्फिकस्टार', 'इस्टएंडर' और 'द फ़ीजी-इंडिया एक्सप्रेस' का प्रकाशन हुआ किंतु एक के बाद एक बंद हो गए। यह सभी पत्र अंग्रेजी में थे। वर्तमान में 'इंडियन न्यूजलिंक' व 'इंडियन वीकएंडर', 'इंडियन न्यूज' इत्यादि अंग्रेजी में प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी पत्रकारिता:

नब्बे के दशक में न्यूजीलैंड में हिंदी पढ़ने वाले लोग तो थे लेकिन कोई हिंदी का प्रकाशन नहीं था। भारतीय संस्कृति, भाषा व साहित्य को प्रचारित-प्रसारित करने का कोई सुदृढ़ माध्यम भी नहीं था। इसी को देखते हुए एक हिंदी पत्रिका के प्रकाशन की योजना अंकुरित हुई। विदेश में हिंदी का प्रकाशन लगभग असंभव था। नब्बे के दशक के आरंभिक दौर में कई स्थानीय प्रिंटर ऐसे प्रकाशन के लिए अपनी असमर्थता जता चुके थे। हाँ, हस्तलिखित सामग्री का 'ऑफसेट प्रिंटिंग' में प्रकाशन संभव था लेकिन बहुत सरल न था। न्यूजीलैंड की हिंदी पत्रकारिता का अध्याय 1996 में 'भारत-दर्शन' पत्रिका के प्रकाशन से आरंभ माना जाएगा। 1921 से 1990 तक की 'न्यूजीलैंड भारतीय पत्रकारिता' के इतिहास का गहन अध्ययन करने के पश्चात पुन: एक हिंदी लेखक व पत्रकार ने 'भारत-दर्शन' पत्रिका के प्रकाशन व संपादन का बीड़ा उठाया। हिंदी भाषा का प्रेम व भारतीय समाज की आवश्यकताओं हेतु एक नन्ही-सी पत्रिका का जन्म हुआ, जो शीघ्र ही विश्व-पटल पर 'हिंदी पत्रकारिता' का नया इतिहास रचने वाली थी। बिना किसी सरकारी या गैर-सरकारी आर्थिक सहायता के पत्रिका का प्रकाशन यदि असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है लेकिन हिंदी प्रेमियों के स्नेह ने हर दिन नई ऊर्जा प्रदान की।

इधर कंप्यूटर पर काम करना लोकप्रिय होने लगा था। कंप्यूटर पर हिंदी टंकण की संभावनाएँ तलाशी गई। भारत से कुछ हिंदी फॉन्ट लाए गए जिनमें न्यू देहली, सूर्या, नारद इत्यादि सम्मिलित थे। ये फॉन्ट आजकल वाले सरल-सुलभ फॉन्ट न होकर 'पोस्ट स्क्रिप्ट फॉन्ट' थे। जिसके लिए एक विशेष फॉन्ट मैनेजर की आवश्यकता होती थी और फॉन्ट को स्थापित/प्रतिष्ठित (इंस्टाल) करना भी एक काम था। सो 'हिंदी फॉन्ट' की बड़ी समस्या रहती थी। अब विंडोज 3.1 ऑपरेटिंग सिस्टम पर फॉन्ट इंस्टाल हो गए और टंकण पर हाथ भी आजमा लिए गए। पत्रिका हेतु न्यूजीलैंड की नेशनल लायब्रेरी से आई.एस.एस.एन. ले लिया गया। 'डिजिटल प्रिंटिंग' आरंभ होने से प्रिंटिंग की समस्या किसी हद तक हल हो गई। पत्रिका को कंप्यूटर पर तैयार कर मुद्रण हेतु भेज दिया गया। 1996 में 'भारत-दर्शन' का प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित होकर आया और इसके पहले अंक से ही आई.एस.एस.एन. 1173-9843 पत्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित कर दिया गया। भारत-दर्शन का मुद्रण भी पारंपरिक 'ऑफसेट प्रिंटिंग' न होकर 'डिजिटल' था। पहला अंक ए 5 के आकार का, 'श्वेत-श्याम' (Black on White) व 8 पृष्ठ का था। पत्रिका तैयार होकर आ गई और पत्रिका को सभी मुख्य भारतीय दुकानों व संस्थाओं के माध्यम से वितरित किया गया। इसके अतिरिक्त समारोहों व साप्ताहिक मंडियों में जाकर इसे व्यक्तिगत रूप से बाँटा गया। पत्रिका निशुल्क थी। यह भी ध्यान रखा गया कि पत्रिका अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँच सके और इसके लिए एक रोचक युक्ति का उपयोग किया गया। पत्रिका के अंतिम पृष्ठ पर बड़े शब्दों में प्रकाशित किया गया था—

"कृपया इस पत्रिका को पढ़ने के बाद फेंके नहीं बल्कि किसी और हिंदी प्रेमी को पढ़ने को दे दें। पत्रिका के प्रचार-प्रसार में आपके योगदान के लिए आभार!" भारत-दर्शन आरंभ करने से पहले 'रोहित कुमार' ने 'द इंडियन टाइम्स' पत्र (जो कि अंग्रेजी में होता था) में रहते हुए उसमें 'हस्तलिखित' हिंदी पन्ने' आरंभ किए थे। 'द इंडियन टाइम्स' पत्र का प्रकाशन व संपादन आफ़िफ शाह करते थे बाद में यह पत्र 'कुंअर सिंह' ने सँभाल लिया। न्यूजीलैंड भारतीय पत्रकारिता में हिंदी प्रकाशन का अध्याय आंशिक रूप से 'द इंडियन टाइम्स' में 1992 में हस्तलिखित हिंदी रिर्पोटों के प्रकाशन से आरम्भ होता है, तथापि वास्तविक हिंदी प्रकाशन का श्रेय 'भारत-दर्शन' पत्रिका को जाता है चूंकि यही पत्रिका पूर्ण रूप से न्यूजीलैंड का पहला हिंदी प्रकाशन कहा जा सकता है।

'द इंडियन टाइम्स' में हस्तलिखित हिंदी का आरंभ भी इन्हीं पंक्तियों के लेखक ने ही किया था और बाद में भारत-दर्शन का संपादन-प्रकाशन भी। आरंभिक दौर में अनुरोध करने पर मूल रूप से फ़ीजी से संबंध रखने वाले मास्टर महेन्द्रचंद्र विनोद शर्मा ने भी काका हाथरसी की एक-दो रचनाएँ अपनी हस्तलिपि में लिखकर दीं, जो हमने 'द इंडियन टाइम्स' में प्रकाशित की। स्व. मास्टर महेन्द्र चंद्र विनोद शर्मा (एम. सी. विनोद शर्मा) फ़ीजी के पत्र 'शांति दूत' के संपादक रह चुके थे और बाद में न्यूजीलैंड के निवासी हो गए थे।

भारत-दर्शन का दूसरा अंक आते-आते पत्रिका अत्यंत लोकप्रिय हो चुकी थी। पाठक निरंतर और अधिक सामग्री का अनुरोध करने लगे थे। अत: पत्रिका में चार और पृष्ठ जोड़े गए। अब पत्रिका का तीसरा अंक 12 पृष्ठ का था। 1997 में 'भारत-दर्शन' का इंटरनेट संस्करण उपलब्ध करवाया गया, इसके साथ ही पत्रिका को 'इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन' होने का गौरव प्राप्त हुआ और विश्वभर में फैले भारतीयों ने 'भारत-दर्शन' की हिंदी सेवा की सराहना की।

न्यूजीलैंड की हिंदी पत्रिकाएँ:

पत्रिकाओं की बात करें तो हिंदी की इस यात्रा में 'भारत-दर्शन' के साथ कई साथी पत्रिकाएँ आरंभ हुईं किंतु वे अल्पजीवी ही रह पाईं। भारत-दर्शन के पहले मुद्रित अंक के दो संस्करण निकले थे। पहला अंक निकलते ही हाथों-हाथ चला गया और इसकी माँग को देखकर इसी अंक का दूसरा संस्करण निकालना पड़ा। पहले अंक का यह संस्करण अगस्त-सितंबर 1996 में प्रकाशित हुआ था लेकिन इसके पृष्ठ पर केवल अंक-1, वर्ष-1 प्रकाशित है। इस समय तक पत्रिका का आई.एस.एस.एन. (ISSN) भी नहीं आया था लेकिन इसी अंक के दूसरे संस्करण में महीने का नाम और आई.एस.एस.एन. (ISSN) भी मुद्रित है। यथा इसपर अंक-1 अक्तूबर-नवंबर वर्ष-1 ISSN 1173-9843 प्रकाशित है। भारत-दर्शन की पत्रकारिता और लेखन केवल पठनीय सामग्री परोसने और मनोरंजन तक सीमित नहीं है। भारत-दर्शन ने नैतिक मूल्यों को भी बढ़ावा देने पर बल दिया। प्रकाशनार्थ सामग्री का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा कि सामग्री नैतिक मूल्यों पर खरी उतरती हो। यह

प्रयास रहा कि सत्साहित्य का वितरण हो, जिससे विचारों का प्रदूषण दूर हो और एक सुदृढ़ और स्वस्थ समाज का निर्माण हो। आपके लेखन के परिणाम असीमित हो सकते हैं। आपका लेखन किसी का जीवन परिवर्तित कर सकता है, उसका मार्गदर्शन कर सकता है और सामाजिक बदलाव ला सकता है।

शांति सरोवर—1996 में विश्व शांति आश्रम ने स्व. एम सी विनोद शर्मा के संपादकत्व में 'शांति सरोवर' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका का पहला अंक 10 नवंबर, 1996 को निकला। यह पत्रिका ए4 आकार की, रंगीन मुखपृष्ठ की पत्रिका थी जिसकी सामग्री अंग्रेजी में थी लेकिन कुछ पन्ने हिंदी में थे। कुल 38 पृष्ठ के इस अंक में अंतिम 9 पृष्ठ हिंदी के थे। पहला अंक दीवाली अंक था। इसके अगले अंकों में हिंदी के पन्ने बढ़े लेकिन कुछ अंकों के बाद पत्रिका बंद हो गई।

महिके वतन न्यूजीलैंड—2003 में एक पंजाबी-हिंदी पत्रिका, 'महिके वतन न्यूजीलैंड' नाम से प्रकाशित हुई, इसमें भी हिंदी के पृष्ठ थे। इसका मूल शीर्षक पंजाबी (गुरुमुखी) में मुद्रित था लेकिन उसके नीचे हिंदी में भी मुद्रित था। इसके केवल कुछ ही अंक प्रकाशित हुए। इसका प्रकाशन न्यूजीलैंड इंडियन स्पोर्ट्स एंड कल्चरल एसोसिएशन और संचालन हरदेव बराड़ कर रहे थे।

धनक—न्यूजीलैंड की 'उर्दू हिंदी कल्चरल एसोसिएशन ऑफ न्यूजीलैंड' 2012 से एक वार्षिक पत्रिका 'धनक' प्रकाशित करती है। इस पत्रिका का संपादन पहले प्रीता व्यास करती रही हैं। इस पत्रिका में संस्था की प्रचार सामग्री, छायाचित्र इत्यादि के अतिरिक्त हिंदी सामग्री भी प्रकाशित होती है।

गुलदस्ता—यह पत्रिका मई 2015 से आरंभ हुई थी। कुछ समय तक 'गुलदस्ता' मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई लेकिन वर्तमान में इसका मुद्रित संस्करण उपलब्ध नहीं है लेकिन इसका वेब संस्करण उपलब्ध है। इसका संपादन नीलम मधु करती रही हैं।

पहचान—पहचान त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका है। यह 2022 में आरंभ हुई। इसके अभी तक दो अंक प्रकाशित हो चुके है। इसका संपादन प्रीता व्यास करती हैं।

न्यूजीलैंड के हिंदी समाचार-पत्र:

कूक—मार्च 2005 से जून 2008 के बीच 'कूक हिंदी समाचार' ऑकलैंड में प्रकाशित होता रहा। समाचार-पत्र के रूप में यह न्यूजीलैंड का पहला हिंदी समाचार-पत्र था। यह पंजाबी समाचार-पत्र 'कूक' का हिंदी संस्करण था। पंजाबी पत्र अब भी प्रकाशित हो रहा है लेकिन हिंदी संस्करण 2008 में बंद हो गया। इसका प्रकाशन 'किन क्रिएशन इंटरनेशनल' (Kin Creations International) द्वारा किया जा रहा था। कूक से पहले आंशिक रूप से 'द इंडियन टाइम्स' में हिंदी सामग्री प्रकाशित होती रही है और इसके बाद भी कुछ अल्प आयु प्रकाशनों ने आंशिक रूप से हिंदी प्रकाशित की है।

अपना भारत—नवंबर, 2019 में 'अपना भारत' नाम से एक हिंदी समाचार-पत्र आरंभ हुआ। कुछ अंकों के पश्चात इस पत्र के मुद्रित संस्करण को ई-पत्र के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सोहनलाल मित्तल और देव भारद्वाज इसके प्रकाशक रहे हैं।

इंडियंज़ एक्सप्रेस—वैलिंगटन से प्रकाशित होने वाले इस पत्र में आंशिक रूप से हिंदी सामग्री भी प्रकाशित होती है। इनकी वेबसाइट पर हिंदी समाचार प्रकाशित होते हैं। इसका संपादन वैलिंगटन से आलोक गुप्ता करते हैं। यह मासिक समाचार-पत्र है।

इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन:

हिंदी वेब पत्रकारिता का आरंभ न्यूजीलैंड से प्रकाशित भारत-दर्शन (साहित्यिक पत्रकारिता) के रूप में 1997 से हुआ। भारत-दर्शन का मुद्रित संस्करण 1996 से चल ही रहा था। यह पत्रिका न्यूजीलैंड से प्रकाशित होती थी। 1997 में इसके वेब संस्करण ने इसे विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन बना दिया। अब 'भारत-दर्शन' को 'इंटरनेट पर विश्व की पहली हिंदी साहित्यिक पत्रिका' होने का गौरव प्राप्त हो चुका था। विश्व भर में फैले भारतीयों ने 'भारत-दर्शन' की हिंदी सेवा की सराहना की। नवंबर-दिसंबर 1998 में भारत-दर्शन अपने डोमेन (bharatdarshan.co.nz) पर उपलब्ध हो गया। इससे पहले यह ज़ूम डॉट कॉम और एशिया फोकस पर सब-डोमेन के रूप में उपलब्ध थी। वेब हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता का उदय निर्विवाद 'भारत-दर्शन' के रूप में स्वीकार किया गया। वर्तमान में भारत-दर्शन हिंदी न्यू मीडिया में अग्रणी है और इस समय इंटरनेट पर सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली ऑनलाइन हिंदी साहित्यिक पत्रिका है।

भारत-दर्शन के वेब संस्करण के कुछ समय के बाद 1998-99 में ही भारत से 'दैनिक जागरण' ने अपना वेब संस्करण आरंभ करके वेब पर अपनी उपस्थिति दर्ज की। हालाँकि दैनिक जागरण ने अपना डोमेन 1997 में ही पंजीकृत करवा लिया था लेकिन इसकी वेब उपस्थिति 1998-99 में ही दर्ज हुई। दिसंबर 1998 में दैनिक जागरण टाइप करने पर उनकी साइट पर जाया जा सकता था लेकिन वहाँ कुछ उपलब्ध नहीं था। दैनिक जागरण की ऑनलाइन सामग्री फरवरी 1999 में उपलब्ध होने के प्रमाण हैं। हिंदी वेब साहित्यिक पत्रकारिता पर चर्चा करने से पहले कुछ तथ्य स्पष्ट करना शोधार्थियों के लिए हितकर होगा। वेब पर हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता की शुरुआत व इसे स्थापित करने में प्रवासी भारतीयों की विशेष भूमिका रही है। इंटरनेट पर जो पहले तीन साहित्यिक प्रकाशन उपलब्ध हुए, वे थे:

- इंटरनेट पर हिंदी का पहला प्रकाशन 'भारत-दर्शन' 1997 था। इसका मुद्रित प्रकाशन पहले ही प्रकाशित हो रहा था। अब यह पत्रिका इंटरनेट पर विश्व का पहला प्रकाशन व वेब पर पहली हिंदी साहित्यिक पत्रिका बन गई। मुद्रित पत्रिका में 1997 में वेब लिंक प्रकाशित है।

- 'भारत-दर्शन' के बाद 1999 में अमरीका से 'बोलोजी' प्रकाशित होने लगी, जिसमें कुछ पृष्ठ हिंदी के होते थे। राजेन्द्र कृष्ण इसका प्रकाशन करते थे। उस समय इसके हिंदी पृष्ठों का संपादन पूर्णिमा वर्मन करती थीं। यह इंटरनेट पर हिंदी साहित्य का दूसरा प्रकाशन था।
- तीसरा प्रकाशन था पूर्णिमा जी की 'अभिव्यक्ति' पत्रिका जो 2000 में शारजहा से प्रकाशित होने लगा।

दिलचस्प बात यह है कि वेब पर प्रकाशित उपर्युक्त ये तीनों प्रकाशन भारत से प्रकाशित न होकर न्यूजीलैंड, अमरीका व शारजहा से प्रकाशित हुए थे। ये तीनों प्रकाशन प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित व संपादित हो रहे थे। यह तथ्य कि हिंदी वेब साहित्यिक-पत्रकारिता विदेश से आरंभ हुई और इसको आगे बढ़ाने वाली अन्य मुख्य पत्र-पत्रिकाएँ भी विदेश की धरती से ही वेब पर आईं, कई शोधार्थियों को हतप्रभ कर सकता है।

हिंदी वेब साहित्यिक-पत्रकारिता के विदेश में अंकुरित होने के कारण:

इसका एक विशेष कारण है, भारत से विदेश में आ बसे उन सभी लोगों की जिनकी रुचि पठन-पाठन में थी, को साहित्यिक तुष्टि की आवश्यकता थी। यह सरलता से समझा जा सकता है चूंकि जिस देश में वे आ बसे थे, वहाँ अपनी भाषा में पढ़ने व साहित्यिक अभिरुचि के अनुरूप सामग्री उपलब्ध नहीं थी। यह पहला मुख्य कारण था। दूसरा कारण यह था कि विकसित देशों में जनसामान्य को इंटरनेट सरल सुलभ था। वेब होस्टिंग, डोमेन इत्यादि पाना अपेक्षाकृत आसान था।

वैश्विक स्तर पर भारतीय वेब और हिंदी वेब पत्रकारिता:

वैश्विक स्तर पर यदि हम भारतीय वेब पत्रकारिता और हिंदी वेब पत्रकारिता पर दृष्टिपात करें तो भारतीय पत्रकारिता में वेब पत्रकारिता का आरंभ 1995 में अँग्रेजी समाचारपत्र 'द हिंदू' से हुआ। भारत में हिंदी वेब पत्रकारिता का उदय 1997 के अंत में दैनिक जागरण से हुआ और उसके बाद 1998 में अमर उजाला व दैनिक भास्कर ने भी वेब पर अपनी उपस्थिति दर्ज की। 1999 में वेब दुनिया और नई दुनिया ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया लेकिन विश्व पटल पर हिंदी वेब पत्रकारिता 1997 में न्यूजीलैंड के माध्यम से आरंभ हो चुकी थी। दैनिक जागरण ने अपने आरंभिक दौर में साहित्य के अंतर्गत कुछ समय तक भारत-दर्शन की कड़ी (लिंक) जोड़े रखी थी। कुछ वर्षों के बाद बीबीसी हिंदी जैसे मीडिया दिग्गजों ने भी वेब मीडिया की महत्ता को समझते हुए 2001 में अपना वेब संस्करण आरंभ किया। वेब के मानचित्र पर हिंदी का नाम 'भारत-दर्शन' ने अंकित किया। भारत-दर्शन के पास हिंदी प्रकाशन, खोजी पत्रकारिता, साहित्यिक पत्रकारिता, सर्च इंजन का अनुभव, ग्राफिक, मल्टिमीडिया और डेस्कटॉप पब्लिशिंग का अनुभव था। जिसने इसे अपनी गुणवत्ता स्थापित करने और स्तरीय पत्रकारिता में अपना स्थान बनाने में सहायता की। विश्व हिंदी सचिवालय ने अपनी 'विश्व हिंदी पत्रिका' के 2015 के अंक में विश्व के प्रमुख हिंदी प्रकाशनों में 'भारत-दर्शन' को भी स्थान दिया।

रोहित कुमार हैप्पी

इंटरनेट पर 'भारत-दर्शन':

1996 के शुरुआती दिनों में न्यूजीलैंड की एक लायब्रेरी में पहले-पहल इंटरनेट को जानने व इसका उपयोग करने का अवसर मिला। जब किसी हिंदी पत्र-पत्रिका को खोजना चाहा तो कोई परिणाम नहीं आया। भारतीय (इंडियन) पत्र-पत्रिका खोजने पर 'द हिंदू' के दर्शन हुए जो अँग्रेजी में था। लायब्रेरियन से इस बारे में पूछा तो उसने कुछ देर खोजने में सहायता करने के बाद इस बात की पुष्टि की कि 'हिंदी' का कोई प्रकाशन इंटरनेट पर नहीं है। बस तभी दिमाग में यह आया कि यदि नहीं है, तो होना चाहिए और 'भारत-दर्शन' को इंटरनेट पर प्रकाशित करने के काम में जुट गए। परिणाम स्वरूप कुछ समय बाद 'भारत-दर्शन इंटरनेट पर प्रकाशित होने लगा।' इंटरनेट बहुत तेज गति से आगे बढ़ रहा है। बहुत से संसाधन जो आरंभिक काल में अत्यधिक लोकप्रिय और उपयोगी थे, आज उनमें से अनेक अनुपस्थित हैं। इसी प्रकार किसी समय में अत्यंत लोकप्रिय रही हिंदी की अनेक वेबसाइट बंद हो चुकी हैं और बहुत-सी वेब प्रौद्योगिकी में आते तेज परिवर्तनों का दंश झेल रही हैं। आज यह आवश्यक है कि वेब प्रकाशक को वेब पत्रकारिता में उपयोग किए जाने वाले संसाधनों और आधुनिक प्रौद्योगिकी की जानकारी हो।

❑❑

विदेश में हिंदी का वैश्वीकरण

—नीलू गुप्ता

अमेरिका में भारतीय भाषाओं में हिंदी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। लगभग 6.5 लाख से भी अधिक लोग हिंदी बोलते हैं। अमेरिकी जनगणना ब्यूरो ने साल 2017 के लिए जो अमेरिकी कम्युनिटी सर्वे रिपोर्ट जारी की है, उसके मुताबिक, अमेरिका की कुल जनसंख्या यानी 30.5 करोड़ लोगों में से करीब 21.8 फीसदी लोग अपने घरों, आपसी सामुदायिक व्यवहार और दूसरे कार्यों के लिए अंग्रेजी की बजाए दूसरी भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इसमें भारतीय मूल के लोगों की बड़ी संख्या है। इन भारतीयों में सबसे बड़ी संख्या हिंदी वालों की है। दूसरे नंबर पर गुजराती और उसके बाद तेलुगू भाषी हैं। अमेरिकी जनगणना ब्यूरो के मुताबिक, अमेरिका में रह रहे भारतीय मूल के अमेरिकी लोगों में से 26 लाख 10 हजार भारतीय ऐसे हैं, जिनका जन्म भारत में हुआ है। इसके अलावा भारी संख्या उन लोगों की भी है, जिनके माता-पिता में से किसी एक या दोनों का जन्म भारत में हुआ है। हिंदी को लेकर अमेरिकी भारतीय समुदाय पहले से ही सचेत और कार्यशील है। यहाँ मंदिरों और भारतीयों के सामुदायिक केंद्रों में रविवार और दूसरी छुट्टियों के दिन हिंदी पढ़ाई और सिखाई जाती है। यहाँ के येल, न्यूयॉर्क और विनकांसन विश्वविद्यालयों में पहले से ही हिंदी की पढ़ाई हो रही है। इन विश्वविद्यालयों में छात्रों की तादाद भी हर साल बढ़ती जा रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान जनसंख्या 32 करोड़ से ज्यादा है। यह दुनिया में सबसे ज्यादा आबादी के मामले में चीन और भारत के बाद तीसरे स्थान पर आता है। एक रिपोर्ट के मुताबिक साल 2014 में अमेरिका में 0.7 परसेंट हिंदू थे। अब यह बढ़कर 1 प्रतिशत से ज्यादा हो गए हैं।

विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी तीसरे स्थान पर आती है। अमेरिका में बोली जाने वाली अनेकों भाषाओं में 2.16 के कम्यूनिटी सर्वे के अनुसार हिंदी 11 वें स्थान पर आती है। परंतु अमेरिका में बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में हिंदी प्रथम स्थान पर आती है। यहाँ के न्यायालयों, स्वास्थ्य विभाग में, सुरक्षा विभाग में ही नहीं बल्कि प्रत्येक विभाग में हिंदी के अनुवादक की भी नियुक्ति की जाती है। क्योंकि यहाँ रहने वाले हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है कि

वह अपनी मातृभाषा बोलने वाले अनुवादक की माँग कर सकता है। यहाँ भारतीय बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। इस कारण हिंदी बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए। परंतु भारतीयों के अँग्रेजी में पारंगत होने के कारण तथा भारत बहुभाषी देश होने के कारण, हिंदी को बहुत बढ़ावा नहीं मिल पाता है। 2017 के सर्वे के अनुसार 810,000 लोग हिंदी बोलते हैं। 3.6 मिलियन लोग अमेरिका में साउथ एशियन भाषाएँ बोलते हैं। जिसमें हिंदी के अतिरिक्त अन्य उर्दु, गुजराती, बंगाली, मराठी, तामिल, तेलुगु इत्यादि भाषाएँ आती है। किंतु फिर भी हिंदी अपनी बढ़त बनाए हुए अमेरिका में प्रथम सोपान पर है। समस्त सरकारी सूचनाएँ, वोटिंग इत्यादि से संबंधित सूचनाएँ भी हिंदी में उपलब्ध होती हैं। काउन्टी की रिसोर्स गाइड वगैरह का भी अन्य विदेशी भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी अनुवाद होता है। कहना न होगा कि विविध भारतीय भाषाओं में हिंदी भाषा को ही अमेरिका में मान्यता मिली अमेरिका में प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय स्तर पर हिंदी पठन-पाठन संबंधी कोई भी सरकारी व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। पाठ्यक्रम में हिंदी भाषा को कोई भी स्थान नहीं दिया गया है। परंतु अमेरिका के कुछ प्रांतों के शहरों में, बहुत सी जगहों पर प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चस्तरीय हिंदी पठन-पाठन संबंधी व्यवस्था है। जहाँ प्राइवेट रूप से शनिवार रविवार को हिंदी पढ़ाई जाती है। न्यूयार्क में 'यू.एस हिंदी' के नाम से आसपास के क्षेत्रों में विभिन्न स्थानों पर 4000 के लगभग विद्यार्थी हिंदी पढ़ते हैं और भारतीय संस्कृति से रूबरू होते हैं।

"जानो इंडिया" नाम से संस्था, अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रांत में विभिन्न शहरों के स्कूलों मे, स्कूल के समाप्त होने पर यह कार्यक्रम चलाती है। इसमें न केवल हिंदी भाषा सिखाई जाती है बल्कि भारतीय सभ्यता संस्कृति से भी अवगत कराया जाता है। सभी त्योहारों को लेकर भी विशेष कार्यक्रम किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वी पश्चिमी (East West) अमेरिका के 15-20 प्रांतों के मंदिरों में और घर पर भी बच्चों के लिए कक्षाएँ चलाई जाती हैं और इनमें भी भाषा के साथ संस्कृति का भी समन्वय रहता है। इनमें प्रमुख प्रांत हैं वाशिंगटन डीसी, न्यूयार्क, न्यूजर्सी, मैरीलैंड, कनेक्टिकट, जोर्जिया, ओहायो, इंडियाना, शिकागो, पेन्सुलवेनिया, ह्यूस्टन, ऑस्टिन, डलास, कैलिफोर्निया, साउथ कैरोलाइना, नार्थ कैरोलाइना, ऑरलेंडो इत्यादि। देश के विश्वविद्यालयों से पहले देश के महाविद्यालय की बात करें तो अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रांत के कुपरटीनो शहर में डी एंजा नाम का महाविद्यालय है। इस कॉलेज में 12 विदेशी भाषाएँ सीखने का प्रावधान है, जिसमें जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश इत्यादि के समानांतर हिंदी को भी सम्मिलित किया गया है। हाईस्कूल में पढ़ते हुए कॉलेज जाने के लिए विद्यार्थियों को किसी एक विदेशी भाषा का अध्ययन करना आवश्यक होता है। विदेश की धरती अमेरिका में हिंदी के लिए यह मान्यता मिलना, अपने आप में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यहाँ हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। कॉलेज प्रवेश के लिए अनिवार्य भाषा के क्रेडिट हिंदी भाषा के लिए भी दिए जाते हैं। 2006 से ये कक्षाएँ यहाँ अनवरत रूप से चल रही हैं। 400-500 से अधिक युवा विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिंदी भाषा का अध्ययन करते हैं। यहाँ पर 2006 से हिंदी 1, हिंदी 2 और हिंदी 3 की शिक्षिका नीलू गुप्ता हैं।

देश के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण एवं पाठ्यक्रम की स्थिति काफी अच्छी है। अमेरिका के विभिन्न प्रांतों के विभिन्न शहरों में साउथ एशियन स्टेडीज के नाम से विभाग बने हैं। इनमें बी.ए., एम.ए और पी-एच डी. तक हिंदी में शिक्षा का प्रावधान है किंतु विद्यार्थियों की संख्या काफी कम होती है। लगभग 100 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। एक-एक प्रांत में दो-दो, तीन-तीन विश्वविद्यालय हैं। न्यूयार्क में न्यूयार्क यूनिवर्सिटी, कैलिफोर्निया में बर्कले यूनिवर्सिटी, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी और डेविस यूनिवर्सिटी। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, प्रिन्स्टन यूनिवर्सिटी, टैक्सास यूनिवर्सिटी, ड्यूक यूनिवर्सिटी, शिकागो यूनिवर्सिटी, पेनन्सुलेवेनि या यूनिवर्सिटी इत्यादि अनेकों विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का उच्च स्तर पर प्रावधान है। कहना न होगा कि अमेरिका में ऐसी अनेकों सक्रिय हिंदी की स्वयं सेवी संस्थाएँ हैं, जो अनवरत रूप से हिंदी के प्रचार-प्रसार में विभिन्न माध्यमों से लगी हुई हैं। उनकी गतिविधियाँ अत्यंत सराहनीय हैं, जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हिंदी के चरण पखार रही हैं और हिंदी को अमेरिका की भूमि पर स्थापित कर रही हैं।

अमेरिका के पूर्वी क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, 'विश्वा' नाम से पत्रिका निकलती है। प्रति माह स्थानीय कवि सम्मेलन तथा प्रति वर्ष अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मेलन, वार्षिकोत्सव करती है। देश विदेश से आए हिंदी सेवियों को सम्मानित करती है। अमेरिका में इसके विभिन्न प्रांतों में इसकी शाखाएँ भी हिंदी की सेवा में लगी हुई हैं। विश्व हिंदी न्यास भी हिंदी संबंधी अनेकों कार्य कर रही है। इनकी पत्रिका 'हिंदी जगत' के नाम से निकलती है। विश्व हिंदी समिति न्यूयार्क से 'सौरभ' नाम से पत्रिका निकालती है। नार्थ कैरोलाइना से 'विभोम स्वर, निकलती है। 'सेतु' नाम से पिट्सबर्ग से पत्रिका निकलती है। पश्चिमी क्षेत्र में विश्व हिंदी ज्योति 'कौस्तुभ' नाम से पत्रिका निकालती है। प्रति माह स्थानीय कवि सम्मेलन तथा प्रतिवर्ष अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मेलन, वार्षिकोत्सव के साथ-साथ समय-समय पर देश विदेश से आए हिंदी रचनाकारों का सम्मान भी करती है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में रत यह संस्था हिंदी के पठन पाठन के लिए निःशुल्क कक्षाएँ भी चलाती है। विश्व हिंदी समिति की पत्रिका सौरभ, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की पत्रिका विश्वा, व हिंदी क्लब ऑफ इलिनॉय की पत्रिका दृष्टि सहित कई हिंदी पत्रिकाएँ इस समय अमेरिका की भूमि से प्रकाशित हो रही हैं। साहित्यिक अभिरुचि वाली पत्रिकाओं के अलावा अमेरिका की धरती से हिंदी में प्रकाशित होने वाला एक प्रमुख हस्ताक्षर 'संयुक्त राष्ट्र समाचार' है। मुक्ता सिंह जॉक्की द्वारा अमेरिका से प्रकाशित पत्रिकाओं में प्रसिद्ध हिंदी व अंग्रेजी लेखिका द्वारा संपादित ई-कल्पना लेखकों को मानदेय भी देती है। अभी न्यूयार्क कौन्सलावास के बैवसाइट पर अनन्य पत्रिका प्रारंभ हुई है। हिंदी भाषा के प्रति यह रुझान अत्यंत सराहनीय है।

कोविड के कारण लगभग दो वर्ष से आभासी रूप से भी हिंदी में अन्य देशों के साथ अमेरिका में भी बेबिनार तथा गोष्ठियाँ बहुतायत से हो रही हैं। इससे भी हिंदी के प्रति लोगों का रुझान बढ़ रहा है। हिंदी यू.एस.ए., हिंदी युवा संस्थान, झिलमिल हिंदी विकास मंडल, विश्व हिंदी ज्योति,

महिला काव्य मंच इत्यादि भी हिंदी भाषा के पठन-पाठन के साथ-साथ अन्य हिंदी संबंधी गतिविधियों नाटक, प्रतियोगिता, कथावाचन, लघु कथाएँ, गोष्ठियों इत्यादि में नियमित रूप से कार्यकर रही हैं।

सुनीता जैन, सुरेश राय, सोमा वीरा, सौमित्र सक्सेना, डॉ. श्याम नारायण शुक्ला, डॉ. शकुंतला बहादुर, डॉ. प्रतिभा सक्सेना, प्रो. नीलू गुप्ता, अनूप भार्गव, डॉ. शालिग्राम शुक्ला, सुरेन्द्रनाथ तिवारी, सुभाष काक, स्व. सुषम बेदी, उषा प्रियंवदा, उमेश अग्निहोत्री, अनिल प्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, मधु माहेश्वरी, उषा देवी, विजय कोल्हट्कर, स्व. रामेश्वर अशान्त, कमलेश कपूर, पूर्णिमा गुप्ता, सीमा खुराना, रेणु राजवंशी गुप्ता, विशाखा ठाकुर, सुरेश राय, मिश्रीलाल जैन, शालीग्राम शुक्ल, रचना रम्या, रेखा रस्तोगी, स्वदेश राणा, नरेन्द्र कुमार सिन्हा, अशोक कुमार सिन्हा, अनुराधा चन्दर, डॉ. भूदेव शर्मा, डॉ. वेद प्रकाश सिंह "अरुण" स्नेह ठाकुर, मंजू मिश्रा, धनंजय कुमार, अमरेन्द्र कुमार, अंशु जौहरी, इला प्रसाद, राजश्री शर्मा, कुसुम सिन्हा, ज्ञानेन्द्र सिंह, सौमित्र, सरोज अग्रवाल, वेद प्रकाश सिंह अरुण, नीलम जैन, मीरा सिंह, बबिता श्रीवास्तव, अभिनव शुक्ला, रचना श्रीवास्तव आदि अनेकों ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने हिंदी में लेखन करते हुए, अमेरिका की पृष्ठभूमि में रहकर भारत और अमेरिका की विभिन्नताओं को अपनी कहानियों, कविताओं और उपन्यासों के माध्यम से उकेरा है।

कोविड में आभासी कार्यक्रम के कारण अमेरिका में भी अनेकों मंच बन गए हैं। जिनमें हिंदी की गतिविधियाँ चल रही हैं। इनसे भी हिंदी को बहुत बढ़ावा मिल रहा है। इनमें प्रमुख कैलिफोर्निया की विश्व हिंदी ज्योति, शिकागो की रूट्सटू हिंदी, इत्यादि हैं, जो प्रतिमाह अपनी गोष्ठियाँ करती हैं। वर्तमान में पूर्वलिखित रचनाकारों के सिवा कई अन्य लेखक/लेखिकाएँ हैं, जो लगातार सृजनशील है। यथा-धनंजय कुमार, अमरेन्द्र कुमार, प्रतिभा सक्सेना, अंशु जौहरी, इला प्रसाद, राजश्री शर्मा, कुसुम सिन्हा, ज्ञानेन्द्र सिंह, सौमित्र, सरोज अग्रवाल, अनुराधा चन्दर, वेद्प्रकाश सिंह अरुण, नीलम जैन, बबिता श्रीवास्तव, शकुंतला बहादुर, नीलू गुप्ता, देवी नागरानी, कैलाशनाथ तिवारी, मंजू मिश्रा, मीरा सिंह, रचना श्रीवास्तव आदि। इन तमाम रचनाकारों के एकाधिक काव्य संग्रह, हाइकु संग्रह, कहानी संग्रह, उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं या प्रकाशनाधीन हैं। "वर्तमान साहित्य" "और रचना-समय" के प्रवासी रचनाकार विशेषांकों में उपरोक्त वरिष्ठ लेखकों के साथ इनमें से कतिपय की रचनाएँ संकलित हैं। प्रो. नीलू गुप्ता एवं ऋतुप्रिया खरे ने "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा" नाम से पुस्तक संपादित की है जिसमें आजादी के अमृत महोत्सव पर 75 रचनाकारों ने विश्व के 42 देशों से अपनी कृतियों का योगदान दिया है। इसी प्रकार से अन्य रचनाकारों जैसे इला प्रसाद की अमेरिकी कहानियाँ, मीरा सिंह की लोकगीतों पर आधारित रचना। अन्य बहुत सी पुस्तकें अमेरिका के प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखी गईं हैं। कहना न होगा कि अमेरिका के अधिकतर प्रांतों में, कोविड काल में जूम और गूगल मीट के माध्यम से भी बेबिनार तथा कवि सम्मेलन एक बड़ी संख्या में हुए हैं। इनका भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान रहा है।

आपके देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में हिंदी की स्थिति? अमेरिका में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में हिंदी की स्थिति काफी अच्छी है। भारत के सभी त्योहार जो भारत की सांस्कृतिक धरोहर के वाहक हैं। यहाँ अत्यंत उत्साह और धूमधाम से मनाए जाते हैं। होली, दिवाली, रक्षा बन्धन, नवरात्रि इत्यादि हिंदुओं के त्योहारों में हिंदी का ही बोलबाला रहता है। हिंदी के फिल्मी गानों की बहुतायत तो होती ही है। हजारों की संख्या में यहाँ लोग एकत्रित होते हैं। बातचीत भी भारतीय खान-पान के साथ हिंदी में ही होती है। अंग्रेजी का भी कुछ प्रभाव दिखाई देता है लेकिन वह नगंय होता जा रहा है। आई. आई. टी. से पढ़कर आया हुआ एक बड़ा तबका जो अपने परिवार के साथ यहाँ बड़ी-बड़ी कंपनियों में कार्यरत हैं, वे सब भी घर में हिंदी का वातावरण बनाए हुए हैं। अपने बच्चों को भी अब हिंदी सिखाने के लिए तत्पर रहते हैं और गर्व का अनुभव करते हैं। पंद्रह अगस्त स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गांधी जयंती इत्यादि के आयोजन में भी हिंदी का प्रयोग होता है। छोटे बच्चों से लेकर, युवावर्ग तथा बुजुर्गों की विभिन्न विधाओं में प्रस्तुति रहती है। नाटकों का मंचन तथा रामलीला का पूरे दल बल के साथ मंचन होता है। कैलिफोर्निया के माउंट मडोना का रामलीला मंचन विदेशियों के द्वारा हिंदी में किया जाता है। नार्थ कैरोलाइना में सुधा ओम ढींगरा द्वारा रामलीला का मंचन किया जाता है। रेडियो प्रसारण भी हिंदी में अमेरिका के विभिन्न प्रांतों में हो रहा है। इनमें प्रमुख न्यूयार्क, कैलिफोर्निया,डलास, ह्युस्टन इत्यादि हैं। हिंदी में कवि सम्मेलन भी यहाँ अच्छी भूमिका निबाह रहे हैं। कवि सम्मेलन भी प्रतिवर्ष 25-30 शहरों में होते हैं। हिंदी को बढ़ावा देती हुई, कथक नृत्यशालाएँ तथा अनेकों संगीतशालाएँ भी बहुतायत से हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम में मंदिरों का बहुत बड़ा योगदान है। मंदिरों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है, जिसमें हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा मिल रहा है। साहित्यिक गतिविधियाँ भी हिंदी में बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। गत दस-पंद्रह वर्षों से हिंदी के काव्य ग्रंथ, हाइकु ग्रंथ, कहानी संग्रह, उपन्यास, संस्मरण इत्यादि भी खूब लिखे जा रहे हैं और प्रकाशित भी हो रहे हैं। चीख से चिंतन, माँ धरणी पिता गगन, नारी शक्ति, विविधा इत्यादि अनेकों पुस्तकें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से प्रकाशित हुई हैं।

अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रांत में प्रवासी भारतीयों ने अपने भारत के प्रांत उत्तर प्रदेश, गुजरात, बंगाल इत्यादि सभी ने अपने प्रांत की संस्थाएँ बनाई हुई हैं और इनमें अपने-अपने प्रांत की विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं। उत्तर प्रदेश की संस्था "उपमा ग्लोबल" हिंदी में ही अपने सभी कार्यक्रम करती है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहयोग हेतु भारतीय दूतावास की भूमिका अत्यंत सराहनीय है। हिंदी संबंधी कार्य-कलापों में जैसे कवि सम्मेलन, हिंदी प्रतियोगिताएँ, हिंदी दिवस सितंबर 14, विश्व हिंदी दिवस जनवरी 10 तथा सभी सामाजिक सांस्कृतिक होली, दिवाली इत्यादि कार्यक्रमों में, स्वतंत्रता दिवस अगस्त 15 तथा गणतंत्र दिवस 26 जनवरी, गांधी जयंती अक्तूबर 2 को भारतीय दूतावास से राजदूत तथा काउंसिल जनरल पूर्णतया सहभागी रहते, अमेरिका की सरकार का हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहयोग/ समर्थन का आंकलन करते हुए कह सकते हैं कि अमेरिका में विभिन्न देशों से आए नागरिक बहुसंख्यक हैं, इन सभी को अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य और अपने

अपने धर्म को अपनाने की पूर्ण स्वतंत्रता है। पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी अंग्रेजी के अतिरिक्त बहुत-सी अन्य भाषाओं को भी आप ऐच्छिक रूप से ले सकते हैं, जैसे मैंडरिन (चीनी भाषा)। परंतु हिंदी को अभी वह स्थान प्राप्त नहीं है। प्रयत्न किए जा रहे हैं, सफलता अवश्य मिलेगी। अमेरिका में कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए एक द्वितीय भाषा के क्रेडिट लेने आवश्यक होते हैं। ऐसी लगभग 10-12 भाषाएँ हैं, जैसे स्पैनिश, मैंडरिन, जर्मन, फ्रैंच, जैपनीज, कोरियन, इटैलियन, हिंदी इत्यादि। इन सबका प्रावधान है। 1/11 के हादसे के पश्चात उस समय के अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने संरक्षण (सिक्योरिटी) की दृष्टि से कम बोली जाने वाली भाषाओं को भी प्राथमिकता दी थी। इसके लिए हिंदी उर्दू के लिए बहुत सी वित्तीय सहायता देकर फौज में भर्ती होने वालों के लिए कैलिफोर्निया और वाशिंगटन डी सी में " डी.एल.आई. फौरन लैंग्वेज सैंटर (DLIFLC) में हिंदी का भी प्रावधान किया गया था। अमेरिका के विभिन्न प्रांतों जैसे न्यूयार्क, वाशिंगटन डी. सी., ओहायो, ह्यूस्टन, कैलिफोर्निया में सरकार की ओर से "स्टारटॉक" के नाम से भी शिक्षिकाओं तथा विद्यार्थियों के लिए ग्रीष्मावकाश में निःशुल्क हिंदी भाषा सीखने का प्रावधान किया गया था। अमेरिका के Wisconsin प्रांत में भी हर वर्ष समस्त भाषाओं का दो-तीन दिन का साहित्यिक बृहद आयोजन NCOLCTL Annual Conference (कम प्रयोग में आने वाली भाषाओं) के नाम से होता है। जिसमें समस्त विश्व के भाषा-भाषी आते हैं। इसमें भी अमेरिका के हिंदी भाषी अपनी हिंदी भाषा का प्रदर्शन विविध रूपों, पुस्तक मेला, शोधकार्यों इत्यादि के द्वारा करते हैं। अमेरिका की साल्टा (साउथ एशियन लैंग्वेज टीचर एसोसिएशन) नामक हिंदी संस्था भी सक्रिय है।

अन्त में कहना चाहूँगी कि हिंदी भाषा तथा भारतीय सभ्यता संस्कृति की जड़ें अमेरिका में बखूबी जमी हुई हैं। होली, दिवाली, डांडिया रंगारंग में 10,000 लोगों की उपस्थिति इसकी साक्षी है। परंतु फिर भी यहाँ के भारतीय निवासियों की संख्या देखते हुए बहुत कम है। हर भारतीय को, हर हिंदी भाषी को अपना जमीर जगाना होगा। अपनी भाषा का परचम लहराना होगा। जहाँ भी रहें, अपनी धरोहर को अपने नवाँकुरों को सौंपना न भूलें। पाँच साल का बच्चा जब यहाँ अपनी हिंदी भाषा में कविता सुनाता है और कहता है मेरी हिंदी भाषा मेरी नानी दादी है तो हर प्रवासी भारतीय का सीना चौड़ा हो जाता है। हिंदी पर हावी अंग्रेजी की गुलामियत से हम बाहर आ रहे हैं, और आगे आना होगा। अपनी हिंदी भाषा पर गर्व कर इसका परचम अमेरिका में और समस्त विश्व में फैलाना होगा।

❑❑

हिंदी के वैश्विक विस्तार में सिनेमा का योगदान

—विजय सिंह

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। यदि इस नजरिए से सिनेमा को देखा जाए तो सिनेमा को समाज की अंतर्शिराओं में बहने वाले रक्त की संज्ञा दी जा सकती है। प्रारंभ से ही सिनेमा ने समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के प्रभाव छोड़े हैं। भारत की पहली फिल्म सत्य हरिश्चन्द्र देखकर बालक मोहनदास करमचंद गांधी रो पड़े थे और 'राजा हरिश्चंद्र' की सत्यनिष्ठा से प्रेरित होकर उन्होंने आजीवन सत्य बोलने का व्रत ले लिया था। वास्तव में इस फिल्म ने ही उन्हें मोहनदास से महात्मा गांधी बनने की दिशा में पहला कदम रखने हेतु प्रेरित किया था। स समाज, न नवीन, म मोड़ अर्थात् सिनेमा ने समय-समय पर समाज को नया मोड़ देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। साहित्य ने भी समाज के इस महत्वपूर्ण दृश्य-श्रव्य माध्यम के पुष्पन-पल्लवन में अपना योगदान दिया है। यदि हम शुरूआती सिनेमा की ओर नजर दौड़ाएँ, तो पाते हैं कि इसकी शुरूआत ही पौराणिक साहित्य के सिनेमाई रूपांतरण से हुई। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भक्त प्रहलाद', 'लंका दहन', 'कालिय मर्दन', 'अयोध्या का राजा', 'सैरन्ध्री' जैसी प्रारंभिक दौर की फिल्में धार्मिक ग्रंथों की कथाओं का अंकन थीं।

भारत गाँवों का देश है। गाँवों में ही हमारी लोक कला और लोक संस्कृति की पैठ है। लेकिन गाँवों के शहरों में तब्दील होने के साथ-साथ हमारी लोककलाएँ भी लुप्त होती जा रही हैं। इन्हीं में से एक है लोक संगीत-संगीत हमारी जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन चुका है। संगीत के बिना जिंदगी का तसव्वुर करना भी बेमानी लगता है। संगीत को इस शिखर तक पहुँचाने का श्रेय बोलती फिल्मों को जाता है। इससे पहले फिल्मों में संगीत का इस्तेमाल तो होता था, लेकिन तकनीकी तौर पर रिकॉर्ड नहीं बनाए जा सकते थे। फिल्मों में संगीत की शुरुआत 1931 में बनी फिल्म आलम आरा से हुई। यह देश की पहली बोलती फिल्म थी। फिल्म के निर्देशक अर्देशिर ईरानी ने सिनेमा में ध्वनि के महत्व को समझते हुए पहली बार रिकॉर्ड मशीन का इस्तेमाल किया। यह फिल्म 14 मार्च, 1931 को मुंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में प्रदर्शित हुई। फिल्म इतनी लोकप्रिय हुई कि पुलिस को भीड़ पर काबू पाने के

लिए मदद बुलानी पड़ी थी। इसका संगीत फिरोज मिस्त्री ने दिया था। इसमें आवाज देने के लिए उस वक्त तरन ध्वनि तकनीक का इस्तेमाल किया गया। फिल्म के गीतों के बारे में कहा जाता है कि उनकी धुनों का चुनाव अर्देशिर ईरानी ने किया था। गीतों के बाद उनके फिल्मांकन की समस्या रही होगी। उसकी कोई मिसाल ईरानी के सामने नहीं थी और न ही बूम जैसा कोई ध्वनि उपकरण था। सारे गाने टैनार सिंगल सिस्टम कैमरे की मदद से सीधे फिल्म पर ही रिकॉर्ड होने थे और यह काम काफी मुश्किल था। इस फिल्म में स्वर देकर डब्ल्यू-ए-खान पहले स्वर देने वाले गायक बने। अफसोस की बात है कि इस फिल्म के गाने रिकॉर्ड नहीं किए जा सके। फिल्म में कुल सात गाने थे। इनमें से एक गीत फक़ीर का किरदार निभाने वाले अभिनेता वजीर मुहम्मद ख़ान ने गाया था। गीत के बोल थे दे-दे ख़ुदा के नाम पे प्यारे, ताक़त है अगर देने की। यह हिंदी सिनेमा का पहला गाना था। एक और गाने के बारे में एलवी प्रसाद ने अपने संस्मरण में लिखा है- वह गीत सितारा की बहन अलकनंदा ने गाया था। इसके बोल थे-बलमा कहीं होंगे।

इन फिल्मों का धार्मिक और आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्य भी था। चौथे दशक से फिल्मों में सामाजिक कथाओं की भी आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा और इसके लिए समकालीन साहित्य के रचनाकारों की ओर देखना लाजमी हो गया। नतीजा यह हुआ कि सिनेमा को मण्टो का साथ लेना पड़ा। मंटो की लेखनी से 'किसान कन्या', 'मिर्ज़ा गालिब', 'बदनाम' जैसी फिल्में निकलीं। प्रेमचंद और अश्क भी इस दौर में सिनेमा से जुड़े और मोहभंग के बाद वापस साहित्य की दुनिया में लौट गए। बाद में ख्वाजा अहमद अब्बास, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, मनोहर श्याम जोशी, अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, रामवृक्ष बेनीपुरी, भगवती चरण वर्मा, राही मासूम रजा, सुरेन्द्र वर्मा, नीरज, नरेन्द्र शर्मा, कवि प्रदीप, हरिवंशराय बच्चन, कैफी आजमी, शैलेन्द्र, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूँनी इत्यादि ने भी समय-समय पर हिंदी सिनेमा में किसी न किसी रूप में अपनी आमद दर्ज कराई। अनेक हिंदी, उर्दू तथा बांग्ला की कालजई रचनाओं पर भी फिल्में बनाई गईं और उनमें साहित्य की आत्मा डालने की कोशिशें की गईं। वास्तव में आठवें दशक तक सिनेमा ने हिंदी-उर्दू में कोई फर्क ही नहीं माना। उर्दू के अफसाना निगार मंटों की कहानी पर बनी फिल्म 'अछूत कन्या' सुपरहिट साबित हुई। बांग्ला लेखक शरतचंद्र के उपन्यास 'देवदास' पर हिंदी में चार फिल्में बनीं और कमोबेश सभी सफल रहीं। प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्यजीत रॉय ने इसी नाम से फिल्म बनाई, जो वैश्विक स्तर पर सराही गई। भगवती चरण वर्मा के अमर उपन्यास 'चित्रलेखा' पर भी फिल्में बनीं, जिनमें एक सफल रही। बाद में साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों को आर्ट फिल्मों के खाँचे में रखकर इनका व्यावसायिक और हिट फिल्मों से अलगाव कायम करने का प्रयास किया गया। जिससे ऐसी फिल्मों का आर्थिक पहलू प्रश्न चिह्नांकित हो गया और फिल्मकारों ने साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने से परहेज करना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि 'एंग्री यंग मैन' युग आ गया और यथार्थ से कटी हुई अतिरंजनापूर्ण 'अमिताभीय' फिल्मों का दौर आ गया। मैं इस दौर को हिंदी सिनेमा का 'अंधकार युग' मानता हूँ, जिससे हमें नब्बें के दशक

में आकर मुक्ति मिल सकी। यह युग वस्तुत: समाज की सोच, उसकी आकांक्षाओं एवं उसके स्वप्नों से कटा हुआ था और इसमें आम जनता की सहभागिता नगंयप्राय थी। इन फिल्मों के अर्थ-दृष्टि से सफल होने का बड़ा कारण यह था कि अमिताभ के 'लार्जर दैन लाइफ' अवतार में तल्लीन तत्कालीन युवा वर्ग को अपनी समस्याएँ तीन घंटे के लिए ही सही खत्म होती दिखती थीं। ऐसे में बाकी समाज की उन्हें न तो जरूरत थी और न ही उसकी कोई आर्थिक उपयोगिता थी। इस नैराश्यपूर्ण दौर में समाज और साहित्य को तो हाशिए पर रहना ही था। हालाँकि अमिताभीय युग में भी सत्यजीत रॉय, मृणाल सेन, कमाल अमरोही, ऋषिकेश मुखर्जी, बासु भट्टाचार्य, श्याम बेनेगल, एम. एस. सत्थू, एन. चंद्रा, मुजफ्फर अली, गोविन्द निहलानी, आदि ने अपने-अपने स्तर से साहित्य, सिनेमा और समाज का त्रयी में संबंध स्थापित करने का प्रयास किया लेकिन ये सभी चाहे-अनचाहे 'आर्ट सिनेमा' में बँधने को बाध्य हुए। एक कारण और भी था कि इस दौरान साहित्यिक कृतियों पर बनने वाली फिल्में एक-एक कर असफल होने लगी थीं। प्रेमचंद की रचनाओं पर बनीं 'गोदान', 'सद्गति', 'दो बैलों की कथा', फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास पर बनी 'तीसरी कसम', मन्नू भंडारी की रचनाओं पर आधारित 'यही सच है', 'आपका बंटी' और 'महाभोज', शैवाल की कहानी पर आई फिल्म 'दामुल', धर्मवीर भारती के उपन्यास पर आधारित 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी पर आधारित 'उसने कहा था', संस्कृत की रचना 'मृच्छकटिकम्' पर आधारित 'उत्सव', राजेंदर सिंह बेदी के उपन्यास पर बनी 'एक चादर मैली सी' आदि का असफल होना सिनेमा और साहित्य से दूरी की एक बड़ी वजह बन गया। इसके कारण समाज से भी फिल्मों की दूरी बढ़ने लगी। हालाँकि इन फिल्मों के फ्लॉप होने की अन्य कई वजहें थीं लेकिन यह मिथ्या धारणा फिल्मकारों के मन में घर कर गई कि साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों का आर्थिक महत्व नहीं है। यद्यपि कमलेश्वर को फिल्म जगत में काफी सफलता मिली लेकिन एक साहित्यिक लेखक न होकर जब वे फॉर्मूलाबद्ध कथानक रचने लगे, तभी उनकी फिल्में सफलता का स्वाद चख सकीं और निर्देशकों ने उनकी कहानियों पर फिल्में बनाईं। 'द बर्निंग ट्रेन' 'राम-बलराम', 'सौतन' आदि उनकी फिल्में कहीं से भी साहित्य के चौखटे में फिट नहीं होतीं। यहाँ एक तथ्य यह भी महत्वपूर्ण और रेखांकित करने योग्य है कि हिंदी फिल्म जगत में जितनी सफलता कवियों और शायरों को मिली, उतनी सफलता कथाकारों को नहीं मिल सकी। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कथाकारों की कथा का कैनवास अत्यधिक विस्तृत होता है और इनमें 'शब्दों की महत्ता' सर्वोपरि होती है, जबकि सिनेमा में ऐसा नहीं होता। सिनेमा को अपने समूचे विस्तार को दो से तीन घंटों के भीतर दृश्यों के माध्यम से समेटना होता है और यहाँ शब्द से अधिक महत्वपूर्ण 'अभिव्यक्ति' और 'प्रस्तुति' होती है।

नाटक के चारों अवयव वाचिक, सात्विक, कायिक और आहार्य सिनेमा में आकर शब्दों, अलंकारों पर भारी पड़ने लगते हैं। सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम है और साहित्य पाठ्य माध्यम। यह अंतर न समझ पाने वाले लेखक अथवा फिल्मकार इस रास्ते पर चलकर असफलता का स्वाद चखते हैं। फिल्मी नजरिए से नाटक और एकांकी ही सिनेमा के सबसे नजदीकी संबंधी दिखाई देते हैं। वहीं

कवियों और शायरों के लिए ऐसी कोई बंदिश है ही नहीं। उन्हें तो किसी 'सिचुएशन' के मुताबिक गीत या गजल भर लिखनी होती है और सिनेमा के अन्य जरूरी आयामों से उन्हें कोई लेना-देना नहीं होता। साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंधों पर गुजराती फिल्म समीक्षक बकुल टेलर ने बेहद सारगर्भित टिप्पणी की है। उनका कहना है, "साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्म अपने आप अच्छी हो, ऐसा नहीं होता। वास्तविकता यह है कि साहित्यिक कृति का सौंदर्यशास्त्र और सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र अलग-अलग हैं और सिनेमा सर्जक भी साहित्यकृति के पाठक रूप में साहित्यिक आस्वाद तत्वों पर मुग्ध होकर उनका सिनेमेटिक रूपांतरण किए बगैर आगे बढ़ जाते हैं। साहित्यकारों की एक बड़ी समस्या यह भी है कि वे प्राय: बंधनों में बंधकर सृजन करना पसंद नहीं करते। यही कारण है कि वे सिनेमा में जाने से दूर भागते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि उन्हें फिल्म के निर्माता अथवा निर्देशक के दबाव में कहानी में बदलाव करने पड़ सकते हैं। दूसरी समस्या पटकथा लेखकों की है। वे अक्सर अतिनाटकीयता और अतिरंजना को ही फिल्मों की सफलता की एकमेव कसौटी मान लेते हैं। इसका सबसे भोंडा उदाहरण टी.वी. धारावाहिक 'चन्द्रकान्ता' का है, जिसमें अतिनाटकीयता और अतिरंजना को बढ़ाने के लिए बाबू देवकीनंदन खत्री के मूल उपन्यास की आत्मा ही नष्ट कर दी गई। एक अन्य बड़ी समस्या यह है कि अधिकांश साहित्यकार फिल्म निर्माण के विभिन्न तकनीकी पहलुओं से प्राय: अनभिज्ञ होते हैं और वे कैमरे की जरूरत के मुताबिक कथ्य दे पाने में असफल हो जाते हैं। नवें दशक में आई भूपेन हजारिका की फिल्म 'रुदाली' ने समाज, साहित्य और सिनेमा की त्रयी को 'आर्ट सिनेमा' के सीमित साँचे से बाहर निकालने में अहम् भूमिका निभाई और इस धारणा को पुन: स्थापित किया कि साहित्य से जुड़ी हुई और समाज का वास्तविक अंकन करने वाली फिल्में भी हिट हो सकती हैं बशर्ते उनमें निहित साहित्यिक संवेदनाओं का सिनेमाई रूपांतरण सफलतापूर्वक किया जाए। बाद में 'परिणीता' और 'थ्री ईडिएट' जैसी फिल्मों ने इसी धारणा को पुष्ट किया। 'मोहल्ला लाइव' कार्यक्रम में अनुराग कश्यप जैसे आज के दौर के फिल्मकार तो यह बात कहने में नहीं हिचके कि हिंदी का अधिकांश लेखन फिल्मों की दृष्टि से अनुपयोगी है और समकालीन लेखक सिनेमा की जरूरतों के मुताबिक लेखन कार्य नहीं कर रहे हैं। कमोबेश यही राय निर्देशक सुधीर मिश्रा और फिल्म समीक्षक अजय ब्रह्मात्मज की भी है। हमें ऐसी चुनौतियों को गंभीरता से लेना होगा और साहित्य जगत को अपने भीतर से ऐसे साहित्यकार पैदा करने होंगे, जो फिल्म लाइन की बारीकियों की जानकारी रखते हों और चित्रपट की आवश्यकताओं के मुताबिक पटकथा लेखन करने में सक्षम हों, वरना हम हॉलीवुड की फिल्मों की घटिया नकल और बासी रीमेक फिल्मों अथवा पुरानी कहानियों की भोंडी पुनर्प्रस्तुतियों को देखने के लिए अभिशप्त रहेंगे। मीडिया एक समग्र तंत्र है, जिसमें प्रिंटिंग प्रेस, पत्रकार, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, रेडियों, सिनेमा, इंटरनेट आदि सूचना के माध्यम सम्मिलित होते हैं। अगर समाज में मीडिया की भूमिका की बात करें तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि समाज में मीडिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से क्या योगदान दे रहा है एवं उसके उत्तरदायित्वों के निर्वहन के दौरान समाज पर उसका क्या सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

प्रभाव पर गौर करने पर स्पष्ट होता है कि मीडिया की समाज में शक्ति, महत्ता एवं उपयोगिकता में वृद्धि से इसके सकारात्मक प्रभावों में काफी अभिवृद्धि हुई है लेकिन साथ-साथ इसके नकारात्मक प्रभाव भी उभर कर सामने आए हैं। एक-दूसरे दृष्टिकोण से अपडेशन और स्पीड से लैस वर्तमान मीडिया की भाषा पर गौर करते हैं। कुछ अखबारों में हिंदी की बजाए अंग्रेजी में 'पेट्रोल' 'डीजल' या 'सेंसेक्स' लिखा रहता है। कई बार ऐसे हिंदी अखबारों ने पूरी की पूरी हेडिंग और लीड ही अंग्रेजी में लगाई है। यह भूमंडलीकृत वर्णसंकर भाषा है। भाषा का यह सवाल अगर इतना ही मामूली होता तो लगातार अपनी सैद्धांतिकी में इसे सर्वोच्च स्थान न देते। भाषा की कलाबाजियाँ यथार्थ के विवरण से जुड़ी हैं और यथार्थ वह है जो मीडिया में प्रायः पूरे तौर पर या तो दिखाया-सुनाया नहीं जाता या फिर जिसे दिखाने-सुनने-अभिव्यक्त करने का टाइम-स्पेस मैनेजमेंट मीडिया के पास नहीं है। इसलिए हड़बड़ी में चैनलों पर 'तीन सीआरपीएफ' के जवान शहीद हो जाते हैं और 'चार पुलिस के जवानों' को चोटें आ जाती हैं। चैनलों पर ऐसी गलतियों की तो पूरी श्रृंखला ही मौजूद है। बहरहाल अधिक प्रामाणिक कहे जाने वाले अखबारों में भी गलतियाँ देखने को मिल जाती हैं। मुद्रण की गलतियों को छोड़ भी दें तो वाक्य विन्यास में संज्ञा-सर्वनाम की क्रियाओं के प्रति संगति अक्सर बेमेल-सी देखने को मिल जाती हैं। कुछ हिंदी समाचार पत्र भाषा, वर्तनी या व्याकरण के नियमों का ध्यान कम ही रखते हैं। कहीं व्यंजन का काम स्वरों से लेकर वाक्य गढ़ दिया जाता है (जैसे-दिए, लिए, खाए, पिए, नई, पाई, खोई वगैरह) तो कहीं स्वर का काम व्यंजनों से लेकर (मसलन-हुई, बड़ाई, कोई वगैरह)।

अलग-अलग अखबारों के अलग-अलग तरीके भी हैं। कोई प्रत्ययों/परवर्ती शब्दों को मिलाकर लिखता है (जैसे-रिक्शेवाला, बगलवाली आदि), कोई अलग करके प्रस्तुत करता है (रिक्शे वाला, बगल वाली आदि)। इलेक्ट्रानिक मीडिया की भाषा में बदला अखबारों के अलावा चैनलों की भीड़ में भाषा का जो हश्र हुआ है, वह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है। लिखने में चाहे नुक्ते की गलती चल भी जाए, लेकिन उच्चारण में यह कहीं दूर तक भाषिक संस्कार को धक्का पहुँचाती है। प्रिंट मीडिया पर कम से कम उच्चारण की त्रुटियों का आरोप नहीं लगाया जा सकता, लेकिन रेडियो और टेलीविजन इस कसौटी पर जरुर कसे जाते हैं और फिर मीडिया के काम को सही ढंग से संचालित करने के लिए उच्चारण का शुद्ध होना आवश्यक है, पर्याप्त नहीं। हिंदी भाषा के प्रयोग को लेकर लोगों का झुकाव एवं आकर्षण इस बात का सुखद संकेत है कि लोग अपने मूल की ओर धीरे-धीरे ही सही लौट तो रहे हैं। शासन एवं प्रशासन तंत्र को हिंदी के विकास के लिए अपने स्तर से हिंदी के प्रयोग, शिक्षा एवं संचार में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देकर किया जाना चाहिए। जहाँ तक अंग्रेजी एवं उर्दू के बढ़ते प्रयोग की बात है तो, मेरा मानना है कि इस पर जैसे-जैसे लोग हिंदी के प्रयोग की दिशा में कदम बढ़ाते जाएँगे वैसे-वैसे ही शुद्ध हिंदी सीखने एवं प्रयोग करने की ओर भी अग्रसर होंगे। हमें समाज के तौर पर अपने घरों में अंग्रेजी के श्रेष्ठताबोध के आडंबर को दूर करते हुए अपने घर-परिवार से ही इस बात की शुरुआत करनी होगी कि हम हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग करें। कुल मिलाकर हिंदी के वैभव को विराट आकार देने में हम सभी को अपनी आज तक की त्रुटियों को

सुधारते हुए अपने-अपने स्तर से यह प्रयास करना होगा कि हम हिंदी का प्रयोग अधिकतर करें तथा अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम हिंदी को ही बनाएँ, क्योंकि विश्व का इतिहास उलट-पलट कर देख लीजिए प्रगति एवं उन्नति की पताका उसने ही फहराई है, जिसने अपनी भाषा को महत्ता प्रदान करते हुए संपूर्ण ज्ञान अपनी भाषा में अर्जित किया है!! समाचारों की समझ, वाक्य में किस शब्द पर कितना जोर (इम्फेसिस) देना है, प्रस्तुति के समय पर चेहरे के हाव-भाव, शारीरिक भाषा, हाथों या आँखों का मूवमेंट कब और कितना हो, ऐसी अनेक बातें भी समाचार या कार्यक्रम के एंकर के लिए काफी मायने रखती हैं। कैसा होगा मीडिया अगर आज तक की यात्रा देखकर कुछ वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने का प्रयास करें? पत्रकारिता मिशन से व्यवसाय तक आ गई है तो क्या अब यह व्यवसाय से चलकर धंधाकरण तक जाएगी? धंधा भी किसका? बात का? सनसनी खेज सुर्खियों का? उन बातों का धंधा जो सूचनाओं की धुआधार बमबारी कर रही हैं? जिसमें सूचनाएँ ही सूचनाएँ हैं, ज्ञान नदारद है? या फिर खबर रूपी ऐसे उत्पादों की बिक्री का धंधा जिसमें अप्रासंगिक को प्रासंगिक बनाया जा रहा है, जिसमें पुनरावृत् और शोर प्रधान हैं, असली समाचार गायब हैं?

संदर्भः

1. गैस्टन रोबर्ज, 1985, अनदर सिनेमा फॉर अनदर सोसाईटी, सीगल बुक्स, 26 सर्कस एवेन्यू, कलकत्ता, संस्करण
2. ऑवर फिल्मस देयर फिल्मस, 1992, ऑरियेन्ट लांग्मैन लिमिटेड, 17 चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता, प्रथम संस्करण
3. अग्रवाल विजय, 2001, आज का सिनेमा, नीलकंठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली-30 (प्रथम संस्करण)
4. रेन वेलक, अनुवादक इंद्रनाथ मदान, 1940, आलोचना की धारणाएँ, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, द्वितीय संस्करणः
5. भाटिया डॉ. तारेश, आधुनिक विज्ञापन और जनसंपर्क, प्रकाशकः टी-एसबिष्
6. इस्लामिक कल्चरस ऑफ बांबे सिनेमा, इरा भास्कर रिचर्ड एलन, प्रकाशन-तुलिका बुक्स, 35ए/1, तृतीय तल, शाहजहांपुर जाट, नई दिल्ली-110049, प्रथम संस्करणः 2009
7. के मोती गोकुलसिंह एंड विमल दिसानायके, 1998, इंडियन पॉपुलर सिनेमाः ए नेरेटिव ऑफ कल्चरल चेंज, प्रकाशक, ओरिएंट लांग्मैन लिमिटेड, 1/24, आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110002, संस्करण
8. आशीष राजाध्यक्ष, 2009, इंडियन सिनेमा इन द टाइम ऑफ सेल्युलाइड, फ्रॉम बॉलीवुड टू इमरजंसी, प्रकाशन तुलिका बुक्स, 35/ए (तृतीय तल), शाहजहांपुर जाट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करणः
9. सत्यजीत राय पाथेर पंचाली और फिल्म जगत, महेन्द्र मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

❑❑

मॉरीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति

—नीलम शर्मा

मॉरीशस 'हिंद महासागर का मोती' कहलाता है। इसे हिंद महासागर की कुँजी' भी कहते हैं। प्रकृति ने इसे इतना अनुपम सौंदर्य और सुहावना मौसम दिया है कि पूरा द्वीप एक उपवन-सा लगता है, इसलिए इसे मोती की उपमा दी जाती है और कुँजी इसलिए कहा जाता है कि मालागासी (मैडागास्करद्ध से 8 सौ किलोमीटर उत्तर-पूर्व और बंबई से 4,158 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया जाने वाले समुद्री मार्गों के नाके पर स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण मॉरीशस नौसैनिक दृष्टि से तब भी महत्वपूर्ण था, जब 1715 में फ्रांसीसी सेनाओं ने इस पर कब्जा किया और आज भी उतना ही महत्वपूर्ण हैं। मॉरीशस ब्रिटिश कॉमन वैल्थ का संप्रभुता, संपन्न एक स्वतंत्र राष्ट्र है। यहाँ भी प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमंडल हैं, जिसे कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति प्राप्त है।

भारतीय मजदूर जब गिरमिटिया प्रथा के तहत मॉरीशस गए तो उनके साथ उनकी भाषा भी गईं उन दिनों उन्हें अपार कष्ट झेलना पड़ा। वे भयंकर अमानवीय स्थितियों में जीवित रहे। इसके मूल में उनकी भाषा, धर्म और संस्कृति थी। भाषा, धर्म और संस्कृति वह सेतु है, जो अपने मूल से जुड़ाव रखता है। यही कारण है कि मॉरीशस में फ्रेंच मूल के फ्रेंच, अंग्रेजी मूल के अंग्रेजी, नीग्रो मूल के क्रिओली तथा चीनी मूल के चीनियों में ये भाषाएँ जीवित हैं। भारतीयों ने भी हिंदी, तमिल, तेलुगु और मराठी भाषा एवं संस्कृति को भुलाया नहीं। हिंदी भाषियों ने रामायण, महाभारत, गीता, हनुमान चालीसा, आल्हा तथा विरहा को दुख, दैन्य, विवशता एवं शोषण के दिनों में जीने का सहारा माना था। हिंदी और भोजपुरी के माध्यम से अपनी पहचान बनाए रख रहे थे और उनकी एक अलग दुनिया थी। इन भाषाओं ने समाज को एकजुट रखने में योगदान दिया और बुरे दिनों में शक्ति प्रदान की।

प्रारंभ में हिंदी और भोजपुरी मात्र बोली के रूप में प्रयुक्त होती थी। 1834 से अद्र्धशती तक भारतीय मजदूर सिर्फ श्रमिक थे। वे जानवरों की तरह मजदूरी करते थे। उनकी संततियों का कोई भविष्य न था। वे भी सिर्फ मजदूर बन सकते थे। जीवन में प्रगति के रास्ते न थे। यह तो 1871 ई. में

भारतीय मजदूरों की दुद्रशा से द्रवित एक जर्मन महापुरूष अदोल्फ-द-प्ले-वित्स ने अंग्रेजी, तमिल तथा हिंदुस्तानी भाषाओं में एक याचिका तैयार की। वह स्थिति भी कल्पनातीत थी, जब न कोई हिंदी पढ़ने वाला था और न ही पढ़ाने वाला। यह पहला अवसर था जब हिंदुस्तानी भाषा में हिंदुस्तानियों के हित की याचना की गई थी।

हाँ, हिंदी भाषी मजदूर तब भी भजन-कीर्तन करते थे। उनकी बैठकें लगतीं जहाँ वे आपस में सुख-दुख बाँटते थे। विचार-विमर्श होता था। भोजपुरी लोकगीत गाए जाते थे। लोक धुनों में उनके दर्द की अभिव्यक्ति होती थी। धर्म, भाषा और संस्कृति को जिन्दा रखने की चिंता थी। पर 1873 के बाद जब जाँच आयोग की रिपोर्ट आई तो अंग्रेजी सरकार के कानों में जूँ रेंगी। सरकार ने मजदूरों के बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था की। उनके बच्चे स्कूल जाने लगे। पर शिक्षा की कमी के कारण अपेक्षित प्रगति न हुई फिर भी 19वीं सदी के अंत तक मॉरीशस की अधिकांश भारतीय आबादी में से दर्जन-दो-दर्जन लिख पढ़ लिए और सरकारी कामों में लग गए। भारतीयों में धार्मिक स्वतंत्रता थी। 1859 से मॉरीशस में हिंदू मंदिर बनने लगे थे। पर शैक्षणिक और राजनीतिक चेतना शून्य थी।

29 अक्टूबर, 1901 को जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते मॉरीशस रूके तो उनके स्वागत कार्यक्रम में मुश्किल से कोई भारतीय उपस्थित था। महात्मा गांधी को यह स्थिति अखरी थी। पहली बार उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में अपने भाषण दिए तो अंग्रेजों के कान खड़े हो गए। उन्हें लगा कि गांधी गँवारू भाषा को गौरव प्रदान कर रहा है। उन्हें डर था कि भाषा के गुर अगर भारतीय मजदूर समझ गए तो वे दिन दूर नहीं जब वे मॉरीशस में छा जाएँगे। इसी बीच बंगला रेजिमेंट से मॉरीशस आए एक हवलदार भोलानाथ तिवारी ने भारत लौटते समय स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' अपने मित्र को दे दिया था। वह ग्रंथ क्यूर्पिष निवासी खेमलाल लाला के हाथ लगा। वह ग्रंथ मॉरीशस के प्रवासी भारतीयों की चेतना के लिए एक प्रकाशपुंज जैसा था, जिसमें स्वभाषा, राष्ट्रीयता, नैतिकता, स्वाधीनता और नवचेतना के संदेश भरे थे। खेमलाल और उनके मित्रों ने जब उस ग्रंथ को पढ़ा तो उनमें चेतना के नवोन्मेष हुए। 1903 में क्यूर्पिक में आर्य समाज की स्थापना हुई, जहाँ आज निर्गिन आर्य समाज अवस्थित है। प्रारंभ में तरह-तरह की प्रतिक्रिया हुईं फलतः उसके विकास की गति मंथर हो गईं पर महात्मा गांधी की प्रेरणा से मगन लाल मणिलाल डॉक्टर 11 अक्टूबर, 1907 को मॉरीशस आए। वे आर्य समाजियों से मिले-जुले तथा अपना भाषण हिंदी में दिया। उन्होंने एक पत्र प्रकाशन की आवश्यकता महसूस की। 15 मार्च, 1909 से 'हिंदुस्तानी' पत्र का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। पहले यह पत्र अंग्रेजी तथा गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ पर बाद में यह अंग्रेजी तथा हिंदी में प्रकाशित होने लगा। 1910 से 1914 तक यह पत्रिका साप्ताहिक से दैनिक हो गईं मणिलाल डॉक्टर जब मॉरीशस छोड़ रहे थे तो उन्होंने 'हिंदुस्तानी पत्रिका' एवं 'हिंदुस्तानी प्रेस' आर्य समाजियों के हाथों सौंप दिया। हिंदी के प्रचार में आर्य समाज ने सक्रिय भूमि निभाई जून, 1911 में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। प्रथमतः यह हिंदी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित होती थी। इसके

संपादक आर्य समाज के पुरोधा खेमलाल थे। अनंतर भारत से गए स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने दो वर्षों तक इसका संपादन किया। इसके प्रकाशन की प्रतिक्रिया सनातनियों में होने लगी और इसका विरोध हुआ। 1912 ई. में रामलाल तिवारी ने 'ऑरिएंटल गजट' नाम की पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका में मणिलाल डॉक्टर के विचारों का विरोध किया गया।

हिंदी के विकास में 'हिंदुस्तानी' तथा 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' के प्रकाशन से नए-नए लेखक उभरे। उन पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख तथा विचार प्रकाशित होते रहे। फलत: हिंदी लेखन का प्रारंभिक दौर शुरू हुआ। हिंदी के प्रचार-प्रसार में डॉ. चिरंजीव भारद्वाज तथा उनकी पत्नी श्रीमती सुमंगली देवी ने स्तुत्य प्रयास किया। वे धार्मिक प्रचार के साथ-साथ हिंदी का भी वर्ग लेते थे और अपने समर्थक तथा अनुयायियों को हिंदी पढ़ने को प्रोत्साहित करते थे। इसके साथ आर्य समाज ने मॉरीशस के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी की सायंकालीन पाठशालाएँ भी प्रारंभ कर दी। 1918 में वाक्वा में प्रथम वैदिक विद्यालय भी खुला। हिंदी के प्रचारकों में स्वामी मंगलानन्द पुरी, डॉ. चिरंजीव भारद्वाज, उनकी पत्नी श्रीमती सुमंगली देवी, स्वतंत्रानन्द, काशीनाथ किश्टो, मेहता जैमिनी, स्वामी विज्ञानानन्द, नरसिंह दास इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके साथ ही 1925 से अनेक संस्थाओं का भी जन्म हुआ, जिसने हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्य समाज और सनातन धर्म सभा इत्यादि ने तो बढ़ चढ़कर भाग लिया। आर्य समाज के समानान्तर सनातन धर्म का कार्य चलने लगा। इस प्रकार आर्य समाज के मध्य आर्य समाजी संस्था एवं गैर आर्य समाजियों में सनातन धर्म वालों ने प्रचुर कार्य किया। आर्य परोपकारिणी सभा (1928), आर्य प्रतिनिधि सभा (1925), आर्य कुमार सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा (1930), हिंदू महासभा (1925) इत्यादि संस्थाओं ने हिंदी के माध्यम से हिंदी, हिंदू धर्म एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भागीदारी दी। परिणामत: हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार का आधार तैयार हुआ। हिंदी के साहित्यकार और शिक्षक निकलने लगे। उन्हें प्रोत्साहन भी मिलने लगा। उनकी पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होने लगीं। हिंदी लेखकों को अपनी रचनाओं के प्रकाशन एवं अभिव्यक्ति के माध्यम मिले। 1925 के बाद से हिंदी का विकास तीव्र गति से होना प्रारंभ हुआ। उसी समय खेर जगत सिंह, विक्रम राम लाला, दूजेन्द्र मापल तथा प्रेमचन्द दबी ने औपनिवेशिक सरकार पर दबाव बनाया कि अधिक से अधिक सरकारी विद्यालय खोले जाएँ। पूर्व में विद्यालय में हिंदी पठन-पाठन की कोई व्यवस्था न थी। 1925 में तत्कालीन राज्यपाल हरबर्ट रीड से अनुरोध किया गया कि जहाँ भारतीय बच्चों का दाखिला है, वहाँ हिंदी पढ़ाई की व्यवस्था हो, पर सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया। बाद में कतिपय विद्यालयों में सप्ताह के निर्धारित दिन स्कूल अविधि के बाद हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था की गई। इसमें परोपकारिणी तथा प्रतिनिधि सभा ने काफी प्रयास किया।

भारत से बाहर मॉरीशस ही एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ व्यवस्थित रूप से हिंदी का पठन-पाठन ही नहीं होता है, बल्कि सौ के लगभग हिंदी लेखकों ने सैकड़ों हिंदी पुस्तकों की रचना

करके हिंदी भंडार की श्रीवृद्धि की है तथा सर्जनात्मकता की दृष्टि से भारत में अपनी अलग पहचान बनाई है। यह मॉरीशस के हिंदी साहित्य की बड़ी उपलब्धि है कि भारत में, मॉरीशस के हिंदी लेखकों की कृतियों से न केवल उनकी पहचान बनी है, बल्कि मॉरीशस देश के प्रति भारतीय नागरिकों की उत्सुकता एवं जानकारी भी बढ़ी है। भारत के कई विश्वविद्यालयों में मॉरीशस के हिंदी साहित्य तथा वहाँ के साहित्यकारों पर शोध-प्रबंधक लिखे गए हैं तथा लघु-प्रबंध तो अनेक लिखे गए हैं और स्वतंत्र पुस्तकें भी कई लेखकों ने लिखी हैं। अब स्थिति यह है कि भारत में 'मॉरीशस का हिंदी साहित्य' जैसा मुहावरा प्रचलित हो गया है और इस रूप में उसकी मूल्यांकन की परंपरा शुरू हो गई है। मैं मॉरीशस के सभी हिंदी लेखकों की बात नहीं करता, परंतु इतना सत्य है कि पं. वासुदेव विष्णुदयाल, सोमदत्त बखोरी, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' अभिमन्यु अनत, राजेन्द्र अरूण, मुनीश्वरलाल चिन्तामणि, प्रह्लाद, रामशरण, ठाकुरदत्त पांडेय, हरिनारायण सीता, दानीश्वर शाम, डॉ. उदयनारायण, गंगू, इन्द्रुदेव भोला इन्द्रनाथ, मुकेश जी बोध, बीरसेन जागासिंह, दीपचंद बिहारी, पुष्पा बम्मा, महेश रामजीयावन, पूजानंद नेमा, सुचिता रामदीन, हेमराज सुंदर, सुमति संधु, सूर्यदेव सिबरत, अमिता कन्हाई, हरिदेव, सिनन्दन, विजय खेतर, लालदेव बिकारी, केशली कुमार रागपत, ज्ञानेश्वर रघुवीर, धननारायण जीऊत, अस्तानन्द सदासिंह, भानुमती नागदान, सूर्यदेव सिबरत पं. रूद्रमन, नारायणपत दसोई, लोचन अंचराज, सत्यदेव प्रीतम, धर्मवीर घूरा, रामदेव धुरंधर, निदोबाला अरूण, राज हीरामन, आषा रामफल, चन्द्रमोहन सोरिफा, राजरानी गोबिन, धनराज शम्भू, शकुंतला हवलदार, धर्मेन्द्र रिकाई आदि अनेक ऐसे लेखक है, जो अपनी रचनाओं से भारत के हिंदी पाठकों के मन में अपना स्थान बना चुके हैं। लेखकों की यह सूची अभी और लंबी है।

मॉरीशस के हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता, यात्रा-वृत्तांत, लोक साहित्य आदि की प्रमुखता है। मॉरीशस में हिंदी उपन्यास का आरंभ छठे दशक में हुआ, जब 1960 में के. लालबिहारी का लघु उपन्यास, 'पहला कदम' प्रकाशित हुआ। इसके अलावा बिहारी, रामदेव धुरंधर, विश्णुदत्त मधु, आनन्द देवी आदि उपन्यासकारों ने भारत में अपनी पहचान बनाई है। इनमें अभिमन्यु अनत ही सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि ये निरंतर लिखते रहे हैं। अभिमन्यु अनत उपन्यास में शीर्षस्थ हैं, संख्या की दृष्टि से भी और उपलब्धि की दृष्टि से भी। अभिमन्यु अनत के तीन खंडों के उपन्यास 'लाल पसीना' का तीसरा खंड और 'पसीना बहता' रहा, अभी प्रकाशित हुआ है, जो मॉरीशस के पहले महाकाव्यात्मक उपन्यास के रूप में हिंदी उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। 'लाल पसीना' मॉरीशस में भारतीय मजदूरों की दासता एवं शोषण की महागाथा है, जिसमें सर्वत्र मुक्ति का शंखनाद गूँजता है। यह त्रिखंड़ी उपन्यास एक प्रकार से मॉरीशस की स्वाधीनता का ऐतिहासिक दस्तावेज है, उसकी जातीय एवं मानवीय अस्मिता का गौरव है और स्वतंत्र मॉरीशस का पर्याय है। इस महाकाव्यात्मक उपन्यास ने न केवल मॉरीशस का माथा ऊँचा किया है, बल्कि हिंदी उपन्यास के इतिहास में सदैव के लिए गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। मॉरीशस के कुछ अन्य उपन्यासकारों में

भी ऐसी ही महाकाव्यात्मक ऊर्जा एवं सर्जनात्मकता है। हमें प्रतीक्षा है कि इसी प्रकार की कुछ अन्य कृतियाँ आयें और हम मॉरीशस की सर्जनात्मकता को दाद दें सकें।

कहानी के क्षेत्र में, मॉरीशस में इसका इतिहास उपन्यास से पुराना है। मॉरीशस में भारतवंषी अपने साथ मौखिक कहानियों का भंडार ले गए थे, परंतु आरंभिक की कुछ कहानियाँ हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' (1935-38) में छपी थीं। आर्य समाज के साप्ताहिक पत्र 'जागृति' (1939-45) में भी छपी थीं। श्री एम. चिन्तामणि की 'आदर्ष पिता' तथा 'धर्मवीर की उदारता' दो कहानियाँ 'वर्तमान' (1953) में छपी थीं। अभी ईश्वरदत्त अलीमन की पुस्तक 'नई कहानियाँ' प्रकाशित हुई, जिसमें चाहे प्लाट एवं चरित्रों का ध्यान न रखा गया हो, लेकिन मॉरीशस की हिंदी कहानी के विकास के लिए आधार तैयार किया। अब मॉरीशस ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन से गीतों भरी कहानियाँ भी प्रसारित होने लगी थीं। सन् 1967 में मॉरीशस हिंदी लेखक संघ, ने 'नया अंकुर' नाम से छः कहानियों का संग्रह छापा जिसका ऐतिहासिक महत्व है। इसी वर्ष एम. चिन्तामणि ने 'कांग्रेस' अखबार में अपनी बारह कहानियाँ प्रकाशित कराईं। इधर भारत में 'सारिका' ने दिसंबर, 1969 के अंक में चार मॉरीशस लेखकों की कहानियाँ प्रकाशित कीं। मॉरीशस में 'अनुराग' पत्रिका ने अनेक कहानीकार पैदा किए तथा अनेक महत्वपूर्ण कहानियाँ प्रकाशित कीं। दीपचन्द्र बिहारी का 'सागर पार' (1972) कहानी-संग्रह तथा स्वर्ग में क्या रखा है' (1978) ने मॉरीशस कहानी को पश्चिम का साहित्यिक आधार एवं कलात्मकता प्रदान की। इस कारण शायद यह था कि दीपचन्द्र बिहारी पहले हिंदी लेखक थे, जिन्हें अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी साहित्य का ज्ञान ही नहीं था, उनमें लिखते भी थे। मॉरीशस हिंदी लेखक संघ ने पुनः एक कहानी-संग्रह 'सुरभित उद्यान' सन् 1973 में प्रकाशित किया, जिसमें कविता, निबंध के साथ सात कहानियाँ भी थीं। त्रिओले के हिंदी लेखक संघ, ने पुनः ब्रिजलाल रामदीन का कहानी संग्रह 'परख' इसी समय प्रकाशित किया, जिसमें मॉरीशस की हिंदी कहानी का और विकास हुआ। इसी बीच प्रह्लाद रामशरण की पुस्तक 'मॉरीशस की लोक कथाएँ' (1974) भी प्रकाशित हुई, जो लोक साहित्य पर पहली पुस्तक थी। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और उसका जर्मन भाषा में अनुवाद भी हुआ। इसके बाद महात्मा गांधी संस्थान, मोका ने 'मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ' प्रतिनिधि कहानी-संग्रह 1976 में प्रकाशित किया। इसमें बारह कहानीकारों की बारह कहानियाँ हैं। इसी वर्ष अभिमन्यु अनत का पहला कहानी संग्रह 'खामोशी' के चीत्कार' प्रकाशित हुआ, जो निश्चय ही अभी तक के कहानी-संग्रहों में सर्वश्रेष्ठ था। इसकी कहानियों की सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक चेतना ने इस संग्रह को महत्वपूर्ण बना दिया। इसी वर्ष अभिमन्यु अनत का लघु कथा-संग्रह 'इंसान और मशीन' छपा जिसमें 44 लघु कथाएँ थीं। इस संग्रह की सामाजिक चेतना एवं प्रतिबद्धता तथा व्यंग्य की शक्ति ने इसे महत्वपूर्ण संग्रह बना दिया। इसी दशक में 'बसंत' (मार्च 1978) पत्रिका का प्रकाशन अभिमन्यु अनत के संपादकत्व में महात्मा गांधी संस्थान से हुआ, जिसने मॉरीशस की हिंदी कहानी के विकास की अपरिमित संभावनाएँ उत्पन्न कर दीं।

इसके उपरान्त डॉ. कामता कमलेश के संपादकत्व में तीन पुस्तकें छपीं–मॉरीशस की बाल हिंदी कहानियाँ, मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ तथा 'मॉरीशस का कथा साहित्य।' प्रह्लाद रामशरण की एक नई पुस्तक 'एशिया की श्रेष्ठ लोक कथाएँ' (1984) भी प्रकाशित हुई, परंतु अभिमन्यु अनत के नई कहानी–संग्रह वह बीच का आदमी (1981) ने पुनः कहानी को साहित्यिकता से जोड़ा और इसके बाद अनत के दो और कहानी–संग्रह 'मार्क टूवेन का स्वर्ग' (1986) तथा 'एक थाली समंदर' (1987) प्रकाशित हुए। सन् 1986 में राजेन्द्र अरूण के संपादकत्व में 'मॉरीशस की कहानियाँ' पुस्तक छपी, जिसमें 18 कहानीकारों की कहानियाँ संकलित की गई हैं। सन् 1987 में अभिमन्यु अनत के संपादकत्व में इसी प्रकार का एक कहानी–संकलन निकला, जिसे मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान ने प्रकाशित किया। मॉरीशस की कहानी–यात्रा की गति इसी प्रकार विकास की ओर चल रही हैं।

मॉरीशस में नाटक एवं एकांकी भी लिखे गए हैं, उन्हें मंचित भी किया गया है तथा वार्षिक रूप में नाटक–एकांकी प्रतियोगिताएँ भी होती हैं पर वे अप्रकाशित हैं। हिंदी के प्रकाशित नाटकों में– जे. एन. राय का 'जीवन संगिनी' (1941), ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' का 'आदर्श बेटी' और 'नवजीवन' (1951), ठाकुरदत्ता पांडेय का 'पाँच एकांकी तथा एक सपना' (1972), एच. लीलाधर का 'अनोखे अतिथि' (1974) अभिमन्यु अनत का 'विरोध' (1977), 'तीन दृश्य' (1981), 'मरीशा गवाही देना' (1983), 'गूँगा इतिहास' (1985), 'रोक दो कान्हा' (1986), 'नौशेरा का यात्री' (अप्रकाशित), आदि के साथ अनेक तथा असंख्य ऐसे एकांकी हैं, जो मंचित तो हुए हैं किंतु पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। यदि इन नाटकों तथा एकांकियों के संकलन प्रकाशित किए जाएँ तो मॉरीशस का नाटक–साहित्य और भी समृद्ध हो सकेगा। जहाँ तक नाटकों के मंचन का प्रश्न है, मॉरीशस में हिंदी रंगमंच काफी विकसित है और भारत में भी इनके नाटकों का मंचन होना चाहिए। कुछ वर्ष पहले जब 'गूँगा इतिहास' का नई दिल्ली में मंचन हुआ था, तब असंख्य लोगों ने इसे देखा और सराहा था। एकांकियों की स्थिति पूर्ण नाटकों की तुलना में अच्छी है। मॉरीशस के हिंदी एकांकी' शीर्शक से अभिमन्यु अनत के संपादकत्व में सन् 1990 में बारह एकांकियों का संकलन महात्मा गांधी संस्थान से प्रकाशित हुआ। मॉरीशस में इस शताब्दी के आरंभिक दशकों से ही 'रामचरितमानस' तथा पुराणों के आधार पर रामलीला, कृष्णलीला तथा इन्द्र–सभा का लोक–मंचन शुरू हो गया था और इनके लेखक बैठका में पढ़ाने वाले हिंदी अध्यापक, पुजारी तथा कुछ शिक्षित लोग थे। श्री महेश रामजीयावन ने लिखा है कि मॉरीशस में लगभग 80 ऐसी नाटक मंडलियाँ बन गई थीं। जो विवाह, धार्मिक अवसरों आदि पर इन नाटकों का मंचन करती थीं। मॉरीशस में भारतेंदु का 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'सूरदास', 'सावित्री सत्यवान, 'चन्द्रहार, 'लीलावती', 'प्रेम की दुनिया', 'शरीफ डाकू', 'फिरोज़ गुलनार', 'कृष्णावतार', 'भक्त सूरदास', चन्द्रावली', 'अलीबाबा', 'वरदान', 'श्रवण कुमार', 'सीता हरण' आदि नाटकों का आरंभिक कई दशकों में प्रदर्शन हुआ। बंबई से कई पारसी नाटक कंपनियाँ मॉरीशस गईं और उनका भी प्रभाव पड़ा। मॉरीशस में रेडियो के आने पर हिंदी नाटकों का खूब प्रसारण हुआ और अभिमन्यु अनत ने 1952 में 'अजंता आर्ट' की स्थापना की तथा

'परिवर्तन' नाटक का मंचन किया तथा सन् 1960 में रवीन्द्रनाथ टैगोर की जन्मशताब्दी पर मॉरीशस में उनकी कहानियों के नाट्क-रूपांतरों का प्रदर्शन किया गया तथा 'सूर्योदय' को देखने डॉ. रामगुलाम भी आए। सन् 1963 में हिंदी लेखक संघ ने एक दिन का नाटक-उत्सव मनाया और चार नाटकों का मंचन हुआ। मॉरीशस में सन् 1965 में टेलिविजन के आने पर अनेक हिंदी नाटकों के प्रदशित किया गया तथा भोजपुरी नाटकों का भी प्रदर्शन हुआ। 'हिंदी परिषद' ने भी अश्क तथा प्रसाद के नाटकों का खूब प्रदर्शन किया, परंतु सन् 1972 में सरकार ने हिंदी तथा उनकी पत्नी को नाटक के शिक्षण के लिए बुलाकर मॉरीशस के हिंदी नाटक को विकास के नए सोपानों तक पहुँचाया। इसके परिणामस्वरूप 1975 में नागपुर में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में जब मॉरीशस के रंगकर्मियों ने 'आधे अधूरे' प्रस्तुत किया तो दर्शकों ने उसकी खूब सराहना की। मोहन महर्षि 1979 तक मॉरीशस में रहे और उन्होंने हिंदी रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। आज मॉरीशस में प्रत्येक वर्ष वार्षिक समारोह में 40-50 नाटकों का मंचन होता है तथा सैकड़ों कलाकार इसमें जुड़े हैं तथा हज़ारों दर्शक इन्हें देखते हैं। मॉरीशस में हिंदी नाटक की यह प्रगति प्रशंसनीय है, लेकिन एक बड़ी आवश्यकता यह है कि भारत के हिंदी मंच से मॉरीशस के हिंदी मंच का संबंध निरंतर तथा स्थाई होना चाहिए तथा दोनों के नाटककर्मियों का आदान-प्रदान तथा प्रदर्शन होते रहना चाहिए।

मॉरीशस में निबंध, लेखन-संग्रह, समीक्षा, लोक-साहित्य, यात्रा-वृत्तांत आदि में भी कृतियों का प्रकाशन हुआ हैं। जहाँ तक निबंध का प्रश्न है, वासुदेव विष्णुदयाल की पुस्तकें- 'रचनावली' (1959) 'लेखावली' (1964) 'निबंधावली' (1967), प्रसाद गनपत की 'जीवन प्रदीप', मॉरीशस हिंदी लेखक संघ की पुस्तिका 'गांधी स्मृति' (1970), शिवलाल मोती की 'मोती निबंध माला' (1972), एम. चिंतामणि की 'मॉरीशस का हिंदी साहित्य तथा अन्य निबंध' (1972), 'परिक्रमा' (2007) तथा 'निबंध प्रदीप' (2007); 'मॉरीशस हिंदी लेखक संघ' की 'सुरभित उद्यान' (1973), इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ की 'आज की हिंदी' (1979), 'विदेशों में हिंदी' (2002) तथा 'आर्यसमाज और हिंदी : विश्व संदर्भ में' (2009); आत्मकथा, जीवनी एवं संस्मरण के रूप में, मॉरीशसीय जन सेवक विष्णुदयाल की 'मेरी कोठरियाँ' (1954), अभिमन्यु अनत की 'जन आंदोलन के प्रणेता' (1986) तथा मजदूर नेता रामनारायण' (1988) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समीक्षा की दृष्टि से जे. एन. राय की पुस्तक 'मॉरीशस में हिंदी भाषा का संक्षिप्त इतिहास' (1970), डॉ. आई नन्दलाल की 'भारत की संगीत कला' (1972) सोमदत्त बखोरी की 'साहित्य की एक झाँकी' (1967) तथा 'हिंदी साहित्य का परिचय' (1979), मोहनलाल मोहित का 'आर्य सभा मॉरीशस का इतिहास' (1973) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लोक साहित्य में प्रह्लाद रामशरण ने जो शुरुआत की थी। उसी कड़ी में सुचीता रामदीन की पुस्तक 'संस्कार-मंजरी' (मॉरीशस के भोजपुरी संस्कार गीत, सन् 1989) मील का पत्थर बनी। यह पुस्तक मॉरीशस के लोक-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इनके अतिरिक्त राजेन्द्र अरूण की 'रामचरितमानस' के पात्रों पर आधारित पुस्तकें - 'हरिकथा अनंता' (1983), 'प्रेम पिआसे नैन' (1985), 'रोम रोम में राम' (1989) तथा 'जग

जननि जानकी' (1993) राम-कथा के अध्ययन को न केवल विकसित करती हैं, बल्कि अपनी मौलिकता तथा प्रभावशाली अभिव्यक्ति के कारण पाठकों को बाँध लेती हैं। इनके अतिरिक्त अभिमन्यु अनत की 'आत्म विज्ञापन' (1984), सोमदत्त बखोरी की 'मेरी हिंदी यात्रा', हरिदेव सिननन्द की 'अमर गीत' (1992), पंडित रामरूप रामसाहा की 'गीतांजलि' (1993) भी अपना महत्व रखती हैं तथा अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हैं।

मॉरीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति की यह संक्षिप्त-सी झाँकी है। मॉरीशस में भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य ने एक सेतु का काम किया है, क्योंकि भाषा के साथ साहित्य, संस्कृति धर्म, व्यापार तथा अस्मिता आदि संबद्ध रहते हैं। मॉरीशस में हिंदी भाषा और साहित्य का अस्तित्व, प्रगति एवं उत्कर्ष उसे सदैव भारत से जोड़े रखेगा और भारत भी गौरव का अनुभव करेगा कि एक लघु भारत, अपनी विशिष्टता के साथ, सुदूर क्षेत्र में जीवित और गत्यमान है। आजादी के बाद मॉरीशस में दो विश्व हिंदी सम्मेलन हो चुके हैं। वहाँ के हिंदी लेखक और कवि भी अपनी रचनाओं से निरंतर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। दर्जनों काव्य एवं कथा संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं। अपनी पहचान वे भारत के पत्र-पत्रिकाओं में भी बना रहे हैं। मॉरीशस में हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं और हो रही हैं यथा- 1. अनुराग (त्रैमासिक), 2. आर्योदय 3. इंद्र धनुष (त्रैमासिक) 4. जागृति 5. दर्पण (त्रैमासिक), 6. नव जीवन, 7. नए सितारे (त्रैमासिक), 8. पंकज (हिंदी प्रचारिणी सभा पत्रिका), 9. मजदूर, 10. मॉरीशस आर्य पत्रिका, 11. मॉरीशस मित्र, 12. बसंत (मासिक), 13. वर्तमान (साप्ताहिक), 14. सनातन धर्म, 15. समाजवाद, 16. स्वदेश (सप्ताहिक) एवं हमारा देश इत्यादि।

हिंदी के विकास में अनेक लेखकों का योगदान है। अभिमन्यु अनत, जयदत्त जीऊत, दीपचन्द बिहारी, धर्मवीर धूरा, पुष्पा बम्मा, पूजानन्द नेमा, वीरसेन जागासिंह, भानुमति नागदान, बीबी साबेबा फर्जली, महेश राम जियावन, मुनीश्वर लाल चिन्तामणि, मोहन लाल ब्रज मोहन, रामदेव धुरंधर, लोचन विदेशी, वेणी माधव, रामखेलावन, सोना लाल, नेमाधारी हेमराज सुंदर, लक्ष्मी प्रसाद रामयाद, प्रह्लाद रामशरण, डॉ. उदय नारायण गंगू, बृजलाल रामदीन, दिमलाला मोहत, पं. मोहन लाल मोहित, धर्मानन्द भंटु, अनीता ओजायब, कृष्ण लाल बिहारी 'बेखबर' आस्तानन्द सदा सिंह, सूर्य प्रसाद, मंगर भगत, जय नारायण राय, ब्रजेन्द्र कुमार भगत मधुकर, सोमदत्त वखौरी, ईश्वर गंगा राम, ईश्वर दत्त अलिमन तथा प्रेमचन्द भूली इत्यादि। आर्य सभा का हिंदी प्रचार-प्रसार में प्रभूत योगदान रहा। इसने टैक्स्ट बुक और सिलेबस का निर्माण किया। आर्य सभा अनेक परीक्षाओं का संचालन एवं पर्यवेक्षण करती है। दूसरी भाषाओं में वैदिक शिक्षा की व्यवस्था भी करती हैं। इतना होने के बावजूद हिंदी अपनी अस्मिता के लिए आज भी संघर्षशील है। सत्यदेव टैंगर ने हिंदी आंदोलन चलाया। लोगों को इतना आभास है कि अगर हिंदी नहीं रही तो उनकी संस्कृति मिट जाएगी। देश के समृद्ध, सुसंस्कृत तथा उच्च पदस्थ लोग अंग्रेजी और फ्रेंच सीखने और बोलने में ज्यादा रूचि लेते हैं। अपने बच्चों को अंग्रेजी तथा फ्रेंच माध्यम से पढ़ाना ज्यादा पसंद करते हैं। आज हिंदी में कोई दैनिक पत्र नहीं

निकलता है। मात्र समाचार की एक साप्ताहिक पत्रिका निकलती है। सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से हिंदी से ज्यादा क्रिओली पसंद है। मॉरीशस में दो विश्व हिंदी सम्मेलन हो चुके हैं। आज भी हिंदी को अपना स्थान प्राप्त कराने के लिए संघर्ष चल रहा है। अनिरूद्ध जगन्नाथ के नेतृत्व में हिंदी को राजकीय कार्यों में स्थान दिलाने का प्रयत्न किया गया है हालाँकि इसका विरोध भी हुआ। एक बार इस बिंदु पर उन्हें सत्ता से भी हाथ धोना पड़ा। फिर भी हिंदी का भविष्य बेहतर है और देर-सबेर उसे अपना उचित स्थान प्राप्त होगा। संप्रति मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय, आर्य समाज, सनातन धर्म, हिंदी प्रचारिणी सभा, हिंदी लेखन संघ, मॉरीशस साहित्य अकादमी तथा हिंदी अध्यापक संघ जैसी संस्थाएँ अनवरत इस दिशा में प्रयत्नशील एवं संघर्षशील है।

❑❑

मॉरीशस के हिंदी के विकास में उपन्यासों का योगदान

—शालेहा प्रवीन

नैसर्गिग सुषमा से सुशोभित मॉरीशस देश हिंद महासागर के देशों में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। इस खूबसूरत देश की भूधारा से मॉरीशसीय हिंदी की खुशबू निरंतर प्रवाहित हो रही है। यह देश अपने में विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों को संजोए हुए है। यहाँ का साहित्य भी कम सशक्त नहीं है। यहाँ हिंदी में साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखनी हुई है जैसे- कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, एकांकी, जीवनी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, लघु कथाएँ, हास्य-व्यंग्य, और गद्य क्षणिकाएँ आदि पर साहित्यकारों ने कलम चलाई है। "मॉरीशस की आजादी की पूर्व की रचनाओं में इतिवृतात्मकता, सुधारवादी दृष्टिकोण, संघर्ष की प्रधानता, उज्ज्वल भविष्य की कामना, प्रकृति चित्रण, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम, उच्च मानवीय भावों का प्रकटीकरण आदि प्रमुख रहा है।" वहीं आजादी के बाद की रचनाओं में मोहभंग की स्थिति, हताशा, निराशा, आक्रोश, सामाजिक-राजनीतिक विदुरुपताओं पर व्यंग्य आदि प्रमुख रहें हैं। मॉरीशस के हिंदी के विकास में विभिन्न संस्थाओं की भी प्रमुख भूमिका रही है। जिसमें बैठका, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य सभा, हिंदी संगठन, विश्व हिंदी सचिवालय, महात्मा गांधी संस्थान मॉरीशस, इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र, हिंदी लेखक संघ आदि के साथ मॉरीशस से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में हिंदुस्तानी पत्र, दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका, बसंत, दर्पण, अनुराग, सुमन, विश्व हिंदी समाचार, विश्व हिंदी पत्रिका, आर्योदय, पंकज, इंद्रधनुष आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके साथ ही "आर्य समाजियों ने अपने प्रचार से हिंदी के पौधे को सिंचित किया। दयानन्द जी के वैदिक धर्म तथा हिंदी का प्रचार होने लगा। पण्डित काशीनाथ, पण्डित गयासिंह, पण्डित शंकर शर्मा आदि अनेक हिंदी के प्रेमियों के प्रयास से हिंदी पाठशालाएँ खुलीं। प्रवासी भारतीयों के लिए ये स्कूल वरदान सिद्ध हुए।" मॉरीशस के हिंदी उपन्यासों ने भी हिंदी के विकास में अपनी अहम भूमिका निभाई है।

मॉरीशस में हिंदी उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि गिरमिटिया मजदूरों द्वारा आरंभ होती है। गिरमिटिया मजदूरों ने अपनी संस्कृति, रहन-सहन, आचार-विचार को बैठका में एकत्रित होकर

संजोए रखा। वह बैठका में रात्रि के समय अपने सांस्कृतिक ग्रंथों तथा लोकगीतों को गाया-बजाया करते थे। जहाँ से हिंदी को मॉरीशस की भूमि में एक जमीन मिली। वहीं मॉरीशस में महात्मा गांधी जी के आकस्मिक आगमन के बाद डॉ. मणिलाल के द्वारा सन् 1909 ई. में 'हिंदुस्तान प्रेस' की स्थापना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। जिसमें मॉरीशस में हिंदी पठन-पाठन एवं साहित्य लेखन को विस्तार मिला। मॉरीशस में हिंदी उपन्यासकारों में प्रोफेसर विष्णुदयाल, सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, कृष्ण लाल बिहारी, वेणी माधव, आनद देवी, अस्ताना सदा सिंह, हीरालाल जगुड़ी आदि लेखकों का योगदान सराहनीय रहा है। "मॉरीशस के उपन्यासकारों की संवेदना में नवीनता, व्यापकता और गंभीरता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मॉरीशस में डेढ़ सौ साल व्यतीत करने के उपरांत और देश को स्वतंत्र करवा लेने के पश्चात् भी मॉरीशसवासी अपने उस इतिहास को नहीं भूलते, जो उनके पूर्वजों के गिरमिटिया कुली के रूप में मॉरीशस की भूमि पर पाँव रखने के साथ प्रारंभ हुआ था। उन पूर्वजों से विदेशी शासकों ने कैसी कठोरता नृशंसता और अमानवीयता से बड़े-बड़े पत्थरों को हटवा कर, तुड़वा कर, कृषि योग्य भूमि बनवाई, इस प्रक्रिया का लोमहर्षक चित्रण मॉरीशस के अनेक हिंदी उपन्यासों में उपलब्ध है।" मॉरीशस के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मानव जीवन के विविध समस्याओं को भी रेखांकित किया है।

मॉरीशस के प्रथम हिंदी उपन्यास के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। जिसमें कतिपय विद्वान श्री कृष्ण लाल बिहारी का सन् 1907 ई. में प्रकाशित 'पहला कदम' को प्रथम उपन्यास मानते हैं। कुछ विद्वान इसे चालीस पृष्ठों में लिखा लघु उपन्यास मानते हैं। जो आत्मकथा की शैली में लिखा गया है, जो एक प्रेम कथा पर आधारित है। लघु उपन्यास की श्रेणी में रखने के बावजूद भी 'पहला कदम' उपन्यास मॉरीशस में उपन्यास लेखन परंपरा की शुरुआत का बिंदु माना जा सकता है। क्योंकि इससे पहले उपन्यास लेखन का प्रयास नहीं किया गया था। इसके पश्चात मॉरीशस की स्वतंत्रता संघर्ष के समय विष्णुदयाल का लघु उपन्यास 'रूप किशोर और सुजाता' (1962 से लेकर 1966 तक) 'जमाना' पत्रिका में प्रकाशित होता रहा है। इस उपन्यास को भी विद्वानों ने लघु उपन्यास की श्रेणी में रखा। मॉरीशस के अन्य लेखकों में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों की बात करें तो दीपचन्द बिहारी का 'मसीहे नर्क जीते हैं' (1980), विष्णु दत्त मधु की 'फट गई धरती' (1975), वेणी माधव रामखेलावन का 'अमर प्रेम' (1985), आनन्द देवी का 'कसूर किसका' (1985), अस्ताना सदा सिंह का 'मांसभक्षी' (1986), और हीरालाल जगुड़ी का 'सगाई' (1988) आदि हैं। जिनका उपन्यास के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन उपन्यासों के माध्यम से हिंदी के विकास को गति मिली।

मॉरीशस में हिंदी उपन्यासों का रचना संसार बहुत विस्तृत नहीं है, जिसमें अधिकांश उपन्यास अभिमन्यु अनत तथा रामदेव धुरंधर के द्वारा ही लिखित है। अधिकतर उपन्यासों का हिस्सा दोनों लेखकों के रचना जगत में सिमट जाता है। मॉरीशस की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अभिमन्यु अनत

उपन्यास लेखन में सक्रिय हुए। वे कहते हैं कि- "मेरी प्रेरणा हमेशा मेरे अपने इर्द-गिर्द के दु:ख-दर्द के बीच से आती है। इस प्रेरणा की मानसिक यातना ने ही मुझे उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त किया और उसी का फल है यह मेरा पहला उपन्यास 'और नदी बहती रही।" इस तरह से उनके एक के बाद एक लगभग बत्तीस उपन्यास प्रकाशित हुए। अभिमन्यु अनत के साथ-साथ ही हिंदी उपन्यास लेखन का कार्य रामदेव धुरंधर भी कर रहे थे। रामदेव धुरंधर एक सशक्त उपन्यासकार हैं। सन् 1880 ई. से लेकर अब तक उनके उपन्यास लगातार प्रकाशित हो रहें हैं। इनके अब तक लगभग पंद्रह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

मॉरीशस के लिखित उपन्यासों की कथावस्तु में अनेक प्रकार की विविधता का समावेश मिलता है। जो मॉरीशस देश में रह रहे भारतवंशियों के अतीत, वर्तमान और भविष्य को प्रतिबिंबित करता है। हम उपन्यासों को विभिन्न श्रेणियों में रखकर देख सकते हैं। जैसे राजनीतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और जीवन के अन्य विविध पक्षों पर आधारित। ऐतिहासिक विषय पर लिखे गए उपन्यासों की बात की जाए तो उसमें ऐतिहासिकता के पीड़ादायक स्वर मुखरित होते हैं। जिसमें 'लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे', 'और पसीना बहता रहा', पूछो इस माटी से', 'पथरीला सोना' आदि को देखा जा सकता है। ऐसे ही सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यासों की विषयवस्तु मुख्य रूप से समाज में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी, मजदूरों एवं किसानों का जीवन संघर्ष, स्त्री जीवन की विविध समस्याएँ, समाज में फैली नशे की समस्या, शिक्षा व्यवस्था और प्रेम तथा वेश्यावृत्ति की समस्याओं तथा भारतीय वेशभूषा, रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, आस्था की मान्यता आदि पर आधारित है। जिसमें 'और नदी बहती रही', 'चौथा प्राणी', 'आंदोलन', 'एक बीघा प्यार', 'तपती दोपहरी', 'अपनी ही तलाश', 'अपनी अपनी सीमा', 'अचित्रित', 'शेफाली', 'अस्ति-अस्तु', 'बनते बिगड़ते रिश्ते', 'मेरा निर्णय', 'विराट गली के बासिंदे', 'पथरीला सोना' (चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम खंड), 'अपने रस्ते का मुसाफिर', ' जिंदगी कहाँ से कहाँ तक', 'मसीहे नर्क जीते हैं', 'फट गई धरती' आदि प्रमुख हैं। यदि राजनीतिक उपन्यासों की विषयवस्तु की बात की जाए तो इसमें सरकारी तंत्र, भाई-भतीजावाद, राजनीतिक भ्रष्टाचार और विभिन्न राजनीतिक परिदृश्यों को उजागर किया गया है। जिसमें 'चुन-चुन चुनाव', 'शब्दभंग', 'मुड़िया पहाड़ बोल उठा', 'चेहरों का आदमी', 'छोटी मछली बड़ी मछली' और 'ढलते सूरज की रोशनी' आदि प्रमुख हैं।

अस्तु मॉरीशस के पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास में हिंदी भाषा का संवर्धन अनेक कारक तत्वों के माध्यम से होता रहा है। मॉरीशस में हिंदी को रोजगार की भाषा के रूप में स्थापित करने का कार्य विभिन्न संस्थाओं द्वारा चलाया जा रहा है। जिसमें शिक्षा, मीडिया और प्रशासन आदि प्रमुख हैं। हिंदी भाषा आज भी भारतवंशियों की अस्मिता का प्रतीक है। हिंदी भाषा मॉरीशसीय भारतवंशियों के हृदय में रचती-बसती है। यही कारण है कि हिंदी भाषा में साहित्यिक रचनाएँ वहाँ निरंतर चल रही हैं। जिसके माध्यम से हिंदी की पहचान को सफलता मिल रही है। इसी कड़ी में हिंदी उपन्यासों ने भी हिंदी

को संपन्नता प्रदान की है किंतु मॉरीशस में हिंदी उपन्यास का विकास जिस तेज गति से हुआ उसी गति से धीमा भी पड़ता जा रहा है। अभिमन्यु अनत एवं रामदेव धुरंधर ने इस विधा का अधिकांश भार अपने कंधों पर उठा रखा है। रामदेव धुरंधर कहते भी हैं कि "मैं मॉरीशस में शब्द बोता हूँ और भारत में उनकी फसल काटता हूँ।" अभिमन्यु अनत के न रहने से मॉरीशस में हिंदी उपन्यास लेखन में कुछ कमी अवश्य आई है। जिसकी क्षतिपूर्ति रामदेव धुरंधर निरंतर कर रहें हैं और वह एक मात्र उपन्यासकार हैं, जिन्होंने वर्तमान में उपन्यास लेखन की बागडोर को संभाल रखा है और वहीं मॉरीशस में नवीन उपन्यास लेखन के प्रति नवीन लेखकों में गहरी उदासीनता दिखाई देती है। जो भविष्य में मॉरीशस के हिंदी उपन्यास लेखन के प्रति एक गंभीर चिंता का विषय है। वर्तमान में मॉरीशस के लेखक धनराज शम्भु का प्रथम उपन्यास 'जिंदगी कहाँ से कहाँ तक' प्रकाशित हुआ है। जो निकट भविष्य में मॉरीशस के नवीन साहित्यकारों को उपन्यास लेखन के प्रति प्रोत्साहित करेगा।

संदर्भः

1. अग्रवाल, डॉ. सतीश चन्द्र, मॉरीशसीय हिंदी भाषा और साहिय, भूमिका से
2. डॉ. सिंह जोगेन्द्र, 2006, हिंदी की विश्व व्याप्ति, अनंग प्रकाशन, पृ. 20
3. डॉ. निर्मम, 1992, हेमराज, मॉरीशस के हिंदी उपन्यासों का मूल्यांकन, प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली, प्रथम संस्करण भूमिका से
4. गोयनका, कमल किशोर, 2017, मॉरीशस के हिंदी साहित्यकार अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 9
5. himalayauk.org>ramdev-dhurandhar

❑❑

हिंदी के वैश्वीकरण में अनुवाद की भूमिका

—अभिनव कुमार मिश्रा, हर्ष कुमार

'भाषा' मनुष्य का सबसे मूल्यवान अधिकार है। भाषा प्रकाश का एक ऐसा अनूठा स्रोत है, जिसके द्वारा ज्ञान का प्रसार होता है। भाषा मानव प्रकृति का एक प्राकृतिक उपहार है, जिसकी उत्पत्ति और विकास स्वयं मानव विकास के समय से ही है। दुनिया भर में कई लिखित और बोली जाने वाली भाषाएँ हैं। मनुष्यों की जिज्ञासु प्रकृति के कारण, व्यापक भाषा अंतर के बावजूद विभिन्न भाषा-भाषी समाजों में आदान-प्रदान हुआ। विभिन्न भाषाओं के मेल से अनुवाद का विकास हुआ। यह पूरी तरह से जैविक प्रक्रिया रही है। अनुवाद के माध्यम से सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक विभाजन को कम करने और नए संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपनी वस्तुओं के लिए बाजार की तलाश कर रहा है। इस मार्केटिंग को अनुवाद के माध्यम से एकीकृत किया गया है। दुनिया के सबसे बड़े बाजार के रूप में उभरे भारत में प्रवेश के लिए हिंदी की जरूरत है। विश्व स्तर पर, हिंदी बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। यह देखा जा सकता है कि डिस्कवरी, पोगो और नेशनल ज्योग्राफिक चैनलों को अंततः अपने प्रसारण के लिए हिंदी अनुवाद प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ी। जहाँ वैश्वीकरण और सूचना क्रांति एक साथ दुनिया को एक गाँव में बदल रहे हैं, वहीं अंग्रेजी भी अधिक व्यापक रूप से बोली जा रही है। जिसके कारण एक या एक से अधिक भाषाएँ कुछ समय अंतराल के बाद विलुप्त होते जा रही हैं। ऐसे में हिंदी के प्रचार-प्रसार को अपनी पहचान को जीवंत और अत्यंत प्रभावी बना, रखना अत्यधिक आवश्यक है। एथनोलॉगरू लैंग्वेजेज ऑफ द वर्ल्ड 2015 का दावा है कि चीनी (मंदारिन) और अंग्रेजी के बाद हिंदी तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। मॉरीशस, त्रिनिदाद, गुयाना और सूरीनाम में एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में पहचाने जाने के अलावा, हिंदी भारत और फ़ीजी की आधिकारिक भाषा है।

इस बहुभाषी दुनिया में, अनुवाद आपसी संचार और विकास के लिए हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है। अंग्रेज़ों के अग्रणी काल में हिंदी स्वायत्त चेतना की आवाज़ के रूप में उभरी। भारतीय राष्ट्रवाद से लड़ने के लिए हिंदी का इस्तेमाल किया गया और अनुवाद ने

पश्चिम के ज्ञान और शास्त्रों को भारतीयों तक पहुँचाया। 1999 में यूनेस्को के महाधिवेशन में पारित प्रस्ताव में सभी राष्ट्रों के विधानमंडलों से भी आह्वान किया गया है कि वे स्थानीय भाषाओं और बोलियों को बचाएँ और उनका उपयोग और प्रभुत्व बढ़ाएँ। संयुक्त राज्य अमेरिका में, 32 विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी पढ़ाई जाती है। यूनाइटेड किंगडम में कैम्ब्रिज और लंदन विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ाई जाती हैं। 15 जर्मन शिक्षण संस्थानों ने हिंदी साहित्य और भाषा के अध्ययन को अपनाया है। 1942 में, चीन ने हिंदी पढ़ाना शुरू किया। हिंदी रचनाओं का चीनी भाषा में अनुवाद 1957 में शुरू हुआ। हिंदी के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए सरकार द्वारा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अलावा, हिंदी पहले से ही यूनेस्को की सात भाषाओं में शामिल है।

वैश्वीकरण और भारत के तेजी से विकास के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में हिंदी भाषा के प्रति दुनिया भर में लोगों का रवैया बदला है और साथ ही हिंदी भाषा सीखने की रुचि बढ़ रही है। यह तथ्य कि अब दुनिया भर के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जाती है, यह दुनिया में हिंदी के प्रति बढ़ते प्रेम का एक उदाहरण है। दुनिया भर के 90 विश्वविद्यालयों में "हिंदी पीठ" हैं। प्राचीन काल से ही भारत ने अनेक देशों के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान किया है। अनुवाद भी स्वाभाविक रूप से व्यापारिक व्यवहार को सरल बनाता है। यह अनुवाद ही है जिसके द्वारा विनिमय के सांस्कृतिक स्तर को भी क्रियान्वित किया गया। कहानियाँ, कला और दर्शन वे पहले माध्यम थे, जिनके द्वारा राष्ट्र एक-दूसरे से परिचित हुए। इसके अलावा, अनुवाद का उद्देश्य लोगों को एक-दूसरे के करीब लाना भी है। हर प्रतिभा, विचार, चर्चा और साहित्य का पूरी दुनिया में अनुवाद किया जा रहा है। अनुवाद आज की दुनिया में उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शोध। किसी भी भाषा के मूल ग्रंथ ही उसे सुंदर बनाते हैं, लेकिन अनुवाद भाषा को विकसित करने में भी मदद करता है। केवल अनुवाद के माध्यम से ही विभिन्न संस्कृतियों से सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत का आदान-प्रदान संभव है, साथ ही उनकी व्याख्या, विस्तार और व्यावहारिक रूप भी। हमारे दैनिक जीवन में अनुवाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुवाद भी एक आवश्यक आधुनिक आवश्यकता है।

जे-डब्ल्यू- गेटे का कथन है कि, "अनुवाद की अपूर्णता के संबंध में कोई चाहे जो भी कहे, परंतु अनुवाद विश्व के सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण और महानतम कार्य है।" अनुवाद कार्य न होने पर हमें केवल अपने समाज के ज्ञान और संस्कृति का ज्ञान होगा। अपने कार्य के कारण, अनुवाद देशों और दूरियों में मौजूद भाषाई विविधता को कम करता है और संवाद शुरू करने का प्रयत्न करता है। आज के इस आधुनिक और इंटरनेट के दौर में अनुवाद सभी को जोड़ने के साधन के रूप में विकसित हुआ है। आज के युग में विज्ञान और ज्ञान के सभी क्षेत्रों में भाषाविदों और शोधकर्ताओं के लिए अनुवाद अब एक आवश्यकता है। अनुवाद भाषा संरक्षण के साथ ही, लक्ष्य और स्रोत भाषाओं को एक समान देखने का काम करता है। यह अनुवाद की ही देन और योगदान है, जिसने वैश्विक क्रांति को नया

जीवन दिया है। आज की दुनिया में, संचार बाजार यह सुनिश्चित करने के लिए कई अनुवादकों को नियुक्त कर रहा है कि हर संचार चैनल से समाचार दुनिया के अन्य क्षेत्रों में तुरंत हर भाषा में पहुँचे।

अनुवाद फिल्मों के लिए भी डबिंग और सबटाइटलिंग सिस्टम की नींव है। हिंदी भाषा इस परिस्थिति में विश्व में सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। क्योंकि हिंदी भाषी समुदाय एक बड़ा उपभोक्ता समूह है। व्यापार के लिए हिंदी का उपयोग करना हिंदी के विकास के लिए अच्छा है। आप देखेंगे कि भारत में बने असंख्य परमाणु उपकरणों, रॉकेटों और हथियारों के नाम हिंदी में हैं और इनका विभिन्न देशों में व्यापार हो रहा है। फलस्वरूप हिंदी का कद भी बढ़ रहा है। हिंदी में ब्लॉगिंग और फेसबुक का चलन भी वैश्विक संचार और संवाद के बेहद प्रभावी माध्यम के रूप में उभरा है। "भारतीय भाषाओं में प्रौद्योगिकी विकास (टीडीआईएल)" परियोजना के माध्यम से, भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने भारतीय भाषाई तकनीकी पारिस्थितिकी तंत्र में तेजी लाने का प्रयास किया है। "माइक्रोसॉफ्ट इंडिक लैंग्वेज इनपुट टूल फॉर हिंदी" सॉफ्टवेयर की शुरुआत के साथ, माइक्रोसॉफ्ट ने हाल ही में यूनिकोड प्रणाली का उपयोग करके हिंदी टाइपिंग में क्रांति ला दी है। आधुनिक युग अनुवाद युग के रूप में उभर कर सामने आया है। अनुवाद के सहायता से विज्ञान और ज्ञान के क्षेत्र प्रगति हो रही हैं। आज की दुनिया अनुवाद के कारण छोटी होती महसूस हो रही है। अनुवाद के सहारे आज अधिक से अधिक संबंध बनाए जा रहे हैं और सीमाएँ लांघी जा रही हैं। यह हमें अन्य भाषा-भाषी समुदायों से जोड़ रहा है और हमारे समग्र ज्ञान का विस्तार कर रहा है। ज्ञान के वैश्विक प्रसार के परिणामस्वरूप मानव चेतना के नए आयाम भी सामने आए हैं। जब हम भाषाई सीमाओं को पार करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि हम अपनी भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा भी सीख रहे हैं। अनुवाद ही एकमात्र जरिया है, जिससे हम यह जानकारी प्राप्त करते हैं। हम ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अन्य भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से किए जा रहे कार्यों के बारे में सीखते हैं। अनुवाद अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं के बारे में सीखने और समझने का एक साधन है।

यूनान, मिस्र, चीन और इनके जैसी अन्य प्राचीन सभ्यताओं का भारत से घनिष्ठ संबंध रहा है। और अनुवाद ने इस संबंध में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुवाद की एक समृद्ध परंपरा पूरे एशिया में बौद्ध धर्म के प्रसार का कारण है। पूरी दुनिया में उपनिषदों और गीता का अपने-अपने अनोखे तरीके से अनुवाद किया गया है। बौद्ध धर्म का उपयोग भारतीय ग्रंथों का चीनी में अनुवाद करने के लिए किया गया था। परिणामस्वरूप, साहित्य और कला के लिए विश्व चेतना का विकास हुआ। अनुवाद की भूमिका विभिन्न संस्कृतियों के बीच की दूरियों को कम करने की रही है। मनुष्य की सार्वभौमिक, ऐतिहासिक और सामाजिक एकता की दृष्टि अनुवाद के माध्यम से उभरती है। नतीजतन भाषाओं में बाहरी अंतर के बावजूद मानव अस्तित्व के समान पहलुओं को पेश किया जाता है। अतीत में, अनुवाद रचनात्मक साहित्य तक ही सीमित था। आज, यह रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा है। अनुवाद के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि हिंदी भाषा और साहित्य किन भाषाओं और देशों में लिखा गया है, साथ ही यह अन्य राष्ट्रों से कितना समान और विशिष्ट है। विद्वानों के अनुभव की

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत पुरानी है। यह निर्विवाद है कि अनुवाद ने हिंदी भाषा के विकास के साथ-साथ हिंदी साहित्य के विभिन्न रूपों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुवाद काफी हद तक वह माध्यम रहा है, जिसके माध्यम से विश्व में हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन्न रूपों ने सूचनाओं का आदान-प्रदान किया है।

तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन और उसमें अनुवाद का महत्व बहुभाषिक देश भारत में प्रासंगिक रहा है। विभिन्न भाषाओं में लिखे गए भारतीय साहित्य के इतिहास की सार्वभौमिकता की सराहना करने के लिए अनुवाद का उपयोग आवश्यक हो जाता है। ज्ञान और विज्ञान की वैश्विक जागरूकता से, अनुवाद ने मानवीय संज्ञानात्मक और भावनात्मक संवेदनशीलता को बदल दिया है। जैसे-जैसे दुनिया की दूरियाँ कम होती जा रही हैं वैसे-वैसे अनुवाद की उपयोगिता, प्रासंगिकता और महत्व बढ़ते जा रहे हैं। प्राचीन काल से, अनुवाद अंतरराष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य के लिए उपयोगी रहा है। प्राचीन काल से, यूरोप, भारत, अरब, चीन और अन्य देशों के व्यापारी अनुवादकों की मदद से विदेशों में अपना व्यापार करते थे। उत्पाद विपणन में अनुवाद के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। उत्पादों और वस्तुओं के अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा से आगे रहने के लिए अनुवाद और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

अनुवाद भारत में भी एक लंबे समय से चली आ रही प्रथा है। संतों ने अपनी मातृभाषा में पाली और संस्कृत के साहित्य, दर्शन, धर्म और अन्य कार्यों का अनुवाद करके जागरूकता पैदा की है। वेदों, ज्योतिष, व्याकरण और अन्य ग्रंथों के अनुवाद ने भी हिंदी के विकास में योगदान दिया। अनुवाद के माध्यम से, हम फ्रांसीसी क्रांति, यूरोपीय पूंजीवाद, विस्तारवाद और सामराज्यवाद के खतरों से अवगत हुए। धार्मिक और पौराणिक साहित्य का क्षेत्र अतीत में मौजूद अनुवाद का एकमात्र क्षेत्र था। हालाँकि समय के साथ-साथ इसका दायरा काफी बढ़ गया है। जैसे-जैसे वैश्वीकरण और उदारीकरण ने अपनी सीमाओं को पार किया है और विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्व बढ़ाया है, अनुवाद का महत्व और भी बढ़ गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं से अनुवाद करने की प्रथा शुरू हुई। 16वीं शताब्दी से हिंदी अनुवाद व्यवस्थित ढंग से होता आ रहा है। वशिष्ट द्वारा लिखित संस्कृत वेदांत ग्रंथ 'योग वशिष्ठ' का अनुवाद रामप्रसाद 'निरंजनी' के द्वारा की गई 'भाषा योग वशिष्ठ' (1741) को खड़ी बोली हिंदी गद्य को प्राचीनतम पुस्तक के रूप में माना जाता है। 18वीं और 19वीं शताब्दी में श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद मुंशी सदासुख लाल 'नियाज' द्वारा 'सुखसागर' किताब के रूप में किया गया। खड़ी बोली काव्य की प्रथम कृति श्रीधर पाठक की 'एकांतवासी योगी' (1886) औलिवर गोल्डस्मिथ की 'द हरिमट' का काव्य अनुवाद है।

इजराइल में तेलअविव विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर इत्तमार इवान जोहर ने अपने शोध ग्रंथ 'हिब्रू' में 'साहित्यिक अनुवाद का इतिहास' में कहा है कि, "साहित्य के इतिहास में प्रायः अनुवाद का उल्लेख तभी होता है, जब उसकी उपेक्षा किसी तरह संभव ना हो, जैसे पुनर्जागरण या मध्यकाल का

इतिहास लिखते समय साहित्य का ऐतिहासिक लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए अनुवाद का उल्लेख वृहत साहित्यिक प्रणाली के साथ सुव्यवस्थित ढंग से किया गया है, अन्यथा साहित्यिक प्रणाली अपने आप में अधूरी समझी जाती।" भारतीय पुनर्जागरण का उदय खड़ी बोली हिंदी के उद्भव और विकास के साथ हुआ। यदि पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों के टकराव से उत्पन्न ऊर्जा है, तो अनुवाद वह माध्यम है, जिसके माध्यम से सांस्कृतिक संपर्क और संबंध बनते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के विश्व प्रसिद्ध क्लासिकल महाकाव्य रामचरितमानस (1574) का अनुवाद लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ कई विदेशी भाषाओं जैसे अंग्रेजी, रूसी, चीनी और अन्य में भी हुआ है। यह महाकाव्य अपने समय का इतना महत्वपूर्ण काव्य था कि संस्कृत के एक विद्वान राम द्विवेदी ने सन् 1605 के आसपास 'प्रेम रामायण' नाम से इसका अनुवाद संस्कृत में किया। जिसकी हस्तलिखित प्रति लंदन में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया के ग्रंथालय में उपलब्ध है।

अदालत खाँ (1874), एस- एफ-ग्राउज (1883), एस-पी बहादुर (1971), रामचंद्र प्रसाद (1988) और सी-एल ठोंडी (1991) द्वारा 'रामचरितमानस' का जो अनुवाद अंग्रेजी में किया गया है, उनमें अधिकतर अनुवाद गद्य और कुछ पद्य में है। 'रामचरितमानस' के अभी तक हुए सारे अंग्रेजी अनुवादों में एटकिंस का अनुवाद अन्य अनूदित कार्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता है। अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं में जो 'रामचरितमानस' के अनुवाद हुए हैं, वे समूचे विश्व के अनुभूति के प्रमाण हैं। चीनी भाषा में मानस का छंदबद्ध पद्यानुवाद जिन-दिग-हान (198 द्वारा किया गया। जिन-दिग-हान द्वारा चीनी भाषा में अनूदित यह रचना चीनी भाषियों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ। जापानी भाषा में 'रामचरितमानस' का प्रथम अनुवाद उन इकेदा ने 1991 में 'भगवान राम के चरित्र का सरोवर' नाम से किया जो कि पूर्णतया शाब्दिक अनुवाद है। भोलानाथ नादान द्वारा 'समररू अल् हयात' (जीवन का फल या उपलब्धि) नाम से फारसी भाषा में अनुवाद किया गया।

किसी भी भाषा का समग्र विकास अनुवाद पर बहुत अधिक निर्भर करता है। हिंदी नाटकों के उदय का श्रेय वास्तव में अनुवाद को जाता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि हिंदी नाटक मूल के बजाए अनूदित नाटक से शुरू होते हैं। विलियम जोन्स द्वारा 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का लैटिन भाषा में अनुवाद पश्चिम में भारतीय साहित्य की शुरुआत का प्रतीक है। शकुंतला "द फेटल रिंग" 1789 का अंग्रेजी अनुवाद इस अनुवाद के आधार के रूप में कार्य करता है। अनुवादक ने अपनी प्रस्तावना में कालिदास को "भारत का शेक्सपियर" कहा। पूरे यूरोप में विलियम जोन्स के अनुवाद की सफलता के परिणामस्वरूप 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का लगभग हर यूरोपीय भाषा में अनुवाद किया गया। चेकोस्लोवाकिया के 'शहीद जुलियस फ्यूचिक की आत्मकथा' का अनुवाद नेमीचंद्र द्वारा 'फाँसी के तख्थे' रचना के रूप में किया गया। प्रसिद्ध चीनी क्रांतिकारी यू-टी-हेसू की आत्मकथा 'अदृश्य संघर्ष' (1964) प्रकाशित हुई। एंथनी सिल्वेस्टर कृत 'लिविंग विद कम्युनिजम' का अनुवाद विजयश्री भारद्वाज द्वारा 'साम्यवाद के मेरे अनुभव' नाम से किया गया। तुर्की भाषा में लिखी गई

जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर की आत्मकथा 'तुजूक-ए-बाबरी' का अनुवाद अब्दुर्रहीम खानखाना ने 1590 में किया। इसका हिंदी भाषा में अनुवाद 1971 में श्री मथुरा लाल शर्मा द्वारा किया गया। यह आत्मकथा बाबर कालीन भारत का एक प्रमाणिक दस्तावेज है।

टौलस्टाय, गोर्की और कैसर की आत्मकथाएँ अपने समय में काफी लोकप्रिय रहे। रूसी लेखक टौलस्टाय की आत्मकथा 'ए कंफेशन' का अनुवाद उमराव सिंह द्वारा 'टौलस्टाय की आत्मकहानी' 1922 शीर्षक नाम से किया गया। मैकिसम गोर्की की आत्मकथा 'मेरा बचपन' 1929, 'जीवन राहों पर' नाम से अनूदित हुई। जर्मनी के प्रसिद्ध कैसर की आत्मकथा को पारसनाथ सिंह द्वारा 'कैसर की राम कहानी' 1930 नामक शीर्षक से अनूदित किया गया। विदेशी लेखकों में एफ-आर-वेस्ट की आत्मकथा 'कोलमाइन टू पार्लियामेंट तक' (1932) में अनूदित किया गया। जर्मनी के तानाशाह हिटलर की आत्मकथा को कृष्णचंद्र बेरी ने 'मेरा जीवन संग्राम' नाम से अनूदित किया। संस्कृत के साथ ही साथ अंग्रेजी कार्यों के साहित्यिक अनुवाद ने हिंदी साहित्य और भाषा के संवर्धन में योगदान दिया। भारतीय अनुवादकों ने अंग्रेजी साहित्य के संपर्क में आते ही अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद हिंदी भाषा में करना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त, शेक्सपियर के सभी नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया गया। प्रत्येक नाटक को कहीं भावानुवाद के रूप में अनूदित किया गया है तो कहीं गद्यानुवाद के रूप में। कहीं-कहीं नाटकों के पात्रों के नामों का भारतीय करण भी किया गया है। कहीं ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है तो कहीं अवधी भाषा का। हिंदी के प्रारंभिक काल में शेक्सपियर की यह ख्याति तत्कालीन रंगमंच के अभ्यासों के कारण ही मानी जाती है। उन दिनों हिंदी क्षेत्र में रंगमंच के नाम पर हमारे पास प्रस्तुत करने के लिए या तो रामलीला, रासलीला या स्वांग जैसी लोक कलाएँ थी या पारसी रंगमंच था।

वास्तव में हिंदी साहित्य को उपन्यास की जिस नई साहित्यिक विधा का परिचय हुआ, वह डेनियल डेफो द्वारा अंग्रेजी में रचित उपन्यास 'द लाइफ एंड स्ट्रेंज एंड सरप्राइजिंग एडवेंचर ऑफ रॉबिंसन क्रूसो' (1719) के हिंदी अनुवाद 1860 से हुआ। 1865 में एक ईसाई मिसनरी द्वारा जान बनियान के उपन्यास 'पिलग्रिम्स प्राग्रेस' (1676) को 'यात्रा स्वरनोदय' के नाम से अनूदित किया गया। वाल्टर स्कॉट के उपन्यास 'द एवट' (1820) का हिंदी भाषा में सर्वप्रथम अनुवाद श्री चंद्रलाल द्वारा 'रानी मेरी' शीर्षक नाम से किया गया। 'विचित्र विचरण' नाम से जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा जोनाथन स्विफ्ट की सुप्रसिद्ध रचना 'गुलिवर्स ट्रैवल' (1726) को अनूदित किया गया। केशवराम भट्ट द्वारा सैमुअल जॉनसन लिखित सुप्रसि) 'ओरिएंटल टेल' रेसेल्स (1759) को हिंदी भाषा में अनूदित किया गया। भारतीय साहित्य पश्चिम में हमेशा से प्रेरक रहा है। भारतीय साहित्य के अनुवाद का प्रमाण मैक्स मुलर द्वारा संपादित और कई भाषाविदों द्वारा अनुवादित 'द सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट' है। 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी अनुवाद ए-जी-टकिनस, डब्ल्यू-डगलस पी-हिल और एस-एफ-गराउज द्वारा किया गया। 1974 में कबीर कृत 'बीजक' का रूपांतर वॉदविल ने अंग्रेजी में किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 20वीं शताब्दी में पश्चिमी अनुवाद साहित्य का एक अनोखे ढंग से विकास हुआ। साहित्य, दर्शनशास्त्र, विज्ञान एवं समाजशास्त्र, और अन्य क्षेत्र में भी अनुवाद कार्यों को शुरू किया गया। अनुवाद साहित्य आधुनिक युग में अत्यंत विविध और व्यापक हो गया है। एन- .वर्ग द्वारा महाभारत को पहली बार रूसी भाषा में अनूदित किया या। 1981 में एम-गोर्की के निर्देशन में, भारतीय साहित्य के अनुवाद की प्रथा ने सोवियत संघ में विशेष ध्यान आकर्षित किया। प्रेमचंद की 'गोदान और रंगभूमि', यशपाल का 'झूठ-सच', दिव्या अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष', रांगेय राघव के 'मुर्दों का टीला' और 'कब तक पुकारूँ', फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' आदि रचनाएँ रूसी भाषा में अनूदित हुई। 1957 में प्रेमचंद की 'गोदान' को चेक भाषा में औदोलन स्मैकल द्वारा अनूदित किया गया। भारत के लिए महत्वपूर्ण अनुवादों में रविंद्रनाथ कृत 'गीतांजलि' और यूनेस्को द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद की गोदान है। रूसी में प्रेमचंद और तुलसीदास के अनेक अनुवाद हुए। यह कहना सही होगा कि प्राचीन काल से चली आ रही प्रवाहमान पश्चात अनुवाद परंपरा को ध्यान में रखते हुए देश और समय के आधार पर अनुवाद से संबंधित सैद्धांतिक विचारधाराएँ बदलती रही है। अभी भावानुवाद के रूप में तो कभी शब्दानुवाद के रूप में अनुवाद को प्रधानता दी जाती रही है, लेकिन अनुवाद निरंतर ही बढ़ता चला जा रहा है।

वैश्वीकरण के वर्तमान युग में, हिंदी में वैश्विक भाषा बनने का पहला गुण है क्योंकि यह भारत के बाहर बड़ी संख्या में देशों में कई लोगों द्वारा बोली जाती है। उनकी एक विशिष्ट, व्यापक संस्कृति है। इसके अतिरिक्त, भाषा की विदेशी शब्दों को अवशोषित करने और पचाने की क्षमता एक विशेषता है। इस क्रम में, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हिंदी एक सांस्कृतिक परंपरा के भीतर विकसित हुई है, जिसमें पाणिनि का व्याकरण इसकी मौलिक नींव के रूप में कार्य करता है। विद्वानों के अनुसार चीन और जर्मनी की भाषाएँ बौद्ध धर्म से प्रभावित रही होंगी। इसलिए, इन भाषाओं के बीच भी संबंध खोजना आवश्यक है। इससे हिंदी की पहुँच और भी बढ़ सकती है। जिस आसानी से इसकी लिपि सीखी जा सकती है वह एक अन्य कारक है, जिसने हिंदी को वैश्विक भाषा के रूप में प्रमुखता देने में योगदान दिया है। विश्व की सर्वश्रेष्ठ लिपियों में से एक देवनागरी है। क्योंकि यह जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है, यह अद्वितीय है। भविष्य में ऐसे कंप्यूटर सॉफ्टवेयर विकसित करने की भी योजना है, जिसमें भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाए। ऐसे में बेहतरीन ध्वन्यात्मक लिपि की भी तलाश की जा रही है। इस संदर्भ में देवनागरी लिपि के संभावित अनुप्रयोग पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। हिंदी और अनुवाद का ऐसा संयोग देखिए कि गीतांजलि श्री हिंदी की पहली ऐसी लेखिका है, जिन्हें अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला है। यह पुरस्कार उनके उपन्यास 'रेत समाधि' के अंग्रेजी अनुवाद 'टूम ऑफ सैंड' के लिए दिया गया। इसका अनुवाद प्रसिद्ध अनुवादक डेज़ी राकवाल ने किया है। यह पहली बार है कि किसी भारतीय भाषा के अनुवाद को यह अवार्ड मिला है, जिसने भारतीय साहित्य और हिंदी लेखक को गौरव का क्षण दिया है। आज जन संचार के माध्यमों में होने वाले विकास ने हिंदी भाषा के क्षेत्रों को विस्तृत कर दिया है। यह कहने कि आवश्यकता नहीं है कि

हिंदी अनुवाद ने आज पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरोने का काम किया है। विभिन्न टीवी चैनलों के कारण भारत के साथ-साथ पूरे विश्व में हिंदी समझने, बोलने और लिखने वालों की संख्या में भी तीव्र बढ़ोतरी हो रही है। बहुत सारे हिंदी शब्दों को ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में शामिल किया गया है- अन्ना, अब्बा, अच्छा, बापू, सूर्य नमस्कार, गुलाब जामुन मिर्च मसाला, चटनी इत्यादि। अवतार दुनिया में सबसे अधिक कमाई करने वाली फिल्म है, अगर अवतार शब्द पर गौर किया जाए तो यह संस्कृत और हिंदी से ही संबंधित है।

निष्कर्ष: यह है कि बाजार, वैश्वीकरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी बहुत बदल गई है। हिंदी विश्व स्तर पर अत्यंत समृद्ध होती जा रही है। भारत में प्रवेश करने के लिए, जो वर्तमान में दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है, लिए आपको हिंदी जानना और सीखना पड़ेगा। हिंदी का विषय अब अभिव्यक्ति का मुद्दा होने के साथ-साथ सार्वजनिक और सामाजिक चरित्र का भी मुद्दा बन गया है।

संदर्भ:

1. गोस्वामी, कृष्ण कुमार (2012), अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशनए नई दिल्ली।
2. जैन, वृषभ प्रसाद (1995), अनुवाद और मशीनी अनुवाद, सारांश प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
3. तिवारी, डॉ. भोलानाथ (1990), हिंदी भाषा शिक्षण, लिपी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. पाठक, हरिश्चंद्र (1952), हिंदी भाषा इतिहास और संरचना, तक्षशिला प्रकाशन : नई दिल्ली।
5. शर्मा, देवेन्द्र (1965), राष्ट्रभाषा हिंदी समस्याएँ और समाधान, राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।
6. शर्मा, रामविलास (1977), भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।
7. http://www.hindikunj.com/2009/06/blog&post-htm
8. https://www.jansatta.com/sunday&magazine/language-hindi-in-the-era-of-globalization/289454/
9. https://www.nutankahaniya.page/2019/11/vaishveekaran-ke-daur-mein-hin-cQbwc9.html
10. https://www.deshbandhu.co.in/vichar

❑❑

फ़ीजी का गौरव हिंदी

—बलजीत कुमार श्रीवास्तव

फ़ीजी दक्षिण प्रशांत महासागर के मेलोनेशिया द्वीप में स्थित फ़ीजी एक द्वीप है। जहाँ भारतीयों की लगभग 44 प्रतिशत जनता निवास करती है। सन् 1997 में हिंदी को 'फ़ीजी' देश की राजभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ। राजभाषा यानी राज-काज की भाषा, शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की भाषा, जनता और सरकार की भाषा, रियाया और राजदरबार की भाषा। राजभाषा शासन-प्रशासन में जनता-जनार्दन की पहुँच का प्रावधान भी करती है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवास की पीड़ा है, जो अद्यतन देखने को मिलती है। स्वाधीन-फ़ीजी की संविधान-सभा द्वारा फ़ीजी संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने से लेकर अब तक आधी सदी से भी अधिक की लंबी यात्रा के बाद फ़ीजी देश में हिंदी कहाँ पहुँची है, यह जानने के पहले आवश्यक होगा कि हम यह ज्ञान लें कि वह चली कहाँ से थी और फ़ीजी देश के गणतंत्र की राजभाषा के रूप में उसने कितने और कौन कौन से पड़ाव तय किए हैं। मुख्य रूप से हिंदी उत्तर-भारत में बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी के विकास की बात करें तो हम देखते हैं कि जहाँ अपने देश के ही कई राज्यों में हिंदी को समझने और बोलने वाले का अभाव है, वहीं फ़ीजी देश में हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलना, हिंदी को सूर्य की भाँति आभा प्रदान करता है। वस्तुतः भाषा संप्रेषण का माध्यम और संपर्क का साधन होने के साथ-साथ संस्कृति व संस्कार के संरक्षक, संवर्धन व संवहन का संसाधन भी है। मातृभाषा वैयक्तिक और परिवारिक पृष्ठिभूमि का बोध कराती है।[1]

फ़ीजी में हिंदी को 'फ़ीजियन हिंदी' या फ़ीजियन हिंदुस्तानी के नाम से भी जाना जाता है। भारत से फ़ीजी तक हिंदी के पहुँचने के लिए यात्रा की शुरुआत 19वीं शताब्दी के पहले से शुरू हो चुकि थी। पहले यहाँ भारतीय गिरमिट (मजदूरी करने वाले) के रूप में आये थे। 5 मई सन् 1971 में अंग्रेजो का जहाज 471 भारतीयों के साथ फ़ीजी पहुँचा था। इन्हीं गिरमिटिया भारतीयों के साथ हिंदी भाषा भी उनके साथ पहुँच गई। गुलामों के द्वारा लाई गई यह भाषा अब फ़ीजी देश की आधिकारिक राज भाषा का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। यहाँ की हिंदी में अवधी, भोजपुरी, बिहारी, हिंदी और अन्य

बोलियों का मिश्रित रूप दिखाई देता है। शायद यही कारण है कि 'फ़ीजी' देश को 'दूसरा भारत' के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि भारत के बाद फ़ीजी दूसरा ऐसा देश है जहाँ हिंदी बोलने वालो की संख्या अधिक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद फ़ीजी देश में अनेक बदलाव आये। फ़ीजी का आधिकारिक नाम 'रिपब्लिक ऑफ फ़ीजी' है। फ़ीजी देश की कुल आबादी तगभग 9 लाख के आस-पास है। जिसमें से 40 प्रतिशत लोग गाँव और 60 प्रतिशत आबादी शहर में निवास करती है। लगभग सभी को यहाँ हिंदी भाषा का ज्ञान है। फ़ीजी देश को जवानों का शहर भी कहा जाता है क्योंकि इस देश के विकास की औसतन उम्र ही मात्र 27 वर्षों की है। फ़ीजी की राजधानी 'सुवा' बंदरगाह है। फ़ीजी में हिंदी, फ़ीजी और अंग्रेजी तीन प्रकार की आफिशियल भाषा को मान्यता प्राप्त है। लेकिन फ़ीजी की राजभाषा हिंदी है। यह भाषा मुख्यत: अवधी और भोजपुरी से विकसित होने के कारण सरल और मिठास भरी है। इसमें अन्य भारतीय भाषा का समावेश है। कुछ फ़ीजी और अंग्रेजी भाषा से शब्द उधार लिए गए हैं। हिंदी में भी कुछ ऐसे अनूठे शब्द हैं, जिसे अपने पीढ़ियों के भाषा से लिए जाने के कारण 'फ़ीजी बात' नाम से बोली की जाती है।

यहाँ की हिंदी भी देवनागरी लिपि में लिखी गई (जो विश्व की वर्तमान लेखन प्रणाली के बीच सबसे वैज्ञानिक लेखन प्रणाली है) हिंदी भारत गणराज्य की राष्ट्रीय आधिकारिक भाषा है और इसे दुनियाँ के सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। फ़ीजी में हिंदी भाषा का व्यापक रूप से उपयोग होता है। हिंदी फ़ीजी के आभिजात वर्ग, नौकरशाही और कंपनियों में कार्यरत कर्मचारियों के बीच प्रयोग में लाई जाती है। फ़ीजी में हिंदी अपने लिखित रूप में विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के अधिक से अधिक संस्करण अब हिंदी भाषा में भी मिलते हैं। बोलचाल में अंग्रेजी के अपेक्षा लोगो को हिंदी बोलना अधिक पसंद है। वैश्विक स्तर पर जो भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की संप्रेषणीयता के लिए जरूरी माना जाता है। वह उस भाषा की निज अभिव्यक्ति कर पाने की क्षमता है। यदि कोई भाषा अपनी बात किसी अन्य गंतव्य तक पहुँचाने में असमर्थ है तो वह भाषा के उच्चतम स्तर का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकती है। फ़ीजी में हिंदी सरल भाषा मानी जाती है।

फ़ीजी में हिंदी अधिकारी नियुक्त होते हैं। हिंदी अधिकारी या अनुवादक भारत सरकार की ऐसी संस्थाओं में नियुक्त होते हैं, जिनकी शाखाएँ-कार्यालय देश के कई भिन्न-भिन्न प्रदेशों में स्थित है। वहाँ एकता के लिए सबके लिए समान आदेश-अनुदेश जारी होते हैं। अत: उन सब के साथ एकता स्थापित करने के लिए हिंदी पर विशेष बल दिया जाता है और आयोगों द्वारा निर्मित एवं सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलियों को ही काम में लाया जाता है। इसलिए फ़ीजी देश में भाषिक अराजकता का अभाव है। फ़ीजी देश में हिंदी भाषा में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री का प्रयोग हो रहा है। देश की स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई का उच्च स्तरीय रूप हिंदी भाषा के माध्यम से शुरू हो चुकी है। यही कारण है जहाँ 1992 में फ़ीजी के शिक्षा का स्तर जहाँ 49 प्रतिशत था आज वहाँ

की शिक्षा, साक्षरता 100 प्रतिशत पूर्णता प्राप्त कर चुकी है। हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का प्रयास सरकार कर रही है।

पिछले कुछ वर्षों से नए-नए वैज्ञानिक प्रयोग की सामग्री हिंदी भाषा में प्रस्तुत करने की दिशा में फ़ीजी देश अग्रसर है। विगत वर्षों में यह भी देखने को मिला कि फ़ीजी में सबसे अधिक 3,13,798 संख्या में लोग हिंदी भाषा बोलने लगे हैं। भारत के बाद यह आँकड़ा दूसरे किसी देश को प्राप्त है वह है फ़ीजी। यहाँ हिंदी भाषा मुख्यत: विचार-विनिमय का प्रमुख साधन है। भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ फ़ीजी की पहचान है बल्कि यह जीवन के संस्कृतिक, मूल्यों एवं संस्कारों की सच्ची संप्रेषक भी है। अपनी सहजता और सरलता की विशेषता के साथ हिंदी विश्व की संभवत: सबसे वैचारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। फ़ीजी से भारत का संपर्क 100 वर्षों से भी ज्यादा सालों का है। यहाँ पर लोग गिरमिटिया के शक्ल में आए थे और वर्तमान में कई पीढ़ियों के बाद वह फ़ीजी देश का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं और अपनी लाई भाषा हिंदी को राजभाषा का दर्जा भी प्रदान करवाकर भाषा की गरीमा को नई पहचान दिलाई है। आरंभिक दिनों (1879-1916) में फ़ीजी और भारत में अंग्रेजों का शासन था। भारत से करीब 60,000 मजदूरों को फ़ीजी लाया गया। जिनमें अधिकतर उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार के थे। लेकिन आज गुलाम के रूप में आए संयुक्त राष्ट्र (2020) के अनुसार- "फ़ीजी की जनसंख्या करीब 8,96,000 और उसमें 44 प्रतिशत से अधिक भारतीय मूल के हैं।"[2]

'फ़ीजी हिंदी' फ़ीजी में बसे भारतीयों द्वारा विकसित हिंदी की नई भाषिक शैली है, जो अवधी, भोजपुरी, फ़ीजियन, अंग्रेजी आदि भाषाओं के मिश्रण से बनी है। इसी के द्वारा फ़ीजी के प्रवासी अपनी भाव-व्यंजनाओं को अच्छी तरह प्रदर्शित करते हैं, उनकी अभिव्यक्ति करते हैं। हिंदी भाषा के लगाव के कारण ही वहाँ साहित्यिक कृतियों का सृजन होने लगा। फ़ीजी के भारतवंशी साहित्यकारों ने अंग्रेजी भाषा के मोह को छोड़कर हिंदी में अनेक साहित्यिक कृतियाँ लिखी। जिनमें रेमंड पिल्लई का 'अधूरा-सपना और प्रो. सुब्रमनी का 'डउका पुराण' प्रमुख हैं। प्रो. सुब्रमनी की बृहत औपन्यासिक कृति 'डउका पुराण' ने इस रूढ़ि-बद्ध धारणा को निरर्थक साबित कर दिया है कि फ़ीजी की हिंदी भाषा अपूर्ण और टूटी-फूटी, व्याकरण हीन-भाषा हैं। जिसका प्रयोग केवल बोल-चाल के लिए ही उपयुक्त हो सकता है। फ़ीजी हिंदी पर अनेकों अंग्रेजी के साहित्यकारों ने लिखा है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास काफी पुराना हैं। यह साहित्य भारतीयों के फ़ीजी आगमन, उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज कहा जा सकता है। प्रवासी पीड़ा उनके साहित्य में समान्यत: मिल ही जाती है।

साहित्य का स्वरूप विभिन्न तरह के सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बदलता हुआ दिखता है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य को हम तीन कालखंडों में बाँटकर देखते हैं तो पाते हैं कि फ़ीजी में भारतीयों के संघर्ष का एक व्यापक इतिहास है। 1879 से 1920 का काल सबसे संवेदना से भरा था। इस समय (1879) प्रवासियों को भारत से लाया गया था। एक लंबे संघर्ष

के बाद सन् 1920 में जब गिरमिटिया प्रथा का अंत हुआ तब यहाँ के शोषित प्रवासियों के नरकीय जीवन में खुशियाँ आई। वह स्वतंत्र जीवन जीने और स्थाई रूप से फ़ीजी में बसने के अधिकारी हुए। यह कालखंड सृजनात्मक अभिव्यक्ति व कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन वर्षो में प्रवासी भारतीयों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई जो साहित्यिक दृष्टि से उत्तम अभिव्यक्ति के साथ प्रवासी भारतीयों के गिरमिट जीवन का मौखिक दस्तावेज है। जिनका ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण से अधिक महत्व है। जिसमें मुख्यत: गिरमिट जीवन का कष्ट, निराशा, क्षोभ और ग्लानि है। गिरमिटों की अपमानजनक स्थिति से उबरने की आशा न देखकर हताशा और पीड़ा होती है। मानव चाहे गरीब या पैसो से भरा-पूरा, पढ़ा-लिखा हो या सम्मानित महापुरुष या सामान्य नागरिक वह अपने सुख और दुख को बाँटना चाहता है। 1879 में जब भारतीयों ने फ़ीजी का प्रवास किया तब अपने कठिन श्रम और रामचरित मानस की पोथी को अपने जीवन में शामिल किया। वह अपने दारुण जीवन के दुखों को गीतों में पिरोते थे और समूह में गाते थे। उनकी पीड़ा इस प्रकार गीतों में व्यक्त हुई है...काली कोठरियाँ माँ बीते नहीं रतियाँ हो/ किसके बताई हम पीर रे विदेशियाँ / दिन रात बीती हमरी दुख में उमरियाँ हो/ सूखा सब नैनुआ के नीर रे विदेसिया।' एक भोली-भाली भारतीय स्त्री अपने फ़ीजी पहुँचने की कथा इस प्रकार व्यक्त करती है कि भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो/ कलकत्ता पार जाओं पाँच साल रे विदेसिया/ डीपुआ माँ लाए पकरायो काग दुआ हो, अंगुठवा लगाए दीना हाय रे बिदेसिया।' आदि तरह के गीत उल्लेखनीय हैं।

फ़ीजी पहुँचकर एक नए सुखमय जीवन की जो आशा थी, किंतु उसके स्थान पर रहने के लिए जो अंधेरी कोठरी मिली उसका दुख; आरंभिक साहित्यिक सृजन में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। ये अभिव्यक्तियाँ इतनी मार्मिक इसलिए बन पड़ी हैं कि क्योंकि ये रचनाकार के भोगे हुए कष्ट और दुख हैं, वे दुखी मन की सच्ची स्मृति हैं। इनकी भाषा मानक हिंदी न होकर इन भारतीयों की अपनी हिंदी है जो मूलत: अवधी है किंतु उसमें भोजपुरी का मिश्रण है जिसे वहाँ के भारतीय 'फ़ीजी हिंदी' कहते हैं। 1920 से 1980 तक का समय फ़ीजी में सृजनात्मक हिंदी साहित्य का दूसरा चरण माना जाता है। साहित्य इस समय तक लोकमानस और जन भावनाओं, क्षोभ, उल्लास आदि से हटकर उत्साह और उल्लासमय हो चुका था। भारतीयों के मन में नए सिरे से जीवन जीने की लालसा और उसके साथ जुड़ी चिंता उनके मन में उठने लगी। भारतीयों ने इस काल-खंड में फ़ीजी को अपना देश स्वीकार लिया था। देश के विकास में उन्हें अपना विकास दिखने लगा था। आजाद फ़ीजी में यह 1920 से 1980 का काल राजनीतिक दृष्टि के साथ सृजनात्मक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी विशेष महत्व रखता है। गिरमिट प्रथा से मुक्त होते ही भारतीयों ने संगठित होकर रहने और एक-दूसरे से जुड़े रहने के लिए पत्रकारिता के महत्व को समझा और हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकालना प्रारंभ किया। जागृति, फ़ीजी समाचार, जय फ़ीजी, बृद्धि, बृद्धिवाणी आदि अनेक हिंदी समाचार पत्र इस काल-खंड में निकाले गए। यहाँ तक कि अंग्रेज कंपनी फ़ीजी टाइम्स ने फ़ीजी में भारतीयों की बड़ी संख्या देखकर फ़ीजी टाइम्स का हिंदी संस्करण सन् 1935 में पं. गुरुदयाल शर्मा के संपादन में निकालने का आदेश दिया।

सन् 1954 में फ़ीजी ब्रॉडकास्टिंग कापरेशन की स्थापना हुई और इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा रेडियो प्रसारण की सुविधा ने लेखकों और कवियों को लेखन की ओर प्रोत्साहित किया। विशाल स्तर पर फ़ीजी के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण भी प्रारंभ हुआ और हिंदी को फ़ीजी की प्रधान भाषा के रूप में सरकारी मान्यता मिली। इस काल का साहित्यिक फलक बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदलती परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव-संचार किया उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आई हैं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन हुआ और वे देश के कोने-कोने तक पहुँची।' गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना का विषय बना रहा, किंतु अनेक नए विषयों पर कवियों ने लिखा। इस काल के प्रमुख कवियों में पं. कमला प्रसाद मिश्र ने गिरमिट जीवन की यातनाओं को एक बालक के रूप में बहुत निकट से देखा था। उसकी मुखर अभिव्यक्ति उनके साहित्य में दिखाई देती है। इस काल-खंड में पूर्वजों की स्मृतियाँ देखने को मिलेंगी। राघवनंद शर्मा की एक कविता 'अगर तुम इस धरती पर न आए' होते में लिखते हैं कि—

वीरा पड़ा था फ़ीजी, सिसकती थी खेतियाँ,
मुश्किल से खींच रही थी, शासन की डोरियाँ।
रोती रही यह धरत, भर करके हिचकियाँ,
तुमको बुला रही थी देकर दुहाइयाँ॥[7]

फ़ीजी में बसे भारतीयों ने फ़ीजी को अपना देश समझा, उसके चातुर्दिक विकास का संकल्प लिया। काशीराम कुमुद फ़ीजी के प्रसिद्ध हिंदी कवि हैं वे कहते हैं कि हमारे माता-पिता फ़ीजी आए, इस धरती को अपनाया और पंचतत्व में विलीन हो गए। इसलिए वह इस धरती को वह 'स्वर्ग-भूमि' की संज्ञा देंगे। वह लिखते हैं कि...

हम फ़ीजी माँ के लाल
कर उन्त सफल दिखा देंगे
इस स्वर्गभूमि को मिलजुल के
जग का सिरताज बना देंगे।[8]

कवि शिवप्रसाद अपनी रचना 'गिरमिट की याद' में कहते हैं कि भारतीय शर्तबंदी प्रथा के अधीन फ़ीजी आए थे किंतु अब फ़ीजी उनका अपना देश है यही उनकी मातृभूमि है और यह देश सुख शांति का देश बने, जाति द्वेष मिटे और विश्व में फ़ीजी की शान बढ़े। वह लिखते हैं कि—

हमने इस देश को सींचा है,
इसलिए इसे अपनाया है।
फ़ीजी के अब हम वासी हैं,

ये ही जननी है, माता है।
आओ मिलकर बढ़े चले,
इस देश की शान बढ़ाएँ।
जाति द्वेष मत-भेद न लाए
शांति और सुधा बरसाये।[9]

इस काल खंड के प्रमुख कवि रामनारायण, हाँ मैं मंथरा हूँ, जोगिंदर सिंह कंवल का हम भारतीयों को, हमें जमीन दो और कितना अंधेरा है अभी, ईश्वरी प्रसाद चौधरी, का नंगोना, कमला प्रसाद मिश्र का प्रजातंत्र, यही है दुनियाँ, क्या मैं परदेसी हूँ, हमारा देश, यहाँ पहले सबेरा होता है, अमरजीत कौर का आजादी, फ़ीजी होए सदा महान, नेतराम शर्मा का हिंदी भाषा, सुखराम हिंदी हमारी मातृभाषा, काशी राम कुमुद : हिंदी बिरवा, कंवल भारती का प्रथम उपन्यास 'सवेरा', 'धरती माता' (1976) और 'करवट' (1978) आदि प्रमुख प्रकाशित है।

फ़ीजी के साहित्यिक इतिहास का तीसरा काल खंड 1980 से प्रारंभ होता है। अब फ़ीजी के अधिक समाजों में भारतीयों की स्थिति सम्मानजनक थी। संपन्न, सुनिश्चित तो थे ही, वे फ़ीजी में प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत भी थे। फ़ीजी में सन् 1986 में भारतीयों ने राष्ट्रव्यापी स्तर पर हिंदी दिवस का आयोजन किया जिससे संपूर्ण देश को भारतीयों के संगठित स्वरूप का परिचय मिला। इस बीच भारतीयों के निजी प्रयत्नों से अनेक हिंदी लेखकों की कृतियाँ का प्रकाशन भी हुआ। फ़ीजी का अपना नव-निर्माण लेकिन 1987 में हुई राजनीतिक अशांति (सैनिक शासन लागू) का दौर लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा। ऐसे में स्वभाविक ही था कि इस बदली हुई देश की राजनीतिक स्थिति में देश की साहित्यिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं 1987 में हुई राजनीतिक अशांति देश में बढ़ती गई और भारतीयों के विरुद्ध शासन का दमन तेजी से हुआ। जोगिंदर सिंह ने अपनी कविता दर्द अपने-अपने में लिखा है कि—

कभी गिरमिट की आई गुलाबी
कभी बाढ़ों ने मार दिया
कभी रंबुका कू कर बैठा
कभी स्पेट ने वार किया
बार-बार कठिनाइयों में फँसे
पर किसी के आगे हाथ न फैलाए
ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों को
बड़े गौरव से पार किया।[10]

इस काल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि देश के प्रमुख साहित्यकार फ़ीजी के महत्व को समझ रहे हैं। इस काल खंड में मानक हिंदी तक प्रचुरतम रचनाएँ

लिखी जाने लगी। यही कारण हैं कि फ़ीजी में यहाँ का साहित्य तो लोकप्रिय है और अन्य देशों में प्रसिद्ध है। हिंदी की लोकप्रियता केवल फ़ीजी में ही नहीं बल्कि उसके आस-पास के पड़ोसी देशों में भी है। मॉरीशस, वियतनाम, सूरीनाम, कनाडा, आदि देश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। फ़ीजी देश में हिंदी भाषा प्राइमरी, सेकेंडरी स्कूलों, और यूनिवर्सिटी में पढ़ाई जाने के साथ-साथ संविधान के काम-काज में इसका प्रयोग अधिक से अधिक किया जा रहा है।

कुल मिलकर हम कह सकते हैं कि प्रगति का नैसर्गिक स्वरूप यही है कि जब व्यक्ति की जड़ जम जाती है या जब वह आरोपित माध्यमों में रुचि नहीं लेता तो वह सृजनात्मक लेखन में पनपता है। फ़ीजी के साहित्य का मध्यकाल वस्तुत: एक संक्रमण काल था इसलिए वहाँ भाषा का द्वैत दिखाई देता है। फ़ीजी के सृजनात्मक साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और उसकी मूल संवेदना गिरमिटो का शोषित जीवन है जो आरंभ के लोकगीतों से लेकर आज तक लिखे जाने वाले साहित्य में अविच्छिन्न रूप में दिखाई पड़ता है। विछोह की पीड़ा, क्षोभ, कष्ट, ग्लानि, जहाँ प्रारंभिक रचनाओं में प्राय: मिलती है।

हिंदी का यह सौभाग्य रहा है कि भारत से लेकर अनेक देशों में हिंदी के शब्द-भंडार को बढ़ावा मिलता है। हिंदी प्रेम की, भाई-चारे की भाषा बनती जा रही है। चाहे फ़ीजी का बैंकिंग क्षेत्र हो, उदद्योग, टेलीकॉम कंपनी, भूमंडलीयकरण, विनियमन और सूचना प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्र में हिंदी भाषा प्रवाहमान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तकनीकी विकास में हिंदी भाषा फ़ीजी राष्ट्र को विकास और रोजगार में नया स्वरूप प्रदान कर रही है। फ़ीजी और हिंदी के विकास के लिए शासन और समाज को हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति मित्रवत होना होगा ताकि जल्द से जल्द फ़ीजी की आर्थिक और राजनीतिक सफलता के लिए किसी अन्य भाषा पर निर्भर नहीं होना पड़े। फ़ीजी देश में कई स्वैच्छिक एजेंसिया हिंदी के ज्ञान को फैलाने में व्यस्त हैं। फिल्मों, रेडियों और सोशल मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उनके कार्यों में सहायता मिलती है। देश में सार्वभौमिक 'लिंगुआ फ्राइंका' के रूप में हिंदी के उद्भव का सूर्य फ़ीजी देश में चमक रहा है। फ़ीजी में हिंदी भाषा आम आदमी के एकता को मजबूत कर रही है। यह भाषा लोगों के बीच व्यवहार की भाषा है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी विश्व स्तर पर एक प्रभावशाली भाषा बनकर उभर रही है। सोशल मीडिया पर हिंदी फ़ीजी देश में लोकप्रिय है। लगभग दर्जनों अखबार और टेलीविजन समाचार हिंदी भाषा में आम-आदमियों के लिए उपलब्ध हैं। हिंदी की लोकप्रियता पर भारत के राष्ट्रपति कोविंद ने कहा था कि "हिंदी अनुवाद की नहीं बल्कि संवाद की भाषा है। किसी भी भाषा की तरह हिंदी भी मौलिक सोच की भाषा है।"

संदर्भ:

1. द्विवेदी डॉ. कपिल, आधुनिक भाषा विज्ञान, प्रकाशन- नई दिल्ली, पृ. 34
2. फ़ीजी का इतिहास, हिंदी कुंज, पत्रिका, पृ. 05

3. वर्मा विमलेश कांति, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, पत्रिका- साहित्य कुंज, पृ. 66
4. वर्मा विमलेश कांति, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, पत्रिका- साहित्य कुंज, पृ. 67
5. लता सुभाषिणी, फ़ीजी हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, पत्रिका- भारती दर्शन, पृ. 03, 24
6. शर्मा राघवनंद, अगर तुम इस धरती पर न आए (कविता), पृ. 45
7. काशीराम कुमुद, स्वर्ग-भूमि, पृ. 16
8. शिवप्रसाद, गिरमिट की याद, पृ. 12
9. जोगिंदर सिंह, दर्द अपने-अपने, पृ.

❑❑

संप्रेषणशील भाषा के रूप में हिंदी का शिक्षण : दिशाएँ और संभावनाएँ

—जी. गोपीनाथन

विश्व की संप्रेषणशील या संप्रेषणी भाषाओं में हिंदी का महत्वपूर्ण स्थान है। एक गणना के अनुसार बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी दुनिया की भाषाओं में दूसरे-स्थान पर है। यद्यपि हिंदी की कई बोलियाँ हैं, मध्यकाल से लेकर खड़ी बोली का बोलचाल का रूप संपर्क भाषा या 'लिंग्वा फ्रांका' के रूप में भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क सेतु की भूमिका निभा रहा है। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन और आधुनिक युग में स्वतंत्रता आंदोलन, दोनों की चेतना को जन-जन तक पहुँचाने में हिंदी का योगदान अभूतपूर्व रहा है। उपनिवेश काल में भारत के गिरमिटिया मज़दूरों के साथ हिंदी का व्यापन सुरीनाम, फ़ीजी, ट्रिनिदाद एवं टोबेगो, गयाना, सिंगापुर आदि तथा उपनिवेशवादी देशों- ब्रिटन, फ्रांस, हॉलंत, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा आदि में और भारतीय प्रवासी खाड़ी के जिन देशों में बहुतायत से रहते हैं, उन में हुआ। इन देशों में संप्रेषण की भाषा के रूप में हिंदी की सक्रिय उपस्थिति रही है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतवंशी बहुल देशों के स्वतंत्र होने और पूरी दुनिया का भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होने के अनुसार हिंदी सच्चे अर्थों में विश्व भाषा बन गई है। अत: हिंदी का भौगोलिक प्रयोग-क्षेत्र भी भारत के हिंदी प्रदेशों से निकलकर पूरा विश्व हो गया है।

दक्षिण अफ्रीका के गिरमिटिया भारतीय मज़दूरों से संपर्क करने के लिए गांधी जी ने हिंदी या हिंदुस्तानी भाषा का ही प्रयोग किया था। सन् 1901 में मॉरीशस के भोजपुरी, मगही, अवधी आदि बोलियाँ बोलने वाले गिरमिटिया मज़दूरों को गांधी जी ने खड़ी बोली हिंदी में संबोधित किया था, यह एक ऐतिहासिक महत्व की घटना साबित हुई। गांधी जी ने आगे संप्रेषणशील हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण के कई ऐतिहासिक प्रयास किए। गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल आदि भाषाएँ बोलने वाले गिरमिटिया मज़दूरों के बच्चे आपस में बोलते समय संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, अपनी इस खोज ने गांधी जी को दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के बच्चों को 1903-1904 में

हिंदी भाषा सिखाने के लिए प्रेरित किया। तदनन्तर डॉ. मणिलाल गांधी तथा अन्य अनुयायियों को मॉरीशस भेजकर उन्होंने वहाँ हिंदी के प्रचार का बुनियादी कार्य किया। 1910 से डॉ. मणिलाल के संपादकत्व में 'हिंदुस्तानी' पत्र मॉरीशस से प्रकाशित हुआ। जिस ने मॉरीशस तथा अन्य भारतवंशी बहुत देशों में खड़ी बोली हिंदी का प्रचार-प्रसार, शिक्षण एवं साहित्य-लेखन को उत्प्रेरित किया।

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास से भारत लौट आने पर हिंदी प्रचार के कार्य को एक आंदोलन के रूप में चलाया। 1918 में उन्होंने मद्रास (चेन्नै) में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना कर पूरे दक्षिण में हिंदी को प्रतिष्ठित किया। श्रीलंका में भी इस सभा के प्रचारक हिंदी का शिक्षण एवं प्रचार करते थे और परीक्षाएँ चलती थीं। तदनंतर उन्होंने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना 1936 में की। दक्षिण भारत को छोड़ शेष भारत, भारत का पूर्वोत्तर, वर्मा आदि जगहों पर यहीं से हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ। यूरोप के अनेक देशों, चेकोस्लोवाकिया, हॉलन्त, ब्रिटन आदि तथा भारतवंशी बहुल सुरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरीशस, फ़ीजी आदि देशों में वर्धा राष्ट्रभाषा समिति की परीक्षाएँ चलती थीं।[2] चूँकी गांधीजी ने हिंदी प्रचार आंदोलन को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का अभिन्न अंग बनाया, इसलिए भारतवंशी बहुल देशों में आज़ादी की जो लड़ाई चली, उस में भारतीय अस्मिता की प्रतीक हिंदी का प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण अहम मुद्दा बन गया। गांधी जी ने अपनी पत्रकारिता के द्वारा जिस खड़ी बोली हिंदी का प्रसार किया, उस में सरल और बोधगम्य भाषा पर बल था जो संप्रेषणी हिंदी का ही मानक रूप था। हिंदी में व्याकरण, रचना, और संप्रेषणी हिंदी के प्रसार के लिए उन का हिंदी प्रचार आंदोलन काफी सहायक हुआ।

प्रचारकों को हिंदी प्रदेश में भेजकर बोलचाल की हिंदी में प्रशिक्षित करते थे। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के नमूने पर हिंदी प्रचारिणी सभाएँ और समितियाँ मॉरीशस, फ़ीजी, सुरीनाम, त्रिनिदाद, हॉलंत, ब्रिटन आदि देशों में स्थापित हुईं। हिंदी प्रचार एवं गुलामी से मुक्ति का आंदोलन इन देशों में भी एक साथ चले। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने हिंदीतर भाषियों एवं विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए गांधी जी के निर्देश पर मानक पाठ्य पुस्तकें, और शास्त्री एवं आपटे के व्यावहारिक हिंदी व्याकरण जैसी किताबें तैयार कीं। उनके ही आदर्श पर आगे चलकर रूसी विद्वानों दिमशित्स, चेकोस्लोवाकिया के विंसंस पोरिज़्का, कैंब्रिज के मैग्रिगर, लंदन विश्वविद्यालय के रुपटे स्नेल आदि ने व्यावहारिक हिंदी व्याकरण की पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं। इन सब में गांधीजी के आदर्श को मानकर संप्रेषणशील हिंदी और बोलचाल के सरल स्वरूप पर बल दिया गया है। दृश्य-श्रव्य की टेकनॉलजी के विकास के साथ ही बोलचाल की हिंदी पर भी देश-विदेश में पाठ्यपुस्तकें तैयार होने लगीं। ऑस्ट्रेलिया अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में इस प्रकार की तकनीक आधारित पाठ्यपुस्तकें तैयार होने से संप्रेषणी हिंदी की ऑनलाइन कक्षाएँ चलाने लगी। ऑस्ट्रेलिया के कैंबरा, सिड्नी, लात्रोब आदि विश्वविद्यालयों में रिचार्ड बार्त्स तथा उनके साथ प्रकार के ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा इंटरनेट के सहारे देते रहे हैं। अमेरिकी विश्वविद्यालयों

में भी इंटरनेट के सहारे संप्रेषणी हिंदी की ऑनलाइन शिक्षा तथा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम काफी लोकप्रिय रहे हैं। भारत में केंद्रीय हिंदी निर्देशालय ने अपने हिंदी पत्राचार पाठ्यक्रम के लिए दृश्य-श्रव्य सामग्री भी बनाई। अमेरिका, जर्मनी, जापान, कोरिया आदि देशों में पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ दृश्य-श्रव्य पाठ्य सामग्री का निर्माण भी होने लगा। जिससे पाठ्यपुस्तक आधारित सामान्य शिक्षा से बढ़कर दृश्य-श्रव्य सामग्री पर आधारित संप्रेषणशील हिंदी का शिक्षण ज़्यादा लोकप्रिय हुआ।

जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी की व्यापक स्वीकृति ने संप्रेषणशील हिंदी की शिक्षा को अत्यावश्यक बनाया। इसके लिए प्रारंभ में दूरदर्शन कार्यक्रम, फिल्मों के कैसट, महाभारत, रामायण, हम लोग जैसे टी.वी. सीरियल की मदद लेते थे। तदानंतर वीडियो क्लिपिंग तथा संपादित सामग्री एवं मल्टी मीडिया एवं इंटर एक्टीव सॉफ्टवेयर आदि के सहारे हिंदी शिक्षण में मदद लेने लगे। हिंदी फिल्मों के गीत दुनिया के लगभग सारे देशों में लोकप्रिय हैं। सिने गीतों को पाठ्यक्रमों में डी.वी.डी. के माध्यम से स्थान मिला। सीडियों के साथ बने अमेरिका की अंजना संधीर और जापान के तोपियो मिजोकामी की पाठ्यपुस्तकें काफी चर्चित रहीं। इनमें लोकप्रिय हिंदी फिल्म गीत, उनकी भाषिक-व्याकरणिक टिप्पणियाँ आदि के सहारे छात्र-छात्राएँ संप्रेषणी हिंदी का अध्ययन करते हैं। व्याकरण, शब्द-कोशीय विश्लेषण एवं टिप्पणियों से व्यावहारिक हिंदी भाषा सीखना आसान बन गया। विद्यार्थियों से नाटकों, संवाद आदि का अभ्यास एवं अभिनय कराना संप्रेषणी हिंदी के शिक्षण के अंग के रूप में सर्वत्र चलता है। विशेषकर ओसाका विश्वविद्यालय में तोमियों मिजोकामी ने जो छात्रों की हिंदी नाट्य मंडलियाँ बनाई थीं। वे जगह-जगह जाकर नाट्य प्रस्तुतियाँ देती हैं। जापान तथा अन्य कुछ देशों में डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण जैसे लोगों ने हिंदी शिक्षण में नाट्य विधि का सफल प्रयोग किया है। पौलेंड के वार्सा विश्वविद्यालय में मैं ने भी इसी प्रकार छात्रों की नाट्य प्रस्तुति एवं द्विभाषिक नाटकों की प्रस्तुति द्वारा हिंदी को लोकप्रिय बनाने का कार्य 1983-84 के दौरान किया था। पौलेंड में प्रो. दनूता स्ताशिक आदि ने इस विधि को आगे बढ़ाया। अब सिनेमा, टी.वी. सीरियल आदि की क्लिपिंग के सहारे वे हिंदी का अध्यापन करती हैं।

संप्रेषणी हिंदी की आवश्यकता प्रमुख रूप से बाजार-वाणिज्य, पर्यटन, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में है। उदाहरण के लिए वाणिज्य और बाज़ार की प्रमुख भाषा होने के कारण बोलचाल की हिंदी की जानकारी इस क्षेत्र में काम करने वालों के लिए काफी सहायक है। व्यापार प्रबंधन की औपचारिक भाषा अंग्रेज़ी है लेकिन भारत के सभी नगरों में आई.टी. के क्षेत्र में अनौपचारिक रूप से हिंदी चलती है। व्यवसाय-प्रबंधन की हिंदी के औपचारिक अध्ययन एवं खोज के सहारे इस क्षेत्र में प्रयुक्त संप्रेषणी हिंदी का विधिवत् अध्ययन संभव होगा। भारत के अलावा नेपाल, बंगला देश, सिंगापुर, मॉरीशस आदि के बाजारों में काम करने के लिए संप्रेषणी हिंदी का शिक्षण प्रशिषण अवश्यक है। वाणिज्य प्रबंधन का शिक्षण जब वर्धा के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय ने हिंदी के माध्यम से शुरू किया, तब इस क्षेत्र में आवश्यक संप्रेषणी हिंदी की भी चर्चा, खोज शुरू

हुई थी। इसको व्यवस्थित बनाने की आवश्यकता है। कुछ प्रारंभिक प्रयास अवश्य हुए थे। दुनिया में बी.बी.सी., जर्मन रेडियो, वॉयिस ऑफ अमेरिका, मॉरीशस रेडियो, रेडियो मास्को, रेडियो बीजिंग, रेडियो फ़ीजी आदि ने भी संप्रेषणशील हिंदी को अपने कार्यक्रमों द्वारा लोकप्रिय बनाया है।

पर्यटन के क्षेत्र में हिंदी हमेशा ही एक उपयोगी एवं लोकप्रिय भाषा रही है। विशेषकर भारत एवं नेपाल के तीर्थ स्थानों एवं पर्यटन केंद्रों में संप्रेषणी हिंदी का प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए द्वीयभाषियों के प्रशिक्षण के साथ ही संप्रेषणी हिंदी का शिक्षण, श्रव्य माध्यमों से ऑनलाइन सहायता, यांत्रिक अनुवाद-सेवा आदि क्षेत्रों में कुछ प्रगति हुई है, परंतु इसके नवीकरण की आवश्यकता है। पर्यटन की सहायता करने वाले साफ्टवेयर हिंदी में बनने लगे हैं। मोबाइल आदि पर पर्यटकों के लिए आवश्यक हिंदी शब्द-कोश, बोलचाल के वाक्य, ह्रस्वकालीन ऑनलाइन हिंदी पाठ्यक्रम आदि के लिए भी साफ्टवेयर बाजार में आ रहे हैं। लीला प्रबोध, लीला प्रवीण, हिंदी प्राज्ञ आदि जो साफ्टवेयर हिंदी शिक्षण के लिए सी डैक ने तैयार किया है, उसके नमूने पर अन्य व्यावसायिक साफ्टवेयर बनने लगे हैं। मोबाइल एप एवं मोबाइल पर अनुवाद-सेवा भी आरंभ हुई है। जनसंचार, विशेषकर सचित्र समाचार, विज्ञापन तंत्र आदि में संप्रेषणशील हिंदी का अनुप्रयोग खूब चल रहा है। संप्रेषणशील हिंदी का व्याकरण काफी लचीला होता है और इसमें परंपरागत व्याकरण के सिद्धांतों से भिन्न प्रकार्यात्मक व्याकरण पर बल है। हिंदी व्याकरण संप्रेषणी हिंदी के संदर्भ में ज़्यादा लचीला और सरल, सहज बनता जा रहा है। भारतवंशी बहुल देशों के लिए संप्रेषणी हिंदी के शिक्षण में स्थानीय बोलियों एवं खड़ी बोली के मानक रूप के शिक्षण को साफ्टवेयर द्वारा यांत्रिक बनाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए सुरीनाम और हॉलंत में सरनामी और खड़ी बोली, फ़ीजी में फ़ीजिबात और खड़ी बोली का मानक रूप, मॉरीशस में फ्रेंच क्रियोल, भोजपुरी मिश्रण की तुलना में मानक खड़ी बोली का रूप आदि के शिक्षण में कंप्यूटर एवं प्रोद्योगिकी का प्रयोग सहायक होगा। संप्रेषिणी हिंदी के पाठ्यक्रम केवल लिखित, मुद्रित सामग्री के माध्यम से ही नहीं, मल्टी मीडिया के सहारे तैयार करने पर विभिन्न तरह से संवाद, गीत, लोकगीत, आदि का शिक्षण संभव होगा। मातृभाषा हिंदी की अब तक प्रचालित पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यसामग्री से भिन्न 'ई' पुस्तकों के रूप में संप्रेषणशील हिंदी की पाठ्य सामग्री तैयार की जाएगी। यही भविष्योन्मुख हिंदी शिक्षण होगा। साहित्य भी वहाँ 'ई' पुस्तकों, श्रव्य सामग्री आदि के रूप में बदल रहा है। मुद्रित पुस्तकों की तरह 'ई' पुस्तकें भी विश्वभाषा हिंदी के शिक्षण में प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

संदर्भः

1. सुरेन्द्र गंभीर (डॉ.) सं., 2017, प्रवासी भातरीयों में हिंदी की कहानी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृ. 22
2. केशव प्रथमवीर (सं.), 2011, 'हिंदी की विकासयात्राः राष्ट्रभाषा समिति, वर्धा का इतिहास, वर्धा

❑❑

शिक्षा की व्यवस्था : पास या फ़ेल?

—वी.रा. जगन्नाथन

हम लगभग 200 वर्ष से शिक्षा की इसी व्यवस्था से परिचित है, जहाँ हर साल बड़ी संख्या में छात्र परीक्षा देते हैं, पास होकर ऊँची कक्षा में चले जाते हैं और जो पास नहीं होते वे उसी कक्षा में एक साल और पढ़ने को विवश होते हैं, यह उस समय मेकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप थी। जिसका एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को शिक्षा देकर उनमें सबसे अच्छे लोगों को प्रशासनिक सेवाओं के लिए चुनना था। शिक्षा ग्रहण करने वालों में जो कमज़ोर थे। वे फ़ेल कर दिए जाते थे। वे या तो अपनी सीमित जानकारी के चलते छोटी-मोटी नौकरी कर लेते थे या मज़दूरी आदि कार्यों में लग जाते थे, सरकार उनकी चिंता नहीं करती थी, लगभग आज भी कुछ ऐसी ही व्यवस्था है, जो व्यक्ति असफल होते हैं, वे व्यवस्था से बाहर हो जाते हैं, इनको शिक्षाविद् 'ड्रॉप आउट' की संज्ञा देखकर छुट्टी पा जाते हैं,

मेकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य प्रशासनिक सेवाओं के लिए लोगों को तैयार करना ही था। उसका उद्देश्य देश में मानव संसाधन के विकास को दृष्टि में रखते हुए लोगों का शैक्षिक विकास करना कतई नहीं था, अंग्रेज शायद यह नहीं चाहते थे कि भारतीय शिक्षित हो जाएँ, क्योंकि ज्ञानवान व्यक्ति गुलामी के खिलाफ़ खड़ा हो सकता है, इसीलिए पुरानी गुरुकुल पद्धति पर कुठाराघात कर उन्होंने नौकरशाह वाली शिक्षा पद्धति लागू की। इस तरह अपने उद्देश्यों के संदर्भ में यह कारगर शिक्षा नीति हो सकती है, लेकिन यह शिक्षा दर्शन कतई नही है। हमें लोगों को इस उद्देश्य से शिक्षित करना चाहिए कि वे जीवन यापन के लिए आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें और अर्जित ज्ञान का अपने कार्यों में ठीक से उपयोग कर सकें। वे उन्नत और प्रगतिशील समाज के योग्य सदस्य बनकर देश के विकास में योगदान भी कर सकें।

आधुनिक काल में यह अनुभव किया जाने लगा कि छात्रों को वार्षिक मूल्यांकन के आधार पर सफल या असफल घोषित करने की नीति सही नहीं है, क्योंकि इससे छात्र के कई वर्ष बेकार हो जाते हैं। स्थिति में सुधार के लिए शिक्षाविदों ने एक नई नीति का प्रस्ताव किया जिसे 'नो डिटेनशन

पॉलिसी' की संज्ञा दी जाती है। यानि छात्र को फ़ेल करके उसी कक्षा में फिर रखा नहीं जाता, यह नीति हर साल की परीक्षा की जगह केवल तीन या स्तरों पर मूल्यांकन का सुझाव देती है, जैसे प्राथमिक स्तर के लिए कक्षा 5 में, माध्यमिक स्तर के लिए कक्षा 8 में और उच्च माध्यमिक स्तर के लिए कक्षा 10 और 12 में, इस नई नीति में मात्र यह अंतर आया है कि पहले छात्र 12 बार असफल घोषित किए जा सकते थे। इस व्यवस्था में असफलता के द्वार केवल चार कर दिए गए, अब 8 वर्षों में परीक्षा नहीं होती और छात्र क्रम से ऊँची कक्षा में चले जाते हैं।

इस नीति का शिक्षा व्यवस्था पर विपरीत परिणाम देखने को मिला, कई शैक्षिक संस्थाओं में यह मान लिया गया कि जिन कक्षाओं में कोई परीक्षा नहीं है, उनमें गंभीरता से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है, और छात्र भी मानने लगे कि उन्हें पढ़ने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कोई परीक्षा नहीं देनी है। इस गलत धारणा के कारण शिक्षा में विकास की जगह ह्रास होने लगा। नई शिक्षा नीति 2018 में शिक्षा की नई दृष्टि के रूप में कुछ नई संकल्पनाएँ पेश की गई है, जैसे क्रेडिट पद्धति और अर्जन के अभिलेख के रूप में पासबुक की व्यवस्था, शिक्षा में इन संकल्पनाओं का समाहार कुछ दशक पूर्व दूर शिक्षा पद्धति के ढाँचे के रूप में किया गया था। दूर शिक्षा की भी यह बड़ी आवश्यकता थी कि अध्येता, जो वास्तव में शिक्षा से वंचित रह गए वयस्क व्यक्ति होते हैं। अवकाश के समय का उपयोग कर धीरे-धीरे अपनी पढ़ाई पूरी करें। वे औपचारिक छात्रों की तरह नियत समय में नियत पाठ्यक्रम पूरा नहीं कर सकते, इसलिए दूर शिक्षा के अध्येताओं के लिए क्रेडिट पद्धति और पासबुक की व्यवस्था की गई। मान लीजिए कि बी.ए. की पढ़ाई के लिए उन्हें वर्ष में 32 क्रेडिट के आठ विषय पढ़ने हैं, जैसे ही किसी सत्र में वे चार क्रेडिट पूरा करलें, उनकी पासबुक में ये क्रेडिट जमा हो जाते हैं। इस तरह जब वे चार या पाँच वर्ष की अवधि में एक-एक करके सारे विषयों के 32 क्रेडिट प्राप्त कर लेते हैं, तो उन्हें उपाधि दी जाती है। अब हम इस क्रेडिट पद्धति का उपयोग स्कूली शिक्षा के संदर्भ में करने की कोशिश करें। मान लीजिए कि किसी छात्र को कक्षा 6, 7 और 8 में पाँच विषयों में हर वर्ष 32 क्रेडिट प्राप्त करने हैं। पुरानी व्यवस्था के संदर्भ में इसे हम 8 क्रेडिट प्राप्त हो गए, तो भी उसे असफल घोषित किया जाता था और एक वर्ष उसी भाषा में फिर 32 क्रेडिट के लिए पढ़ना पड़ता था, यह छात्र के साथ नाइनसाफ़ी है, इससे बचने का उपाय यही है कि उसे फ़ेल न किया जाए, बल्कि उसे अगली कक्षा में जाने पर ये आठ 8 क्रेडिट प्राप्त करने का मौका दिया जाए। इस तरह उसका वर्ष बच जाता है और शिक्षा नीति के संदर्भ में अध्ययन पूरा करने की अनिवार्यता का भी पालन हो जात है।

मान लीजिए कि वह आठवीं की अंतिम परीक्षा में पूरे 32 क्रेडिट प्राप्त नहीं कर पाया, तब भी उसे ऊँची कक्षा में जाने दिया जा सकता है। बशर्ते कि वह अपनी पासबुक को पूरक परीक्षाओं के माध्यम से अद्यतन करता जाए। इस प्रकार प्राथमिक कक्षा से उच्चतम कक्षा तक कहीं उसकी गति का अवरोध नहीं होगा। बशर्ते कि वह पिछली कक्षाओं के क्रेडिट बराबर प्राप्त करता जाए, इसके सबसे बड़ा लाभ छात्रों का ही है। वे सही मायने में शिक्षा प्राप्त कर सफल बनेंगे, भले परीक्षाओं में उनकी

निष्पत्ति में कहीं कोई कमी रह जाए। मानव संसाधन विकास की दृष्टि से भी यह व्यवस्था अच्छी है, क्योंकि इसमें उपाधि से अधिक ज्ञान के अर्जन पर बल दिया जाता है।

इसके अलावा भी नई व्यवस्था में कुछ नई संकल्पनाएँ हैं, जो व्यक्तित्व के विकास और देश के शैक्षिक विकास की दृष्टि से अत्यंत अपयोगी हैं। हम इस चर्चा में यहाँ अधिक विस्तार में नहीं जाएँगे क्योंकि वह विषय अपने में विस्तृत है, विशद है। हम यहाँ मात्र यह संकेत करना चाहेंगे कि शिक्षा अध्येता की आवश्यकता और अभिरुचि के अनुरूप भी होगी। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को विज्ञान के विषयों में रुचि नहीं है और वह कलात्मक और सृजनात्मक अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख है। अगर उस व्यक्ति को विज्ञान के विषय पढ़ने पर मजबूर किया जाए। तो वह असफल होगा ही। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए की उसे अपनी रुचि के साथ विशेष चुने का अवसर मिले। इससे उसे व्यक्ति व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होगा और वह देश के संसाधनों के निर्माण का अंग बनेगा। अपनी अभिरुचि और आवश्यकता के अनुसार विषय चुनने की जो स्वछंदता दूर शिक्षा में समाहित की गई उसका प्रतिबिंबन नई शिक्षा नीति में भी दिखाई देता है।

अब हम यहाँ अपने कार्य क्षेत्र यानी भाषा शिक्षण के संदर्भ में इस शिक्षा दर्शन को समाविष्ट करने के बारे में विचार करेंगे। दूर शिक्षा क्रेडिट पद्धति के निर्धारण संदर्भ में पाठ्यवस्तु की मात्रा का भी आकलन किया जाता है. तभी हम पाठ्यक्रमों में गुणवत्ता स्थापित कर सकेंगे। अगर देश या विदेश का कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसने एम.ए. की उपाधि प्राप्त की है तो हम उसकी संप्राप्ति के स्तर का अनुमान कर सकेंगे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि चाहे व्यक्ति कहीं से भी पढ़े उसके ज्ञान का स्तर समान उपाधि वाले अन्य अध्येताओं के समकक्ष होना चाहिए। उच्चारण, वाक्य विन्यास, लेखन, शब्द प्रयोग आदि सारे कौशलों में समस्तरीय उपलब्धि होनी चाहिए। इसे सुनिश्चित करने के लिए ही हम मानक पाठ्यक्रम की व्यवस्था को आगे करते हैं।

इस संदर्भ में हम भाषा शिक्षण की वर्तमान स्थिति में निम्नलिखित कमियाँ देखते हैं—

1. आज हमें भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों की संप्राप्ति में अंतर दिखाई देता है। इस अंतर के कारण कोई छात्र कहीं से 2 वर्ष की पढ़ाई करके आता है, तो उसे दूसरा विश्वविद्यालय 2 वर्ष की पढ़ाई से छूट नहीं देता, क्योंकि उसका स्तर कम है।

2. जब छात्र एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में जाता है तो उसे पहले विश्वविद्यालय की पढ़ाई का लाभ नहीं मिलता। उसे नए विश्वविद्यालय में सभी पाठ्यक्रम नए सिरे से करने होते हैं। तर्क यह दिया जाता है कि हमारा पाठ्यक्रम दूसरों से भिन्न है।

3. अन्य या विदेशी भाषा के रूप में पढ़ने वाले छात्रों के लिए उपयुक्त सामग्री, पाठ्यपुस्तक। अभ्यास पुस्तिकाएँ, पूरक पुस्तिकाएँ आदि की कठिनाई होती है, जिस कारण छात्रों के अर्जन का स्तर प्रभावित होता है।

हम यह देखना चाहेंगे की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में और दूर शिक्षा की संकल्पनाओं के प्रकाश में इन समस्याओं का समाधान कैसे कर सकते हैं। एक जमाना था जब नाप-तोल के मान सब जगह अलग-अलग होते थे। अंग्रेज पाउंड चलाते थे, भारत में सेर था। इस पर तुर्रा यह कि दक्षिण का सेर उत्तर के सेर से वजन में अलग होता था। ऐसी स्थिति में हम वस्तुओं के मान की तुलना नहीं कर सकते। जहाँ तक हिंदी शिक्षण का सवाल है, आज विश्व के सभी विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रमों में समस्तरीयता नहीं है, क्योंकि विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रमों को अंतिम रूप देने के लिए स्वतंत्र हैं। ऊपर बताई गई कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक मानक पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। इस पाठ्यक्रम व्यवस्था में आधुनिक साहित्य का चार क्रेडिट का पाठ्यक्रम सभी विश्वविद्यालयों में समान प्रकार का होगा और इनके मूल्यांकन के प्रतिमान भी समान होंगे। ऐसी स्थिति में छात्र को एक विश्व विद्यालय से अर्जित क्रेडिट को अपनी पासबुक में दूसरे विश्वविद्यालय अध्ययन में स्थानांतरित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इसको हम दूर शिक्षण में क्रेडिट अंतरण की संज्ञा देते हैं। अंतरण के कारण छात्रों को अपने पूर्व अर्जित क्रेडिट के लिए फिर से अध्ययन करना नहीं पड़ेगा। दूसरी कठिनाई के संदर्भ में यह कह सकते हैं कि समस्तरीयता पाठ्यवस्तु के आधार पर नहीं, सामग्री के स्तर के कारण तय की जाती है। इसके लिए कई विश्वविद्यालयों में प्रत्यायन परिषद् (accreditation council) की स्थापना की जाती है, जो दूसरे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का विश्लेषण कर उन्हें समस्तरीयता प्रदान करती है।

अब हम तीसरी कठिनाई की बात करें। भाषा शिक्षण के संदर्भ में हम सब एकमत हैं कि यह ज्ञान का अर्जन नहीं व्यवहार का अर्जन है। भाषा का व्यवहार हमारे जीवन के संदर्भों से जुड़ता है। हम भाषा व्यवहार को अपने परिचित परिवेश में अधिक आसानी से अर्जित कर सकते हैं, उदाहरण के लिए 'अहमदाबाद से निकलकर जयपुर पहुँचना' किसी अंग्रेज के लिए सहज नहीं है, वह 'लंदन से निकलकर ऑक्सफोर्ड पहुँचना' का अर्थ ग्रहण आसानी से कर सकता है। इसलिए मानक पाठ्यक्रम की व्यवस्था में पाठ्यसामग्री का स्थानीकरण (लोकलाइजेशन) बहुत जरूरी है। सभी विश्वविद्यालय इस प्रकार की सामग्री बना नहीं पाते। अगर मानक पाठ्यक्रम की व्यवस्था में भाषा के मौखिक व्यवहार के लिए आठ क्रेडिट की अच्छी सामग्री उपलब्ध हो, तो दूसरे प्रदेश या देश द्वारा उसके स्थानीकृत रूप का पुनर्निर्माण और प्रकाशन आज सूचना प्रौद्योगिकी के युग में सहज रूप में संभव है। हम हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विश्व भाषा के रूप में पढ़ाने की बात कर रहे हैं, लेकिन वैश्विक स्तर के मानक पाठ्यक्रम के संदर्भ में हमने अभी तक कोई पहल नहीं की है। अंग्रेजी भाषा के लिए TESOL जैसे संगठन की व्यवस्था है, जहाँ सबके लिए समान स्तर के पाठ्यक्रम पूरा करने की बाध्यता है। यूरोप में यूरोप संघ के शैक्षिक प्रतिमान हैं, जो पाठ्यचर्या विकास और मूल्यांकन में मानकीकृत ढाँचा लागू करते हैं। अगर हम समस्तरीयता के प्रतिमानों का उपयोग कर पहले से पाठ्यक्रमों का स्तर निश्चित कर लें, तो हर विश्वविद्यालय के लिए प्रत्यायन परिषद् स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होगी।

मानक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता सामूहिक प्रयास है। दूर शिक्षा की मान्यताओं के अनुरूप हम संसाधनों को यानी पाठ्यसामग्री आदि को अन्य संस्थाओं के साथ साझा कर सकते हैं। दिल्ली या मुंबई विश्वविद्यालय को अपने लिए प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य नामक पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि अमेरिका या इंगलैंड के किसी विद्वान या विश्वविद्यालय द्वारा तैयार यह पाठ्यक्रम अन्य सभी संस्थाओं को उपलब्ध हो सकेगा। आज हम जब विश्व हिंदी की चर्चा करते हैं, तो वास्तव में हमारे मन में अलग-अलग स्थानीय भाषिक रूपों में, स्थानीय संस्कृति या साहित्य के अध्ययन की संकल्पना सामने आती है। इन सब पर भारत में बैठे हिंदी के विद्वान साधिकार काम नहीं कर सकते। इस प्रकार विश्व भाषा हिंदी में विश्व के सभी देशों में बनाई गई सामग्री अन्य सभी देशों के लोगों को मिल सकती है- यह सामग्री आधारभूत कौशलों की हो सकती है, या स्थानीय संस्कृतियों या साहित्य से संबंधित हो सकती है या भाषा या साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की हो सकती है। यह सारी सामग्री अंततः हिंदी भाषा के वैश्विक विस्तार की सूचक होगी। इस प्रकार के विविध भूमिकाओं वाली भाषा के अध्ययन का स्वरूप तभी निखरेगा जब हम वैश्विक स्तर पर सामूहिक रूप से प्रयास करेंगे। यदि हम शीघ्र इसी प्रकार की व्यवस्था नहीं करेंगे, तो हिंदी के विश्व भाषा बनने का सपना साकार होने में और समय लगेगा।

❑❑

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन और हिंदी भाषा शिक्षण

—रमेश चन्द्र

सार:

जब भाषा की बात होती है, तो उसकी व्यवस्थां को प्राय: व्यावकरणिक स्तर पर ही ले लिया जाता है तथा शब्द, वर्ण और उनसे भी नीचे के स्तरों को नजरंदाज कर दिया जाता है। वह भाषा का केवल स्थूल रूप हुआ। यह ध्यान में नहीं रखा जाता कि भाषा में भाव की सार्थक इकाई वाक्य के कई अंग, तत्व आदि भी होते हैं तथा वाक्य एवं संपूर्ण भाषा के अध्ययन के कतिपय वैज्ञानिक आधार भी होते हैं। इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत आलेख में ध्वनि-विज्ञान, स्वनिम-विज्ञान, रूपम विज्ञान, रूप-स्वनिमिकी, रूप, संरूप, वाक्य-विज्ञान आदि की दृष्टि से हिंदी भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है, जिससे यह प्रबुद्ध, जिज्ञासु पाठकों के लिए हिंदी की वैज्ञानिकता के बारे में जानकारी का झरोखा बने।

भाषा मनुष्य की वागेंद्रियों से उत्पन्न ध्वनि-प्रतीकों की वह वैज्ञानिक व्यवस्था है, जिसके द्वारा उसके समुदाय के व्यक्ति परस्पयर विचार-विनियम करते हैं। इसमें ध्वनियों, ध्वजनि- समूहों, ध्वानियों की उच्चारण व्यवस्था, शब्द-नियोजन, वाक्य-निर्माण, अभिव्युक्ति, संप्रेषण, अर्थ-ग्रहण आदि परंपरा के आधार पर होते हैं और उसी आधार पर इनका अध्ययन और विश्लेषण होता है, जिसके आधार पर सामान्यता: भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांत निर्धारित होते हैं। भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन कई प्रकार से किया जाता है, जिनके आधार पर न केवल भाषा विशेष की दो अवधियों के रूपों की, बल्कि कई भाषाओं की परस्पर तुलना होती है। अध्ययन के ये प्रकार सार्वभौम होते हैं।

फर्डीनेंड डी सस्यूरर ने भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र को दो शाखाओं में बाँटा है—

1. समकालिक/एककालिक भाषा-विज्ञान-इस शाखा में भाषा का वर्तमान अथवा एककालिक रूप महत्वपूर्ण होता है और इसमें एक ही समय पर प्रयुक्त भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। इसे आगे तीन उपशाखाओं में विभाजित किया गया है—

क) वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान- इस शाखा में वाक्यों और शब्दों की संरचना तथा ध्वनियों का अर्थ से संबंध आदि बताया जाता है।

ख) तुलनात्मक भाषा-विज्ञान- इस शाखा में किसी समय विशेष पर प्रयुक्त दो भाषाओं की भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं की तुलना की जाती है।

ग) अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान - वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान भाषाओं की जिस प्रकृति का वर्णन, विश्लेषण आदि करता है, अनुप्रयुक्त् भाषा-विज्ञान में उस वर्णन एवं विश्लेषण के विभिन्न् क्षेत्रों में उपयोग का अध्ययन किया जाता है।

2. ऐतिहासिक या कालक्रमिक भाषा-विज्ञान (Historical or Diachronic Linguistics) इस शाखा में किसी भाषा या विभिन्न भाषाओं के दो या अधिक काल-रूपों या किसी एक भाषा में किसी समय विशेष से दूसरे समय विशेष तक हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है।

भाषा-विज्ञान के अंग:

भाषा-विज्ञान के कई अंग होते हैं, यथा ध्वनि-विज्ञान, स्वनिम-विज्ञान, रूपिम-विज्ञान, रूप स्वानिमिकी, वाक्य-विज्ञान आदि। हिंदी भाषा के परिप्रेक्ष्य में इन पर निम्न प्रकार से विचार किया जा रहा है:

ध्वनि-विज्ञान और स्वनिम-विज्ञान:

ध्वनि-विज्ञान में ध्वनियों और उनके विश्लेषण का अध्ययन किया जाता है। किसी भाषा के सही उच्चारण और उसकी औच्चारणिक विशेषताओं की जानकारी के लिए वागेंद्रियों द्वारा उच्चारित ध्वनियों की जानकारी होनी जरूरी होती है, हालाँकि यह जानकारी सभी संभव ध्वनियों की होनी जरूरी नहीं होती, क्योंकि किसी भाषा विशेष में संसार की सभी ध्वनियाँ नहीं होतीं। इस प्रकार कोई भाषा वागेंद्रियों द्वारा उच्चारणीय केवल कुछ व ध्वनियों को ही अर्थ-भेदक प्रकार्यों के लिए काम में लेती है।

स्वन-विज्ञान (Phonetics) में किसी भाषा विशेष में भाषिक ध्वनियों के भौतिक रूप एवं उनकी उच्चारण प्रक्रियादि का अध्ययन किया जाता है। दूसरी ओर, ध्वनि-व्यवस्था, ध्वनियों के अर्थ-भेदक प्रकार्यों तथा उनके प्रयोग के स्वरूप की जानकारी स्वनिम विज्ञान (Phonemics, Phonology) से मिलती है। स्वयन (Phone) किसी भाषा विशेष में प्रयुक्त कोई ध्वनि होती है और स्वनिम (Phoneme) भाषिक ध्वनियों का समूह होता है। इस ध्वनि-समूह के सदस्य परस्पर पर्याप्त समानता रखते हैं, परंतु किसी समूह विशेष का कोई भी सदस्य स्वप्न दूसरे सदस्यस स्वप्न के-से स्वनिक वातावरण में कभी प्रयुक्त नहीं होता। स्वप्न उच्चारण की इकाई होता है, जबकि स्वनिम भाषा विशेष में प्रकार्यात्मंक ढंग से प्रयुक्त इकाई होती है। स्वन मूर्त होता है, जबकि स्वनिम एक संकल्पना

होने के कारण अमूर्त होता है। दो या दो से अधिक स्वन एक स्वनिम के अंतर्गत एक वर्ग के रूप में स्वानिक समरूपता (Phonetic Similarity) के आधार पर गठित किए जाते हैं।

भाषा-विज्ञान में ध्वनि का विश्लेषण निम्न तीन प्रकार से किया जाता है—

(1) व्यतिरेकी वितरण (Contrastive Disbribution) - यह किसी भाषा से संबंधित ध्वनियों के स्वनिमिक (अर्थ-भेदक) विश्लेषण के साथ-साथ उस भाषा के प्रत्येक स्वन-प्रयोग के स्वनिक वातावरण का अध्ययन होता है। इसलिए कोई दो ध्वनियाँ जब एक ही स्वनिक वातावरण में प्रयुक्त होकर अलग-अलग अर्थ वाले शब्द बनाएँ, तो उन्हें परस्पर व्यतिरेकी वितरण में माना जाता है, जैसे 'खाना' और 'गाना' में 'ख' तथा 'ग' ध्वनियाँ। इन्हें छोड़कर इनके आस-पास की ध्वनियों का एक-सा स्वनिक वातावरण है। अर्थ-भेदक होने के कारण एक ही स्वनिक वातावरण में प्रयुक्त होने पर भी ऐसी ध्वनियों को भाषा में दो अलग-अलग स्वनिम माना जाता है। भाषाओं की औच्चारणिक व्यवस्था अलग-अलग होने के कारण यह जरूरी नहीं कि एक भाषा के स्वनिम दूसरी भाषा में भी व्यतिरेकी वितरण में हों।

किसी भाषा में जिन शब्द-युग्मों में एक ही ध्वनि का अंतर होता है, उन्हें अल्पतम भेद-युग्म (Minimal Pairs) कहा जाता है, जैसे आना-जाना, किया-दिया। कभी-कभी स्वनिक वातावरण में अर्थ-भेदक दो ध्वनियों के अतिरिक्त एक और ध्वनि का भेद भी होता है, यथा गणना-गिनना शब्द उप अल्पतम भेद युग्म (Subminimal Pairs) हैं। जब कोई दो या दो से अधिक स्वन किसी भाषा में अर्थ-भेदक प्रकार्य न करें और न ही कभी एक से स्वनिक वातावरण में प्रयुक्त हों, तो वे स्वन एक ही स्वनिम के अंतर्गत संस्वन या सहस्वन या उपस्वन (Allophone) कहलाते हैं।

(2) परिपूरक वितरण (Complementary Distribution) जब दो या अधिक ध्वनियाँ एक ही स्वनिक वातावरण में प्रयुक्त होकर भी नए शब्द न बनाएँ तथा जब एक स्वन के बदले दूसरे स्वन का प्रयोग नहीं किया जाता, तो ऐसी ध्वनियाँ परस्पर परिपूरक वितरण में होती हैं, यथा [प] और [फ] ध्वनियाँ हिंदी में तो परस्पर व्यतिरेकी वितरण में होती हैं (यथा पल-फल), परंतु अंग्रेजी में [च] और [ची] ध्वनियाँ परिपूरक वितरण में होती हैं। अंग्रेजी में ऐसे शब्द नहीं हैं, जिनमें [च] के स्थान पर [ची] का प्रयोग अर्थ-भेद का कारण हो।

टिप्पणी— (i) ध्वनि का स्वनिक (उच्चारित) रूप कोष्ठक [ ] में लिखा जाता है, परंतु उसका स्वनिमिक (ध्वनि-व्यवस्था से संबंधित) स्तर दिखाने के लिए // का प्रयोग किया जाता है।

(ii) कंठ्य ध्वनियों के पूर्व [b] स्वन, तालव्य ध्वनियों के पूर्व [ñ] तथा दंत्यः/वर्त्स्य ध्वनियों के पूर्व [n]

स्वन का उच्चारण किया जाता है, यथा—

कंगन, पंगु, संघ	[b] kabgan, pabgu, sabgh
चंचल, मंजन, पंछी	[i] cañcal, marñjan, pañchi:
अंदर, पंत, अंधा	[n] andor, pant, andha

(iii) इसी प्रकार द्वयोष्ठ्य (Bilabial) ध्वनियों से पहले म् (m) का प्रयोग किया जाता है (जैसे पंप, संबंध, खंभा - Pamp, Sambandh, Khambha, परंतु अपने शुद्ध रूप में म-न अर्थ-भेद करते हुए व्यतिरेकी वितरण में भी हैं, जैसे मल-नल, नाल-माल, नाना-माना, मील-नील।

(iv) 'e' 'अ' का प्रतिनिधित्व करता है और 'a' आ का।

(3) मुक्त वितरण (Free Distribution) एक स्वन के स्थान पर दूसरे का प्रयोग यदि अर्थ-भेद न करे और परिपूरक वितरण की भाँति दो स्वनों का वितरण अलग-अलग न हो, तो उन दो स्वनों को मुक्त वितरण में कहा जाता है, यथा हिंदी में तवर्ग ध्वनियों के वतर्स्य या दंत्य किसी भी उच्चारण से अर्थ-भेद न होने के कारण ये ध्वनियाँ परस्पर मुक्त वितरण में हैं। उदाहरणार्थ कोश-कोस, पास-पाश, शादी-सादी, शास्त्र-सास्त्र।

हिंदी में स्वनिम-निर्धारण—किसी भाषा में स्वनिम-निर्धारण से तात्पर्य है उस भाषा में किन-किन ध्वनियों को अर्थ-भेदक माना जाए और किनको नहीं। इस दृष्टि से स्वनिक वातावरण एक ही होने पर भी किसी शब्द में ध्वनियों को परस्पर बदल दिया जाए तो वे ध्वनियाँ स्वनिमिक होती हैं। आम तौर पर भाषा की अधिकांश ध्वनियाँ अर्थ-भेदक होती हैं। किसी स्वनिम के निर्धारण में कोई भ्रम होने पर वितरण का सहारा लिया जाता है। स्वनिम निर्धारित करते समय मितव्ययिता के सिद्धांत को भी ध्यान में रखा जाता है। हिंदी की निम्नलिखित ध्वनियों की स्वनिमिकता या अस्वनिमिकता संदेहस्पद होती है:

1. देवनागरी वर्णमाला के 'ङ' (b), 'ञ' (ñ) और 'ण' (n) वर्णों को छोड़कर शेष सभी व्यंजन स्वतंत्र स्वनिम हैं, क्योंकि वे सभी व्यतिरेकी वितरण में हैं।

2. ङ - दीक्षित और केलकर 'ङ' को हिंदी का एक अलग स्वनिम मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान नहीं, क्योंकि 'ङ', 'न' के तीन अन्य रूपों ञ, ण, में से ही है। 'ङ' का हिंदी में कोई व्यतिरेकी भी नहीं है, यथा बंगाल, चंचल, अंडा में इ, पप, द को परस्पर प्रतिस्थापित करने से अर्थ-भेद नहीं होता। हिंदी में 'ङ' स्वनिमयुक्त केवल कुछ शब्द ही मिलते और केवल कुछेक शब्दों के आधार पर इसे स्वतंत्र स्वनिम मान लेना तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि उनका अनुप्रयोग भी नितांत नगण्य है।

3. ञ – यह द का अनुनासिक रूप (ñ) होने तथा इसका हिंदी में कोई व्यतिरेकी न होने के कारण इसे भी स्वतंत्र स्वनिम नहीं माना जाता।

4. ण – देवनागरी लिपि में 'ण' वास्तव में ञ (ñ), न (n) ध्वनि ही है। हालाँकि 'ण' की व्याप्ति हिंदी में बहुत है, परंतु न, ण हिंदी में मुक्त वितरण में ही हैं। इन कारणों से 'ण' को देवनागरी में स्वतंत्र स्वनिम नहीं माना जाता।

5. क़ और ग़ ध्वनियाँ ये ध्वनियाँ हिंदी की अपनी नहीं हैं तथा हिंदी में क–क़, ग–ग़ का उसी प्रकार व्यतिरेकी वितरण के साथ सर्वत्र और सदा प्रयोग नहीं होता, जिस प्रकार इनका अपनी मूल भाषा में होता है। इन कारणों से तथा मितव्ययिता के सिद्धांतों के अनुसार भी इन ध्वनियों को स्वतंत्र स्वनिम नहीं माना जा सकता।

6. ज़ ज़–ज में कोई ध्वन्यात्मक समानता नहीं है। परिपूरक वितरण में होने पर भी जिन ध्वनियों में ध्वन्यात्मक समानता न हो, उन्हें एक स्वनिम के अंतर्गत नहीं माना जाता। इस प्रकार ज भी स्वतंत्र स्वनिम नहीं है।

भाषा में रूपिम विज्ञान और रूप:

रूपिम विज्ञान में रूपिमों और शब्द के निर्माण में उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। ब्लॉक एंड ट्रैगर के अनुसार कोई भी वह भाषाई रूप (Morph) (चाहे मुक्त हो या आबद्ध), जिसे लघुतर अर्थवान खंडों में विभाजित न किया जा सके, रूपिम (Morpheme) कहलाता है। ब्लूमफील्ड के अनुसार रूपिम भाषा का वह रूप है, जिसकी भाषा विशेष में किसी अन्य रूप में ध्वन्यात्मक और अर्थगत समानता नहीं होती।

जब किसी एक या अधिक वाक्यों में प्रयुक्त एक या अधिक ध्वनियों का सूक्ष्मतम क्रम किसी संकल्पना से जुड़कर अर्थवान् हो जाए, तो ऐसी अर्थवान् इकाई को, जिसे सूक्ष्मतर समान अर्थसूचक इकाइयों में खंडित न किया जा सके, रूप कहा जाता है, जैसे कमरा, पेन। 'कमरा एक रूप है, जो एक संकल्पना विशेष (कमरा) का बोध कराने वाली सूक्ष्मतम इकाई (Minimal Unit) है, यदि इसे खंडित कर दिया जाए (यथा कम+रा), तो संभव है इन खंडों में से किसी एक या अधिक से अन्य अर्थ का बोध तो हो जाए (जैसे 'कम' से थोड़ा), परंतु 'कमरे' का भाव देने वाली संकल्पना विशेष का बोध न हो।

रूप और रूपिम दोनों सूक्ष्मतम अर्थवान स्वनक्रम होते हैं, जैसे 'कमरा' एक रूप भी है और रूपिम भी। किसी एक या अधिक वाक्यों में प्रयुक्त कुछ रूप ध्वनि तथा अर्थ की दृष्टि से समान होने पर वे रूप तो अलग–अलग कहलाते हैं, परंतु रूपिम एक ही माने जाते हैं, यथा (मैं)[1] (जा)[2]

(रह-)[3] (-आ)[4] (थ-)[5] (-आ)[6]। इस वाक्य में (-आ) ध्वनि का दो बार (4 और 6 में) प्रयोग हुआ है। ये रूप तो दो हैं, परंतु रूपिम एक ही माने जाएँगे। इसके विपरीत लड़के (बहुवचन) तथा लड़के (एकवचन) शब्दों में 'आ' स्वर की 'ए' स्वर द्वारा स्थानापत्ति अलग-अलग अर्थों में हुई है। इसलिए इनका स्वनिक रूप एक होते हुए भी ये अलग-अलग दो रूपिम हैं।

मुक्त और आबद्ध रूपिम (Free and Bound Morpheme) शब्द के जिस रूप के आगे टुकड़े न हो सकें, वह रूप मुक्त रूपिम कहलाता है, जैसे बच्चा, दुकान, सुंदर आदि अर्थबोध की सूक्ष्मतम इकाइयाँ हैं, परंतु बचपन, दुकानें, सुंदरता शब्दों में दो-दो रूपिम हैं बच्चा+पन, दुकान+एँ, सुंदर+ता। इनमें पन, एँ, ता आदि रूपिमों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। ऐसे रूपों को आबद्ध रूपिम कहा जाता है। दूसरे अर्थों में किसी भाषा के उपसर्ग एवं प्रत्ययरहित शब्द मुक्त रूपिम होते हैं और उपसर्ग एवं प्रत्यय आबद्ध रूपिम। जिन भाषाओं में आबद्ध रूपिम होते ही नहीं, केवल मुक्त रूपिम होते हैं, उन्हें अयोगात्मक भाषाएँ (Isolating Languages) कहा जाता है, जैसे चीनी, वियतमानी भाषाएँ। जिन भाषाओं में मुक्त रूपिमों के साथ-साथ मुक्त और आबद्ध रूपिम भी मिलकर शब्द बनाते हैं, उन्हें योगात्मक (Agglutinating) अथवा श्लिष्ट योगात्मक (Inflecting) भाषा कहा जाता है।

संरूप (Allomorph) - अलग-अलग वाक्यों में प्रयुक्त वे सभी रूप, जिनका अर्थ अथवा प्रकार्य एक ही हो, स्वनिक रूप भले ही अलग हो, एक ही रूपिम के संरूप कहलाते हैं, यथा मैं जा रहा था, मुझे रहना चाहिए। इन दो वाक्यों में (मैं) और (मुझ-) दोनों उत्तम पुरुष एकवचन का भाव देने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। (मुझ-) (मैं) का ही तिर्यक रूप है। अतः ये एक ही रूपिम के दो संरूप हैं। यहाँ यह जान लेना उपयुक्त होगा कि रूपिम किसी शब्द का अविकारी रूप होता है, संरूप उसका अविकारी और / अथवा विकारी रूप होता है अथवा समान अर्थ का सूचक होता है, यथा—

	रूपिम		**संरूप**
(1)	अविकारी रूप में 'मैं'	<	[मैं] अविकारी सर्वनाम प्रथम पुरुष एकवचन
	विकारी रूप में 'मैं'	<	[मुझ-] विकारी सर्वनाम प्रथम पुरुष एकवचन
(2)	समान अर्थ-बोध में '-याँ', (ए), (-एँ), (-ओ), (0)	<	'लड़कियाँ' में (-याँ), 'लड़के' में (-ए), 'दुकानें' में (-एँ), 'मकानों' में (-ओं) तथा 'पत्थर' में शून्य रूप (0) - ये सभी एक ही अर्थ (बहुवचन) में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए ये एक ही रूपिम के पाँच अलग-अलग संरूप हैं।

इस प्रकार रूपिम वह भाषाई रूप होता है, जिसकी भाषा विशेष में किसी अन्य रूप से ध्वन्यात्मक समानता नहीं होती (इसलिए ये पाँचों एक ही रूपिम हैं), जबकि संरूप में अर्थगत समानता अवश्य होती है, ध्वन्यात्मक रूप भले ही भिन्न हो (इसलिए ये 5 अलग-अलग संरूप हैं)।

रूप, रूपिम और संरूप में अंतर निम्नलिखित वाक्यों से और स्पष्ट हो जाएगा:

मैं जा रहा था	(मैं)[1] (जा)[2] (रह-)[3] (-आ)[4] (थ-)[5] (-आ)[6]
मुझे रहना चाहिए	(मुझ-)[7] (-ए)[8] (रह-)[9] (-ना)[10] (चाहिए)[11]
लड़कियाँ गईं	(लड़की-)[12] (-याँ)[13] (गईं)[14]
लड़के गए	(लड़का-)[15] (-ए)[16] (गए)[17]
लड़कों ने यह काम किया	(लड़का-)[18] (-ओं)[19] (ने)[20] (यह)[21] (काम)[22] (की-)[23] (-या)[24]
ये मकान हैं	(ये)[25] (मकान)[26] (Ø)[27] (हैं)[28]
लड़के ने बुलाया	(लड़का-)[29] (-ए)[30] (ने)[31] (बुला-)[32] (-या)[33]
मेरी दुकानें हैं	(मेरी)[34] (दुकान-)[35] (-एँ)[36] (हैं-)[37]
मेरा पत्थर है	(मेरा)[38] (पत्थर)[39] (है)[40]

टिप्पणी— कोष्ठक में शब्द के बाद दर्शाया गया योजक-चिह्न (-) संकेत करता है कि यह शब्द मुक्त रूपिम है। यही चिह्न प्रत्यय से पहले लगे होने पर संकेत मिलता है कि वह प्रत्यय आबद्ध रूपिम है।

इस अनुसार उपर्युक्त वाक्यों में 40 रूप हैं, 28 रूपिम हैं [1/7, 2, 3, 4/6, 5, 8, 9, 10, 11, 12, 13/16/19/27/36, 14/17, 15/18, 20/31, 21, 22, 23, 24/33, 25, 26, 28/37, 29, 30, 32, 34/38, 35, 39, 40, और 9 रूपिमों के 21 संरूप हैं (1-7, 4-6, 13-16-19-27-36, 14-17,15-18, 20-31, 24-33, 28-37, 34-38)। साथ ही 22 मुक्त रूपिम हैं (1, 2, 3, 5, 7, 9, 11, 12, 14/17, 15/18, 21, 22, 23, 25,26, 28/37, 29, 32, 34/38, 35, 39, 40) और 7 आबद्ध रूपिम हैं (4/6, 8, 10, 13/16/19/27/36, 30, 20/31, 24/33)।

रूपिम-निर्धारण के सिद्धांत किसी भाषा के रूपिम-निर्धारण से तात्पर्य है उस भाषा एक या अधिक वाक्यों में प्रयुक्त कौन-कौन से रूप ध्वनि अथवा अर्थ की दृष्टि से समान हैं अथवा स्वनिक रूप एक होते हुए भी किन स्थितियों में वे अलग रूपिम माने जाएँगे। इस प्रकार ध्वनि अथवा अर्थ की दृष्टि से समान रूप एक ही रूपिम माने जाते हैं, परंतु उनकी स्थानापत्ति अलग-अलग अर्थों में हो तो वे अलग रूपिम माने जाते हैं, चाहे उनका स्वनिमिक रूप एक जैसा क्यों न हो। उदाहरण के लिए नीचे यह उल्लेख है कि हिंदी के कौन-कौन से रूप ध्वनि अथवा अर्थ की दृष्टि से समान होने पर एक ही रूपिम हैं:

1. जो रूप अर्थ की दृष्टि से समान हों, किंतु जिनमें रचना की एकरूपता न हो, वे एक ही रूपिम के अंतर्गत माने जाते हैं, बशर्ते कि वे रूप ध्वनि-प्रक्रिया से प्रतिबंधित (Phonologically Conditioned) हों, यथा संज्ञा एकवचन शब्दों को बहुवचन बनाने वाले रूप, जैसे याँ, ए, एँ, Ø इन पर ध्वनि प्रक्रिया का प्रतिबंध निम्नानुसार है:

याँ = स्त्रीलिंग एकवचन ईकारांत संज्ञा शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए,

ए = पुल्लिंग एकवचन आकारांत संज्ञा शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए,

एँ = स्त्रीलिंग एकवचन अकारांत शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए,

ओं = पुल्लिंग एकवचन अकारांत शब्दों को विभक्ति-चिह्न के साथ बहुवचन बनाने के लिए,

Ø = अकारांत पुल्लिंग एकवचन संज्ञा शब्दों को विभक्ति-चिह्न के साथ बहुवचन बनाने के लिए।

2. वे सभी सर्वनाम जो अपने अविकारी और तिर्यक रूप में एक ही अर्थ का बोध कराएँ, यथा मैं, मुझ (मुझे, मुझको, मुझीको), मेर- (मेरा, मेरे, मेरी) एक ही रूपिम के अंतर्गत आते हैं।
3. वे सभी क्रिया शब्द जिनसे एक ही अर्थ का बोध हो (यथा गई, गया, गए), एक ही रूपिम में अंतर्गत आते हैं।
4. जब किसी संज्ञा शब्द का बहुवचन रूप एकवचन तथा बहुवचन दोनों के लिए प्रयुक्त हो तो वह शब्द दोनों जगह अलग-अलग रूपिम होता है, यथा लड़के गए और लड़के ने बुलाया में 'लड़के' शब्द।
5. जब किसी शब्द का शून्य रूप एकवचन तथा बहुवचन दोनों के लिए प्रयुक्त हो, तो वह रूप दोनों जगह अलग-अलग रूपिम होता, यथा मेरे मकान हैं, यह मेरा मकान है में 'मकान' शब्द।

रूप - स्वनिमिकी (Morphophonemics):

रूप-स्वनिमिकी किसी रूप की स्वनिमिक व्यवस्था और उसमें परिवर्तन का अध्ययन है। स्वनिमिकीय परिवर्तन तब होते हैं, जब प्रत्यय प्रातिपादिक (Bases) या धातु (Root) से जुड़कर नए शब्द बनाएँ, यथा लड़का+पन लड़कपन, बच्चा+पन बचपन, नाक कटा= नकटा, मिट्टी+मैला= मटमैला, घोड़ा + दौड़ = घुड दौड़। रूपस्वनिमिकी अर्थवान इकाई रूपिम और स्वनिम अर्थात् व्याकरण और ध्वनि के बीच परस्पर संबंधों का अध्ययन है।

रूप-स्वन प्रक्रिया - रूपिम अर्थ की लघुतम इकाई होती है, जो सामान्यत: अभिव्यक्ति (ध्वनि) से सीधा संबंध रखती है। परंतु प्राय: एक ही रूपिम के लिए भिन्न-भिन्न स्वनिक रूप (संरूप) भी प्रयुक्त होते हैं। संदर्भ के अनुसार रूपिम का स्वनिक रूप-निर्धारण और उसमें परिवर्तन की व्यवस्था हर भाषा में अलग-अलग होती है, जैसे हिंदी में बहुवचन रूपिम के अंतर्गत ये चार स्वनिमिक अभिव्यक्तियाँ हैं /-e Ø ~ ye ~ -e/ (उदाहरणत: लड़के, मकान, लड़कियाँ, दुकानें)। इस

प्रकार रूपस्वनिमिकी रूपिम के स्तर पर सिद्ध स्वनिमिक व्यवस्था होती है। स्वनिम की इकाई के समतुल्य रूप-स्वनिमिकी के स्तर पर पाई जाने वाली इकाई को रूप-स्वनिम (Morphophoneme) कहा जाता है।

रूप-स्वनिमिक परिवर्तन दो प्रकार के और दो प्रकार से होते हैं—

दो प्रकार के परिवर्तन

1) ध्वनि-प्रक्रिया से प्रतिबंधित वे परिवर्तन, जिनमें ध्वनि-प्रक्रियागत प्रतिबंध हों, यथा हिंदी में इ (ई) कारांत स्त्रीलिंग संज्ञा हो तो बहुवचन में 'याँ' रूप प्रयुक्त होगा अन्यथा 'एँ' रूप। अत: {-याँ} और {-एँ} स्वनिक वातावरण द्वारा नियंत्रित रूप-स्वनिम हैं।

2) रूप-प्रतिबंधित (Morphologically Conditioned) शब्द स्तर के वे रूप-स्वनिमिक परिवर्तन जिनके परिवर्तन के कोई निश्चित नियम न हों और जो प्रचलन पर ही आधारित हों, जैसे- घोड़ा+दौड़= घुड दौड़।

दो प्रकार से परिवर्तन

1) बाह्य परिवर्तन - जब प्रातिपदिक के आदि या अंत में प्रत्यय जोड़ने पर परिवर्तन उनके आदि या अंत में ही हो, जैसे- लड़की+याँ= लड़कियाँ।

2) आंतरिक परिवर्तन - जब प्रातिपदिक के आदि या अंत में प्रत्यय जोड़ने पर परिवर्तन मध्य में हो, जैसे चार+राह= चौराहा।

रूप-स्वनिमिकी व्याकरण एवं ध्वनि के बीच का एक स्तर है, जो ध्वनि को व्याकरण से जोड़ता है। इसके अंतर्गत भिन्न स्वनिक वातावरण वाले रूपों को एक रूपिम के अंतर्गत गठित किया जा सकता है (जैसे /- e ~ Ø ~ ya ~ -/ बहुवचन रूप) और एक ही स्वनिक वातावरण वाले दो रूपों को अलग-अलग रूपिम के संरूप मान सकते हैं, बशर्ते कि उनका प्रकार्य, व्याकरणिक मूल्य भिन्न-भिन्न हो (यथा लड़के-एकवचन और लड़के-बहुवचन)। इसलिए किसी भाषा की किसी अर्थवान इकाई का ध्वनि से संबंध दिखाने के लिए उस भाषा का रूपस्वनिमिक अध्ययन आवश्यक होता है।

वाक्य विज्ञान—वाक्य विज्ञान वाक्य की संरचना और उसके विश्लेषण का अध्ययन है। इस अध्ययन से पहले हम यह जान लेना उचित होगा कि वाक्य क्या है।

- वाक्य भाषा की चरम इकाई है।
- वाक्य एक स्वतंत्र भाषिक इकाई है, जो व्याकरणिक विवरण की दृष्टि से किसी अन्य बड़ी इकाई का भाग नहीं है - ब्लूमफील्ड

वाक्य की इस परिभाषा से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

1) वाक्य भाषा की इकाई है,
2) वाक्य भाषा की चरम इकाई है,
3) वाक्य भाषा की स्वतंत्र इकाई है,
4) वाक्य भाषा की स्वतंत्र व्याकरणिक इकाई है,
5) वाक्य भाषा की वह स्वतंत्र व्याकरणिक इकाई है, जो अपने से बड़ी किसी अन्य व्याकरणिक इकाई का भाग नहीं है,
6) भाषा छोटी-बड़ी स्वतंत्र व्याकरणिक इकाइयों की व्यवस्था है।

इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य का व्याकरण-सम्मत होना आवश्यक है तथा वह दूसरे वाक्य अर्थात् दूसरी इकाई से भी भावात्मक रूप में जुड़ी होनी आवश्यक है।

क. संरचना की दृष्टि से वाक्य निर्माण और विश्लेषण—संरचनात्मक दृष्टि से उपवाक्य और पद वाक्य के दो मुख्य घटक होते हैं। वाक्य विज्ञान की दृष्टि से उपवाक्य अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी पूर्वापर संबंध और प्रसंगानुकूल होना चाहिए। उसी प्रकार वाक्य के पदों का भी उचित स्थान पर उपयुक्त विभक्ति-चिह्नों सहित स्थापन अत्यंत अनिवार्य है। यही स्थापन पदक्रम के अनुसार स्थापन है। वाक्य के कुछ तत्व भी होते हैं, जिनकी वाक्य के गठन महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये तत्व वाक्य को ठोस रूप प्रदान करने के साथ-साथ भावाभिव्यक्ति स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

पदक्रम—हिंदी में पदक्रम तथा सन्निकट घटक वाक्य-संरचना के महत्वूपर्ण तत्व होते हैं। पदक्रम वाक्य में शब्दों को अभिहित रूप में प्रकट करने वाले संज्ञा, सर्वनाम आदि का विन्यास होता है, जो अर्थ तथा पारस्परिक संबंध की दृष्टि से विहित होता है। साधारण वाक्यों में पदक्रम कर्ता, कर्म, पूरक, क्रिया और सहायक क्रिया के क्रम से होता है और इनमें पदक्रम दोष का ज्ञान तुरंत हो जाता है। यह पदक्रम वाक्य में वचन, कारक, लिंग, पुरुष, कालादि के मध्य परस्पर सटीक संबंध के अनुसार होता है और इस संबंध को अन्वय कहा जाता है। हिंदी भाषा के वाक्य में पदक्रम भाषा विज्ञान के निम्नलिखित नियमों के अनुसार होना चाहिए:

1. वाक्य कर्ता से आरंभ हो। यदि वाक्य में संबोधन अथवा विस्मयादिबोधक पद अथवा प्रश्नवाचक शब्द हों तो वे कर्ता से पहले आएँ,
2. वाक्य में कर्ता पद पहले, कर्म पद मध्य में और क्रिया पद सबसे अंत में आए,
3. कर्ता, कर्म और क्रिया का अर्थ-विस्तार करने वाले विशेषण, क्रिया-विशेषण संबंधित पद से पहले आएँ,

4. संबंध कारक संबंधित शब्द से पूर्व आए,
5. प्रश्नवाचक पद प्रश्नगत विषय से पहले आए,
6. करण से अधिकरण तक के शेष कारक कर्ता और कर्म के मध्य रखे जाएँ,
7. पूर्व काल की क्रिया मुख्य क्रिया से पहले आए,
8. निषेधवाचक 'न' या 'नहीं' वाक्य के बीच में आए तथा आग्रहसूचक 'न' वाक्य के अंत में,
9. मिश्र वाक्य में प्रधान उपवाक्य पहले तथा आश्रित उपवाक्य बाद में आए,
10. मिश्र और संयुक्त वाक्य में दो उपवाक्यों के बीच योजक का प्रयोग किया जाए।

सन्निकट घटक – व्याकरणिक संबंध की दृष्टि से एक-दूसरे के निकट आने वाले घटकों को सन्निकट घटक कहा जाता है। विश्लेषण की यह पद्धति वाक्य की स्तरीय व्यवस्था को स्पष्ट करने और भाषिक इकाइयों का प्रत्येक स्तर पर संबंध दिखाने के लिए महत्वपूर्ण है। इसके लिए वाक्य का शब्द स्तर पर विश्लेषण करने से पहले यह देखना होता है कि वाक्य किन दो सार्थक घटकों में बँटा हुआ है जो संरचना की दृष्टि से भाषा में प्रयुक्त अन्य इकाइयों के अनुरूप हों, उदाहरणार्थ स्कूल से जाने के बाद अध्यापक जी सीधे घर चले गए। इस वाक्य में 'स्कूल से जाने के बाद' तथा 'सीधे' ऐसे रूपिम हैं। जिनकी जगह दूसरे रूपिमों की स्थापना करने पर भी वाक्य की संरचना में कोई अंतर नहीं पड़ता। इस तथ्य से वाक्य के बारे में निम्नलिखित बातें देखने में आती हैं–

1. वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से परस्पर सन्निकट घटकों का समूह होता है। जिनका विभाजन दो सबसे बड़े घटकों के स्तर से होता है और प्रत्येक घटक का आगे और घटकों में विभाजन हो सकता है, परंतु व्याकरणिक संबंध की दृष्टि से जुड़े घटक परस्पर सन्निकट ही रहने चाहिए।
2. किसी एक घटक की जगह दूसरा पूरा घटक ही रखा जा सकता है।
3. किसी छोटे से छोटे घटक के आगे और टुकड़े नहीं हो सकते, जैसे उपर्युक्त वाक्य में 'स्कूल से' और 'के बाद' का विभाजन नहीं हो सकता।
4. वाक्य में पद और पदबंध एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं, परंतु एक-दूसरे के अंदर नहीं।
5. अंतिम स्तर पर प्राप्त होने वाले रूपिमों को अंतिम घटक (Ultimate Constituents) कहा जाता है।
6. जिन रूपों/रूपिमों/रचनाओं को बदला जा सके, वे प्रकार्यात्मक समानता रखते हैं, क्योंकि वे एक ही रूप वर्ग (Form Class) के सदस्य होते हैं।

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से बताई गई इस वाक्य-संरचना को यदि व्याकरणिक स्तर पर लें, तो देखने में आएगा कि वाक्य के हर अंश का कोई न कोई व्याकरणिक नाम (जैसे कर्ता, कर्म आदि), संबंध एवं कार्य होता है तथा प्रत्येक का स्थान निश्चित होता है।

ख) वाक्य के तत्वों की दृष्टि से वाक्य निर्माण और विश्लेषण- वाक्य के निम्नलिखित तत्व होते हैं—

1. सार्थकता अर्थात् वाक्य सार्थक शब्दों का समूह होता है।

2. योग्यता अर्थात् किसी शब्द के अपने आपमें सार्थक होते हुए भी उसका प्रसंग के अनुसार प्रयुक्त होना आवश्यक है अर्थात् वह शब्द उस प्रसंग में प्रयोग के योग्य हो, जैसे 'घोड़ा घास पीता है' वाक्य में 'पीता' शब्द अपने आपमें पूर्ण रूप से सार्थक होते हुए भी इस वाक्य में प्रयोग के योग्य नहीं है।

3. आकांक्षा अर्थात् वाक्य अपने आपमें पूर्ण हो, उससे कोई आकांक्षा शेष न रहे, जैसे 'करता है' वाक्य से यह जिज्ञासा उठती है कि कौन करता है, क्या करता है, परंतु 'राम काम करता है वाक्य से कोई आकांक्षा शेष नहीं रहती।

4. अन्वय वाक्य में वचन, कारक, लिंग, पुरुष, कालादि के मध्य परस्पर सटीक संबंध को अन्वय कहा जाता है, जैसे वाक्य में क्रिया का रूप कर्ता, कर्म, लिंग और वचन के अनुसार हो तो उसका इनसे अन्वय होता है। हिंदी में अन्वय के नियम इस प्रकार हैं:

i. यदि वाक्य में कर्ता के साथ विभक्ति न हो तो उसकी क्रिया कर्ता के अनुसार हो।

ii. यदि कर्ता के साथ 'ने' विभक्ति हो तो सकर्मक क्रिया कर्म के लिंग या वचन के अनुसार हो।

iii. यदि कर्ता और कर्म दोनों के साथ विभक्ति हो तो क्रिया पुल्लिंग एकवचन होती है।

iv. यदि एक ही लिंग के अनेक कर्ता पदों के साथ विभक्ति न हो तो वे 'और', 'तथा', 'एवं, 'व' आदि योजकों से जुड़े हों।

v. यदि कर्ता विभक्तिरहित हों और वे 'या' से जुड़े हों तो उनकी क्रिया अंतिम कर्ता के साथ आती है, जैसे राम या सीता यहाँ आएगी, सीता या राम यहाँ आएगा।

vi. वाक्य में विभिन्न लिंगों के अनेक कर्ता हों और वे 'और', 'तथा', 'एवं', 'व' आदि से जुड़े हों तो क्रिया पुल्लिंग बहुवचन होती है, जैसे उत्सव में अनेक बच्चे, बूढ़े, पुरुष और महिलाएँ आए।

vii. एकवचन कर्ता के लिए आदरसूचक क्रिया बहुवचन में होती है, जैसे सुभाष चन्द्र महान थे।

viii. यदि कर्ता अलग-अलग पुरुषों के हों तो पहले मध्यम पुरुष, फिर अन्य पुरुष और अंत में उत्तम पुरुष का प्रयोग हो, जैसे तुम, श्याम और मैं बाजार जाएँगे।

ix. यदि कर्ता का लिंग ज्ञात न हो तो क्रिया पुल्लिंग में ही आए।

x. संबंध-कारक 'लिंग' संबंधी के अनुसार हो। यदि ये रूप अलग-अलग लिंगों के हों, तो संज्ञा व सर्वनाम के संबंध में कारक का लिंग पहले संबंधी के अनुसार हो, जैसे सुंदर का लड़का और लड़की तो कलकत्ता में काम करते हैं, परंतु उसकी बहन और भाई चंड़ीगढ़ में रहते हैं।

xi. यदि व्यक्ति अपने विचार किसी के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त करे तो उसके लिए उत्तम पुरुष बहुवचन और उसी के अनुसार क्रिया का प्रयोग हो, जैसे मंत्री जी ने कहा, जब हमारी योजना सफल हो जाएगी, तो हम अच्छी स्थिति में होंगे।

xii. एक संज्ञा के लिए सदा एक प्रकार के सर्वनाम का प्रयोग करके क्रिया का तदनुसार प्रयोग हो, जैसे आपको चाहिए था कि आप अपने पत्र में अपनी परीक्षा के बारे में कुछ लिखते। यहाँ कहीं 'आप' और कहीं 'तुम' का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

xiii. यदि वाक्य में एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा एक जैसे अथवा अलग-अलग तरह के काम करने 'आप द्वारा यह काम नहीं किया का जिक्र हो तो उनका वाच्य एक जैसा रहना चाहिए, यथा गया, परंतु उस द्वारा किया गया। यह वाक्य इस प्रकार नहीं लिखा जा सकता - आप द्वारा यह काम नहीं किया गया, परंतु उसने किया।

निष्कर्ष: इस प्रकार देखने में आता है कि भाषा के वैज्ञानिक आधार होते हैं तथा उन्हीं के कारण वह अपना मानक रूप प्राप्त करती है और सर्वग्राह्य बनती है। इन्हीं वैज्ञानिक आधारों के कारण वह भिन्न-भिन्न देशों और क्षेत्रों में भी एक समान रूप से व्यवहृत होती है तथा किसी भी देश या क्षेत्र के प्रयोक्ता को उसके अधिगम में कोई परेशानी नहीं होती। हम नहीं जानते कि भाषा-शिक्षण के लिए शिशु तक भी जाने-अनजाने इन्हीं वैज्ञानिक आधारों को अपना माध्यम बनाता है और शनैः शनैः वह स्वयं में एक भाषा विज्ञानी बन जाता है। भाषा-विज्ञान के ये आधार अन्यथा भी आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं के बलबूते किसी भाषा का अधिगम सहज अथवा दुस्तर होता है। इनका सूक्ष्म रूप से अधिगम करने पर व्यक्ति भाषाओं की उत्पत्ति के स्तर तक पहुँच उनकी उत्पत्ति के आधारों और कारणों की खोज भी कर सकता है।

संदर्भः

1. प्रसाद प्रो. सिद्धेश्वर तथा अन्य, (1983), विश्व हिंदी तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलना।

2. प्रसाद प्रो. सिद्धेश्वर तथा अन्य, (1983), विश्व के मानचित्र पर हिंदी सूचना और प्रसारण मंत्रालय।

3. भाटी डॉ. देशराज सिंह एवं स्वामी, (1967), प्रो. भूषण हिंदी भाषा का इतिहास

4. प्रो. दीपचंद जैन एवं डॉ. कैलाश तिवारी, (1972), हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ।

5. सदाविजय आर्य एवं रमेश मिश्र, (1971), हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास।

6. हिंदी भाषा, डॉ. भोलानाथ तिवारी।

7. देवेंद्र नाथ शर्मा, (1966), भाषा विज्ञान की भूमिका।

8. हरदेव बाहरी, हिंदी – उद्‌भव, विकास और रूप।

9. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सरनदास भनोट।

10. भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी, (सम्वत् 2008), हमारा हिंदी साहित्य और भाषा परिवार।

11. डॉ. पूरन चंद टंडन, हिंदी कोश निर्माण में विदेशी विद्‌वानों की भूमिका।

12. प्रो. सूरजभान सिंह, भाषा–नियोजन और हिंदी का मानकीकरण।

13. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, हिंदी : राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक।

14. ओम प्रकाश तरुण, हिंदी भाषा का इतिहास।

❑❑

इस अंक के लेखक

रविन्द्र नाथ श्रीवास्वत प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग नव नालन्दा महाविहार सम विश्वविद्यालय (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार), नालंदा
मो. 9968269237
ईमेल: parichaydaspoet@gmail.com

मीरा सिन्हा B-1, 7:2, गोकुल सोसाइटी सेक्टर-19A, नेरूल नवी, मुंबई महाराष्ट्र-400707,

विनय कुमार शर्मा 448/119/76, कल्याणपुरी, ठाकुरगंज, लखनऊ-226003 (उ.प्र.)
Mob.: 9415578129, 7905190645
ईमेल: dr.vinaysharma123@gmail.com

राकेश कुमार दुबे म.नं. 168, नेहियां, वाराणसी-221202 (उत्तर प्रदेश) भारत
मो. 7355682455
ईमेल: rkdhistory@gmail.com

दिलीप सिंह पूर्व निदेशक, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, स्वामी विवेकानंद प्रशासनिक भवन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)-484887, मो. 8989105802
ईमेल: profsinghdilip@gmail.com

पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' 'साईकृपा' 58, लाल ऐविन्यू डाकघर-छेहर्टा-143105, अमृतसर (पंजाब), मो. 9878647468
ईमेल: shitanshu.shashibhushan@yahoo.com

साकेत सहाय मुख्य प्रबंधक (राजभाषा) पंजाब नैशनल बैंक, अंचल कार्यालय, पटना, मो. 8800556043
ईमेल: hindisewi@gmail.com

विजयानन्द अध्यक्ष, भारतीय संस्कृति एवं साहित्य संस्थान, हवेलिया, प्रतिष्ठानपुर, प्रयागराज-211019 (उ.प्र.)
मो. 9335138382
ईमेल: 33vijayanand@gmail.com

यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी सदस्य: हिंदी सलाहाकार समिति, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, 3/16, कबीर नगर, दुर्गाकुंड, वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश)
मो. 9415389731, 7007303877
ईमेल: yatindranathchaturvedi@gmail.com

चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव सहायक आचार्य (हिंदी) भवंस मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशाम्बी-212201 (उ. प्र.), मो. 7767041429, 7972465770
ईमेल: chummanp2@gmail.com

योगेन्द्रनाथ शर्मा "अरुण" पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667 (उत्तराखण्ड)
मो. 9412070351
ईमेल: ynsarun@gmail.com

मृदुल कीर्ति मो. +61 450051557
ईमेल: mridulkirti@gmail.com

पूर्णिमा आर. Associate Professor of hindi Santana Dharma College, Alappuzha, Kerala, Mob.:
ईमेल: poornima.r@sdcollege.in

राजेश कुमार सदस्य, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, शिक्षा विभाग, भारत सरकार
सी-205, सुपरटेक इको सिटी सेक्टर 137, नोएडा, (उ. प्र.)-201305
मो. 9687639855
ईमेल: drajeshk@yahoo.com

अंजना किशनपुरी शोधार्थी (पी-एच. डी.), सूचना एवं भाषा अभियांत्रिकी केंद्र महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
मो. 9753608277
ईमेल: anjanaresearcher@gmail.com

कृपाशंकर शोध छात्र- हिंदी विभाग रानी दुर्गावती, विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश) निवास: 85/12 छोटा बघाड़ा जिला-प्रयागराज, (उ.प्र.)-211002, मो. 8858603515
ईमेल: kripasald221184@gmail.com

कमल किशोर गोयनका ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052
मो. 09811052469
ईमेल: kkgoyanka@gmail.com

सूर्य प्रसाद दीक्षित साहित्यिकी, डी-54, निराला नगर, लखनऊ-226020
मो. 9451123525
ईमेल: suryadixit123@gmail.com

रत्नाकर नराले प्रो॰ हिंदी, रायर्सन युनिवर्सिटी, टोरंटो, कनाडा
मो॰ +14166666932
ईमेल: ratnakarnarale@gmail.com

आलोक गुप्त अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
मो॰ 9824488950
ईमेल: dralokgupt@gmail.com

कृष्ण कुमार मिश्र प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली
मो॰ 9450315515, 8668552180
ईमेल: kkmishrahindi@gmail.com

प्रभाकर सिंह प्रोफेसर हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
ईमेल: prabhakarsinghbhanaras@gmail.com

करुणाशंकर उपाध्याय वरिष्ठ प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई-400098
मो॰ 9167921043
ईमेल: dr.krupadhyay@gmail.com

रेखा राजवंशी 1, Leigh Place West Pennant hills new south wales 2125 Australia, Ph. No.- +61403116301
ईमेल: rekha_rajvanshi@yahoo.com.au

रोहित कुमार हैप्पी Editor, Bharat-Darshan, 2/156, Universal Drive Henderson, Waitakere-0610 Auckland (New Zealand)
Mob.: 0211713934
ईमेल: editor@baratdarshan.co.nz

नीलू गुप्ता 5599, Buchanan Place, Eremont, CA - 94548
मो॰ +15 105575120
ईमेल: nilugupta@yahoo.com

विजय सिंह संकाय सदस्य हिंदी विभाग (मास मीडिया) जामिया मिल्लिया इस्लामिया,
B-166/1, Gali No. 06, Mukund Vihar, Karawal Nagar, Delhi - 110094, मो॰ 9204757550
ईमेल: sangoshthimala1994@gmail.com

नीलम शर्मा राज सदन, 120/132, बेलदारी लेन, लालबाग, लखनऊ-226001
मो. 9415141368
ईमेल: neelams348@gmail.com

शालेहा प्रवीन पीएच. डी. (हिंदी) हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
मो. 8750619476
ईमेल: shaleha02praveen@gmail.com

अभिनव कुमार शर्मा Head Associate Professor, Varanasi-221005 (UP) INDIA
Mob. No. 9451118245
ईमेल: abhi@bhu.ac.in, abhinavkr@yahoo.com

बलजीत कुमार श्रीवास्तव सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मो. 9451087259
ईमेल: drbaljeetsrivastava@gmail.com

जी. गोपीनाथन (पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा) सौपर्णिका, काक्कंचेरी कालिकट यूनिवर्सिटी पोस्ट, केरल-673635, मो. +91 9747028623
ईमेल: gopinathan.govindapinicker@gmail.com

वी.रा. जगन्नाथन 106, साउथ पार्क अपार्टमेंट, कालका जी, नई दिल्ली-19
मो. +91 9871824742
ईमेल: vrj.nathan@gmail.com

रमेश चन्द्र म.नं. 1116, ई.एस.आई. अस्पताल के पीछे, सेक्टर-9ए, गुरुग्राम, हरियाणा-122001, मो. 9711011034
ईमेल: sambherwal@yahoo.co.in

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

केंद्र : दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर, अहमदाबाद

सदस्यता शुल्क फार्म

महोदय,

कृपया '**गवेषणा**' पत्रिका की वार्षिक सदस्यता प्रदान करें।

ग्राहक का नाम.....

पता.....

.....

दूरभाष.....ई-मेल (यदि कोई हो).....

'गवेषणा' एक वर्ष का शुल्क

'गवेषणा' एक वर्ष रु. 150.00 (भारत में)
प्रति अंक . रु. 40.00 (भारत में)
संस्थागत वार्षिक शुल्क रु. 250.00
US $ 40.00 (विदेश में)
प्रति अंक $ 10.00 (विदेश में)

(पंजीकृत डाक से मंगाने के लिए वार्षिक शुल्क के साथ रु. 100/- डाक व्यय अतिरिक्त)

मैं .....राशि का बैंक ड्राफ्ट सं.....दिनांक..... रु./
US $ .....बैंक.....

वार्षिक सदस्यता शुल्क भिजवा रहा हूँ।

कृपया सदस्यता शुल्क **सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा** के नाम से केवल बैंक ड्राफ्ट से निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ –

संपादक 'गवेषणा'
प्रकाशन विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान
हिंदी संस्थान मार्ग
आगरा (उ.प्र.) भारत, पिन-282005
फोन-0562-2530684/2530705/2530159
फैक्स -2530159/2530684

हस्ताक्षर और मुहर (केवल संस्थाओं के लिए)
दिनांक.....
नाम.....

लेखकों से निवेदन

- 'गवेषणा' में प्रकाशन के लिए भेजे गए आलेख अनिवार्य रूप से शोध प्रारूप (फॉर्मेट) में हों, साथ ही प्रत्येक स्थापना प्रमाण पुष्ट हो। उसके स्रोत/संदर्भ का उल्लेख के अंत में पूर्ण रूप से हो, यथा–लेखक नाम/पुस्तक/प्रकाशक/संस्करण/वर्ष/पृष्ठ आदि।
- शोध आलेख के विषय–प्राचीन लुप्तप्राय: साहित्य संपदा, भूले–बिसरे रचनाकार/कृति/युग प्रवृत्ति, विचारधारा, विद्या, शिल्प विधि आदि से संबंधित हो सकते हैं। इनके अलावा क्षेत्र सर्वेक्षणपरक अध्ययन, लोक साहित्य संकलन–विश्लेषण, जनपक्षीय साहित्य–समीक्षा, भाषिक प्रयुक्ति, अंतर्विद्यापरक विवेचन, विश्व साहित्य, साहित्येतिहास के पुनर्लेखन आदि विषयों के शोध आलेखों को प्राथमिकता दी जाएगी।
- वर्तनी तथा पारिभाषिक शब्दावली केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा मानक रूप ही शोध आलेखों में प्रयुक्त करें।
- आलेख Krutidev010 में टाइप कर वर्ड एवं पी.डी.एफ. दोनों रूप में गवेषणा के मेल पर भेजें।
- आलेख मौलिक एवं अप्रकाशित है, इस आशय का पत्र साथ भेजें।
- रिव्यू कमेटी के अनुमोदन के पश्चात लेख प्रकाशन प्रक्रिया में जाएगा, अतएव इस प्रक्रिया में समय लग सकता है।
- आलेख में व्यक्तिगत अप्रिय आक्षेप, दलीय, संकीर्ण, मतवाद एवं असंसदीय भाषा वर्जित है।
- प्रकाशित अंक की प्रति रजिस्टर्ड डाक द्वारा आपके पते पर भेजी जाएगी, अतएव हमेशा पूरा पता लिखें।
- आलेख प्रकाशन का मानदेय आपके नाम के बैंक अकाउंट में ऑनलाइन किया जाएगा। अतएव अकांउट नंबर और IFSC नंबर उपलब्ध कराना आवश्यक है।
- अत्यधिक आवश्यक स्थिति में ही संपर्क ईमेल (गवेषणा) पर करें।

—संपादक, गवेषणा

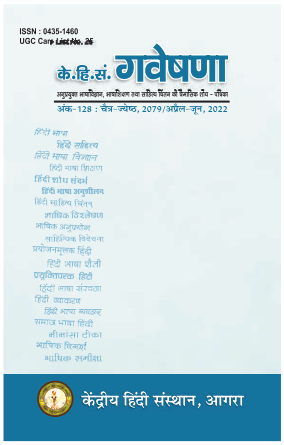
गवेषणा के अब तक प्रकाशित विशेषांक

क्र.सं.	विषय विशेषांक	अंक/वर्ष
1.	गवेषणा – तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक	अंक–41/वर्ष–1983
2.	गवेषणा – विश्व भाषा हिंदी विशेषांक	अंक–65–66/1995
3.	गवेषणा – प्रयोजनमूलक हिंदी विशेषांक	अंक–67–68/1996
4.	गवेषणा – व्रजेश्वर वर्मा स्मृति अंक	अंक–71–72/1998
5.	गवेषणा – डॉ. गोपाल शर्मा स्मृति अंक	अंक–75–76/2000
6.	गवेषणा – स्त्री की भाषा महादेवी के संदर्भ में	अंक–87/2007
7.	गवेषणा – भाषा एवं सूचना प्रौद्योगिकी	अंक–88/2007
8.	गवेषणा – भाषा शिक्षण पर विशेष	अंक–89/2008
9.	गवेषणा – भाषाविज्ञान आज	अंक–90/2008
10.	गवेषणा – भारत में कोशविज्ञान पर विशेष	अंक–93/2009
11.	गवेषणा – साहित्य शिक्षण एवं पाठ विश्लेषण पर केंद्रित	अंक–94/2009
12.	गवेषणा – स्वर्ण जयंती विशेषांक–2011	अंक–98/2011
13.	गवेषणा – शिक्षा पर विशेष	अंक–99/2011
14.	गवेषणा संचयन	संकलन, 2008
15.	गवेषणा – नये दौर में प्रेमचंद	अंक–100/2012
16.	गवेषणा – इस दौर में महात्मा गांधी	अंक–101/2013
17.	गवेषणा – प्रवासी भारतीय साहित्य अंक	अंक–103/2014
18.	गवेषणा – भाषा : चिंतन के आयाम	अंक–104/2015
19.	गवेषणा – दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन पर विशेष प्रस्तुति	अंक–105/2015
20.	गवेषणा – हिंदी का विश्व	अंक–106/2016
21.	गवेषणा – हिंदी भाषा : विविध	अंक–107/2016
22.	गवेषणा – पं. विद्यानिवास मिश्र विशेषांक	अंक–108/2016
23.	गवेषणा – रामधारी सिंह दिनकर विशेषांक	अंक–109/2017
24.	के.हि.सं. गवेषणा – भारतीय भाषा चिंतन–परंपरा विशेषांक	अंक–110/2017
25.	के.हि.सं. गवेषणा – भाषा एवं साहित्य : विविध	अंक–111/2018
26.	के.हि.सं. गवेषणा – भारतीय भाषा एवं साहित्य	अंक–120/2020

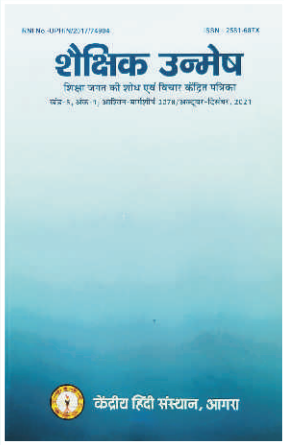
—डॉ. सपना गुप्ता

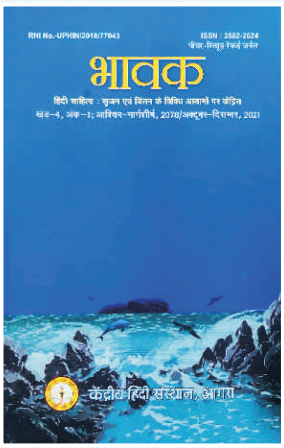
संपादक

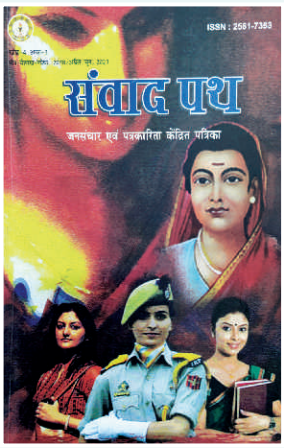
केंद्रीय हिंदी संस्थान से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ

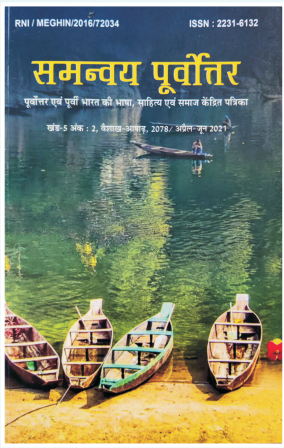




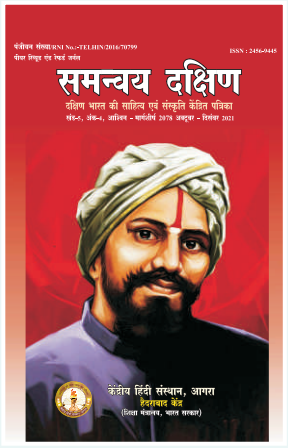


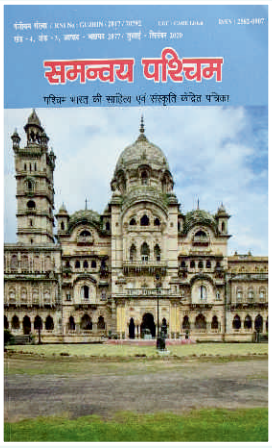


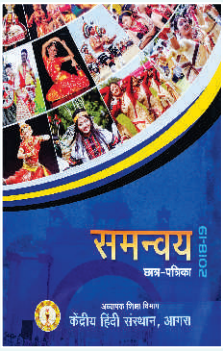




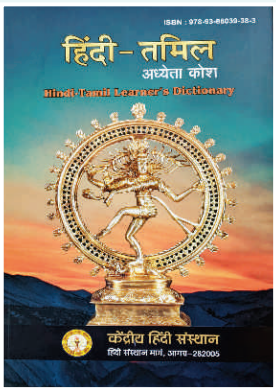


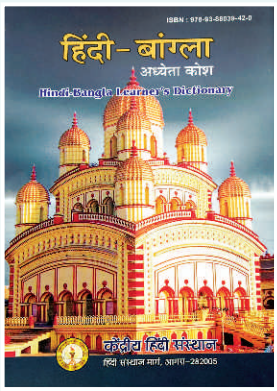


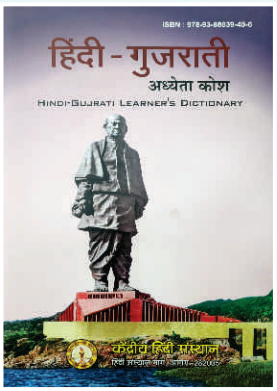


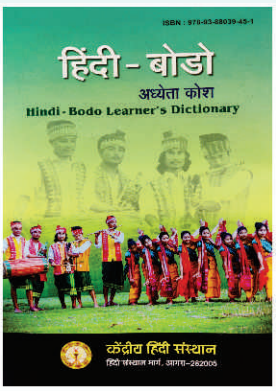


संस्थान से प्रकाशित नवीनतम शब्द कोश

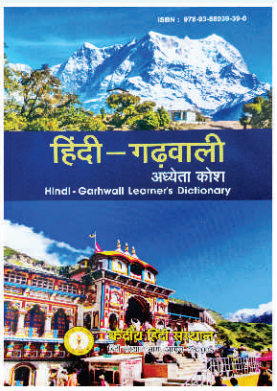


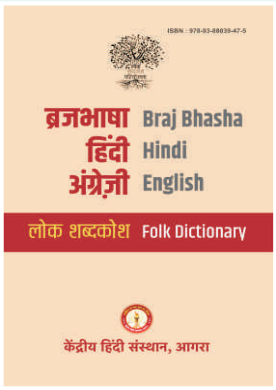


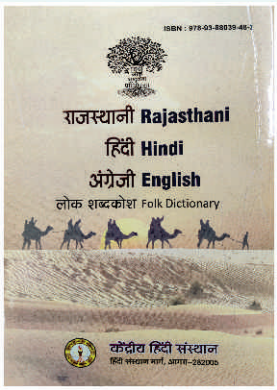


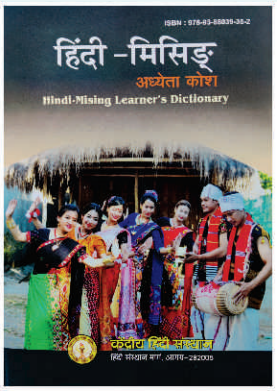












मुद्रक राष्ट्रभाषा ऑफसेट प्रेस, आगरा तथा प्रकाशक डॉ. सपना गुप्ता, विभागाध्यक्ष, अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के पक्ष में 26/470, बल्का बस्ती, राजा की मंडी, आगरा (मुद्रण स्थल) से मुद्रित तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005 (उ.प्र.) (प्रकाशन स्थल) से प्रकाशित, संपादक डॉ. सपना गुप्ता।